17

LION

BRAND

FOOLSCAP PAPER

SIZE

FOOLSCAP



SHEETS

480

महाभारत

संस्कृत मूल

हिन्दी अनुवाद



संस्कृत मूल

हिन्दी अनुवाद

वर्ष २

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या ६



ॐ श्रीपरमात्मने नमः



महाभारत

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥
व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे । नमो वै ब्रह्महृदये वासिष्ठाय नमो नमः ॥

वर्ष २ } गोरखपुर, चैत्र २०१४, अप्रैल १९५७ { संख्या ६ / पूर्ण संख्या १८

श्रीकृष्ण-चरण-चिन्तन

देहं सुतं धनमशेषकुलादिमानं
तुच्छं विहाय मनसा भजतादरेण ।
श्रीमाधवाङ्घ्रिकमलं कमलालयत्वा-
न्नित्यं भजन्ति कवयः कमनीयमन्तः ॥

शरीर, पुत्र, धन और कुल आदिका सारा अभिमान तुच्छ है । उसे छोड़कर हृदयसे आदरपूर्वक श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंकी आराधना करो; क्योंकि वे लक्ष्मीके निवास-स्थान हैं । इसीलिये ज्ञानी पुरुष सदा अपने अन्तःकरणमें उन कमनीय चरणकमलोंका चिन्तन करते हैं ।

'महाभारत' नामक हिंदी मासिक पत्रके सम्बन्धमें विवरण

१-प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर

२-प्रकाशनकी अवधि—मासिक

३-मुद्रकका नाम—घनश्यामदास जालान

जातीयता—भारतीय

पता—साहबगंज, गोरखपुर

४-प्रकाशकका नाम—घनश्यामदास जालान

जातीयता—भारतीय

पता—साहबगंज, गोरखपुर

५-सम्पादकका नाम—श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार

जातीयता—भारतीय

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

६-उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस समाचारपत्रके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं। — श्रीगोविन्दभवनकार्यालय, पता—नं० ३०, बाँसतल्ला गली, कलकत्ता (सन् १८६० के विधान २१ के अनुसार रजिस्टर्ड धार्मिक संस्था)

मैं, घनश्यामदास जालान, इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं।

घनश्यामदास जालान
प्रकाशक

ता० २८ फरवरी १९५७



वार्षिक मूल्य		एक प्रतिका
भारतमें २०)	सम्पादक—**हनुमानप्रसाद पोद्दार**	भारतमें २)
विदेशमें २६।)	टीकाकार—पण्डित रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम'	विदेशमें २॥)
(४० शिलिंग)	**मुद्रक-प्रकाशक—घनश्यामदास जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर**	(४ शिलिंग)

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची (द्रोणपर्व-चालू)

चित्र-सूची



अर्जुनका जयद्रथके मस्तकको काटकर समन्त-पञ्चक क्षेत्रसे बाहर फेंकना

पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिके द्वारा कृतवर्माकी पराजय, त्रिगर्तोंकी गजसेनाका संहार और जलसंधका वध

संजय उवाच

शृणुष्वैकमना राजन् यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
द्राव्यमाणे बले तस्मिन् हार्दिक्येन महात्मना ॥ १ ॥
लज्जयावनते चापि प्रहृष्टैश्चापि तावकैः ।
द्वीपो य आसीत् पाण्डूनामगाधे गाधमिच्छताम् ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! आप मुझसे जो कुछ पूछ रहे हैं, उसे एकाग्रचित्त होकर सुनिये । महामना कृतवर्माके द्वारा खदेड़ी जानेके कारण जब पाण्डवसेना लज्जासे नतमस्तक हो गयी और आपके सैनिक हर्षसे उल्लसित हो उठे, उस समय अथाह सैन्य-समुद्रमें थाह पानेकी इच्छावाले पाण्डव सैनिकोंके लिये जो द्वीप बनकर आश्रयदाता हुआ (उस सात्यकिका पराक्रम श्रवण कीजिये) ॥ १-२ ॥

श्रुत्वा स निनदं भीमं तावकानां महाहवे ।
शैनेयस्त्वरितो राजन् कृतवर्माणमभ्ययात् ॥ ३ ॥

राजन् ! उस महासमरमें आपके सैनिकोंका भयंकर सिंहनाद सुनकर सात्यकिने तुरंत ही कृतवर्मापर आक्रमण किया ॥ ३ ॥

उवाच सारथिं तत्र क्रोधामर्षसमन्वितः ।
हार्दिक्याभिमुखं सूत कुरु मे रथमुत्तमम् ॥ ४ ॥

उन्होंने क्रोध और अमर्षमें भरकर वहाँ सारथिसे कहा—'सूत ! तुम मेरे उत्तम रथको कृतवर्माके सामने ले चलो ॥ ४ ॥

कुरुते कदनं पश्य पाण्डुसैन्ये ह्यमर्षितः ।
एनं जित्वा पुनः सूत यास्यामि विजयं प्रति ॥ ५ ॥

'देखो, वह अमर्षयुक्त होकर पाण्डवसेनामें संहार मचा रहा है । सारथे ! इसे जीतकर मैं पुनः अर्जुनके पास चलूँगा' ॥ ५ ॥

एवमुक्ते तु वचने सूतस्तस्य महामते ।
निमेषान्तरमात्रेण कृतवर्माणमभ्ययात् ॥ ६ ॥

महामते ! सात्यकिके ऐसा कहनेपर सारथि पलक गिरते-गिरते रथ लेकर कृतवर्माके पास जा पहुँचा ॥ ६ ॥

कृतवर्मा तु हार्दिक्यः शैनेयं निशितैः शरैः ।
अवाकिरत् सुसंक्रुद्धस्ततोऽक्रुद्ध्यत् स सात्यकिः ॥ ७ ॥

हृदिकपुत्र कृतवर्माने अत्यन्त कुपित हो सात्यकिपर पैने बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी । इससे सात्यकिका क्रोध भी बहुत बढ़ गया ॥ ७ ॥

अथाशु निशितं भल्लं शैनेयः कृतवर्मणः ।
प्रेषयामास समरे शरांश्च चतुरोऽपरान् ॥ ८ ॥

उन्होंने तुरंत ही कृतवर्मापर समरभूमिमें एक तीखे भल्लका प्रहार किया । फिर चार बाण और मारे ॥ ८ ॥

ते तस्य जघ्निरे वाहान् भल्लेनास्याच्छिनद् धनुः ।
पृष्ठरक्षं तथा सूतमविध्यन्निशितैः शरैः ॥ ९ ॥

उन चारों बाणोंने कृतवर्माके चारों घोड़ोंको मार डाला । सात्यकिने भल्लसे उसके धनुषको काट दिया । फिर पैने बाणोंद्वारा उसके पृष्ठरक्षक और सारथिको भी क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ९ ॥

ततस्तं विरथं कृत्वा सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
सेनामस्यार्दयामास शरैः संनतपर्वभिः ॥ १० ॥

तदनन्तर सत्यपराक्रमी सात्यकिने कृतवर्माको रथहीन करके झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा उसकी सेनाको पीड़ित करना आरम्भ किया ॥ १० ॥

अभज्यताथ पृतना शैनेयशरपीडिता ।
ततः प्रायात् स त्वरितः सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ ११ ॥

सात्यकिके बाणोंसे पीड़ित हो कृतवर्माकी सेना भाग खड़ी हुई । तत्पश्चात् सत्यपराक्रमी सात्यकि तुरंत आगे बढ़ गये ॥ ११ ॥

शृणु राजन् यदकरोत् तव सैन्येषु वीर्यवान् ।
अतीत्य स महाराज द्रोणानीकमहार्णवम् ॥ १२ ॥

महाराज ! पराक्रमी सात्यकिने द्रोणाचार्यके सैन्य-समुद्रको लाँघकर आपकी सेनाओंमें जो पराक्रम किया, उसका वर्णन सुनिये ॥ १२ ॥

पराजित्य तु संहृष्टः कृतवर्माणमाहवे ।
यन्तारमब्रवीच्छूरः शनैर्याहीत्यसम्भ्रमम् ॥ १३ ॥

उस महासमरमें कृतवर्माको पराजित करके हर्षमें भरे हुए शूरवीर सात्यकि बिना किसी घबराहटके सारथिसे बोले—'सूत ! धीरे-धीरे चलो' ॥ १३ ॥

दृष्ट्वा तु तव तत् सैन्यं रथाश्वद्विपसंकुलम् ।
पदातिजनसम्पूर्णमब्रवीत् सारथिं पुनः ॥ १४ ॥

रथ, घोड़े, हाथी और पैदलोंसे भरी हुई आपकी सेनाको देखकर सात्यकिने पुनः सारथिसे कहा—॥ १४ ॥

यदेतन्मेघसंकाशं द्रोणानीकस्य सव्यतः ।
सुमहत् कुञ्जरानीकं यस्य रुक्मरथो मुखम् ॥ १५ ॥
एते हि बहवः सूत दुर्निवाराश्च संयुगे ।
दुर्योधनसमादिष्टा मदर्थे त्यक्तजीविताः ॥ १६ ॥

'सूत ! द्रोणाचार्यकी सेनाके बायें भागमें जो यह मेघोंकी घटाके समान विशाल गजसेना दिखायी देती है, इसके मुहानेपर रुक्मरथ खड़ा है । इसमें बहुत-से ऐसे शूरवीर हैं,

जिन्हें युद्धमें रोकना अत्यन्त कठिन है। ये दुर्योधनकी आज्ञासे प्राणोंका मोह छोड़कर मेरे साथ युद्ध करनेके लिये खड़े हैं ॥ १५-१६ ॥

(न चाजित्वा रणे ह्येताञ्शक्यः प्राप्तुं जयद्रथः ।
नापि पार्थो मया सूत शक्यः प्राप्तुं कथंचन ॥
एते तिष्ठन्ति सहिताः सर्वविद्यासु निष्ठिताः ॥)

'सूत ! इन्हें रणमें परास्त किये बिना न तो जयद्रथको प्राप्त किया जा सकता है और न किसी प्रकार अर्जुन ही मुझे मिल सकते हैं। ये समस्त विद्याओंमें प्रवीण योद्धा एक साथ संगठित होकर खड़े हैं ॥

राजपुत्रा महेष्वासाः सर्वे विक्रान्तयोधिनः ।
त्रिगर्तानां रथोदाराः सुवर्णविकृतध्वजाः ॥ १७ ॥

'ये त्रिगर्तदेशके उदार महारथी राजकुमार महान् धनुर्धर हैं और सभी पराक्रमपूर्वक युद्ध करनेवाले हैं। इन सबकी ध्वजा सुवर्णमयी है ॥ १७ ॥

मामेवाभिमुखा वीरा योत्स्यमाना व्यवस्थिताः ।
अत्र मां प्रापय क्षिप्रमश्वांश्चोदय सारथे ॥ १८ ॥
त्रिगर्तैः सह योत्स्यामि भारद्वाजस्य पश्यतः ।

'ये समस्त वीर मेरी ही ओर मुँह करके युद्ध करनेके लिये खड़े हैं। सारथे ! घोड़ोंको हाँको और मुझे शीघ्र ही इनके पास पहुँचा दो । मैं द्रोणाचार्यके देखते-देखते त्रिगर्तोंके साथ युद्ध करूँगा' ॥ १८½ ॥

ततः प्रायाच्छनैः सूतः सात्वतस्य मते स्थितः ॥ १९ ॥
रथेनादित्यवर्णेन भास्वरेण पताकिना ।

तदनन्तर सात्यकिकी सम्मतिके अनुसार सारथि सूर्यके समान तेजस्वी तथा पताकाओंसे विभूषित रथके द्वारा धीरे-धीरे आगे बढ़ा ॥ १९½ ॥

तमूहुः सारथेर्वश्या वल्गमाना हयोत्तमाः ॥ २० ॥
वायुवेगसमाः संख्ये कुन्देन्दुरजतप्रभाः ।

उस रथके उत्तम घोड़े कुन्द, चन्द्रमा और चाँदीके समान श्वेत रंगके थे ; वे सारथिके अधीन रहनेवाले और वायुके समान वेगशाली थे तथा युद्धमें उछलते हुए उस रथका भार वहन करते थे ॥ २०½ ॥

आपतन्तं रणे तं तु शङ्खवर्णैर्हयोत्तमैः ॥ २१ ॥
परिवव्रुस्ततः शूरा गजानीकेन सर्वतः ।
किरन्तो विविधांस्तीक्ष्णान् सायकाँल्लघुवेधिनः ॥ २२ ॥

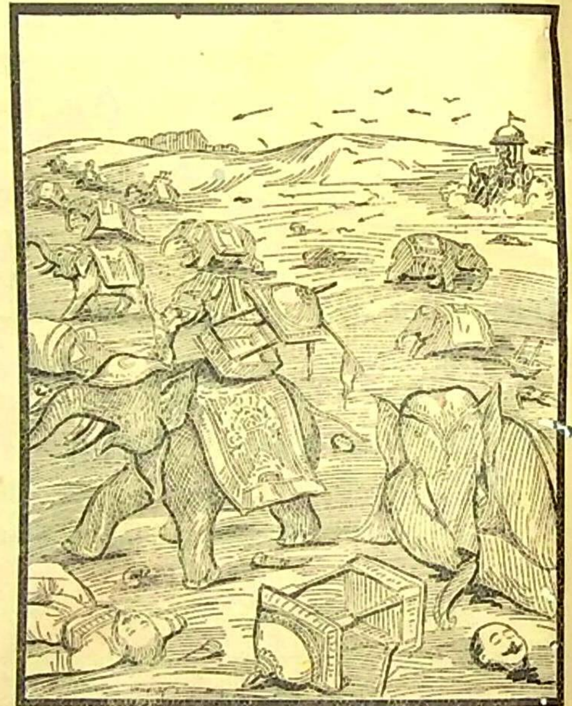
शङ्खके समान श्वेत रंगवाले उन उत्तम घोड़ोंद्वारा रणभूमिमें आते हुए सात्यकिको त्रिगर्तदेशीय शूरवीरोंने सब ओरसे गजसेनाद्वारा घेर लिया । शीघ्रतापूर्वक लक्ष्य वेधनेवाले वे समस्त सैनिक नाना प्रकारके तीखे बाणोंकी वर्षा कर रहे थे ॥ २१-२२ ॥

सात्वतो निशितैर्बाणैर्गजानीकमयोधयत् ।
पर्वतानिव वर्षेण तपान्ते जलदो महान् ॥ २३ ॥

सात्यकिने भी पैने बाणोंद्वारा गजसेनाके साथ युद्ध प्रारम्भ किया, मानो वर्षाकालमें महान् मेघ पर्वतोंपर जलकी धारा बरसा रहा हो ॥ २३ ॥

वज्राशनिसमस्पर्शैर्वध्यमानाः शरैर्गजाः ।
प्राद्रवन् रणमुत्सृज्य शिनिवीरसमीरितैः ॥ २४ ॥

शिनिवंशके वीर सात्यकिद्वारा चलाये हुए वज्र और बिजलीके समान स्पर्शवाले उन बाणोंकी मार खाकर उस सेनाके हाथी युद्धका मैदान छोड़कर भागने लगे ॥ २४ ॥



शीर्णदन्ता विरुधिरा भिन्नमस्तकपिण्डिकाः ।
विशीर्णकर्णास्यकरा विनियन्तृपताकिनः ॥ २५ ॥
सम्भिन्नमर्मघण्टाश्च विनिकृत्तमहाध्वजाः ।
हतारोहा दिशो राजन् भेजिरे भ्रष्टकम्बलाः ॥ २६ ॥

उन हाथियोंके दाँत टूट गये, सारे अङ्गोंसे खूनकी धाराएँ बहने लगीं, कुम्भस्थल और गण्डस्थल फट गये, कान, मुख और शुण्ड छिन्न-भिन्न हो गये, महावत मारे गये और ध्वजा-पताकाएँ टूटकर गिर गयीं । उनके मर्मस्थान विदीर्ण हो गये, घंटे टूट गये और विशाल ध्वज कटकर गिर पड़े। सवार मारे गये तथा झूल खिसककर गिर गये थे । राजन् ! ऐसी अवस्थामें उन हाथियोंने भागकर विभिन्न दिशाओंकी शरण ली थी ॥ २५-२६ ॥

रुवन्तो विविधान् नादान् जलदोपमनिःस्वनाः ।
नाराचैर्वत्सदन्तैश्च भल्लैरञ्जलिकैस्तथा ॥ २७ ॥

क्षुरप्रैरर्धचन्द्रैश्च सात्वतेन विदारिताः ।
क्षरन्तोऽसृक् तथा मूत्रं पुरीषं च प्रदुद्रुवुः ॥ २८ ॥

उनके चिग्घाड़नेकी ध्वनि मेघोंकी गर्जनाके समान जान पड़ती थी। वे सात्यकिके चलाये हुए नाराच, वत्सदन्त, भल्ल, अञ्जलिक, क्षुरप्र और अर्द्धचन्द्र नामक बाणोंसे विदीर्ण हो नाना प्रकारसे आर्तनाद करते, रक्त बहाते तथा मल-मूत्र छोड़ते हुए भाग रहे थे ॥ २७–२८ ॥

बभ्रमुश्च स्खलुश्चान्ये पेतुर्मम्लुस्तथापरे ।
एवं तत् कुञ्जरानीकं युयुधानेन पीडितम् ॥ २९ ॥
शरैरग्न्यर्कसंकाशैः प्रदुद्राव समन्ततः ।

उनमेंसे कुछ हाथी चक्कर काटने लगे, कुछ लड़खड़ाने लगे, कुछ धराशायी हो गये और कुछ पीड़ाके मारे अत्यन्त शिथिल हो गये थे। इस प्रकार युयुधानके अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा पीड़ित हुई हाथियोंकी वह सेना सब ओर भाग गयी ॥ २९½ ॥

तस्मिन् हते गजानीके जलसंधो महाबलः ॥ ३० ॥
यत्तः सम्प्रापयन्नागं रजताश्वरथं प्रति ।

उस गजसेनाके नष्ट होनेपर महाबली जलसंध युद्धके लिये उद्यत हो श्वेत घोड़ोंवाले सात्यकिके रथके समीप अपना हाथी ले आया ॥ ३०½ ॥

रुक्मवर्मधरः शूरस्तपनीयाङ्गदः शुचिः ॥ ३१ ॥
कुण्डली मुकुटी खड्गी रक्तचन्दनरूषितः ।
शिरसा धारयन् दीप्तां तपनीयमयीं स्रजम् ॥ ३२ ॥
उरसा धारयन् निष्कं कण्ठसूत्रं च भास्वरम् ।

शूरवीर एवं पवित्र जलसंधने अपने शरीरमें सोनेका कवच धारण कर रक्खा था। उसकी दोनों भुजाओंमें सोनेके ही बाजूबंद शोभा पा रहे थे। दोनों कानोंमें कुण्डल और मस्तकपर किरीट चमक रहे थे। उसके हाथमें तलवार थी और सम्पूर्ण शरीरमें रक्त चन्दनका लेप लगा हुआ था। उसने अपने सिरपर सोनेकी बनी हुई चमकीली माला और वक्षःस्थलपर प्रकाशमान पदक एवं कण्ठहार धारण कर रक्खे थे ॥ ३१-३२½ ॥

चापं च रुक्मविकृतं विधुन्वन् गजमूर्धनि ॥ ३३ ॥
अशोभत महाराज सविद्युदिव तोयदः ।

महाराज ! हाथीकी पीठपर बैठकर अपने सोनेके बने हुए धनुषको हिलाता हुआ जलसंध बिजलीसहित मेघके समान शोभा पा रहा था ॥ ३३½ ॥

तमापतन्तं सहसा मागधस्य गजोत्तमम् ॥ ३४ ॥
सात्यकिर्वारयामास वेलेव मकरालयम् ।

सहसा अपनी ओर आते हुए मगधराजके उस गजराजको सात्यकिने उसी प्रकार रोक दिया, जैसे तटकी भूमि समुद्रको रोक देती है ॥ ३४½ ॥

नागं निवारितं दृष्ट्वा शैनेयस्य शरोत्तमैः ॥ ३५ ॥
अक्रुद्ध्यत रणे राजन् जलसंधो महाबलः ।

राजन् ! सात्यकिके उत्तम बाणोंसे उस हाथीको अवरुद्ध हुआ देख महाबली जलसंध रणक्षेत्रमें कुपित हो उठा ॥ ३५½ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज मार्गणैर्भारसाधनैः ॥ ३६ ॥
अविध्यत शिनेः पौत्रं जलसंधो महोरसि ।

महाराज ! क्रोधमें भरे हुए जलसंधने भार सहन करनेमें समर्थ बाणोंद्वारा शिनिपौत्र सात्यकिकी विशाल छातीपर गहरा आघात किया ॥ ३६½ ॥

ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च ॥ ३७ ॥
अस्यतो वृष्णिवीरस्य निचकर्त शरासनम् ।

तत्पश्चात् दूसरे तीखे, पैने और पानीदार भल्लसे उसने बाण फेंकते हुए वृष्णिवीर सात्यकिके धनुषको काट डाला ॥

सात्यकिं छिन्नधन्वानं प्रहसन्निव भारत ॥ ३८ ॥
अविध्यन्मागधो वीरः पञ्चभिर्निशितैः शरैः ।

भारत ! धनुष कटनेके पश्चात् सात्यकिको उस मागध वीरने हँसते हुए ही पाँच तीखे बाणोंद्वारा घायल कर दिया॥

स विद्धो बहुभिर्बाणैर्जलसंधेन वीर्यवान् ॥ ३९ ॥
नाकम्पत महाबाहुस्तदद्भुतमिवाभवत् ।

जलसंधके बहुत-से बाणोंद्वारा क्षत-विक्षत होनेपर भी पराक्रमी महाबाहु सात्यकि कम्पित नहीं हुए। यह अद्भुत-सी बात थी ॥ ३९½ ॥

अचिन्तयन् वै स शरान्नात्यर्थं सम्भ्रमाद् बली॥ ४० ॥
धनुरन्यत् समादाय तिष्ठ तिष्ठेत्युवाच ह ।

बलवान् सात्यकिने उसके बाणोंको कुछ भी न गिनते हुए अधिक संभ्रममें न पड़कर दूसरा धनुष हाथमें ले लिया और कहा—'अरे ! खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ ४०½ ॥

एतावदुक्त्वा शैनेयो जलसंधं महोरसि ॥ ४१ ॥
विव्याध षष्ट्या सुभृशं शराणां प्रहसन्निव ।

ऐसा कहकर सात्यकिने हँसते हुए ही साठ बाणोंद्वारा जलसंधकी चौड़ी छातीपर गहरी चोट पहुँचायी ॥ ४१½ ॥

क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन मुष्टिदेशे महद् धनुः ॥ ४२ ॥
जलसंधस्य चिच्छेद विव्याध च त्रिभिः शरैः ।

फिर अत्यन्त तीखे क्षुरप्रसे जलसंधके विशाल धनुषको मुट्ठी पकड़नेकी जगहसे काट दिया और तीन बाण मारकर उसे घायल भी कर दिया ॥ ४२½ ॥

जलसंधस्तु तत् त्यक्त्वा सशरं वै शरासनम् ॥ ४३ ॥
तोमरं व्यसृजत् तूर्णं सात्यकिं प्रति मारिष ।

माननीय नरेश ! जलसंधने बाणसहित उस धनुषको त्यागकर सात्यकिपर तुरंत ही तोमरका प्रहार किया ॥ ४३½ ॥

स निर्भिद्य भुजं सव्यं माधवस्य महारणे ॥ ४४ ॥

अभ्यगाद् धरणीं घोरः श्वसन्निव महोरगः ।

फुफकारते हुए महान् सर्पके समान वह भयंकर तोमर उस महासमरमें सात्यकिकी बायीं भुजाको विदीर्ण करता हुआ धरतीमें समा गया ॥

निर्भिन्ने तु भुजे सव्ये सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ ४५ ॥
त्रिंशद्भिर्विशिखैस्तीक्ष्णैर्जलसंधमताडयत् ।

अपनी बायीं भुजाके घायल होनेपर सत्यपराक्रमी सात्यकिने तीस तीखे बाणोंद्वारा जलसंधको आहत कर दिया॥

प्रगृह्य तु ततः खड्गं जलसंधो महाबलः ॥ ४६ ॥
आर्षभं चर्म च महच्छतचन्द्रकसंकुलम् ।
आविध्य च ततः खड्गं सात्वतायोत्ससर्ज ह ॥ ४७ ॥

तब महाबली जलसंधने सौ चन्द्राकार चमकीले चिह्नोंसे युक्त वृषभ-चर्मकी बनी हुई विशालढाल और तलवार हाथमें ले ली तथा उस तलवारको घुमाकर सात्यकिपर छोड़ दिया ॥

शैनेयस्य धनुश्छित्त्वा स खड्गो न्यपतन्महीम् ।
अलातचक्रवच्चैव व्यरोचत महीं गतः ॥ ४८ ॥

वह खड्ग सात्यकिके धनुषको काटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। धरतीपर पहुँचकर वह अलातचक्रके समान प्रकाशित हो रहा था॥

अथान्यद् धनुरादाय सर्वकायावदारणम् ।
शालस्कन्धप्रतीकाशमिन्द्राशनिसमस्वनम् ॥ ४९ ॥
विस्फार्य विव्यधे क्रुद्धो जलसंधं शरेण ह ।

तब सात्यकिने साखूके तनेके समान विशाल, इन्द्रके वज्रकी भाँति घोर टंकार करनेवाले तथा सबके शरीरको विदीर्ण करनेमें समर्थ दूसरा धनुष हाथमें लेकर उसे कान-तक खींचा और कुपित हो एक बाणसे जलसंधको बींध डाला॥

ततः साभरणौ बाहू क्षुराभ्यां माधवोत्तमः ॥ ५० ॥
सात्यकिर्जलसंधस्य चिच्छेद प्रहसन्निव ।

फिर मधुवंशशिरोमणि सात्यकिने हँसते हुए-से दो छुरोंका प्रहार करके जलसंधकी आभूषणभूषित दोनों भुजाओंको काट दिया ॥ ५०½ ॥

तौ बाहू परिघप्रख्यौ पेततुर्गजसत्तमात् ॥ ५१ ॥
वसुंधराधराद् भ्रष्टौ पञ्चशीर्षाविवोरगौ ।

उसकी वे परिघके समान मोटी भुजाएँ उस गजराजकी पीठसे नीचे गिर पड़ीं, मानो पर्वतसे पाँच-पाँच मस्तकोंवाले दो नाग पृथ्वीपर गिरे हों ॥ ५१½ ॥

ततः सुदंष्ट्रं सुमहच्चारुकुण्डलमण्डितम् ॥ ५२ ॥
क्षुरेणास्य तृतीयेन शिरश्चिच्छेद सात्यकिः ।

तदनन्तर सात्यकिने तीसरे छुरेसे उसके सुन्दर दाँतोंवाले मनोहर कुण्डलमण्डित विशाल मस्तकको काट गिराया ॥

तत्पातितशिरोबाहुकबन्धं भीमदर्शनम् ॥ ५३ ॥
द्विरदं जलसंधस्य रुधिरेणाभ्यषिञ्चत ।

मस्तक और भुजाओंके गिर जानेसे अत्यन्त भयंकर दिखायी देनेवाले जलसंधके उस धड़ने अपने खूनसे उस हाथीको नहला दिया ॥ ५३½ ॥

जलसंधं निहत्याजौ त्वरमाणस्तु सात्वतः ॥ ५४ ॥
विमानं पातयामास गजस्कन्धाद् विशाम्पते ।

प्रजानाथ ! युद्धस्थलमें जलसंधको मारकर फुर्ती करने-वाले सात्यकिने हाथीकी पीठसे उसके हौदेको भी गिरा दिया॥

रुधिरेणावलिप्ताङ्गो जलसंधस्य कुञ्जरः ॥ ५५ ॥
विलम्बमानमवहत् संश्लिष्टं परमासनम् ।

खूनसे भीगे शरीरवाला जलसंधका वह हाथी अपनी पीठसे सटकर लटकते हुए उस हौदेको ढो रहा था ॥५५½॥

शरार्दितः सात्वतेन मर्दमानः स्ववाहिनीम् ॥ ५६ ॥
घोरमार्तस्वरं कृत्वा विदुद्राव महागजः ।

सात्यकिके बाणोंसे पीड़ित हो वह महान् गजराज घोर चीत्कार करके अपनी ही सेनाको कुचलता हुआ भाग निकला॥

हाहाकारो महानासीत् तव सैन्यस्य मारिष ॥ ५७ ॥
जलसंधं हतं दृष्ट्वा वृष्णीनामृषभेण तु ।

आर्य ! वृष्णिप्रवर सात्यकिके द्वारा जलसंधको मारा गया देख आपकी सेनामें महान् हाहाकार मच गया ॥५७½॥

विमुखाश्चाभ्यधावन्त तव योधाः समन्ततः ॥ ५८ ॥
पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ।

आपके योद्धा शत्रुओंपर विजय पानेका उत्साह खो बैठे। अब वे भाग निकलनेमें ही उत्साह दिखाने लगे और युद्धसे मुँह मोड़कर चारों ओर भाग गये ॥ ५८½ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राजन् द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ॥ ५९ ॥
अभ्ययाज्जवनैरश्वैर्युयुधानं महारथम् ।

राजन् ! इसी समय शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य अपने वेगशाली घोड़ोंद्वारा महारथी युयुधानका सामना करनेके लिये आ पहुँचे ॥ ५९½ ॥

तमुदीर्णं तथा दृष्ट्वा शैनेयं नरपुङ्गवाः ॥ ६० ॥
द्रोणेनैव सह क्रुद्धाः सात्यकिं समुपाद्रवन् ।

शिनिपौत्र सात्यकिको बढ़ते देख नरश्रेष्ठ कौरव महारथी द्रोणाचार्यके साथ ही कुपित हो उनपर टूट पड़े ॥ ६०½ ॥

ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां सात्वतस्य च ।
द्रोणस्य च रणे राजन् घोरं देवासुरोपमम् ॥ ६१ ॥

राजन् ! फिर तो उस रणक्षेत्रमें कौरवोंसहित द्रोणाचार्य तथा सात्यकिका देवासुर-संग्रामके समान भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ६१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे जलसंधवधो नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिके कौरवसेनामें प्रवेशके अवसरपर जलसंधका वध नामक एक सौ पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११५ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १½ श्लोक मिलाकर कुल ६२½ श्लोक हैं)

षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिका पराक्रम तथा दुर्योधन और कृतवर्माकी पुनः पराजय

संजय उवाच

ते किरन्तः शरव्रातान् सर्वे यत्ताः प्रहारिणः।
त्वरमाणा महाराज युयुधानमयोधयन् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! वे प्रहारकुशल सम्पूर्ण योद्धा सावधान हो बड़ी फुर्तीके साथ बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए वहाँ युयुधानके साथ युद्ध करने लगे ॥ १ ॥

तं द्रोणः सप्तसप्तत्या जघान निशितैः शरैः।
दुर्मर्षणो द्वादशभिर्दुःसहो दशभिः शरैः ॥ २ ॥

द्रोणाचार्यने सात्यकिको सतहत्तर तीखे बाणोंसे घायल कर दिया। फिर दुर्मर्षणने बारह और दुःसहने दस बाणोंसे उन्हें बींध डाला ॥ २ ॥

विकर्णश्चापि निशितैस्त्रिंशद्भिः कङ्कपत्रिभिः।
विव्याध सव्ये पार्श्वे तु स्तनाभ्यामन्तरे तथा ॥ ३ ॥

तत्पश्चात् विकर्णने भी कंककी पाँखवाले तीस तीखे बाणोंसे सात्यकिकी बायीं पसली और छाती छेद डाली ॥३॥

दुर्मुखो दशभिर्बाणैस्तथा दुःशासनोऽष्टभिः।
चित्रसेनश्च शैनेयं द्वाभ्यां विव्याध मारिष ॥ ४ ॥

आर्य! तदनन्तर दुर्मुखने दस, दुःशासनने आठ और चित्रसेनने दो बाणोंसे सात्यकिको घायल कर दिया ॥ ४ ॥

दुर्योधनश्च महता शरवर्षेण माधवम्।
अपीडयद् रणे राजञ्शूराश्चान्ये महारथाः ॥ ५ ॥

राजन्! उस रणक्षेत्रमें दुर्योधन तथा अन्य शूरवीर महारथियोंने भारी बाण-वर्षा करके सात्यकिको पीडित कर दिया ॥ ५ ॥

सर्वतः प्रतिविद्धस्तु तव पुत्रैर्महारथैः।
तान् प्रत्यविध्यद् वार्ष्णेयः पृथक् पृथगजिह्मगैः॥ ६ ॥

आपके महारथी पुत्रोंद्वारा सब ओरसे घायल किये जानेपर वृष्णिवंशी वीर सात्यकिने उन सबको पृथक्-पृथक् अपने बाणोंसे बींधकर बदला चुकाया ॥ ६ ॥

भारद्वाजं त्रिभिर्बाणैर्दुःसहं नवभिः शरैः।
विकर्णं पञ्चविंशत्या चित्रसेनं च सप्तभिः ॥ ७ ॥
दुर्मर्षणं द्वादशभिरष्टाभिश्च विविंशतिम्।
सत्यव्रतं च नवभिर्विजयं दशभिः शरैः ॥ ८ ॥

उन्होंने द्रोणाचार्यको तीन, दुःसहको नौ, विकर्णको पचीस, चित्रसेनको सात, दुर्मर्षणको बारह, विविंशतिको आठ, सत्यव्रतको नौ तथा विजयको दस बाणोंसे घायल किया॥

ततो रुक्माङ्गदं चापं विधुन्वानो महारथः।
अभ्ययात् सात्यकिस्तूर्णं पुत्रं तव महारथम् ॥ ९ ॥

तदनन्तर महारथी सात्यकिने सोनेके अङ्गदसे विभूषित अपने विशाल धनुषको हिलाते हुए तुरंत ही आपके महारथी पुत्र दुर्योधनपर आक्रमण किया ॥ ९ ॥

राजानं सर्वलोकस्य सर्वलोकमहारथम्।
शरैरभ्याहनद् गाढं ततो युद्धमभूत् तयोः ॥ १० ॥

सब लोगोंके राजा और समस्त संसारके विख्यात महारथी दुर्योधनको उन्होंने अपने बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी। फिर तो उन दोनोंमें भारी युद्ध छिड़ गया ॥ १० ॥

विमुञ्चन्तौ शरांस्तीक्ष्णान् संदधानौ च सायकान्।
अदृश्यं समरेऽन्योन्यं चक्रतुस्तौ महारथौ ॥ ११ ॥

उन दोनों महारथियोंने समरभूमिमें बाणोंका संधान और तीखे बाणोंका प्रहार करते हुए एक दूसरेको अदृश्य कर दिया ॥ ११ ॥

सात्यकिः कुरुराजेन निर्विद्धो बह्वशोभत।
अस्रवद् रुधिरं भूरि स्वरसं चन्दनो यथा ॥ १२ ॥

सात्यकि कुरुराज दुर्योधनके बाणोंसे बिंधकर अधिक मात्रामें रक्त बहाने लगे। उस समय वे अपना रस बहाते हुए लाल चन्दनवृक्षके समान अधिक शोभा पा रहे थे ॥

सात्वतेन च बाणौघैर्निर्विद्धस्तनयस्तव।
शातकुम्भमयापीडो बभौ यूप इवोच्छ्रितः ॥ १३ ॥

सात्यकिके बाणसमूहोंसे घायल होकर आपका पुत्र दुर्योधन सुवर्णमय मुकुट धारण किये ऊँचे यूपके समान सुशोभित हो रहा था ॥ १३ ॥

माधवस्तु रणे राजन् कुरुराजस्य धन्विनः।
धनुश्चिच्छेद समरे क्षुरप्रेण हसन्निव ॥ १४ ॥

राजन्! रणक्षेत्रमें सात्यकिने धनुर्धर दुर्योधनके धनुषको एक क्षुरप्रद्वारा हँसते हुए-से काट दिया ॥ १४ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं शरैर्बहुभिराचिनोत्।
निर्भिन्नश्च शरैस्तेन द्विषता क्षिप्रकारिणा ॥ १५ ॥
नामृष्यत रणे राजा शत्रोर्विजयलक्षणम्।

धनुष कट जानेपर उन्होंने बहुत-से बाण मारकर दुर्योधनके शरीरको चुन दिया। शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले अपने शत्रु सात्यकिके बाणोंद्वारा विदीर्ण होकर राजा दुर्योधन रणभूमिमें विपक्षीके उस विजयसूचक पराक्रमको सह न सका ॥१५½॥

अथान्यद् धनुरादाय हेमपृष्ठं दुरासदम् ॥ १६ ॥
विव्याध सात्यकिं तूर्णं सायकानां शतेन ह।

उसने सोनेकी पीठवाले दूसरे दुर्धर्ष धनुषको लेकर शीघ्र ही सौ बाणोंसे सात्यकिको घायल कर दिया ॥१६½॥

सोऽतिविद्धो बलवता तव पुत्रेण धन्विना ॥ १७ ॥
अमर्षवशमापन्नस्तव पुत्रमपीडयत्।

आपके बलवान् और धनुर्धर पुत्रके द्वारा अत्यन्त घायल किये जानेपर सात्यकिने भी अमर्षके वशीभूत होकर आपके पुत्रको बड़ी पीड़ा दी ॥ १७½ ॥

पीडितं नृपतिं दृष्ट्वा तव पुत्रा महारथाः ॥ १८ ॥
सात्यकिं शरवर्षेण छादयामासुरोजसा ।

राजाको पीड़ित देखकर आपके अन्य महारथी पुत्रोंने बलपूर्वक बाणोंकी वर्षा करके सात्यकिको आच्छादित कर दिया॥

स च्छाद्यमानो बहुभिस्तव पुत्रैर्महारथैः ॥ १९ ॥
एकैकं पञ्चभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ।
दुर्योधनं च त्वरितो विव्याधाष्टभिराशुगैः ॥ २० ॥

आपके बहुसंख्यक महारथी पुत्रोंद्वारा बाणोंसे आच्छादित किये जानेपर सात्यकिने उनमेंसे एक-एकको पहले पाँच-पाँच बाणोंसे घायल किया। फिर सात-सात बाणोंसे बींध डाला। तत्पश्चात् तुरंत ही आठ शीघ्रगामी बाणोंद्वारा दुर्योधनको भी गहरी चोट पहुँचायी ॥ १९-२० ॥

प्रहसंश्चास्य चिच्छेद कार्मुकं रिपुभीषणम् ।
नागं मणिमयं चैव शरैर्ध्वजमपातयत् ॥ २१ ॥

इसके बाद युयुधानने हँसते हुए ही दुर्योधनके शत्रुभीषण धनुषको और मणिमय नागसे चिह्नित ध्वजको भी बाणोंद्वारा काट गिराया ॥ २१ ॥

हत्वा तु चतुरो वाहांश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ।
सारथिं पातयामास क्षुरप्रेण महायशाः ॥ २२ ॥

फिर चार तीखे बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको मारकर महायशस्वी सात्यकिने क्षुरप्रद्वारा उसके सारथिको भी मार गिराया ॥ २२ ॥

एतस्मिन्नन्तरे चैव कुरुराजं महारथम् ।
अवाकिरच्छरैर्हृष्टो बहुभिर्मर्मभेदिभिः ॥ २३ ॥

तदनन्तर हर्षमें भरे हुए सात्यकिने महारथी कुरुराज दुर्योधनपर बहुत-से मर्मभेदी बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी॥

स वध्यमानः समरे शैनेयस्य शरोत्तमैः ।
प्राद्रवत् सहसा राजन् पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ २४ ॥
आप्लुतश्च ततो यानं चित्रसेनस्य धन्विनः ।

राजन्! सात्यकिके श्रेष्ठ बाणोंद्वारा समराङ्गणमें क्षत-विक्षत होकर आपका पुत्र दुर्योधन सहसा भागा और धनुर्धर चित्रसेनके रथपर जा चढ़ा ॥ २४½ ॥

हाहाभूतं जगच्चासीद् दृष्ट्वा राजानमाहवे ॥ २५ ॥
ग्रस्यमानं सात्यकिना खे सोममिव राहुणा ।

जैसे आकाशमें राहु चन्द्रमापर ग्रहण लगाता है, उसी प्रकार सात्यकिद्वारा राजा दुर्योधनको ग्रस्त होते देख वहाँ सब लोगोंमें हाहाकार मच गया ॥ २५½ ॥

तं तु शब्दमथ श्रुत्वा कृतवर्मा महारथः ॥ २६ ॥
अभ्ययात् सहसा तत्र यत्रास्ते माधवः प्रभुः ।

उस कोलाहलको सुनकर महारथी कृतवर्मा सहसा वहीं आ पहुँचा, जहाँ शक्तिशाली सात्यकि खड़े थे ॥ २६½ ॥

विधुन्वानो धनुः श्रेष्ठं चोदयंश्चैव वाजिनः ॥ २७ ॥
भर्त्सयन् सारथिं चाग्रे याहि याहीति सत्वरम् ।

वह अपने श्रेष्ठ धनुषको कँपाता, घोड़ोंको हाँकता और 'आगे बढ़ो, जल्दी चलो' कहकर सारथिको फटकारता हुआ वहाँ आया ॥ २७½ ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य व्यादितास्यमिवान्तकम् ॥ २८ ॥
युयुधानो महाराज यन्तारमिदमब्रवीत् ।

महाराज! मुँह बाये हुए कालके समान कृतवर्माको वहाँ आते देख युयुधानने अपने सारथिसे कहा—॥२८½॥

कृतवर्मा रथेनैष द्रुतमापतते शरी ॥ २९ ॥
प्रत्युद्याहि रथेनैनं प्रवरं सर्वधन्विनाम् ।

'सूत! यह कृतवर्मा बाण लेकर रथके द्वारा तीव्र वेगसे आ रहा है। यह सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ है। तुम रथके द्वारा इसकी अगवानी करो' ॥ २९½ ॥

ततः प्रजविताश्वेन विधिवत् कल्पितेन च ॥ ३० ॥
आससाद रणे भोजं प्रतिमानं धनुष्मताम् ।

तदनन्तर सात्यकि विधिपूर्वक सजाये गये तेज घोड़ोंवाले रथके द्वारा रणभूमिमें धनुर्धरोंके आदर्शभूत कृतवर्माके पास जा पहुँचे ॥ ३०½ ॥

ततः परमसंक्रुद्धौ ज्वलिताविव पावकौ ॥ ३१ ॥
समेयातां नरव्याघ्रौ व्याघ्राविव तरस्विनौ ।

तत्पश्चात् प्रज्वलित पावक और वेगशाली व्याघ्रोंके समान वे दोनों नरश्रेष्ठ वीर अत्यन्त कुपित हो एक दूसरेसे भिड़ गये ॥ ३१½ ॥

कृतवर्मा तु शैनेयं षड्विंशत्या समार्पयत् ॥ ३२ ॥
निशितैः सायकैस्तीक्ष्णैर्यन्तारं चास्य पञ्चभिः ।

कृतवर्माने सात्यकिपर तेजधारवाले छब्बीस तीखे बाण चलाये और पाँच बाणोंद्वारा उनके सारथिको भी घायल कर दिया ॥ ३२½ ॥

चतुरश्चतुरो वाहांश्चतुर्भिः परमेषुभिः ॥ ३३ ॥
अविध्यत् साधुदान्तान् वै सैन्धवान् सात्वतस्य हि ।

इसके बाद चार उत्तम बाण मारकर उसने सात्यकिके सुशिक्षित एवं विनीत चारों सिंधी घोड़ोंको भी बींध डाला ॥

रुक्मध्वजो रुक्मपृष्ठं महद् विस्फार्य कार्मुकम् ॥३४॥
रुक्माङ्गदी रुक्मवर्मा रुक्मपुङ्खैरवारयत् ।

तदनन्तर सोनेके केयूर और सोनेके ही कवच धारण करनेवाले सुवर्णमय ध्वजासे सुशोभित कृतवर्माने सोनेकी पीठवाले अपने विशाल धनुषकी टंकार करके स्वर्णमय पंखवाले बाणोंसे सात्यकिको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ३४½ ॥

ततोऽशीतिं शिनेः पौत्रः सायकान् कृतवर्मणे ॥ ३५ ॥
प्राहिणोत् त्वरया युक्तो द्रष्टुकामो धनंजयम् ।

तब शिनिपौत्र सात्यकिने बड़ी उतावलीके साथ मनमें अर्जुनके दर्शनकी कामना लिये वहाँ कृतवर्माको अस्सी बाण मारे ॥ ३५½ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुतापनः ॥ ३६ ॥
समकम्पत दुर्धर्षः क्षितिकम्पे यथाचलः ।

शत्रुओंको संताप देनेवाला दुर्धर्ष वीर कृतवर्मा अपने बलवान् शत्रु सात्यकिके द्वारा अत्यन्त घायल होकर उसी प्रकार काँपने लगा, जैसे भूकम्पके समय पर्वत हिलने लगता है ॥

त्रिषष्ट्या चतुरोऽस्याश्वान् सप्तभिः सारथिं तथा ॥ ३७ ॥
विव्याध निशितैस्तूर्णं सात्यकिः सत्यविक्रमः ।

तत्पश्चात् सत्यपराक्रमी सात्यकिने तिरसठ बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको और सात तीखे बाणोंसे उसके सारथिको भी शीघ्र ही क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ३७½ ॥

सुवर्णपुङ्खं विशिखं समाधाय च सात्यकिः ॥ ३८ ॥
व्यसृजत् तं महाज्वालं संक्रुद्धमिव पन्नगम् ।

अब सात्यकिने अपने धनुषपर सुवर्णमय पंखवाले अत्यन्त तेजस्वी बाणका संधान किया, जो क्रोधमें भरे हुए सर्पके समान प्रतीत होता था । उस बाणको उन्होंने कृतवर्मा-पर छोड़ दिया ॥ ३८½ ॥

सोऽविध्यत् कृतवर्माणं यमदण्डोपमः शरः ॥ ३९ ॥
जाम्बूनदविचित्रं च वर्म निर्भिद्य भानुमत् ।
अभ्यगाद् धरणीमुग्रो रुधिरेण समुक्षितः ॥ ४० ॥

सात्यकिका वह बाण यमदण्डके समान भयंकर था । उसने कृतवर्माके सुवर्णजटित चमकीले कवचको छिन्न-भिन्न करके उसे गहरी चोट पहुँचायी तथा खूनसे लथपथ होकर वह धरतीमें समा गया ॥ ३९–४० ॥

संजातरुधिरश्चाजौ सात्वतेषुभिरर्दितः ।
सशरं धनुरुत्सृज्य न्यपतत् स्यन्दनोत्तमात् ॥ ४१ ॥

युद्धस्थलमें सात्यकिके बाणोंसे पीड़ित हो कृतवर्मा खून-की धारा बहाता हुआ धनुष-बाण छोड़कर उस उत्तम रथसे उसके पिछले भागमें गिर पड़ा ॥ ४१ ॥

स सिंहदंष्ट्रो जानुभ्यां पतितोऽमितविक्रमः ।
शरार्दितः सात्यकिना रथोपस्थे नरर्षभः ॥ ४२ ॥

सिंहके समान दाँतोंवाला अमितपराक्रमी नरश्रेष्ठ कृतवर्मा सात्यकिके बाणोंसे पीड़ित हो घुटनोंके बलसे रथकी बैठकमें गिर गया ॥ ४२ ॥

सहस्रबाहुसदृशमक्षोभ्यमिव सागरम् ।
निवार्य कृतवर्माणं सात्यकिः प्रययौ ततः ॥ ४३ ॥

सहस्रबाहु अर्जुनके समान दुर्जय तथा महासागरके समान अक्षोभ्य कृतवर्माको इस प्रकार पराजित करके सात्यकि वहाँसे आगे बढ़ गये ॥ ४३ ॥

खड्गशक्तिधनुःकीर्णां गजाश्वरथसंकुलाम् ।
प्रवर्तितोग्ररुधिरां शतशः क्षत्रियर्षभैः ॥ ४४ ॥
प्रेक्षतां सर्वसैन्यानां मध्येन शिनिपुङ्गवः ।
अभ्यगाद्वाहिनीं हित्वा वृत्रहेवासुरीं चमूम् ॥ ४५ ॥

जैसे वृत्रनाशक इन्द्र असुरोंकी सेनाको लाँघकर जा रहे हों, उसी प्रकार शिनिप्रवर सात्यकि सम्पूर्ण सैनिकोंके देखते-देखते उनके बीचसे होकर उस सेनाका परित्याग करके चल दिये । उस कौरवसेनामें सैकड़ों क्षत्रियशिरो-मणियोंने भयानक रक्तकी धारा बहा दी थी । वहाँ हाथी, घोड़े तथा रथ खचाखच भरे हुए थे और खड्ग, शक्ति एवं धनुष सब ओर व्याप्त थे ॥ ४४–४५ ॥

समाश्वस्य च हार्दिक्यो गृह्य चान्यन्महद् धनुः ।
तस्थौ स तत्र बलवान् वारयन् युधि पाण्डवान् ॥ ४६ ॥

उधर बलवान् कृतवर्मा आश्वस्त होकर दूसरा विशाल धनुष हाथमें लेकर युद्धस्थलमें पाण्डवोंका सामना करता हुआ वहीं खड़ा रहा ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे दुर्योधनकृतवर्मपराजये षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिके कौरव-सेनामें प्रवेशके पश्चात् दुर्योधन और कृतवर्माकी पराजयविषयक एक सौ सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११६ ॥

सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकि और द्रोणाचार्यका युद्ध, द्रोणकी पराजय तथा कौरव-सेनाका पलायन

संजय उवाच

काल्यमानेषु सैन्येषु शैनेयेन ततस्ततः ।
भारद्वाजः शरव्रातैर्महद्भिः समवाकिरत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! जब सात्यकि जहाँ-तहाँ जा-जाकर आपकी सेनाओंको कालके गालमें भेजने लगे, तब भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्यने उनपर महान् बाणसमूहोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ १ ॥

स सम्प्रहारस्तुमुलो द्रोणसात्वतयोरभूत् ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां बलिवासवयोरिव ॥ २ ॥

राजन् ! सम्पूर्ण सैनिकोंके देखते-देखते बलि और इन्द्र-

के समान द्रोणाचार्य और सात्यकिका वह युद्ध बड़ा भयंकर हो गया ॥ २ ॥

ततो द्रोणः शिनेः पौत्रं चित्रैः सर्वायसैः शरैः ।
त्रिभिराशीविषाकारैर्ललाटे समविध्यत ॥ ३ ॥

उस समय द्रोणाचार्यने सम्पूर्णतः लोहेके बने हुए विचित्र तथा विषधर सर्पके समान भयंकर तीन बाणोंद्वारा शिनिपौत्र सात्यकिके ललाटमें गहरा आघात किया ॥ ३ ॥

तैर्ललाटार्पितैर्बाणैर्युयुधानस्त्वजिह्मगैः ।
व्यरोचत महाराज त्रिशृङ्ग इव पर्वतः ॥ ४ ॥

महाराज ! ललाटमें धँसे हुए उन सीधे जानेवाले बाणोंके द्वारा युयुधान तीन शिखरोंवाले पर्वतके समान सुशोभित हुए॥

ततोऽस्य बाणानपरानिन्द्राशनिसमस्वनान् ।
भारद्वाजोऽन्तरप्रेक्षी प्रेषयामास संयुगे ॥ ५ ॥

द्रोणाचार्य अवसर देखते रहते थे । उन्होंने मौका पाकर इन्द्रके वज्रकी भाँति भयंकर शब्द करनेवाले और भी बहुत-से बाण युद्धस्थलमें सात्यकिपर चलाये ॥ ५ ॥

तान् द्रोणचापनिर्मुक्तान् दाशार्हः पततः शरान् ।
द्वाभ्यां द्वाभ्यां सुपुङ्खाभ्यां चिच्छेद परमास्त्रवित् ॥ ६ ॥

द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटकर गिरते हुए उन बाणोंको दशार्हकुलनन्दन परमास्त्रवेत्ता सात्यकिने उत्तम पंखोंसे युक्त दो दो बाणोंद्वारा काट डाला ॥ ६ ॥

तामस्य लघुतां द्रोणः समवेक्ष्य विशाम्पते ।
प्रहस्य सहसाविध्यत् त्रिंशता शिनिपुङ्गवम् ॥ ७ ॥

प्रजानाथ ! सात्यकिकी वह फुर्ती देखकर द्रोणाचार्य हँस पड़े । उन्होंने सहसा तीस बाण मारकर शिनिप्रवर सात्यकिको घायल कर दिया ॥ ७ ॥

पुनः पञ्चाशतेषूणां शितेन च समार्पयत् ।
लघुतां युयुधानस्य लाघवेन विशेषयन् ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् उन्होंने युयुधानकी फुर्तीको अपनी फुर्तीसे मन्द सिद्ध करते हुए तेजधारवाले पचास बाणोंद्वारा पुनः उन्हें घायल कर दिया ॥ ८ ॥

समुत्पतन्ति वल्मीकाद् यथा क्रुद्धा महोरगाः ।
तथा द्रोणरथाद् राजन्नुत्पतन्ति तनुच्छिदः ॥ ९ ॥

राजन् ! जैसे बाँबीसे क्रोधमें भरे हुए बहुत-से सर्प प्रकट होते हैं, उसी प्रकार द्रोणाचार्यके रथसे शरीरको छेद डालनेवाले बाण प्रकट होकर वहाँ सब ओर गिरने लगे॥

तथैव युयुधानेन सृष्टाः शतसहस्रशः ।
अवाकिरन् द्रोणरथं शरा रुधिरभोजनाः ॥ १० ॥

उसी प्रकार युयुधानके चलाये हुए लाखों रुधिरभोजी बाण द्रोणाचार्यके रथपर बरसने लगे ॥ १० ॥

लाघवाद् द्विजमुख्यस्य सात्वतस्य च मारिष ।
विशेषं नाध्यगच्छाम समावास्तां नरर्षभौ ॥ ११ ॥

माननीय नरेश ! हाथोंकी फुर्तीकी दृष्टिसे द्विजश्रेष्ठ द्रोणाचार्य और सात्यकिमें हमें कोई अन्तर नहीं जान पड़ता था । वे दोनों ही नरश्रेष्ठ समान प्रतीत होते थे ॥ ११ ॥

सात्यकिस्तु ततो द्रोणं नवभिर्नतपर्वभिः ।
आजघान भृशं क्रुद्धो ध्वजं च निशितैः शरैः ॥ १२ ॥

तदनन्तर सात्यकिने अत्यन्त कुपित हो झुकी हुई गाँठवाले नौ बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यपर गहरा आघात किया तथा तीखे बाणोंसे उनके ध्वजको भी चोट पहुँचायी ॥ १२ ॥

सारथिं च शतेनैव भारद्वाजस्य पश्यतः ।
लाघवं युयुधानस्य दृष्ट्वा द्रोणो महारथः ॥ १३ ॥
सप्तत्या सारथिं विद्ध्वा तुरङ्गांश्च त्रिभिस्त्रिभिः ।
ध्वजमेकेन चिच्छेद माधवस्य रथे स्थितम् ॥ १४ ॥

तत्पश्चात् द्रोणके देखते-देखते सात्यकिने सौ बाणोंसे उनके सारथिको भी घायल कर दिया । युयुधानकी यह फुर्ती देखकर महारथी द्रोणने सत्तर बाणोंसे सात्यकिके सारथिको बींधकर तीन-तीन बाणोंसे उनके घोड़ोंको भी घायल कर दिया । फिर एक बाणसे सात्यकिके रथपर फहराते हुए ध्वजको भी काट डाला ॥ १३–१४ ॥

अथापरेण भल्लेन हेमपुङ्खेन पत्रिणा ।
धनुश्चिच्छेद समरे माधवस्य महात्मनः ॥ १५ ॥

इसके बाद सुवर्णमय पंखवाले दूसरे भल्लसे आचार्यने समराङ्गणमें महामनस्वी सात्यकिके धनुषको भी खण्डित कर दिया ॥ १५ ॥

सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो धनुस्त्यक्त्वा महारथः ।
गदां जग्राह महतीं भारद्वाजाय चाक्षिपत् ॥ १६ ॥

इससे महारथी सात्यकिको बड़ा क्रोध हुआ । उन्होंने धनुष त्यागकर विशाल गदा हाथमें ले ली और उसे द्रोणाचार्यपर दे मारा ॥ १६ ॥

तामापतन्तीं सहसा पट्टबद्धामयस्मयीम् ।
न्यवारयच्छरैर्द्रोणो बहुभिर्बहुरूपिभिः ॥ १७ ॥

वह लोहेकी गदा रेशमी वस्त्रसे बँधी हुई थी । उसे सहसा अपने ऊपर आती देख द्रोणाचार्यने अनेक रूपवाले बहुसंख्यक बाणोंद्वारा उसका निवारण कर दिया ॥ १७ ॥

अथान्यद् धनुरादाय सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
विव्याध बहुभिर्वीरं भारद्वाजं शिलाशितैः ॥ १८ ॥

तब सत्यपराक्रमी सात्यकिने दूसरा धनुष लेकर सानपर तेज किये हुए बहुसंख्यक बाणोंद्वारा वीर द्रोणाचार्यको बींध डाला ॥ १८ ॥

स विद्ध्वा समरे द्रोणं सिंहनादममुञ्चत ।
तं वै न ममृषे द्रोणः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ १९ ॥

इस प्रकार समराङ्गणमें द्रोणको घायल करके सात्यकिने

सिंहके समान गर्जना की। उसे सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य सहन न कर सके ॥ १९ ॥

ततः शक्तिं गृहीत्वा तु रुक्मदण्डामयस्मयीम् ।
तरसा प्रेषयामास माधवस्य रथं प्रति ॥ २० ॥

उन्होंने सोनेकी डंडेवाली लोहेकी शक्ति लेकर उसे सात्यकिके रथपर बड़े वेगसे चलाया ॥ २० ॥

अनासाद्य तु शैनेयं सा शक्तिः कालसंनिभा ।
भित्त्वा रथं जगामोग्रा धरणीं दारुणस्वना ॥ २१ ॥

वह कालके समान विकराल शक्ति सात्यकितक न पहुँचकर उनके रथको विदीर्ण करके भयंकर शब्द करती हुई पृथ्वीमें समा गयी ॥ २१ ॥

ततो द्रोणं शिनेः पौत्रो राजन् विव्याध पत्रिणा ।
दक्षिणं भुजमासाद्य पीडयन् भरतर्षभ ॥ २२ ॥

राजन् ! भरतश्रेष्ठ ! तब शिनिके पौत्रने एक बाणसे द्रोणाचार्यकी दाहिनी भुजापर चोट करके उसे पीड़ा देते हुए आचार्यको घायल कर दिया ॥ २२ ॥

द्रोणोऽपि समरे राजन् माधवस्य महद् धनुः ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद रथशक्त्या च सारथिम् ॥ २३ ॥

नरेश्वर ! तब समरभूमिमें द्रोणाचार्यने भी सात्यकिके विशाल धनुषको अर्द्धचन्द्राकार बाणसे काट दिया तथा रथ-शक्तिका प्रहार करके सारथिको भी गहरी चोट पहुँचायी॥२३॥

मुमोह सारथिस्तस्य रथशक्त्या समाहतः ।
स रथोपस्थमासाद्य मुहूर्तं संन्यषीदत ॥ २४ ॥

द्रोणकी रथशक्तिसे आहत हो सारथि मूर्छित हो गया । वह रथकी बैठकमें पहुँचकर वहाँ दो घड़ीतक चुपचाप बैठा रहा ॥ २४ ॥

चकार सात्यकी राजन् सूतकर्मातिमानुषम् ।
अयोधयच्च यद् द्रोणं रश्मींश्चग्राह च स्वयम् ॥ २५ ॥

महाराज ! उस समय सात्यकिने लोकोत्तर सारथ्य कर्म कर दिखाया । वे द्रोणाचार्यसे युद्ध भी करते रहे और स्वयं ही घोड़ोंकी बागडोर भी सँभाले रहे ॥ २५ ॥

ततः शरशतेनैव युयुधानो महारथः ।
अविध्यद् ब्राह्मणं संख्ये हृष्टरूपो विशाम्पते ॥ २६ ॥

प्रजानाथ ! उस युद्धस्थलमें महारथी सात्यकिने हर्षमें भरकर विप्रवर द्रोणाचार्यको सौ बाणोंसे घायल कर दिया ॥

तस्य द्रोणः शरान् पञ्च प्रेषयामास भारत ।
ते घोराः कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे ॥ २७ ॥

भारत ! फिर द्रोणाचार्यने सात्यकिपर पाँच बाण चलाये। वे भयंकर बाण उस रणक्षेत्रमें सात्यकिका कवच फाड़कर उनका लोहू पीने लगे ॥ २७ ॥

निर्विद्धस्तु शरैर्घोरैरक्रुद्ध्यत् सात्यकिर्भृशम् ।
सायकान् व्यसृजच्चापि वीरो रुक्मरथं प्रति ॥ २८ ॥

उन भयंकर बाणोंसे क्षत-विक्षत होकर वीर सात्यकिको बड़ा क्रोध हुआ । उन्होंने सुवर्णमय रथवाले द्रोणाचार्यपर बाणोंकी झड़ी लगा दी ॥ २८ ॥

ततो द्रोणस्य यन्तारं निपात्यैकेषुणा भुवि ।
अश्वान् व्यद्रावयद् बाणैर्हतसूतांस्ततस्ततः ॥ २९ ॥

एक बाणसे युयुधानने द्रोणाचार्यके सारथिको धरतीपर गिरा दिया और सारथिहीन घोड़ोंको अपने बाणोंसे इधर-उधर मार भगाया ॥ २९ ॥

स रथः प्रद्रुतः संख्ये मण्डलानि सहस्रशः ।
चकार राजतो राजन् भ्राजमान इवांशुमान् ॥ ३० ॥

राजन् ! वह चाँदीका बना हुआ रथ* युद्धस्थलमें दौड़ लगाता हुआ हजारों चक्कर काटता रहा ! उस समय उसकी अंशुमाली सूर्यके समान शोभा हो रही थी ॥ ३० ॥

अभिद्रवत गृह्णीत हयान् द्रोणस्य धावत ।
इति स्म चुक्रुशुः सर्वे राजपुत्राः सराजकाः ॥ ३१ ॥

उस समय समस्त राजा और राजकुमार पुकार-पुकारकर कहने लगे—'अरे ! दौड़ो, दौड़ो ! द्रोणाचार्यके घोड़ोंको पकड़ो' ॥ ३१ ॥

ते सात्यकिमपास्याशु राजन् युधि महारथाः ।
यतो द्रोणस्ततः सर्वे सहसा समुपाद्रवन् ॥ ३२ ॥

नरेश्वर ! उस युद्धस्थलमें वे सभी महारथी शीघ्र ही सात्यकिका सामना छोड़कर जहाँ द्रोणाचार्य थे, वहीं सहसा भाग गये ॥ ३२ ॥

तान् दृष्ट्वा प्रद्रुतान् संख्ये सात्वतेन शरार्दितान् ।
प्रभग्नं पुनरेवासीत् तव सैन्यं समाकुलम् ॥ ३३ ॥

सात्यकिके बाणोंसे पीड़ित हो उन सबको युद्धस्थलसे पलायन करते देख आपकी संगठित हुई सारी सेना पुनः भाग खड़ी हुई ॥ ३३ ॥

व्यूहस्यैव पुनर्द्वारं गत्वा द्रोणो व्यवस्थितः ।
वातायमानैस्तैरश्वैर्नीतो वृष्णिशरार्दितैः ॥ ३४ ॥

द्रोणाचार्य पुनः व्यूहके ही द्वारपर जाकर खड़े हो गये । सात्यकिके बाणोंसे पीड़ित होकर वायुके समान वेगसे भागनेवाले उनके घोड़ोंने ही उन्हें वहाँ पहुँचा दिया ॥ ३४ ॥

पाण्डुपाञ्चालसम्भिन्नं व्यूहमालोक्य वीर्यवान् ।
शैनेये नाकरोद् यत्नं व्यूहमेवाभ्यरक्षत ॥ ३५ ॥

पराक्रमी द्रोणने अपने व्यूहको पाण्डवों और पाञ्चालों-द्वारा भङ्ग हुआ देख सात्यकिको रोकनेका प्रयत्न छोड़

* अट्ठाईसवें श्लोकमें द्रोणके रथको सोनेका बताया है और इसमें चाँदीका बताया है । इससे यह समझना चाहिये कि उस रथमें सोना और चाँदी दोनों ही धातुएँ लगी हुई थीं ।

के समान द्रोणाचार्य और सात्यकिका वह युद्ध बड़ा भयंकर हो गया ॥ २ ॥

ततो द्रोणः शिनेः पौत्रं चित्रैः सर्वायसैः शरैः ।
त्रिभिराशीविषाकारैर्ललाटे समविध्यत ॥ ३ ॥

उस समय द्रोणाचार्यने सम्पूर्णतः लोहेके बने हुए विचित्र तथा विषधर सर्पके समान भयंकर तीन बाणोंद्वारा शिनिपौत्र सात्यकिके ललाटमें गहरा आघात किया ॥ ३ ॥

तैर्ललाटार्पितैर्बाणैर्युयुधानस्त्वजिह्मगैः ।
व्यरोचत महाराज त्रिशृङ्ग इव पर्वतः ॥ ४ ॥

महाराज ! ललाटमें धँसे हुए उन सीधे जानेवाले बाणोंके द्वारा युयुधान तीन शिखरोंवाले पर्वतके समान सुशोभित हुए ॥

ततोऽस्य बाणानपरानिन्द्राशनिसमस्वनान् ।
भारद्वाजोऽन्तरप्रेक्षी प्रेषयामास संयुगे ॥ ५ ॥

द्रोणाचार्य अवसर देखते रहते थे । उन्होंने मौका पाकर इन्द्रके वज्रकी भाँति भयंकर शब्द करनेवाले और भी बहुत-से बाण युद्धस्थलमें सात्यकिपर चलाये ॥ ५ ॥

तान् द्रोणचापनिर्मुक्तान् दाशार्हः पततः शरान् ।
द्वाभ्यां द्वाभ्यां सुपुङ्खाभ्यां चिच्छेद परमास्त्रवित् ॥ ६ ॥

द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटकर गिरते हुए उन बाणोंको दशार्हकुलनन्दन परमास्त्रवेत्ता सात्यकिने उत्तम पंखोंसे युक्त दो दो बाणोंद्वारा काट डाला ॥ ६ ॥

तामस्य लघुतां द्रोणः समवेक्ष्य विशाम्पते ।
प्रहस्य सहसाविध्यत् त्रिंशता शिनिपुङ्गवम् ॥ ७ ॥

प्रजानाथ ! सात्यकिकी वह फुर्ती देखकर द्रोणाचार्य हँस पड़े । उन्होंने सहसा तीस बाण मारकर शिनिप्रवर सात्यकिको घायल कर दिया ॥ ७ ॥

पुनः पञ्चाशतेषूणां शितेन च समार्पयत् ।
लघुतां युयुधानस्य लाघवेन विशेषयन् ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् उन्होंने युयुधानकी फुर्तीको अपनी फुर्तीसे मन्द सिद्ध करते हुए तेजधारवाले पचास बाणोंद्वारा पुनः उन्हें घायल कर दिया ॥ ८ ॥

समुत्पतन्ति वल्मीकाद् यथा क्रुद्धा महोरगाः ।
तथा द्रोणरथाद् राजन्नापतन्ति तनुच्छिदः ॥ ९ ॥

राजन् ! जैसे बाँबीसे क्रोधमें भरे हुए बहुत-से सर्प प्रकट होते हैं, उसी प्रकार द्रोणाचार्यके रथसे शरीरको छेद डालनेवाले बाण प्रकट होकर वहाँ सब ओर गिरने लगे ॥

तथैव युयुधानेन सृष्टाः शतसहस्रशः ।
अवाकिरन् द्रोणरथं शरा रुधिरभोजनाः ॥ १० ॥

उसी प्रकार युयुधानके चलाये हुए लाखों रुधिरभोजी बाण द्रोणाचार्यके रथपर बरसने लगे ॥ १० ॥

लाघवाद् द्विजमुख्यस्य सात्वतस्य च मारिष ।
विशेषं नाध्यगच्छाम समावास्तां नरर्षभौ ॥ ११ ॥

माननीय नरेश ! हाथोंकी फुर्तीकी दृष्टिसे द्विजश्रेष्ठ द्रोणाचार्य और सात्यकिमें हमें कोई अन्तर नहीं जान पड़ा था । वे दोनों ही नरश्रेष्ठ समान प्रतीत होते थे ॥ ११ ॥

सात्यकिस्तु ततो द्रोणं नवभिर्नतपर्वभिः ।
आजघान भृशं क्रुद्धो ध्वजं च निशितैः शरैः ॥ १२ ॥

तदनन्तर सात्यकिने अत्यन्त कुपित हो झुकी हुई गाँठवाले नौ बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यपर गहरा आघात किया तथा तीखे बाणोंसे उनके ध्वजको भी चोट पहुँचायी ॥ १२ ॥

सारथिं च शतेनैव भारद्वाजस्य पश्यतः ।
लाघवं युयुधानस्य दृष्ट्वा द्रोणो महारथः ॥ १३ ॥
सप्तत्या सारथिं विद्ध्वा तुरङ्गांश्च त्रिभिस्त्रिभिः ।
ध्वजमेकेन चिच्छेद माधवस्य रथे स्थितम् ॥ १४ ॥

तत्पश्चात् द्रोणके देखते-देखते सात्यकिने सौ बाणोंसे उनके सारथिको भी घायल कर दिया । युयुधानकी यह फुर्ती देखकर महारथी द्रोणने सत्तर बाणोंसे सात्यकिके सारथिको बींधकर तीन-तीन बाणोंसे उनके घोड़ोंको भी घायल कर दिया । फिर एक बाणसे सात्यकिके रथपर फहराते हुए ध्वजको भी काट डाला ॥ १३–१४ ॥

अथापरेण भल्लेन हेमपुङ्खेन पत्रिणा ।
धनुश्चिच्छेद समरे माधवस्य महात्मनः ॥ १५ ॥

इसके बाद सुवर्णमय पंखवाले दूसरे भल्लसे आचार्यने समराङ्गणमें महामनस्वी सात्यकिके धनुषको भी खण्डित कर दिया ॥ १५ ॥

सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो धनुस्त्यक्त्वा महारथः ।
गदां जग्राह महतीं भारद्वाजाय चाक्षिपत् ॥ १६ ॥

इससे महारथी सात्यकिको बड़ा क्रोध हुआ । उन्होंने धनुष त्यागकर विशाल गदा हाथमें ले ली और उसे द्रोणाचार्यपर दे मारा ॥ १६ ॥

तामापतन्तीं सहसा पट्टबद्धामयस्मयीम् ।
न्यवारयच्छरैर्द्रोणो बहुभिर्बहुरूपिभिः ॥ १७ ॥

वह लोहेकी गदा रेशमी वस्त्रसे बँधी हुई थी । उसे सहसा अपने ऊपर आती देख द्रोणाचार्यने अनेक रूपवाले बहुसंख्यक बाणोंद्वारा उसका निवारण कर दिया ॥ १७ ॥

अथान्यद् धनुरादाय सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
विव्याध बहुभिर्वीरं भारद्वाजं शिलाशितैः ॥ १८ ॥

तब सत्यपराक्रमी सात्यकिने दूसरा धनुष लेकर सानपर तेज किये हुए बहुसंख्यक बाणोंद्वारा वीर द्रोणाचार्यको बींध डाला ॥ १८ ॥

स विद्ध्वा समरे द्रोणं सिंहनादममुञ्चत ।
तं वै न ममृषे द्रोणः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ १९ ॥

इस प्रकार समराङ्गणमें द्रोणको घायल करके सात्यकिने

सिंहके समान गर्जना की। उसे सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य सहन न कर सके ॥ १९ ॥

ततः शक्तिं गृहीत्वा तु रुक्मदण्डामयस्मयीम्।
तरसा प्रेषयामास माधवस्य रथं प्रति ॥ २० ॥

उन्होंने सोनेकी डंडेवाली लोहेकी शक्ति लेकर उसे सात्यकिके रथपर बड़े वेगसे चलाया ॥ २० ॥

अनासाद्य तु शैनेयं सा शक्तिः कालसंनिभा।
भित्त्वा रथं जगामोग्रा धरणीं दारुणस्वना ॥ २१ ॥

वह कालके समान विकराल शक्ति सात्यकितक न पहुँचकर उनके रथको विदीर्ण करके भयंकर शब्द करती हुई पृथ्वीमें समा गयी ॥ २१ ॥

ततो द्रोणं शिनेः पौत्रो राजन् विव्याध पत्रिणा।
दक्षिणं भुजमासाद्य पीडयन् भरतर्षभ ॥ २२ ॥

राजन्! भरतश्रेष्ठ! तब शिनिके पौत्रने एक बाणसे द्रोणाचार्यकी दाहिनी भुजापर चोट करके उसे पीड़ा देते हुए आचार्यको घायल कर दिया ॥ २२ ॥

द्रोणोऽपि समरे राजन् माधवस्य महद् धनुः।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद रथशक्त्या च सारथिम् ॥ २३ ॥

नरेश्वर! तब समरभूमिमें द्रोणाचार्यने भी सात्यकिके विशाल धनुषको अर्द्धचन्द्राकार बाणसे काट दिया तथा रथ-शक्तिका प्रहार करके सारथिको भी गहरी चोट पहुँचायी॥२३॥

मुमोह सारथिस्तस्य रथशक्त्या समाहतः।
स रथोपस्थमासाद्य मुहूर्तं संन्यषीदत ॥ २४ ॥

द्रोणकी रथशक्तिसे आहत हो सारथि मूर्छित हो गया। वह रथकी बैठकमें पहुँचकर वहाँ दो घड़ीतक चुपचाप बैठा रहा ॥ २४ ॥

चकार सात्यकी राजन् सूतकर्मातिमानुषम्।
अयोधयच्च यद् द्रोणं रश्मींश्च जग्राह च स्वयम् ॥ २५ ॥

महाराज! उस समय सात्यकिने लोकोत्तर सारथ्य कर्म कर दिखाया। वे द्रोणाचार्यसे युद्ध भी करते रहे और स्वयं ही घोड़ोंकी बागडोर भी सँभाले रहे ॥ २५ ॥

ततः शरशतेनैव युयुधानो महारथः।
अविध्यद् ब्राह्मणं संख्ये हृष्टरूपो विशाम्पते ॥ २६ ॥

प्रजानाथ! उस युद्धस्थलमें महारथी सात्यकिने हर्षमें भरकर विप्रवर द्रोणाचार्यको सौ बाणोंसे घायल कर दिया ॥

तस्य द्रोणः शरान् पञ्च प्रेषयामास भारत।
ते घोराः कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे ॥ २७ ॥

भारत! फिर द्रोणाचार्यने सात्यकिपर पाँच बाण चलाये। वे भयंकर बाण उस रणक्षेत्रमें सात्यकिका कवच फाड़कर उनका लोहू पीने लगे ॥ २७ ॥

निर्विद्धस्तु शरैर्घोरैरक्रुध्यत् सात्यकिर्भृशम्।
सायकान् व्यसृजच्चापि वीरो रुक्मरथं प्रति ॥ २८ ॥

उन भयंकर बाणोंसे क्षत-विक्षत होकर वीर सात्यकिको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने सुवर्णमय रथवाले द्रोणाचार्यपर बाणोंकी झड़ी लगा दी ॥ २८ ॥

ततो द्रोणस्य यन्तारं निपात्यैकेषुणा भुवि।
अश्वान् व्यद्रावयद् बाणैर्हतसूतांस्ततस्ततः ॥ २९ ॥

एक बाणसे युयुधानने द्रोणाचार्यके सारथिको धरतीपर गिरा दिया और सारथिहीन घोड़ोंको अपने बाणोंसे इधर-उधर मार भगाया ॥ २९ ॥

स रथः प्रद्रुतः संख्ये मण्डलानि सहस्रशः।
चकार राजतो राजन् भ्राजमान इवांशुमान् ॥ ३० ॥

राजन्! वह चाँदीका बना हुआ रथ* युद्धस्थलमें दौड़ लगाता हुआ हजारों चक्कर काटता रहा! उस समय उसकी अंशुमाली सूर्यके समान शोभा हो रही थी ॥ ३० ॥

अभिद्रवत गृह्णीत हयान् द्रोणस्य धावत।
इति स्म चुक्रुशुः सर्वे राजपुत्राः सराजकाः ॥ ३१ ॥

उस समय समस्त राजा और राजकुमार पुकार-पुकारकर कहने लगे—'अरे! दौड़ो, दौड़ो! द्रोणाचार्यके घोड़ोंको पकड़ो' ॥ ३१ ॥

ते सात्यकिमपास्याशु राजन् युधि महारथाः।
यतो द्रोणस्ततः सर्वे सहसा समुपाद्रवन् ॥ ३२ ॥

नरेश्वर! उस युद्धस्थलमें वे सभी महारथी शीघ्र ही सात्यकिका सामना छोड़कर जहाँ द्रोणाचार्य थे, वहीं सहसा भाग गये ॥ ३२ ॥

तान् दृष्ट्वा प्रद्रुतान् संख्ये सात्वतेन शरार्दितान्।
प्रभग्नं पुनरेवासीत् तव सैन्यं समाकुलम् ॥ ३३ ॥

सात्यकिके बाणोंसे पीड़ित हो उन सबको युद्धस्थलसे पलायन करते देख आपकी संगठित हुई सारी सेना पुनः भाग खड़ी हुई ॥ ३३ ॥

व्यूहस्यैव पुनर्द्वारं गत्वा द्रोणो व्यवस्थितः।
वातायमानैस्तैरश्वैर्नीतो वृष्णिशरार्दितैः ॥ ३४ ॥

द्रोणाचार्य पुनः व्यूहके ही द्वारपर जाकर खड़े हो गये। सात्यकिके बाणोंसे पीड़ित होकर वायुके समान वेगसे भागनेवाले उनके घोड़ोंने ही उन्हें वहाँ पहुँचा दिया ॥ ३४ ॥

पाण्डुपाञ्चालसम्भिन्नं व्यूहमालोक्य वीर्यवान्।
शैनेये नाकरोद् यत्नं व्यूहमेवाभ्यरक्षत ॥ ३५ ॥

पराक्रमी द्रोणने अपने व्यूहको पाण्डवों और पाञ्चालों-द्वारा भङ्ग हुआ देख सात्यकिको रोकनेका प्रयत्न छोड़

* अट्ठाईसवें श्लोकमें द्रोणके रथको सोनेका बताया है और इसमें चाँदीका बताया है। इससे यह समझना चाहिये कि उस रथमें सोना और चाँदी दोनों ही धातुएँ लगी हुई थीं।

दिया। वे पुनः व्यूहकी ही रक्षा करने लगे ॥ ३५ ॥

निवार्य पाण्डुपञ्चालान् द्रोणाग्निः प्रदहन्निव।
तस्थौ क्रोधेध्मसंदीप्तः कालसूर्य इवोद्यतः ॥ ३६ ॥

क्रोधरूपी ईंधनसे प्रज्वलित हुई द्रोणरूपी अग्नि पाण्डवों और पाञ्चालोंको रोककर सबको दग्ध करती हुई-सी खड़ी हो गयी और प्रलयकालके सूर्यकी भाँति प्रकाशित होने लगी॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे सात्यकिपराक्रमे सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिका कौरवसेनामें प्रवेश तथा पराक्रमविषयक एक सौ सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११७ ॥

अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिद्वारा सुदर्शनका वध

संजय उवाच

द्रोणं स जित्वा पुरुषप्रवीर-
स्तथैव हार्दिक्यमुखांस्त्वदीयान्।
प्रहस्य सूतं वचनं बभाषे
शिनिप्रवीरः कुरुपुङ्गवाग्र्य ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—कुरुवंशशिरोमणे ! द्रोणाचार्य तथा कृतवर्मा आदि आपके प्रमुख महारथियोंको जीतकर नरवीर सात्यकिने अपने सारथिसे हँसते हुए कहा—॥ १ ॥

निमित्तमात्रं वयमद्य सूत
दग्धारयः केशवफाल्गुनाभ्याम्।
हतान् निहन्मेह नरर्षभेण
वयं सुरेशात्मसमुद्भवेन ॥ २ ॥

'सारथे ! इस विजयमें आज हमलोग तो निमित्तमात्र हो रहे हैं। वास्तवमें श्रीकृष्ण और अर्जुनने ही हमारे इन शत्रुओंको दग्ध कर दिया है। देवराजके पुत्र नरश्रेष्ठ अर्जुनके मारे हुए सैनिकोंको ही हमलोग यहाँ मार रहे हैं' ॥ २ ॥

तमेवमुक्त्वा शिनिपुङ्गवस्तदा
महामृधे सोऽग्र्यधनुर्धरोऽरिहा।
किरन् समन्तात् सहसा शरान् बली
समापतच्छ्येन इवामिषं यथा ॥ ३ ॥

उस महासमरमें सारथिसे ऐसा कहकर धनुर्धरशिरोमणि शत्रुसूदन शिनिप्रवर बलवान् सात्यकिने सहसा सब ओर बाणोंकी वर्षा करते हुए शत्रुओंपर उसी प्रकार आक्रमण किया, जैसे बाज मांसके टुकड़ेपर झपटता है ॥ ३ ॥

तं यान्तमश्वैः शशिशङ्खवर्णै-
र्विगाह्य सैन्यं पुरुषप्रवीरम्।
नाशक्नुवन् वारयितुं समन्ता-
दादित्यरश्मिप्रतिमं रथाग्र्यम् ॥ ४ ॥

सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशमान रथियोंमें श्रेष्ठ नरवीर सात्यकि आपकी सेनामें घुसकर चन्द्रमा और शङ्खके समान श्वेतवर्णवाले घोड़ोंद्वारा आगे बढ़ते चले जा रहे थे। उस समय किसी ओरसे कोई योद्धा उन्हें रोक न सके ॥ ४ ॥

असह्यविक्रान्तमदीनसत्त्वं
सर्वे गणा भारत ये त्वदीयाः।
सहस्रनेत्रप्रतिमप्रभावं
दिवीव सूर्यं जलदव्यपाये ॥ ५ ॥

भारत ! सात्यकिका पराक्रम असह्य था। उनका धैर्य और बल महान् था। वे इन्द्रके समान प्रभावशाली तथा आकाशमें प्रकाशित होनेवाले शरत्कालके सूर्यके समान प्रचण्ड तेजस्वी थे। आपके समस्त सैनिक मिलकर भी उन्हें रोक न सके ॥ ५ ॥

अमर्षपूर्णस्त्वतिचित्रयोधी
शरासनी काञ्चनवर्मधारी।
सुदर्शनः सात्यकिमापतन्तं
न्यवारयद् राजवरः प्रसह्य ॥ ६ ॥

उस समय अत्यन्त विचित्र युद्ध करनेवाले, सुवर्ण-कवचधारी धनुर्धर नृपश्रेष्ठ सुदर्शनने अपनी ओर आते हुए सात्यकिको अमर्षमें भरकर बलपूर्वक रोका ॥ ६ ॥

तयोरभूद् भारत सम्प्रहारः
सुदारुणस्तं समतिप्रशंसन्।
योधास्त्वदीयाश्च हि सोमकाश्च
वृत्रेन्द्रयोर्युद्धमिवामरौघाः ॥ ७ ॥

भारत ! उन दोनों वीरोंमें बड़ा भयंकर संग्राम हुआ। जैसे देवगण वृत्रासुर और इन्द्रके युद्धकी गाथा गाते हैं, उसी प्रकार आपके योद्धाओं तथा सोमकोंने भी उन दोनोंके उस युद्धकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ ७ ॥

शरैः सुतीक्ष्णैः शतशोऽभ्यविध्यत्
सुदर्शनः सात्वतमुख्यमाजौ।
अनागतानेव तु तान् पृषत्कां-
श्चिच्छेद राजञ्शिनिपुङ्गवोऽपि ॥ ८ ॥

राजन् ! सुदर्शनने समराङ्गणमें सात्वतशिरोमणि सात्यकिपर सैकड़ों सुतीक्ष्ण बाणोंद्वारा प्रहार किया; परंतु शिनिप्रवर सात्यकिने उन बाणोंको अपने पास आनेसे पहले ही काट डाला ॥ ८ ॥

तथैव शक्रप्रतिमोऽपि सात्यकिः
सुदर्शने यान् क्षिपति स्म सायकान् ।
द्विधा त्रिधा तानकरोत् सुदर्शनः
शरोत्तमैः स्यन्दनवर्यमास्थितः ॥ ९ ॥

इसी प्रकार इन्द्रके समान पराक्रमी सात्यकि भी सुदर्शनपर जिन-जिन बाणोंका प्रहार करते थे, श्रेष्ठ रथपर बैठे हुए सुदर्शन भी अपने उत्तम बाणोंद्वारा उन सबके दो-दो-तीन-तीन टुकड़े कर देते थे ॥ ९ ॥

तान् वीक्ष्य बाणान् निहतांस्तदानीं
सुदर्शनः सात्यकिबाणवेगैः ।
क्रोधाद् दिधक्षन्निव तिग्मतेजाः
शरानमुञ्चत् तपनीयचित्रान् ॥ १० ॥

उस समय सात्यकिके वेगशाली बाणोंद्वारा अपने चलाये हुए बाणोंको नष्ट हुआ देख प्रचण्ड तेजस्वी राजा सुदर्शनने क्रोधसे उन्हें जला डालनेकी इच्छा रखते हुए-से सुवर्णजटित विचित्र बाणोंका उनपर प्रहार आरम्भ किया ॥ १० ॥

पुनः स बाणैस्त्रिभिरग्निकल्पै-
राकर्णपूर्णैर्निशितैः सुपुङ्खैः ।
विव्याध देहावरणं विभिद्य
ते सात्यकेराविविशुः शरीरम् ॥ ११ ॥

फिर उन्होंने अग्निके समान तेजस्वी तथा कानतक खींचकर छोड़े हुए सुन्दर पंखवाले तीन तीखे बाणोंसे सात्यकिको बींध दिया। वे बाण सात्यकिका कवच विदीर्ण करके उनके शरीरमें समा गये ॥ ११ ॥

तथैव तस्यावनिपालपुत्रः
संधाय बाणैरपरैर्ज्वलद्भिः ।
आजघ्निवांस्तान् रजतप्रकाशां-
श्चतुर्भिरश्वांश्चतुरः प्रसह्य ॥ १२ ॥

तत्पश्चात् उन राजकुमार सुदर्शनने अन्य चार तेजस्वी बाणोंका संधान करके उनके द्वारा चाँदीके समान चमकनेवाले सात्यकिके उन चारों घोड़ोंको भी बलपूर्वक घायल कर दिया ॥ १२ ॥

तथा तु तेनाभिहतस्तरस्वी
नप्ता शिनेरिन्द्रसमानवीर्यः ।
सुदर्शनस्येषुगणैः सुतीक्ष्णै-
र्हयान् निहत्याशु ननाद नादम् ॥ १३ ॥

सुदर्शनके द्वारा इस प्रकार घायल होनेपर इन्द्रके समान बलवान् और वेगशाली शिनिपौत्र सात्यकिने अपने सुतीक्ष्ण बाणसमूहोंसे सुदर्शनके अश्वोंका शीघ्र ही संहार करके उच्चस्वरसे सिंहनाद किया ॥ १३ ॥

अथास्य सूतस्य शिरो निकृत्य
भल्लेन शक्राशनिसंनिभेन ।
सुदर्शनस्यापि शिनिप्रवीरः
क्षुरेण कालानलसंनिभेन ॥ १४ ॥
सकुण्डलं पूर्णशशिप्रकाशं
भ्राजिष्णु वक्त्रं विचकर्त देहात् ।
यथा पुरा वज्रधरः प्रसह्य
बलस्य संख्येऽतिबलस्य राजन् ॥ १५ ॥

राजन्! तत्पश्चात् इन्द्रके वज्रतुल्य भल्लसे उनके सारथिका सिर काटकर शिनिवंशके प्रमुख वीर सात्यकिने कालाग्निके समान तेजस्वी छुरेसे सुदर्शनके पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशमान शोभाशाली कुण्डलमण्डित मस्तकको भी धड़से काट गिराया। ठीक उसी प्रकार, जैसे पूर्वकालमें वज्रधारी इन्द्रने समराङ्गणमें अत्यन्त बलवान् बलासुरका सिर बलपूर्वक काट लिया था ॥ १४-१५ ॥

निहत्य तं पार्थिवपुत्रपौत्रं
रणे यदूनामृषभस्तरस्वी ।
मुदा समेतः परया महात्मा
रराज राजन् सुरराजकल्पः ॥ १६ ॥

नरेश्वर! राजाके पुत्र एवं पौत्र सुदर्शनका रणभूमिमें वध करके यदुकुलतिलक देवेन्द्रसदृश पराक्रमी वेगशाली महामनस्वी सात्यकि अत्यन्त प्रसन्न होकर विजयश्रीसे सुशोभित होने लगे ॥ १६ ॥

ततो ययावर्जुन एव येन
निवार्य सैन्यं तव मार्गणौघैः ।
सदश्वयुक्तेन रथेन राजँ-
ल्लोकं विसिस्मापयिषुर्नृवीरः ॥ १७ ॥

राजन्! तदनन्तर लोगोंको आश्चर्यचकित करनेकी इच्छावाले नरवीर सात्यकि अपने सुन्दर अश्वोंसे जुते हुए रथके द्वारा बाणसमूहोंसे आपकी सेनाको हटाते हुए उसी मार्गसे चल दिये, जिससे अर्जुन गये थे ॥ १७ ॥

तत् तस्य विस्मापयनीयमग्र्य-
मपूजयन् योधवराः समेताः ।
प्रवर्तमानानिषुगोचरेऽरीन्
ददाह बाणैर्हुतभुग् यथैव ॥ १८ ॥

उनके उस आश्चर्यजनक उत्तम पराक्रमकी वहाँ एकत्र हुए समस्त योद्धाओंने बड़ी प्रशंसा की। सात्यकि अपने बाणोंके पथमें आये हुए शत्रुओंको उन बाणोंद्वारा अग्निदेवके समान दग्ध कर रहे थे ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सुदर्शनवधे अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सुदर्शनवधविषयक एक सौ अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११८ ॥

एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकि और उनके सारथिका संवाद तथा सात्यकिद्वारा काम्बोजों और यवन आदिकी सेनाकी पराजय

संजय उवाच

ततः स सात्यकिर्धीमान् महात्मा वृष्णिपुङ्गवः।
सुदर्शनं निहत्याजौ यन्तारं पुनरब्रवीत्॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर वृष्णिवंशावतंस बुद्धिमान् महामनस्वी सात्यकिने युद्धमें सुदर्शनको मारकर सारथिसे फिर इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

रथाश्वनागकलिलं शरशक्त्यूर्मिमालिनम्।
खड्गमत्स्यं गदाग्राहं शूरायुधमहास्वनम्॥ २ ॥
प्राणापहारिणं रौद्रं वादित्रोत्क्रुष्टनादितम्।
योधानामसुखस्पर्शं दुर्धर्षमजयैषिणाम्॥ ३ ॥
तीर्णाः स्म दुस्तरं तात द्रोणानीकमहार्णवम्।
जलसंधबलेनाजौ पुरुषादैरिवावृतम्॥ ४ ॥

'तात! रथ, घोड़े और हाथियोंसे भरी हुई द्रोणाचार्यकी सेना महासागरके समान थी। उसमें बाण और शक्ति आदि अस्त्र-शस्त्र तरंगमालाओंके समान प्रतीत होते थे। खड्ग मत्स्यके समान और गदा ग्राहके तुल्य थी। शूरवीरोंके आयुधोंके प्रहारसे जो महान् शब्द होता था, वही मानो महासागरका भयानक गर्जन था। बाजे बजानेकी ध्वनि और वीरोंके ललकारनेकी आवाजसे उस गर्जनका स्वर और भी बढ़ा हुआ था। योद्धाओंके लिये उसका स्पर्श अत्यन्त दुःखदायक था। जो विजयकी अभिलाषा नहीं रखते, ऐसे लोगोंके लिये वह प्राणनाशक भयंकर सैन्य-समुद्र दुर्धर्ष था। युद्धस्थलमें खड़ी हुई जलसंधकी सेनाने उसे राक्षसोंके समान घेर रक्खा था। उस दुस्तर सेना-सागरसे हमलोग पार हो गये हैं॥ २-४ ॥

अतोऽन्यत् पृतनाशेषं मन्ये कुनदिकामिव।
तर्तव्यामल्पसलिलां चोदयाश्वानसम्भ्रमम्॥ ५ ॥

'उससे भिन्न जो शेष सेना है, उसे मैं सुगमतापूर्वक लाँघनेयोग्य थोड़े जलवाली छोटी नदीके समान समझता हूँ। अतः तुम निर्भय होकर घोड़ोंको आगे बढ़ाओ॥ ५ ॥

हस्तप्राप्तमहं मन्ये साम्प्रतं सव्यसाचिनम्।
निर्जित्य दुर्धरं द्रोणं सपदानुगमाहवे॥ ६ ॥

'सेवकोंसहित दुर्धर्ष वीर द्रोणाचार्यको युद्धस्थलमें जीतकर मैं ऐसा मानता हूँ कि इस समय सव्यसाची अर्जुन हमारे हाथमें ही आ गये हैं॥ ६ ॥

हार्दिक्यं योधवर्यं च मन्ये प्राप्तं धनंजयम्।
न हि मे जायते त्रासो दृष्ट्वा सैन्यान्यनेकशः॥ ७ ॥
वह्नेरिव प्रदीप्तस्य वने शुष्कतृणोलपे।

'योद्धाओंमें श्रेष्ठ कृतवर्माको पराजित करके मैं ऐसा समझता हूँ कि अर्जुन मुझे मिल गये। जैसे सूखे तृण और लतावाले वनमें प्रज्वलित हुई अग्निके लिये कहीं कोई बाधा नहीं रहती, उसी प्रकार मुझे इन अनेक सेनाओंको देखकर तनिक भी त्रास नहीं हो रहा है॥ ७½ ॥

पश्य पाण्डवमुख्येन यातां भूमिं किरीटिना॥ ८ ॥
पत्त्यश्वरथनागौघैः पतितैर्विषमीकृताम्।

'देखो, पाण्डवप्रवर किरीटधारी अर्जुन जिस मार्गसे गये हैं, वहाँकी भूमि धराशायी हुए पैदलों, घोड़ों, रथों और हाथियोंके समुदायसे विषम एवं दुर्लङ्घ्य हो गयी है॥ ८½ ॥

द्रवते तद् यथा सैन्यं तेन भग्नं महात्मना॥ ९ ॥
रथैर्विपरिधावद्भिर्गजैरश्वैश्च सारथे।
कौशेयारुणसंकाशमेतदुद्धूयते रजः॥ १० ॥

'सारथे! उन्हीं महात्मा अर्जुनकी खदेड़ी हुई वह सेना इधर-उधर भाग रही है। दौड़ते हुए रथों, हाथियों और घोड़ोंसे लाल रेशमके समान यह धूल ऊपरको उठ रही है॥ ९-१० ॥

अभ्याशस्थमहं मन्ये श्वेताश्वं कृष्णसारथिम्।
स एष श्रूयते शब्दो गाण्डीवस्यामितौजसः॥ ११ ॥

'इससे मैं समझता हूँ कि श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं, वे श्वेतवाहन अर्जुन हमारे निकट ही हैं, तभी यह अमितशक्तिशाली गाण्डीव धनुषकी टंकार सुनायी दे रही है॥ ११ ॥

यादृशानि निमित्तानि मम प्रादुर्भवन्ति वै।
अनस्तंगत आदित्ये हन्ता सैन्धवमर्जुनः॥ १२ ॥

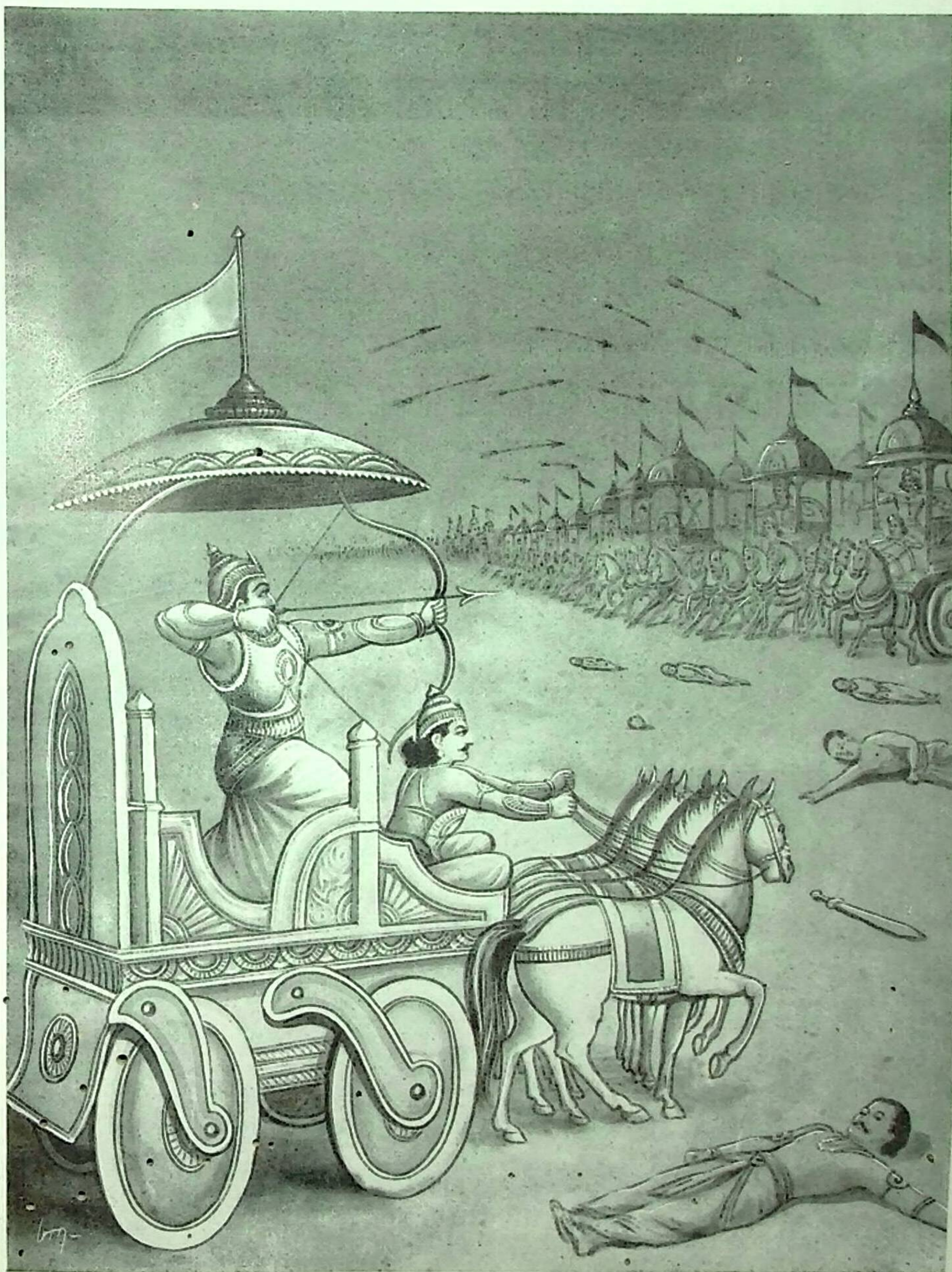
'इस समय मेरे सामने जैसे शुभ शकुन प्रकट हो रहे हैं, उनसे जान पड़ता है अर्जुन सूर्यास्त होनेके पहले ही जयद्रथको मार डालेंगे॥ १२ ॥

शनैर्विश्रम्भयन्नश्वान् याहि यत्रारिवाहिनी।
यत्रैते सतलत्राणाः सुयोधनपुरोगमाः॥ १३ ॥

'सूत! धीरे-धीरे घोड़ोंको आराम देते हुए उस ओर चलो, जहाँ वह शत्रुसेना खड़ी है, जहाँ ये तलत्राण धारण किये दुर्योधन आदि योद्धा उपस्थित हैं॥ १३ ॥

दंशिताः क्रूरकर्माणः काम्बोजा युद्धदुर्मदाः।
शरबाणासनधरा यवनाश्च प्रहारिणः॥ १४ ॥
शकाः किराता दरदा बर्बरास्ताम्रलिप्तकाः।
अन्ये च बहवो म्लेच्छा विविधायुधपाणयः॥ १५ ॥
यत्रैते सतलत्राणाः सुयोधनपुरोगमाः।
मामेवाभिमुखाः सर्वे तिष्ठन्ति समरार्थिनः॥ १६ ॥

'जहाँ कवच धारण किये रणदुर्मद क्रूरकर्मा काम्बोज, धनुष-बाण धारण किये प्रहारकुशल यवन, शक, किरात,



सात्यकिका कौरव-सेनामें प्रवेश और युद्ध

दरद, बर्बर, ताम्रलिप्त तथा हाथोंमें भाँति-भाँतिके आयुध धारण किये अन्य बहुत-से म्लेच्छ—ये सबके सब जहाँ दुर्योधनको अगुआ बनाकर दस्ताने पहने युद्धकी इच्छासे मेरी ओर मुँह करके खड़े हैं, वहीं चलो ॥ १४–१६ ॥

एतान् सरथनागाश्वान् निहत्याजौ सपत्तिनः।
इदं दुर्गं महाघोरं तीर्णमेवोपधारय ॥ १७ ॥

'इन सबको युद्धस्थलमें रथ, हाथी, घोड़े और पैदलोंसहित मार लेनेपर निश्चितरूपसे समझ लो कि हमलोग इस अत्यन्त भयंकर दुर्गम संकटसे पार हो गये' ॥ १७ ॥

सूत उवाच

न सम्भ्रमो मे वार्ष्णेय विद्यते सत्यविक्रम।
यद्यपि स्यात् तव क्रुद्धो जामदग्न्योऽग्रतः स्थितः॥ १८ ॥

सारथिने कहा—सत्यपराक्रमी वृष्णिनन्दन! आपके सामने क्रोधमें भरे हुए जमदग्निनन्दन परशुराम भी खड़े हो जायँ तो मुझे भय नहीं होगा ॥ १८ ॥

द्रोणो वा रथिनां श्रेष्ठः कृपो मद्रेश्वरोऽपि वा।
तथापि सम्भ्रमो न स्यात् त्वामाश्रित्य महाभुज॥ १९ ॥

महाबाहो! रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य, कृपाचार्य अथवा मद्रराज शल्य ही क्यों न खड़े हों, तथापि आपके आश्रित रहकर मुझे कदापि भय नहीं हो सकता ॥ १९ ॥

त्वया सुबहवो युद्धे निर्जिताः शत्रुसूदन।
दंशिताः क्रूरकर्माणः काम्बोजा युद्धदुर्मदाः ॥ २० ॥
शरबाणासनधरा यवनाश्च प्रहारिणः।
शकाः किराता दरदा बर्बरास्ताम्रलिप्तकाः ॥ २१ ॥
अन्ये च बहवो म्लेच्छा विविधायुधपाणयः।
न च मे सम्भ्रमः कश्चिद् भूतपूर्वः कथंचन ॥ २२ ॥
किमुतैतत् समासाद्य धीरसंयुगगोष्पदम्।
आयुष्मन् कतरेण त्वां प्रापयामि धनंजयम् ॥ २३ ॥

शत्रुसूदन! आपने पहले भी युद्धमें बहुतेरे कवचधारी, क्रूरकर्मा, रणदुर्मद काम्बोजोंको परास्त किया है। धनुष-बाण धारण करनेवाले प्रहारकुशल यवनोंको जीता है। शकों, किरातों, दरदों, बर्बरों, ताम्रलिप्तों तथा हाथोंमें नाना प्रकारके आयुध लिये अन्य बहुत-से म्लेच्छोंको पराजित किया है। इन अवसरोंपर पहले कभी कोई किसी प्रकारका भय नहीं हुआ था। फिर इस गायकी खुरके समान तुच्छ युद्धस्थलमें आकर क्या भय हो सकता है? आयुष्मन्! बताइये, इन दो मार्गोंमेंसे किसके द्वारा आपको अर्जुनके पास पहुँचाऊँ२०–२३

केषां क्रुद्धोऽसि वार्ष्णेय केषां मृत्युरुपस्थितः।
केषां संयमनीमद्य गन्तुमुत्सहते मनः ॥ २४ ॥

वार्ष्णेय! आप किनके ऊपर क्रुद्ध हैं, किनकी मौत आ गयी है और किनका मन आज यमपुरीमें जानेके लिये उत्साहित हो रहा है? ॥ २४ ॥

के त्वां युधि पराक्रान्तं कालान्तकयमोपमम्।
दृष्ट्वा विक्रमसम्पन्नं विद्रविष्यन्ति संयुगे ॥ २५ ॥
केषां वैवस्वतो राजा स्मरतेऽद्य महाभुज।

युद्धमें काल, अन्तक और यमके समान पराक्रम दिखानेवाले आप-जैसे बल-विक्रमसम्पन्न वीरको देखकर आज कौन-कौन-से योद्धा मैदान छोड़कर भागनेवाले हैं? महाबाहो! आज राजा यम किनका स्मरण कर रहे हैं? ॥ २५½ ॥

सात्यकिरुवाच

मुण्डानेतान् हनिष्यामि दानवानिव वासवः ॥ २६ ॥
प्रतिज्ञां पारयिष्यामि काम्बोजानेव मां वह।
अद्यैषां कदनं कृत्वा प्रियं यास्यामि पाण्डवम् ॥ २७ ॥

सात्यकि बोले—सूत! जैसे इन्द्र दानवोंका वध करते हैं, उसी प्रकार आज मैं इन मथमुंडे काम्बोजोंका ही वध करूँगा और ऐसा करके अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर लूँगा। अतः तुम उन्हींकी ओर मुझे ले चलो। इन सबका संहार करके ही आज मैं अपने प्रिय सुहृद् पाण्डुनन्दन अर्जुनके पास चलूँगा ॥ २६-२७ ॥

अद्य द्रक्ष्यन्ति मे वीर्यं कौरवाः ससुयोधनाः।
मुण्डानीके हते सूत सर्वसैन्येषु चासकृत् ॥ २८ ॥
अद्य कौरवसैन्यस्य दीर्यमाणस्य संयुगे।
श्रुत्वा विरावं बहुधा संतप्स्यति सुयोधनः ॥ २९ ॥

आज दुर्योधनसहित समस्त कौरव मेरा पराक्रम देखेंगे। सूत! आज इन सिरमुण्डोंके मारे जाने तथा अन्य सारी सेनाओंका बारंबार विनाश होनेपर युद्धस्थलमें छिन्न-भिन्न होती हुई कौरवसेनाका नाना प्रकारसे आर्तनाद सुनकर दुर्योधनको बड़ा संताप होगा ॥ २८-२९ ॥

अद्य पाण्डवमुख्यस्य श्वेताश्वस्य महात्मनः।
आचार्यस्य कृतं मार्गं दर्शयिष्यामि संयुगे ॥ ३० ॥

आज रणक्षेत्रमें मैं अपने आचार्य पाण्डवप्रवर श्वेतवाहन महात्मा अर्जुनके प्रकट किये हुए मार्गको दिखाऊँगा ॥ ३० ॥

अद्य मद्बाणनिहतान् योधमुख्यान् सहस्रशः।
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा पश्चात्तापं गमिष्यति ॥ ३१ ॥

आज मेरे बाणोंसे अपने सहस्रों प्रमुख योद्धाओंको मारा गया देखकर राजा दुर्योधन अत्यन्त पश्चात्ताप करेगा ॥ ३१ ॥

अद्य मे क्षिप्रहस्तस्य क्षिपतः सायकोत्तमान्।
अलातचक्रप्रतिमं धनुर्द्रक्ष्यन्ति कौरवाः ॥ ३२ ॥

आज शीघ्रतापूर्वक हाथ चलाकर उत्तम बाणोंका प्रहार करते हुए मेरे धनुषको कौरवलोग अलातचक्रके समान देखेंगे ॥ ३२ ॥

मत्सायकचिताङ्गानां रुधिरं स्रवतां मुहुः।
सैनिकानां वधं दृष्ट्वा संतप्स्यति सुयोधनः ॥ ३३ ॥

मैं अपने बाणोंसे सारे कौरवसैनिकोंका शरीर व्याप्त कर दूँगा और वे बारंबार रक्त बहाते हुए प्राण त्याग देंगे। इस प्रकार अपने सैनिकोंका संहार देखकर सुयोधन संतप्त हो उठेगा ॥ ३३ ॥

अद्य मे क्रुद्धरूपस्य निघ्नतश्च वरान् वरान्।
द्विरर्जुनमिमं लोकं मंस्यतेऽद्य सुयोधनः ॥ ३४ ॥

आज क्रोधमें भरकर मैं कौरवसेनाके उत्तमोत्तम वीरोंको चुन-चुनकर मारूँगा, जिससे दुर्योधनको यह मालूम होगा कि अब संसारमें दो अर्जुन प्रकट हो गये हैं ॥ ३४ ॥

अद्य राजसहस्राणि निहतानि मया रणे।
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा संतप्स्यति महामृधे ॥ ३५ ॥

आज महासमरमें मेरे द्वारा सहस्रों राजाओंका विनाश देखकर राजा दुर्योधनको बड़ा संताप होगा ॥ ३५ ॥

अद्य स्नेहं च भक्तिं च पाण्डवेषु महात्मसु।
हत्वा राजसहस्राणि दर्शयिष्यामि राजसु ॥ ३६ ॥
बलं वीर्यं कृतज्ञत्वं मम ज्ञास्यन्ति कौरवाः।

आज सहस्रों राजाओंका संहार करके मैं इन राजाओंके समाजमें महात्मा पाण्डवोंके प्रति अपने स्नेह और भक्तिका प्रदर्शन करूँगा। अब कौरवोंको मेरे बल, पराक्रम और कृतज्ञताका परिचय मिल जायगा ॥ ३६½ ॥

संजय उवाच

एवमुक्तस्तदा सूतः शिक्षितान् साधुवाहिनः ॥ ३७ ॥
शशाङ्कसंनिकाशान् वै वाजिनो व्यनुदद् भृशम्।

संजय कहते हैं—राजन्! सात्यकिके ऐसा कहनेपर सारथिने चन्द्रमाके समान श्वेत वर्णवाले उन घोड़ोंको, जो सुशिक्षित और अच्छी प्रकार सवारीका काम देनेवाले थे, बड़े वेगसे हाँका ॥ ३७½ ॥

ते पिबन्त इवाकाशं युयुधानं हयोत्तमाः ॥ ३८ ॥
प्रापयन् यवनाञ्शीघ्रं मनःपवनरंहसः।

मन और वायुके समान वेगवाले उन उत्तम घोड़ोंने आकाशको पीते हुए-से चलकर युयुधानको शीघ्र ही यवनोंके पास पहुँचा दिया ॥ ३८½ ॥

सात्यकिं ते समासाद्य पृतनास्वनिवर्तिनम् ॥ ३९ ॥
बहवो लघुहस्ताश्च शरवर्षैरवाकिरन्।

युद्धमें कभी पीछे न हटनेवाले सात्यकिको अपनी सेनाओंके बीच पाकर शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले बहुतेरे यवनोंने उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ३९½ ॥

तेषामिषूनथास्त्राणि वेगवान् नतपर्वभिः ॥ ४० ॥
अच्छिनत् सात्यकी राजन् नैनं ते प्राप्नुवञ्शराः।

राजन्! वेगशाली सात्यकिने झुकी हुई गाँठवाले अपने बाणोंद्वारा उन सबके बाणों तथा अन्य अस्त्रोंको काट गिराया। वे बाण उनके पासतक पहुँच न सके ॥ ४०½ ॥

रुक्मपुङ्खैः सुनिशितैर्गार्ध्रपत्रैरजिह्मगैः ॥ ४१ ॥
उच्चकर्त शिरांस्युग्रो यवनानां भुजानपि।
शैक्यायसानि वर्माणि कांस्यानि च समन्ततः ॥ ४२ ॥

उन भयंकर वीरने सब ओर घूम-घूमकर सोनेके पुङ्ख और गीधकी पाँखवाले तीखे बाणोंसे यवनोंके मस्तक, भुजाएँ तथा लाल लोहे एवं काँसके बने हुए कवच भी काट डाले ॥ ४१-४२ ॥

भित्त्वा देहांस्तथा तेषां शरा जग्मुर्महीतलम्।
ते हन्यमाना वीरेण म्लेच्छाः सात्यकिना रणे ॥ ४३ ॥
शतशोऽभ्यपतंस्तत्र व्यसवो वसुधातले।

वे बाण उनके शरीरोंको विदीर्ण करके पृथ्वीमें घुस गये। वीर सात्यकिके द्वारा रणभूमिमें आहत होकर सैकड़ों म्लेच्छ प्राण त्यागकर धराशायी हो गये ॥ ४३½ ॥

सुपूर्णायतमुक्तैस्तानव्यवच्छिन्नपिण्डितैः ॥ ४४ ॥
पञ्च षट् सप्त चाष्टौ च बिभेद यवनाञ्शरैः।

वे कानतक खींचकर छोड़े हुए और अविच्छिन्न गतिसे परस्पर सटकर निकलते हुए बाणोंद्वारा पाँच, छः, सात और आठ यवनोंको एक ही साथ विदीर्ण कर डालते थे ॥ ४४½ ॥

काम्बोजानां सहस्रैश्च शकानां च विशाम्पते ॥ ४५ ॥
शबराणां किरातानां बर्बराणां तथैव च।
अगम्यरूपां पृथिवीं मांसशोणितकर्दमाम् ॥ ४६ ॥
कृतवांस्तत्र शैनेयः क्षपयंस्तावकं बलम्।

प्रजानाथ! सात्यकिने आपकी सेनाका संहार करते हुए वहाँकी भूमिको सहस्रों काम्बोजों, शकों, शबरों, किरातों और बर्बरोंकी लाशोंसे पाटकर अगम्य बना दिया था। वहाँ मांस और रक्तकी कीच जम गयी थी ॥ ४५-४६½ ॥

दस्यूनां सशिरस्त्राणैः शिरोभिर्लूनमूर्धजैः ॥ ४७ ॥
दीर्घकूर्चैर्मही कीर्णा विबर्हैरण्डजैरिव।

उन लुटेरोंके लंबी दाढ़ीवाले शिरस्त्राणयुक्त मुण्डित मस्तकोंसे आच्छादित हुई रणभूमि पंखहीन पक्षियोंसे व्याप्त हुई-सी जान पड़ती थी ॥ ४७½ ॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गैस्तैस्तदायोधनं बभौ ॥ ४८ ॥
कबन्धैः संवृतं सर्वं ताम्राभ्रैः खमिवावृतम्।

जिनके सारे अङ्ग खूनसे लथपथ हो रहे थे, उन कबन्धोंसे भरा हुआ वह सारा रणक्षेत्र लाल रंगके बादलोंसे ढके हुए आकाशके समान जान पड़ता था ॥ ४८½ ॥

वज्राशनिसमस्पर्शैः सुपर्वभिरजिह्मगैः ॥ ४९ ॥
ते सात्वतेन निहताः समावव्रुर्वसुंधराम्।

वज्र और विद्युत्‌के समान कठोर स्पर्शवाले सुन्दर पर्व-युक्त बाणोंद्वारा सात्यकिके हाथसे मारे गये उन यवनोंने वहाँकी भूमिको अपनी लाशोंसे ढक लिया ॥ ४९½ ॥

अल्पावशिष्टाः सम्भग्नाः कृच्छ्रप्राणा विचेतसः ॥ ५० ॥
जिताः संख्ये महाराज युयुधानेन दंशिताः ।
पार्ष्णिभिश्च कशाभिश्च ताडयन्तस्तुरङ्गमान् ॥ ५१ ॥
जवमुत्तममास्थाय सर्वतः प्राद्रवन् भयात् ।

महाराज ! थोड़ेसे यवन शेष रह गये थे, जो बड़ी कठिनाईसे अपने प्राण बचाये हुए थे । वे अपने समुदायसे भ्रष्ट होकर अचेत-से हो रहे थे । उन सभी कवचधारी यवनोंको युयुधानने युद्धस्थलमें जीत लिया था । वे हाथों और कोड़ोंसे अपने घोड़ोंको पीटते हुए उत्तम वेगका आश्रय ले चारों ओर भयके मारे भाग गये ॥ ५०–५१½ ॥

काम्बोजसैन्यं विद्राव्य दुर्जयं युधि भारत ॥ ५२ ॥
यवनानां च तत् सैन्यं शकानां च महद् बलम् ।
ततः स पुरुषव्याघ्रः सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ ५३ ॥
प्रविष्टस्तावकाञ्जित्वा सूतं याहीत्यचोदयत् ।

भरतनन्दन ! उस रणक्षेत्रमें दुर्जय काम्बोजसेनाको, यवनसेनाको तथा शकोंकी विशाल वाहिनीको खदेड़कर सत्यपराक्रमी पुरुषसिंह सात्यकि आपके सैनिकोंपर विजयी हो कौरवसेनामें घुस गये और सारथिको आदेश देते हुए बोले—'आगे बढ़ो' ॥ ५२–५३½ ॥

तत् तस्य समरे कर्म दृष्ट्वान्यैरकृतं पुरा ॥ ५४ ॥
चारणाः सहगन्धर्वाः पूजयाञ्चक्रिरे भृशम् ।

जिसे पहले दूसरोंने नहीं किया था, समराङ्गणमें सात्यकिके उस पराक्रमको देखकर चारणों और गन्धर्वोंने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ ५४½ ॥

तं यान्तं पृष्ठगोप्तारमर्जुनस्य विशाम्पते ।
चारणाः प्रेक्ष्य संहृष्टास्त्वदीयाश्चाभ्यपूजयन् ॥ ५५ ॥

प्रजानाथ ! अर्जुनके पृष्ठरक्षक सात्यकिको जाते देख चारणोंको बड़ा हर्ष हुआ और आपके सैनिकोंने भी उनकी बड़ी सराहना की ॥ ५५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे यवनपराजये एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिके कौरवसेनामें प्रवेशके प्रसंगमें यवनोंकी पराजयविषयक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११९ ॥

विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिद्वारा दुर्योधनकी सेनाका संहार तथा भाइयोंसहित दुर्योधनका पलायन

संजय उवाच

जित्वा यवनकाम्बोजान् युयुधानस्ततोऽर्जुनम् ।
जगाम तव सैन्यस्य मध्येन रथिनां वरः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! रथियोंमें श्रेष्ठ युयुधान यवनों और काम्बोजोंको पराजित करके आपकी सेनाके बीचसे होते हुए अर्जुनकी ओर चले ॥ १ ॥

चारुदंष्ट्रो नरव्याघ्रो विचित्रकवचध्वजः ।
मृगं व्याघ्र इवाजिघ्रंस्तव सैन्यमभीषयत् ॥ २ ॥

पुरुषसिंह सात्यकिके दाँत बड़े सुन्दर थे । उनके कवच और ध्वज भी विचित्र थे । वे मृगकी गन्ध लेते हुए व्याघ्रके समान आपकी सेनाको भयभीत कर रहे थे ॥ २ ॥

स रथेन चरन् मार्गान् धनुरभ्रामयद् भृशम् ।
रुक्मपृष्ठं महावेगं रुक्मचन्द्रकसंकुलम् ॥ ३ ॥

युयुधान रथके द्वारा विभिन्न मार्गोंपर विचरते हुए अपने उस महावेगशाली धनुषको जोर-जोरसे घुमा रहे थे, जिसका पृष्ठभाग सोनेसे मढ़ा था और जो सुवर्णमय चन्द्राकार चिह्नोंसे व्याप्त था ॥ ३ ॥

रुक्माङ्गदशिरस्त्राणो रुक्मवर्मसमावृतः ।
रुक्मध्वजधनुः शूरो मेरुशृङ्गमिवाबभौ ॥ ४ ॥

उनके भुजबंद और शिरस्त्राण सुवर्णके बने हुए थे । वे स्वर्णमय कवचसे आच्छादित थे । सोनेके ध्वज और धनुषसे सुशोभित शूरवीर सात्यकि मेरुपर्वतके शिखरकी भाँति शोभा पा रहे थे ॥ ४ ॥

सधनुर्मण्डलः संख्ये तेजोभास्कररश्मिवान् ।
शरदीवोदितः सूर्यो नृसूर्यो विरराज ह ॥ ५ ॥

युद्धस्थलमें मण्डलाकार धनुष धारण किये अपने तेज-स्वरूप सूर्यरश्मियोंसे प्रकाशित, मानव-सूर्य सात्यकि शरत्-कालमें उगे हुए सूर्यदेवके समान देदीप्यमान हो रहे थे ॥ ५ ॥

वृषभस्कन्धविक्रान्तो वृषभाक्षो नरर्षभः ।
तावकानां बभौ मध्ये गवां मध्ये यथा वृषः ॥ ६ ॥

उनके कंधे और चाल-ढाल वृषभके समान थे । नेत्र भी वृषभके ही तुल्य बड़े-बड़े थे । वे नरश्रेष्ठ सात्यकि आपके सैनिकोंके बीचमें उसी प्रकार सुशोभित होते थे, जैसे गौओंके झुंडमें साँड़की शोभा होती है ॥ ६ ॥

मत्तद्विरदसंकाशं मत्तद्विरदगामिनम् ।
प्रभिन्नमिव मातङ्गं यूथमध्ये व्यवस्थितम् ॥ ७ ॥
व्याघ्रा इव जिघांसन्तस्त्वदीयाः समुपाद्रवन् ।

मतवाले हाथीके समान पराक्रमी और मदोन्मत्त गजराज-

के समान मन्दगतिसे चलनेवाले सात्यकि जब मदस्रावी मातङ्गके समान कौरवसैनिकोंके मध्यभागमें खड़े हुए, उस समय आपके योद्धा उन्हें मार डालनेकी इच्छासे भूखे दाघोंके समान उनपर टूट पड़े ॥ ७½ ॥

द्रोणानीकमतिक्रान्तं भोजानीकं च दुस्तरम् ॥ ८ ॥
जलसंधार्णवं तीर्त्वा काम्बोजानां च वाहिनीम् ।
हार्दिक्यमकरान्मुक्तं तीर्णं वै सैन्यसागरम् ॥ ९ ॥
परिवव्रुः सुसंक्रुद्धास्त्वदीयाः सात्यकिं रथाः ।

वे सात्यकि जब द्रोणाचार्य और कृतवर्माकी दुस्तर सेनाको लाँघकर जलसंधरूपी सिन्धुको पार करके काम्बोजोंकी सेनाका संहारकर कृतवर्मारूपी ग्राहके चंगुलसे छूटकर आपकी सेनाके समुद्रसे पार हो गये, उस समय अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए आपके रथियोंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ ८–९½ ॥

दुर्योधनश्चित्रसेनो दुःशासनविविंशती ॥ १० ॥
शकुनिर्दुःसहश्चैव युवा दुर्धर्षणः क्रथः ।
अन्ये च बहवः शूराः शस्त्रवन्तो दुरासदाः ॥ ११ ॥
पृष्ठतः सात्यकिं यान्तमन्वधावन्नमर्षिणः ।

दुर्योधन, चित्रसेन, दुःशासन, विविंशति, शकुनि, दुःसह, तरुण वीर दुर्धर्ष क्रथ तथा अन्य बहुत-से दुर्जय शूरवीर, अमर्षमें भरकर अस्त्र-शस्त्र लिये वहाँ आगे बढ़ते हुए सात्यकिके पीछे-पीछे दौड़े ॥ १०–११½ ॥

अथ शब्दो महानासीत् तव सैन्यस्य मारिष ॥ १२ ॥
मारुतोद्धूतवेगस्य सागरस्येव पर्वणि ।

माननीय नरेश ! पूर्णिमाके दिन वायुके झकोरोंसे वेगपूर्वक ऊपर उठनेवाले महासागरके समान आपकी सेनामें बड़े जोर-जोरसे गर्जन-तर्जनका शब्द होने लगा ॥ १२½ ॥

तानभिद्रवतः सर्वान् समीक्ष्य शिनिपुङ्गवः ॥ १३ ॥
शनैर्याहीति यन्तारमब्रवीत् प्रहसन्निव ।

उन सबको आक्रमण करते देख शिनिप्रवर सात्यकिने अपने सारथिसे हँसते हुए-से कहा—'सूत ! धीरे-धीरे चलो ॥

इदमेतत् समुद्धूतं धार्तराष्ट्रस्य यद् बलम् ॥ १४ ॥
मामेवाभिमुखं तूर्णं गजाश्वरथपत्तिमत् ।
नादयन् वै दिशः सर्वा रथघोषेण सारथे ॥ १५ ॥
पृथिवीं चान्तरिक्षं च कम्पयन् सागरानपि ।
एतद् बलार्णवं सूत वारयिष्ये महारणे ॥ १६ ॥
पौर्णमास्यामिवोद्धूतं वेलेव मकरालयम् ।

'सूत ! यह हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसे भरी हुई जो दुर्योधनकी सेना युद्धके लिये उद्यत हो मेरी ही ओर तीव्र वेगसे चली आ रही है, इस सेना-समुद्रको मैं इस महान् समराङ्गणमें अपने रथकी घर्घराहटसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करता तथा पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं सागरोंको भी कँपाता हुआ आगे बढ़नेसे रोकूँगा । ठीक उसी तरह, जैसे तटकी भूमि पूर्णिमाको उद्वेलित होनेवाले महासागरको रोक देती है ॥ १४–१६½ ॥

पश्य मे सूत विक्रान्तमिन्द्रस्येव महामृधे ॥ १७ ॥
एष सैन्यानि शत्रूणां विधमामि शितैः शरैः ।

'सारथे ! इस महायुद्धमें देवराज इन्द्रके समान मेरा पराक्रम तुम देखो । मैं अभी-अभी अपने पैने बाणोंसे शत्रुओंकी सेनाओंका संहार कर डालता हूँ ॥ १७½ ॥

निहतानाहवे पश्य पदात्यश्वरथद्विपान् ॥ १८ ॥
मच्छरैरग्निसंकाशैर्विद्धदेहान् सहस्रशः ।

'इस युद्धस्थलमें मेरे द्वारा मारे गये सहस्रों पैदलों, घुड़सवारों, रथियों और हाथीसवारोंको देखना, जिनके शरीर मेरे अग्निसदृश बाणोंद्वारा विदीर्ण हुए होंगे' ॥ १८½ ॥

इत्येवं ब्रुवतस्तस्य सात्यकेरमितौजसः ॥ १९ ॥
समीपे सैनिकास्ते तु शीघ्रमीयुर्युयुत्सवः ।
जह्याद्रवस्व तिष्ठेति पश्य पश्येति वादिनः ॥ २० ॥

अमित तेजस्वी सात्यकि जब इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय युद्धके लिये उत्सुक हुए आपके सारे सैनिक शीघ्र ही उनके समीप आ पहुँचे । वे 'दौड़ो, मारो, ठहरो, देखो-देखो' इत्यादि बातें बोल रहे थे ॥ १९–२० ॥

तानेवं ब्रुवतो वीरान् सात्यकिर्निशितैः शरैः ।
जघान त्रिशतानश्वान् कुञ्जरांश्च चतुःशतान् ॥ २१ ॥
(लघ्वस्त्रश्चित्रयोधी च प्रहसञ्छिनिपुङ्गवः ।)

शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलानेवाले एवं विचित्र युद्धकी कलामें निपुण शिनिप्रवर सात्यकिने हँसते हुए वहाँ उपर्युक्त बातें बोलनेवाले तीन सौ वीर घुड़सवारों तथा चार सौ हाथीसवारोंको अपने तीखे बाणोंसे मार गिराया ॥ २१ ॥

स सम्प्रहारस्तुमुलस्तस्य तेषां च धन्विनाम् ।
देवासुररणप्रख्यः प्रावर्तत जनक्षयः ॥ २२ ॥

सात्यकि तथा आपकी सेनाके धनुर्धरोंका वह नरसंहारकारी युद्ध देवासुर-संग्रामके समान अत्यन्त भयंकर हो चला॥

मेघजालनिभं सैन्यं तव पुत्रस्य मारिष ।
प्रत्यगृह्णाच्छिनेः पौत्रः शरैराशीविषोपमैः ॥ २३ ॥

माननीय नरेश ! शिनिपौत्र सात्यकिने अपने विषधर सर्पके समान भयंकर बाणोंद्वारा मेघोंकी घटाके समान प्रतीत होनेवाली आपके पुत्रकी सेनाका अकेले ही सामना किया ॥

प्रच्छाद्यमानः समरे शरजालैः स वीर्यवान् ।
असम्भ्रमन् महाराज तावकानवधीद् बहून् ॥ २४ ॥

महाराज ! उस समराङ्गणमें पराक्रमी सात्यकि बाणोंके समूहसे आच्छादित हो गये थे, तो भी उन्होंने मनमें तनिक भी घबराहट नहीं आने दी और आपके बहुत-से सैनिकोंका संहार कर डाला ॥ २४ ॥

आश्चर्यं तत्र राजेन्द्र सुमहद् दृष्टवानहम् ।
न मोघः सायकः कश्चित् सात्यकेरभवत् प्रभो ॥ २५ ॥

शक्तिशाली राजेन्द्र ! वहाँ सबसे महान् आश्चर्यकी बात मैंने यह देखी कि सात्यकिका कोई भी बाण व्यर्थ नहीं गया ॥

रथनागाश्वकलिलः पदात्यूर्मिसमाकुलः ।
शैनेयवेलामासाद्य स्थितः सैन्यमहार्णवः ॥ २६ ॥

रथ, हाथी और घोड़ोंसे भरी तथा पैदलरूपी लहरोंसे व्याप्त हुई आपकी सागर-सदृश सेना सात्यकिरूपी तटभूमिके समीप आकर अवरुद्ध हो गयी ॥ २६ ॥

सम्भ्रान्तनरनागाश्वमावर्तत मुहुर्मुहुः ।
तत् सैन्यमिषुभिस्तेन वध्यमानं समन्ततः ॥ २७ ॥

सात्यकिके बाणोंद्वारा सब ओरसे मारी जाती हुई आपकी सेनाके पैदल, हाथी और घोड़े सभी घबरा गये और बारंबार चक्कर काटने लगे ॥ २७ ॥

बभ्राम तत्र तत्रैव गावः शीतार्दिता इव ।
पदातिनं रथं नागं सादिनं तुरगं तथा ॥ २८ ॥
अविद्धं तत्र नाद्राक्षं युयुधानस्य सायकैः ।

सर्दीसे पीड़ित हुई गायोंके समान आपकी सारी सेना वहीं चक्कर लगा रही थी। मैंने वहाँ एक भी पैदल, रथी, हाथी तथा सवारसहित घोड़ेको ऐसा नहीं देखा, जो युयुधानके बाणोंसे विद्ध न हुआ हो ॥ २८½ ॥

न तादृक् कदनं राजन् कृतवांस्तत्र फाल्गुनः ॥ २९ ॥
यादृक् क्षयमनीकानामकरोत् सात्यकिर्नृप ।

राजन् ! नरेश्वर ! सात्यकिने आपके सैनिकोंका जैसा संहार किया था, वैसा वहाँ अर्जुनने भी नहीं किया था ॥ २९½ ॥

अत्यर्जुनं शिनेः पौत्रो युध्यते पुरुषर्षभः ॥ ३० ॥
वीतभीर्लाघवोपेतः कृतित्वं सम्प्रदर्शयन् ।

शिनिपौत्र पुरुषश्रेष्ठ सात्यकि निर्भय हो बड़ी फुर्तीसे अस्त्र चलाते और अपनी कुशलताका प्रदर्शन करते हुए अर्जुनसे भी अधिक पराक्रमपूर्वक युद्ध कर रहे थे ॥ ३०½ ॥

ततो दुर्योधनो राजा सात्वतस्य त्रिभिः शरैः ॥ ३१ ॥
विव्याध सूतं निशितैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
सात्यकिं च त्रिभिर्विद्ध्वा पुनरष्टाभिरेव च ॥ ३२ ॥

तब राजा दुर्योधनने तीन बाणोंसे सात्यकिके सारथिको और चार पैने बाणोंद्वारा उनके चारों घोड़ोंको घायल कर दिया। तत्पश्चात् सात्यकिको भी पहले तीन बाणोंसे बींधकर फिर आठ बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३१-३२ ॥

दुःशासनः षोडशभिर्विव्याध शिनिपुङ्गवम् ।
शकुनिः पञ्चविंशत्या चित्रसेनश्च पञ्चभिः ॥ ३३ ॥

तदनन्तर दुःशासनने सोलह, शकुनिने पचीस और चित्रसेनने पाँच बाणोंद्वारा शिनिप्रवर सात्यकिको बींध डाला॥

दुःसहः पञ्चदशभिर्विव्याधोरसि सात्यकिम् ।
उत्स्मयन् वृष्णिशार्दूलस्तथा बाणैः समाहतः ॥ ३४ ॥
तानविध्यन्महाराज सर्वानेव त्रिभिस्त्रिभिः ।

इसके बाद दुःसहने सात्यकिकी छातीमें पंद्रह बाण मारे। महाराज ! इस प्रकार उन बाणोंसे आहत होकर वृष्णिवंशके सिंह सात्यकिने मुसकराते हुए ही उन सबको ही तीन-तीन बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ३४½ ॥

गाढविद्धानरीन् कृत्वा मार्गणैः सोऽतितेजनैः ॥ ३५ ॥
शैनेयः श्येनवत् संख्ये व्यचरल्लघुविक्रमः ।

उस युद्धस्थलमें शीघ्रतापूर्वक पराक्रम करनेवाले शिनिवंशी सात्यकि अपने अत्यन्त तेज बाणोंद्वारा शत्रुओंको गहरी चोट पहुँचाकर बाजके समान सब ओर विचरने लगे॥ ३५½॥

सौबलस्य धनुश्छित्त्वा हस्तावापं निकृत्य च ॥ ३६ ॥
दुर्योधनं त्रिभिर्बाणैरभ्यविध्यत् स्तनान्तरे ।

उन्होंने सुबलपुत्र शकुनिके धनुष और दस्ताने काटकर दुर्योधनकी छातीमें तीन बाण मारे ॥ ३६½ ॥

चित्रसेनं शतेनैव दशभिर्दुःसहं तथा ॥ ३७ ॥
दुःशासनं तु विंशत्या विव्याध शिनिपुङ्गवः ।

फिर शिनिवंशके प्रमुख वीरने चित्रसेनको सौ, दुःसहको दस और दुःशासनको बीस बाणोंसे घायल कर दिया॥ ३७½॥

अथान्यद् धनुरादाय श्यालस्तव विशाम्पते ॥ ३८ ॥
अष्टाभिः सात्यकिं विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ।
दुःशासनश्च दशभिर्दुःसहश्च त्रिभिः शरैः ॥ ३९ ॥

प्रजानाथ ! तत्पश्चात् आपके सालेने दूसरा धनुष लेकर सात्यकिको पहले आठ बाण मारे। फिर पाँच बाणोंसे उन्हें घायल कर दिया। दुःशासनने दस और दुःसहने भी तीन बाण मारे ॥ ३८-३९ ॥

दुर्मुखश्च द्वादशभी राजन् विव्याध सात्यकिम् ।
दुर्योधनस्त्रिसप्तत्या विद्ध्वा भारत माधवम् ॥ ४० ॥
ततोऽस्य निशितैर्बाणैस्त्रिभिर्विव्याध सारथिम् ।

राजन् ! दुर्मुखने बारह बाणोंसे सात्यकिको क्षत-विक्षत कर दिया। भारत ! इसके बाद दुर्योधनने तिहत्तर बाणोंसे युयुधानको घायल करके तीन पैने बाणोंद्वारा उनके सारथिको भी बींध डाला ॥ ४०½ ॥

तान् सर्वान् सहिताञ्छूरान् यतमानान् महारथान् ॥
पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणैः पुनर्विव्याध सात्यकिः ।

तब सात्यकिने एक साथ विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले उन समस्त शूरवीर महारथियोंको पुनः पाँच-पाँच बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ४१½ ॥

ततः स रथिनां श्रेष्ठस्तव पुत्रस्य सारथिम् ॥ ४२ ॥
आजघानाशु भल्लेन स हतो न्यपतद् भुवि ।

तत्पश्चात् रथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकिने आपके पुत्रके सारथि-के ऊपर शीघ्र ही एक भल्लका प्रहार किया। सारथि उसके द्वारा मारा जाकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ४२½ ॥

पतिते सारथौ तस्मिंस्तव पुत्ररथः प्रभो ॥ ४३ ॥
वातायमानैस्तैरश्वैरपानीयत संगरात्।

प्रभो ! उस सारथिके धराशायी होनेपर आपके पुत्रका रथ हवाके समान तीव्र वेगसे भागनेवाले घोड़ोंद्वारा युद्ध-स्थलसे दूर हटा दिया गया ॥ ४३½ ॥

ततस्तव सुता राजन् सैनिकाश्च विशाम्पते ॥ ४४ ॥
राज्ञो रथमभिप्रेक्ष्य विद्रुताः शतशोऽभवन्।

राजन् ! प्रजानाथ ! तदनन्तर आपके पुत्र और सैनिक राजा दुर्योधनके रथकी वैसी दशा देखकर सैकड़ोंकी संख्यामें भाग खड़े हुए ॥ ४४½ ॥

विद्रुतं तत्र तत् सैन्यं दृष्ट्वा भारत सात्यकिः ॥ ४५ ॥
अवाकिरच्छरैस्तीक्ष्णै रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः।

भारत ! आपकी सेनाको भागती देख सात्यकिने सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले तीखे बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ४५½ ॥

विद्राव्य सर्वसैन्यानि तावकानि सहस्रशः ॥ ४६ ॥
प्रययौ सात्यकी राजञ्श्वेताश्वस्य रथं प्रति।

राजन् ! इस प्रकार आपके सहस्रों सैनिकोंको भगाकर सात्यकि श्वेतवाहन अर्जुनके रथकी ओर चल दिये ॥ ४६½ ॥

(तं प्रयान्तं महाबाहुं तावकाः प्रेक्ष्य मारिष।
दृष्टं चादृष्टवत्कृत्वा क्रियामन्यां प्रयोजयन् ॥)

आर्य ! महाबाहु सात्यकिको आगे जाते देखकर आपके सैनिक उस देखी हुई घटनाको भी अनदेखी करके दूसरे काममें लग गये ॥

तं शरानाददानं च रक्षमाणं च सारथिम्।
आत्मानं पालयानं च तावकाः समपूजयन् ॥ ४७ ॥

सात्यकि बाणोंको ग्रहण करते हुए अपनी और सारथिकी भी रक्षा करते थे। उनके इस कार्यकी आपके सैनिकोंने भी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे दुर्योधनपलायने विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिका शत्रुसेनामें प्रवेश और दुर्योधनका पलायनविषयक एक सौ बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १½ श्लोक मिलाकर कुल ४८½ श्लोक हैं)

एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिके द्वारा पाषाणयोधी म्लेच्छोंकी सेनाका संहार और दुःशासनका सेनासहित पलायन

धृतराष्ट्र उवाच

सम्प्रमृद्य महत् सैन्यं यान्तं शैनेयमर्जुनम्।
निर्ह्रीका मम ते पुत्राः किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! मेरी विशाल सेनाको रौंदकर जाते हुए सात्यकि और अर्जुनको देखकर मेरे उन निर्लज्ज पुत्रोंने क्या किया ? ॥ १ ॥

कथं चैषां तदा युद्धे धृतिरासीन्मुमूर्षताम्।
शैनेयचरितं दृष्ट्वा यादृशं सव्यसाचिनः ॥ २ ॥

वे सब-के-सब मरना चाहते थे। उस समय युद्धस्थलमें अर्जुनके समान ही सात्यकिका चरित्र देखकर उनकी कैसी धारणा हुई थी ? ॥ २ ॥

किं नु वक्ष्यन्ति ते क्षात्रं सैन्यमध्ये पराजिताः।
कथं नु सात्यकिर्युद्धे व्यतिक्रान्तो महायशाः ॥ ३ ॥

वे सेनाके बीचमें परास्त होकर अपने क्षात्रबलका क्या वर्णन करेंगे ? समराङ्गणमें महायशस्वी सात्यकि किस प्रकार सारी सेनाको लाँघकर आगे बढ़ गये ? ॥ ३ ॥

कथं च मम पुत्राणां जीवतां तत्र संजय।
शैनेयोऽभिययौ युद्धे तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ४ ॥

संजय ! युद्धस्थलमें मेरे पुत्रोंके जीते-जी शिनि-नन्दन सात्यकि किस तरह आगे जा सके ? संजय ! यह सब मुझे बताओ ॥ ४ ॥

अत्यद्भुतमिदं तात त्वत्सकाशाच्छृणोम्यहम्।
एकस्य बहुभिः सार्धं शत्रुभिस्तैर्महारथैः ॥ ५ ॥

तात ! यह मैं तुम्हारे मुँहसे अत्यन्त विचित्र बात सुन रहा हूँ कि शत्रुदलके उन बहुसंख्यक महारथियोंके साथ एकमात्र सात्यकिका ऐसा घोर संग्राम हुआ ॥ ५ ॥

विपरीतमहं मन्ये मन्दभाग्यं सुतं प्रति।
यत्रावध्यन्त समरे सात्वतेन महारथाः ॥ ६ ॥

मैं अपने भाग्यहीन पुत्रके लिये सब कुछ विपरीत ही मान रहा हूँ; क्योंकि समराङ्गणमें अकेले सात्यकिने बहुत-से महारथियोंका वध कर डाला है ॥ ६ ॥

एकस्य हि न पर्याप्तं यत्सैन्यं तस्य संजय।
क्रुद्धस्य युयुधानस्य सर्वे तिष्ठन्तु पाण्डवाः ॥ ७ ॥

संजय ! और सब पाण्डव तो दूर रहें, क्रोधमें भरे हुए अकेले सात्यकिके लिये भी मेरी सारी सेना पर्याप्त नहीं है ॥ ७ ॥

निर्जित्य समरे द्रोणं कृतिनं चित्रयोधिनम्।
यथा पशुगणान् सिंहस्तद्वद्धन्ता सुतान् मम ॥ ८ ॥

जैसे सिंह पशुओंको मार डालता है, उसी प्रकार

सात्यकि विचित्र युद्ध करनेवाले विद्वान् द्रोणाचार्यको भी युद्धमें परास्त करके मेरे पुत्रोंका वध कर डालेंगे ॥ ८ ॥

कृतवर्मादिभिः शूरैर्यत्तैर्बहुभिराहवे ।
युयुधानो न शकितो हन्तुं यत् पुरुषर्षभः ॥ ९ ॥

कृतवर्मा आदि बहुत-से शूरवीर समराङ्गणमें प्रयत्न करते ही रह गये; परंतु पुरुषप्रवर सात्यकि मारे न जा सके ॥ ९ ॥

नैतदीदृशकं युद्धं कृतवांस्तत्र फाल्गुनः ।
यादृशं कृतवान् युद्धं शिनेर्नप्ता महायशाः ॥ १० ॥

शिनिके महायशस्वी पौत्र सात्यकिने वहाँ जैसा युद्ध किया, वैसा तो अर्जुनने भी नहीं किया था ॥ १० ॥

संजय उवाच

तव दुर्मन्त्रिते राजन् दुर्योधनकृतेन च ।
शृणुष्वावहितो भूत्वा यत् ते वक्ष्यामि भारत ॥ ११ ॥

संजयने कहा—राजन्! आपकी खोटी सलाह और दुर्योधनकी काली करतूतसे यह सब कुछ हुआ है। भारत! मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे सावधान होकर सुनिये ॥ ११ ॥

ते पुनः संन्यवर्तन्त कृत्वा संशप्तकान् मिथः ।
परां युद्धे मतिं क्रूरां तव पुत्रस्य शासनात् ॥ १२ ॥

आपके पुत्रकी आज्ञासे युद्धके लिये अत्यन्त क्रूरतापूर्ण निश्चय करके परस्पर शपथ ले वे सभी पराजित योद्धा पुनः लौट आये ॥ १२ ॥

त्रीणि सादिसहस्राणि दुर्योधनपुरोगमाः ।
शककाम्बोजबाह्लीका यवनाः पारदास्तथा ॥ १३ ॥
कुलिन्दास्तङ्गणाम्बष्ठाः पैशाचाश्च सबर्बराः ।
पर्वतीयाश्च राजेन्द्र क्रुद्धाः पाषाणपाणयः ॥ १४ ॥
अभ्यद्रवन्त शैनेयं शलभाः पावकं यथा ।

तीन हजार घुड़सवार और हाथीसवार दुर्योधनको अपना अगुआ बनाकर चले। उनके साथ शक, काम्बोज, बाह्लीक, यवन, पारद, कुलिन्द, तंगण, अम्बष्ठ, पैशाच, बर्बर तथा पर्वतीय योद्धा भी थे। राजेन्द्र! वे सब-के सब कुपित हो हाथोंमें पत्थर लिये सात्यकिकी ओर उसी प्रकार दौड़े, जैसे फतिंगे जलती हुई आगपर टूटे पड़ते हैं ॥ १३-१४½ ॥

युक्ताश्च पर्वतीयानां रथाः पाषाणयोधिनाम् ॥ १५ ॥
शूराः पञ्चशता राजन् शैनेयं समुपाद्रवन् ।

राजन्! पत्थरोंद्वारा युद्ध करनेवाले पर्वतीयोंके पाँच सौ शूरवीर रथी युद्धके लिये सुसज्जित हो सात्यकिपर चढ़ आये ॥ १५½ ॥

ततो रथसहस्रेण महारथशतेन च ॥ १६ ॥
द्विरदानां सहस्रेण द्विसाहस्रैश्च वाजिभिः ।
शरवर्षाणि मुञ्चन्तो विविधानि महारथाः ॥ १७ ॥
अभ्यद्रवन्त शैनेयमसंख्येयाश्च पत्तयः ।

तत्पश्चात् एक हजार रथी, सौ महारथी, एक हजार हाथी और दो हजार घुड़सवारोंके साथ बहुत-से महारथी और असंख्य पैदल सैनिक सात्यकिपर नाना प्रकारके बाणोंकी वर्षा करते हुए टूट पड़े ॥ १६-१७½ ॥

तांश्च संचोदयन् सर्वान् घ्नतैनमिति भारत ॥ १८ ॥
दुःशासनो महाराज सात्यकिं पर्यवारयत् ।

भरतवंशी महाराज! 'इस सात्यकिको मार डालो' इस प्रकार उन समस्त सैनिकोंको प्रेरित करते हुए दुःशासनने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ १८½ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम शैनेयचरितं महत् ॥ १९ ॥
यदेको बहुभिः सार्धमसम्भ्रान्तमयुध्यत ।

वहाँ हमने सात्यकिका अत्यन्त अद्भुत चरित्र देखा कि वे बिना किसी घबराहटके अकेले ही बहुसंख्यक योद्धाओंके साथ युद्ध कर रहे थे ॥ १९½ ॥

अवधीच्च रथानीकं द्विरदानां च तद् बलम् ॥ २० ॥
सादिनश्चैव तान् सर्वान् दस्यूनपि च सर्वशः ।

उन्होंने रथसेना और गजसेनाका तथा उन समस्त घुड़सवारों एवं लुटेरे म्लेच्छोंका भी सब प्रकारसे संहार कर डाला ॥ २०½ ॥

तत्र चक्रैर्विमथितैर्भग्नैश्च परमायुधैः ॥ २१ ॥
अक्षैश्च बहुधा भग्नैरीषादण्डकबन्धुरैः ।
कुञ्जरैर्मथितैश्चापि ध्वजैश्च विनिपातितैः ॥ २२ ॥
वर्मभिश्च तथानीकैर्व्यवकीर्णा वसुंधरा ।

वहाँ चूर-चूर हुए चक्कों, टूटे हुए उत्तमोत्तम आयुधों, टूक-टूक हुए धुरों, खण्डित हुए ईषादण्डों और बन्धुरों, मथे गये हाथियों, तोड़कर गिराये हुए ध्वजों, छिन्न-भिन्न कवचों और विनष्ट हुए सैनिकोंकी लाशोंसे वहाँकी पृथ्वी पट गयी थी ॥ २१-२२½ ॥

स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैरनुकर्षैश्च मारिष ॥ २३ ॥
संछन्ना वसुधा तत्र द्यौर्ग्रहैरिव भारत ।

माननीय भरतनरेश! योद्धाओंके हारों, आभूषणों, वस्त्रों और अनुकर्षोंसे आच्छादित हुई वहाँकी भूमि तारोंसे व्याप्त हुए आकाशके समान जान पड़ती थी ॥ २३½ ॥

गिरिरूपधराश्चापि पतिताः कुञ्जरोत्तमाः ॥ २४ ॥
अञ्जनस्य कुले जाता वामनस्य च भारत ।

भारत! अञ्जन और वामन नामक दिग्गजके कुलमें उत्पन्न हुए पर्वताकार श्रेष्ठ गजराज भी वहाँ धराशायी हो गये थे ॥ २४½ ॥

सुप्रतीककुले जाता महापद्मकुले तथा ॥ २५ ॥
ऐरावतकुले चैव तथान्येषु कुलेषु च ।

जाता दन्तिवरा राजञ्शेरते बहवो हताः ॥ २६ ॥

नरेश्वर ! सुप्रतीक, महापद्म, ऐरावत तथा अन्य पुण्डरीक, पुष्पदन्त और सार्वभौम-(इन) दिग्गजोंके कुलोंमें उत्पन्न हुए बहुतेरे दंतार हाथी भी वहाँ धरतीपर लोट रहे थे ॥२५ २६॥

वनायुजान् पर्वतीयान् काम्बोजान् बाह्लिकानपि ।
तथा हयवरान् राजन् निजघ्ने तत्र सात्यकिः ॥ २७ ॥

राजन् ! वहाँ सात्यकिने वनायु, काम्बोज (काबुल) और बाह्लीक देशोंमें उत्पन्न हुए श्रेष्ठ अश्वों तथा पहाड़ी घोड़ोंको भी मार गिराया ॥ २७ ॥

नानादेशसमुत्थांश्च नानाजातींश्च दन्तिनः ।
निजघ्ने तत्र शैनेयः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २८ ॥

शिनिके उस वीर पौत्रने अनेक देशोंमें उत्पन्न हुए विभिन्न जातिके सैकड़ों और हजारों हाथियोंका भी संहार कर डाला ॥ २८ ॥

तेषु प्रकाल्यमानेषु दस्यून् दुःशासनोऽब्रवीत् ।
निवर्तध्वमधर्मज्ञा युध्यध्वं किं सृतेन वः ॥ २९ ॥

वे हाथी जब कालके गालमें जा रहे थे, उस समय दुःशासनने लूट-पाट करनेवाले म्लेच्छोंसे इस प्रकार कहा—'धर्मको न जाननेवाले योद्धाओ ! इस तरह भाग जानेसे तुम्हें क्या मिलेगा ? लौटो और युद्ध करो' ॥ २९ ॥

तांश्चातिभग्नान् सम्प्रेक्ष्य पुत्रो दुःशासनस्तव ।
पाषाणयोधिनः शूरान् पर्वतीयानचोदयत् ॥ ३० ॥

इतनेपर भी उन्हें जोर-जोरसे भागते देख आपके पुत्र दुःशासनने पत्थरोंद्वारा युद्ध करनेवाले शूरवीर पर्वतीयोंको आज्ञा दी—॥ ३० ॥

अश्मयुद्धेषु कुशला नैतज्जानाति सात्यकिः ।
अश्मयुद्धमजानन्तं घ्नतैनं युद्धकार्मुकम् ॥ ३१ ॥

'वीरो ! तुमलोग प्रस्तरोंद्वारा युद्ध करनेमें कुशल हो। सात्यकिको इस कलाका ज्ञान नहीं है। प्रस्तरयुद्धको न जानते हुए भी युद्धकी इच्छा रखनेवाले इस शत्रुको तुमलोग मार डालो ॥ ३१ ॥

तथैव कुरवः सर्वे नाश्मयुद्धविशारदाः ।
अभिद्रवत मा भैष्ट न वः प्राप्स्यति सात्यकिः ॥ ३२ ॥

'इसी प्रकार समस्त कौरव भी प्रस्तरयुद्धमें प्रवीण नहीं है। अतः तुम डरो मत। आक्रमण करो। सात्यकि तुम्हें नहीं पा सकता' ॥ ३२ ॥

ते पर्वतीया राजानः सर्वे पाषाणयोधिनः ।
अभ्यद्रवन्त शैनेयं राजानमिव मन्त्रिणः ॥ ३३ ॥

जैसे मन्त्री राजाके पास जाते हैं, उसी प्रकार वे पाषाणयोधी समस्त पर्वतीय नरेश सात्यकिकी ओर दौड़े ॥ ३३ ॥

ततो गजशिरःप्रख्यैरुपलैः शैलवासिनः ।
उद्यतैर्युयुधानस्य पुरतस्तस्थुराहवे ॥ ३४ ॥

वे पर्वतनिवासी योद्धा हाथीके मस्तकके समान बड़े-बड़े प्रस्तर हाथमें लेकर समराङ्गणमें युयुधानके सामने युद्धके लिये तैयार होकर खड़े हो गये ॥ ३४ ॥

क्षेपणीयैस्तथाप्यन्ये सात्वतस्य वधैषिणः ।
चोदितास्तव पुत्रेण सर्वतो रुरुधुर्दिशः ॥ ३५ ॥

आपके पुत्र दुःशासनसे प्रेरित होकर सात्यकिके वधकी इच्छा रखनेवाले अन्य बहुतेरे सैनिकोंने भी क्षेपणीयास्त्र उठाकर सब ओरसे सात्यकिकी सम्पूर्ण दिशाओंको अवरुद्ध कर लिया ॥ ३५ ॥

तेषामापततामेव शिलायुद्धं चिकीर्षताम् ।
सात्यकिः प्रतिसंधाय निशितान् प्राहिणोच्छरान् ॥३६॥

प्रस्तरयुद्धकी इच्छा रखनेवाले उन योद्धाओंके आक्रमण करते ही सात्यकिने तेज किये हुए बाणोंका संधान करके उन्हें उनपर चलाया ॥ ३६ ॥

तामश्मवृष्टिं तुमुलां पर्वतीयैः समीरिताम् ।
चिच्छेदोरगसंकाशैर्नाराचैः शिनिपुङ्गवः ॥ ३७ ॥

पर्वतीय सैनिकोंद्वारा की हुई उस भयंकर पाषाणवर्षाको शिनिप्रवर सत्यकिने अपने सर्पतुल्य नाराचोंद्वारा छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ ३७ ॥

तैरश्मचूर्णैर्दीप्यद्भिः खद्योतानामिव व्रजैः ।
प्रायः सैन्यान्यहन्यन्त हाहाभूतानि मारिष ॥ ३८ ॥

माननीय नरेश ! जुगनुओंकी जमातोंके समान उद्भासित होनेवाले उन प्रस्तरचूर्णोंसे प्रायः सारी सेनाएँ आहत हो हाहाकार करने लगीं ॥ ३८ ॥

ततः पञ्चशतं शूराः समुद्यतमहाशिलाः ।
निकृत्तबाहवो राजन् निपेतुर्धरणीतले ॥ ३९ ॥

राजन् ! तदनन्तर बड़े-बड़े प्रस्तरखण्ड उठाये हुए पाँच सौ शूरवीर अपनी भुजाओंके कट जानेसे धरतीपर गिर पड़े ॥ ३९ ॥

पुनर्दशशताश्चान्ये शतसाहस्रिणस्तथा ।
सोपलैर्बाहुभिश्छिन्नैः पेतुरप्राप्य सात्यकिम् ॥ ४० ॥

फिर एक हजार दूसरे योद्धा तथा एक लाख अन्य सैनिक सात्यकितक पहुँचने भी नहीं पाये थे कि अपने हाथमें लिये शिलाखण्डोंसे कटी हुई बाहुओंके साथ ही धराशायी हो गये ॥ ४० ॥

(सात्वतस्य च भल्लेन निष्पिष्टैस्तैस्तथाद्रिभिः ।
न्यपतन् निहता म्लेच्छास्तत्र तत्र गतासवः ॥
ते हन्यमानाः समरे सात्वतेन महात्मना ।
अश्मवृष्टिं महाघोरां पातयन्ति स्म सात्वते ॥)

सात्यकिके भल्लसे चूर-चूर हुए शिलाखण्डोंद्वारा मारे गये म्लेच्छ प्राणशून्य होकर जहाँ-तहाँ पड़े थे। महामनाः

सात्यकिद्वारा समरभूमिमें मारे जाते हुए वे म्लेच्छ सैनिक उनपर बड़ी भयंकर पत्थरोंकी वर्षा करते थे ॥

पाषाणयोधिनः शूरान् यतमानानवस्थितान्।
न्यवधीद् बहुसाहस्रांस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४१ ॥

वे पाषाणोंद्वारा युद्ध करनेवाले शूरवीर विजयके लिये यत्नशील होकर रणक्षेत्रमें डटे हुए थे। उनकी संख्या अनेक सहस्र थी; परंतु सात्यकिने उन सबका संहार कर डाला। वह एक अद्भुत-सी घटना हुई ॥ ४१ ॥

ततः पुनर्व्यात्तमुखास्तेऽश्मवृष्टीः समन्ततः।
अयोहस्ताः शूलहस्ता दरदास्तङ्गणाः खसाः ॥ ४२ ॥
लम्पाकाश्च कुलिन्दाश्च चिक्षिपुस्तांश्च सात्यकिः।
नाराचैः प्रतिचिच्छेद प्रतिपत्तिविशारदः ॥ ४३ ॥

तदनन्तर पुनः हाथमें लोहेके गोले और त्रिशूल लिये मुँह फैलाये हुए दरद, तंगण, खस, लम्पाक और कुलिन्द-देशीय म्लेच्छोंने सात्यकिपर चारों ओरसे पत्थर बरसाने आरम्भ किये; परंतु प्रतीकार करनेमें निपुण सात्यकिने अपने नाराचोंद्वारा उन सबको छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ ४२–४३ ॥

अद्रीणां भिद्यमानानामन्तरिक्षे शितैः शरैः।
शब्देन प्राद्रवन् संख्ये रथाश्वगजपत्तयः ॥ ४४ ॥

आकाशमें तीखे बाणोंद्वारा टूटने-फूटनेवाले प्रस्तर-खण्डोंके शब्दसे भयभीत हो रथ, घोड़े, हाथी और पैदल सैनिक युद्धस्थलमें इधर-उधर भागने लगे ॥ ४४ ॥

अश्मचूर्णैरवाकीर्णा मनुष्यगजवाजिनः।
नाशक्नुवन्नवस्थातुं भ्रमरैरिव दंशिताः ॥ ४५ ॥

पत्थरके चूर्णोंसे व्याप्त हुए मनुष्य, हाथी और घोड़े वहाँ ठहर न सके, मानो उन्हें भ्रमरोंने डस लिया हो ॥ ४५ ॥

हतशिष्टाः सरुधिरा भिन्नमस्तकपिण्डिकाः।
(विभिन्नशिरसो राजन् दन्तैश्छिन्नैश्च दन्तिनः।
निर्धूतैश्च करैर्नागा व्यङ्गाश्च शतशः कृताः ॥
हत्वा पञ्चशतान् योधांस्तत्क्षणेनैव मारिष।
व्यचरत् पृतनामध्ये शैनेयः कृतहस्तवत् ॥)
कुञ्जरा वर्जयामासुर्युयुधानरथं तथा ॥ ४६ ॥

जो मरनेसे बचे थे, वे हाथी भी खूनसे लथपथ हो रहे थे। उनके कुम्भस्थल विदीर्ण हो गये थे। राजन्! बहुत-से हाथियोंके सिर क्षत-विक्षत हो गये थे। उनके दाँत टूट गये थे, शुण्डदण्ड खण्डित हो गये थे तथा सैकड़ों गजराजोंके सात्यकिने अङ्ग भंग कर दिये थे। माननीय नरेश! सात्यकि सिद्धहस्त पुरुषकी भाँति क्षणभरमें पाँच सौ योद्धाओंका संहार करके सेनाके मध्यभागमें विचरने लगे। उस समय घायल हुए हाथी युयुधानके रथको छोड़कर भाग गये ॥ ४६ ॥

(अश्मनां भिद्यमानानां सायकैः श्रूयते ध्वनिः।
पद्मपत्रेषु धाराणां पतन्तीनामिव ध्वनिः ॥)

बाणोंसे चूर-चूर होनेवाले पत्थरोंकी ऐसी ध्वनि सुनायी पड़ती थी, मानो कमलदलोंपर गिरती हुई जलधाराओंका शब्द कानोंमें पड़ रहा हो ॥

ततः शब्दः समभवत् तव सैन्यस्य मारिष।
माधवेनार्द्यमानस्य सागरस्येव पर्वणि ॥ ४७ ॥

आर्य! जैसे पूर्णिमाके दिन समुद्रका गर्जन बहुत बढ़ जाता है, उसी प्रकार सात्यकिके द्वारा पीड़ित हुई आपकी सेनाका महान् कोलाहल प्रकट हो रहा था ॥ ४७ ॥

तं शब्दं तुमुलं श्रुत्वा द्रोणो यन्तारमब्रवीत्।
एष सूत रणे क्रुद्धः सात्वतानां महारथः ॥ ४८ ॥
दारयन् बहुधा सैन्यं रणे चरति कालवत्।
यत्रैष शब्दस्तुमुलस्तत्र सूत रथं नय ॥ ४९ ॥

उस भयंकर शब्दको सुनकर द्रोणाचार्यने अपने सारथि-से कहा—'सूत! यह सात्वतकुलका महारथी वीर सात्यकि रणक्षेत्रमें कुद्ध होकर कौरवसेनाको बारंबार विदीर्ण करता हुआ कालके समान विचर रहा है। सारथे! जहाँ यह भयानक शब्द हो रहा है, वहीं मेरे रथको ले चलो ॥ ४८-४९ ॥

पाषाणयोधिभिर्नूनं युयुधानः समागतः।
तथा हि रथिनः सर्वे ह्रियन्ते विद्रुतैर्हयैः ॥ ५० ॥

'निश्चय ही युयुधान पाषाणयोधी योद्धाओंसे भिड़ गया है, तभी तो ये भागे हुए घोड़े सम्पूर्ण रथियोंको रणभूमिसे बाहर लिये जा रहे हैं ॥ ५० ॥

विशस्त्रकवचा रुग्णास्तत्र तत्र पतन्ति च।
न शक्नुवन्ति यन्तारः संयन्तुं तुमुले हयान् ॥ ५१ ॥

'ये रथी शस्त्र और कवचसे हीन होकर शस्त्रोंके आघात-से रुग्ण हो यत्र-तत्र गिर रहे हैं। इस भयंकर युद्धमें सारथि अपने घोड़ोंको काबूमें नहीं रख पाते हैं' ॥ ५१ ॥

इत्येतद् वचनं श्रुत्वा भारद्वाजस्य सारथिः।
प्रत्युवाच ततो द्रोणं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥ ५२ ॥
सैन्यं द्रवति चायुष्मन् कौरवेयं समन्ततः।
पश्य योधान् रणे भग्नान् धावतो वै ततस्ततः ॥ ५३ ॥

द्रोणाचार्यका यह वचन सुनकर सारथिने सम्पूर्ण शस्त्र धारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणसे इस प्रकार कहा—'आयुष्मन्! कौरव-सेना चारों ओर भाग रही है। देखिये, रणक्षेत्रमें वे सब योद्धा व्यूह-भंग करके इधर-उधर दौड़ रहे हैं ॥ ५२-५३ ॥

इमे च संहताः शूराः पञ्चालाः पाण्डवैः सह।
त्वामेव हि जिघांसन्त आद्रवन्ति समन्ततः ॥ ५४ ॥

'ये पाण्डवोंसहित पाञ्चाल वीर संगठित हो आपको मार डालनेकी इच्छासे सब ओरसे आपपर ही आक्रमण कर रहे हैं ॥ ५४ ॥

जाता दन्तिवरा राजञ्शेरते बहवो हताः ॥ २६ ॥

नरेश्वर! सुप्रतीक, महापद्म, ऐरावत तथा अन्य पुण्डरीक, पुष्पदन्त और सार्वभौम-(इन) दिग्गजोंके कुलोंमें उत्पन्न हुए बहुतेरे दंतार हाथी भी वहाँ धरतीपर लोट रहे थे ॥२५ २६॥

वनायुजान् पर्वतीयान् काम्बोजान् बाह्लिकानपि ।
तथा हयवरान् राजन् निजघ्ने तत्र सात्यकिः ॥ २७ ॥

राजन्! वहाँ सात्यकिने वनायु, काम्बोज (काबुल) और बाह्लीक देशोंमें उत्पन्न हुए श्रेष्ठ अश्वों तथा पहाड़ी घोड़ोंको भी मार गिराया ॥ २७ ॥

नानादेशसमुत्थांश्च नानाजातींश्च दन्तिनः ।
निजघ्ने तत्र शैनेयः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २८ ॥

शिनिके उस वीर पौत्रने अनेक देशोंमें उत्पन्न हुए विभिन्न जातिके सैकड़ों और हजारों हाथियोंका भी संहार कर डाला ॥ २८ ॥

तेषु प्रकाल्यमानेषु दस्यून् दुःशासनोऽब्रवीत् ।
निवर्तध्वमधर्मज्ञा युध्यध्वं किं सृतेन वः ॥ २९ ॥

वे हाथी जब कालके गालमें जा रहे थे, उस समय दुःशासनने लूट-पाट करनेवाले म्लेच्छोंसे इस प्रकार कहा—'धर्मको न जाननेवाले योद्धाओ! इस तरह भाग जानेसे तुम्हें क्या मिलेगा? लौटो और युद्ध करो' ॥ २९ ॥

तांश्चातिभग्नान् सम्प्रेक्ष्य पुत्रो दुःशासनस्तव ।
पाषाणयोधिनः शूरान् पर्वतीयानचोदयत् ॥ ३० ॥

इतनेपर भी उन्हें जोर-जोरसे भागते देख आपके पुत्र दुःशासनने पत्थरोंद्वारा युद्ध करनेवाले शूरवीर पर्वतीयोंको आज्ञा दी—॥ ३० ॥

अश्मयुद्धेषु कुशला नैतज्जानाति सात्यकिः ।
अश्मयुद्धमजानन्तं घ्नतैनं युद्धकार्मुकम् ॥ ३१ ॥

'वीरो! तुमलोग प्रस्तरोंद्वारा युद्ध करनेमें कुशल हो। सात्यकिको इस कलाका ज्ञान नहीं है। प्रस्तरयुद्धको न जानते हुए भी युद्धकी इच्छा रखनेवाले इस शत्रुको तुमलोग मार डालो ॥ ३१ ॥

तथैव कुरवः सर्वे नाश्मयुद्धविशारदाः ।
अभिद्रवत मा भैष्ट न वः प्राप्स्यति सात्यकिः ॥ ३२ ॥

'इसी प्रकार समस्त कौरव भी प्रस्तरयुद्धमें प्रवीण नहीं है। अतः तुम डरो मत। आक्रमण करो। सात्यकि तुम्हें नहीं पा सकता' ॥ ३२ ॥

ते पर्वतीया राजानः सर्वे पाषाणयोधिनः ।
अभ्यद्रवन्त शैनेयं राजानमिव मन्त्रिणः ॥ ३३ ॥

जैसे मन्त्री राजाके पास जाते हैं, उसी प्रकार वे पाषाणयोधी समस्त पर्वतीय नरेश सात्यकिकी ओर दौड़े ॥ ३३ ॥

ततो गजशिरःप्रख्यैरुपलैः शैलवासिनः ।
उद्यतैर्युयुधानस्य पुरतस्तस्थुराहवे ॥ ३४ ॥

वे पर्वतनिवासी योद्धा हाथीके मस्तकके समान बड़े-बड़े प्रस्तर हाथमें लेकर समराङ्गणमें युयुधानके सामने युद्धके लिये तैयार होकर खड़े हो गये ॥ ३४ ॥

क्षेपणीयैस्तथाप्यन्ये सात्वतस्य वधैषिणः ।
चोदितास्तव पुत्रेण सर्वतो रुरुधुर्दिशः ॥ ३५ ॥

आपके पुत्र दुःशासनसे प्रेरित होकर सात्यकिके वधकी इच्छा रखनेवाले अन्य बहुतेरे सैनिकोंने भी क्षेपणीयास्त्र उठाकर सब ओरसे सात्यकिकी सम्पूर्ण दिशाओंको अवरुद्ध कर लिया ॥ ३५ ॥

तेषामापततामेव शिलायुद्धं चिकीर्षताम् ।
सात्यकिः प्रतिसंधाय निशितान् प्राहिणोच्छरान् ॥३६॥

प्रस्तरयुद्धकी इच्छा रखनेवाले उन योद्धाओंके आक्रमण करते ही सात्यकिने तेज किये हुए बाणोंका संधान करके उन्हें उनपर चलाया ॥ ३६ ॥

तामश्मवृष्टिं तुमुलां पर्वतीयैः समीरिताम् ।
चिच्छेदोरगसंकाशैर्नाराचैः शिनिपुङ्गवः ॥ ३७ ॥

पर्वतीय सैनिकोंद्वारा की हुई उस भयंकर पाषाणवर्षाको शिनिप्रवर सत्यकिने अपने सर्पतुल्य नाराचोंद्वारा छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ ३७ ॥

तैरश्मचूर्णैर्दीप्यद्भिः खद्योतानामिव व्रजैः ।
प्रायः सैन्यान्यहन्यन्त हाहाभूतानि मारिष ॥ ३८ ॥

माननीय नरेश! जुगनुओंकी जमातोंके समान उद्भासित होनेवाले उन प्रस्तरचूर्णोंसे प्रायः सारी सेनाएँ आहत हो हाहाकार करने लगीं ॥ ३८ ॥

ततः पञ्चशतं शूराः समुद्यतमहाशिलाः ।
निकृत्तबाहवो राजन् निपेतुर्धरणीतले ॥ ३९ ॥

राजन्! तदनन्तर बड़े-बड़े प्रस्तरखण्ड उठाये हुए पाँच सौ शूरवीर अपनी भुजाओंके कट जानेसे धरतीपर गिर पड़े ॥ ३९ ॥

पुनर्दशशताश्चान्ये शतसाहस्रिणस्तथा ।
सोपलैर्बाहुभिश्छिन्नैः पेतुरप्राप्य सात्यकिम् ॥ ४० ॥

फिर एक हजार दूसरे योद्धा तथा एक लाख अन्य सैनिक सात्यकितक पहुँचने भी नहीं पाये थे कि अपने हाथमें लिये शिलाखण्डोंसे कटी हुई बाहुओंके साथ ही धराशायी हो गये ॥ ४० ॥

(सात्वतस्य च भल्लेन निष्पिष्टैस्तैस्तथाद्रिभिः ।
न्यपतन् निहता म्लेच्छास्तत्र तत्र गतासवः ॥
ते हन्यमानाः समरे सात्वतेन महात्मना ।
अश्मवृष्टिं महाघोरां पातयन्ति स्म सात्वते ॥)

सात्यकिके भल्लसे चूर-चूर हुए शिलाखण्डोंद्वारा मारे गये म्लेच्छ प्राणशून्य होकर जहाँ-तहाँ पड़े थे। महात्मा

सात्यकिद्वारा समरभूमिमें मारे जाते हुए वे म्लेच्छ सैनिक उनपर बड़ी भयंकर पत्थरोंकी वर्षा करते थे ॥

पाषाणयोधिनः शूरान् यतमानानवस्थितान् ।
न्यवधीद् बहुसाहस्रांस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४१ ॥

वे पाषाणोंद्वारा युद्ध करनेवाले शूरवीर विजयके लिये यत्नशील होकर रणक्षेत्रमें डटे हुए थे । उनकी संख्या अनेक सहस्र थी; परंतु सात्यकिने उन सबका संहार कर डाला । वह एक अद्भुत-सी घटना हुई ॥ ४१ ॥

ततः पुनर्व्यात्तमुखास्तेऽश्मवृष्टीः समन्ततः ।
अयोहस्ताः शूलहस्ता दरदास्तङ्गणाः खसाः ॥ ४२ ॥
लम्पाकाश्च कुलिन्दाश्च चिक्षिपुस्तांश्च सात्यकिः ।
नाराचैः प्रतिचिच्छेद प्रतिपत्तिविशारदः ॥ ४३ ॥

तदनन्तर पुनः हाथमें लोहेके गोले और त्रिशूल लिये मुँह फैलाये हुए दरद, तंगण, खस, लम्पाक और कुलिन्द-देशीय म्लेच्छोंने सात्यकिपर चारों ओरसे पत्थर बरसाने आरम्भ किये; परंतु प्रतीकार करनेमें निपुण सात्यकिने अपने नाराचोंद्वारा उन सबको छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ ४२–४३ ॥

अद्रीणां भिद्यमानानामन्तरिक्षे शितैः शरैः ।
शब्देन प्राद्रवन् संख्ये रथाश्वगजपत्तयः ॥ ४४ ॥

आकाशमें तीखे बाणोंद्वारा टूटने-फूटनेवाले प्रस्तर-खण्डोंके शब्दसे भयभीत हो रथ, घोड़े, हाथी और पैदल सैनिक युद्धस्थलमें इधर-उधर भागने लगे ॥ ४४ ॥

अश्मचूर्णैरवाकीर्णा मनुष्यगजवाजिनः ।
नाशक्नुवन्नवस्थातुं भ्रमरैरिव दंशिताः ॥ ४५ ॥

पत्थरके चूर्णोंसे व्याप्त हुए मनुष्य, हाथी और घोड़े वहाँ ठहर न सके, मानो उन्हें भ्रमरोंने डस लिया हो ॥ ४५ ॥

हतशिष्टाः सरुधिरा भिन्नमस्तकपिण्डकाः ।
(विभिन्नशिरसो राजन् दन्तैश्छिन्नैश्च दन्तिनः ।
निर्धूतैश्च करैर्नागा व्यङ्गाश्च शतशः कृताः ॥
हत्वा पञ्चशतान् योधांस्तत्क्षणेनैव मारिष ।
व्यचरत् पृतनामध्ये शैनेयः कृतहस्तवत् ॥)
कुञ्जरा वर्जयामासुर्युयुधानरथं तथा ॥ ४६ ॥

जो मरनेसे बचे थे, वे हाथी भी खूनसे लथपथ हो रहे थे । उनके कुम्भस्थल विदीर्ण हो गये थे । राजन् ! बहुत-से हाथियोंके सिर क्षत-विक्षत हो गये थे । उनके दाँत टूट गये थे, शुण्डदण्ड खण्डित हो गये थे तथा सैकड़ों गजराजोंके सात्यकिने अङ्ग भंग कर दिये थे । माननीय नरेश ! सात्यकि सिद्धहस्त पुरुषकी भाँति क्षणभरमें पाँच सौ योद्धाओंका संहार करके सेनाके मध्यभागमें विचरने लगे । उस समय घायल हुए हाथी युयुधानके रथको छोड़कर भाग गये ॥ ४६ ॥

(अश्मनां भिद्यमानानां सायकैः श्रूयते ध्वनिः ।
पद्मपत्रेषु धाराणां पतन्तीनामिव ध्वनिः ॥)

बाणोंसे चूर-चूर होनेवाले पत्थरोंकी ऐसी ध्वनि सुनायी पड़ती थी, मानो कमलदलोंपर गिरती हुई जलधाराओंका शब्द कानोंमें पड़ रहा हो ॥

ततः शब्दः समभवत् तव सैन्यस्य मारिष ।
माधवेनार्द्यमानस्य सागरस्येव पर्वणि ॥ ४७ ॥

आर्य ! जैसे पूर्णिमाके दिन समुद्रका गर्जन बहुत बढ़ जाता है, उसी प्रकार सात्यकिके द्वारा पीड़ित हुई आपकी सेनाका महान् कोलाहल प्रकट हो रहा था ॥ ४७ ॥

तं शब्दं तुमुलं श्रुत्वा द्रोणो यन्तारमब्रवीत् ।
एष सूत रणे क्रुद्धः सात्वतानां महारथः ॥ ४८ ॥
दारयन् बहुधा सैन्यं रणे चरति कालवत् ।
यत्रैष शब्दस्तुमुलस्तत्र सूत रथं नय ॥ ४९ ॥

उस भयंकर शब्दको सुनकर द्रोणाचार्यने अपने सारथि-से कहा—'सूत ! यह सात्वतकुलका महारथी वीर सात्यकि रणक्षेत्रमें क्रुद्ध होकर कौरवसेनाको बारंबार विदीर्ण करता हुआ कालके समान विचर रहा है । सारथे ! जहाँ यह भयानक शब्द हो रहा है, वहीं मेरे रथको ले चलो ॥ ४८-४९ ॥

पाषाणयोधिभिर्नूनं युयुधानः समागतः ।
तथा हि रथिनः सर्वे ह्रियन्ते विद्रुतैर्हयैः ॥ ५० ॥

'निश्चय ही युयुधान पाषाणयोधी योद्धाओंसे भिड़ गया है, तभी तो ये भागे हुए घोड़े सम्पूर्ण रथियोंको रणभूमिसे बाहर लिये जा रहे हैं ॥ ५० ॥

विशस्त्रकवचा रुग्णास्तत्र तत्र पतन्ति च ।
न शक्नुवन्ति यन्तारः संयन्तुं तुमुले हयान् ॥ ५१ ॥

'ये रथी शस्त्र और कवचसे हीन होकर शस्त्रोंके आघात-से रुग्ण हो यत्र-तत्र गिर रहे हैं । इस भयंकर युद्धमें सारथि अपने घोड़ोंको काबूमें नहीं रख पाते हैं' ॥ ५१ ॥

इत्येतद् वचनं श्रुत्वा भारद्वाजस्य सारथिः ।
प्रत्युवाच ततो द्रोणं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥ ५२ ॥
सैन्यं द्रवति चायुष्मन् कौरवेयं समन्ततः ।
पश्य योधान् रणे भग्नान् धावतो वै ततस्ततः ॥ ५३ ॥

द्रोणाचार्यका यह वचन सुनकर सारथिने सम्पूर्ण शस्त्र धारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणसे इस प्रकार कहा—'आयुष्मन् ! कौरव-सेना चारों ओर भाग रही है । देखिये, रणक्षेत्रमें वे सब योद्धा व्यूह-भंग करके इधर-उधर दौड़ रहे हैं ॥ ५२-५३ ॥

इमे च संहताः शूराः पञ्चालाः पाण्डवैः सह ।
त्वामेव हि जिघांसन्त आद्रवन्ति समन्ततः ॥ ५४ ॥

'ये पाण्डवोंसहित पाञ्चाल वीर संगठित हो आपको मार डालनेकी इच्छासे सब ओरसे आपपर ही आक्रमण कर रहे हैं ॥ ५४ ॥

अत्र कार्यं समाधत्स्व प्राप्तकालमरिंदम ।
स्थाने वा गमने वापि दूरं यातश्च सात्यकिः ॥ ५५ ॥

'शत्रुदमन ! इस समय जो कर्तव्य प्राप्त हो, उसपर ध्यान दीजिये; यहीं ठहरना है या अन्यत्र जाना है । सात्यकि तो बहुत दूर चले गये' ॥ ५५ ॥

तथैवं वदतस्तस्य भारद्वाजस्य सारथेः ।
प्रत्यदृश्यत शैनेयो निघ्नन् बहुविधान् रथान् ॥ ५६ ॥

द्रोणाचार्यका सारथि जब इस प्रकार कह रहा था, उसी समय शिनिनन्दन सात्यकि बहुतेरे रथियोंका संहार करते दिखायी दिये ॥ ५६ ॥

ते वध्यमानाः समरे युयुधानेन तावकाः ।
युयुधानरथं त्यक्त्वा द्रोणानीकाय दुद्रुवुः ॥ ५७ ॥

समराङ्गणमें युयुधानकी मार खाते हुए आपके सैनिक उनके रथको छोड़कर द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर भाग गये ॥ ५७ ॥

यैस्तु दुःशासनः सार्धं रथैः पूर्वं न्यवर्तत ।
ते भीतास्त्वभ्यधावन्त सर्वे द्रोणरथं प्रति ॥ ५८ ॥

पहले दुःशासन जिन रथियोंके साथ लौटा था, वे सब-के-सब भयभीत होकर द्रोणाचार्यके रथकी ओर भाग गये ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिप्रवेशविषयक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२१ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ५ श्लोक मिलाकर कुल ६३ श्लोक हैं)

द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्रोणाचार्यका दुःशासनको फटकारना और द्रोणाचार्यके द्वारा वीरकेतु आदि पाञ्चालोंका वध एवं उनका धृष्टद्युम्नके साथ घोर युद्ध, द्रोणाचार्यका मूर्च्छित होना, धृष्टद्युम्नका पलायन, आचार्यकी विजय

संजय उवाच

दुःशासनरथं दृष्ट्वा समीपे पर्यवस्थितम् ।
भारद्वाजस्ततो वाक्यं दुःशासनमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! दुःशासनके रथको अपने समीप खड़ा हुआ देख द्रोणाचार्य उससे इस प्रकार बोले— ॥ १ ॥

दुःशासन रथाः सर्वे कस्माच्चैते प्रविद्रुताः ।
कच्चित् क्षेमं तु नृपतेः कच्चिज्जीवति सैन्धवः ॥ २ ॥

'दुःशासन ! ये सारे रथी कहाँसे भागे आ रहे हैं ? राजा दुर्योधन सकुशल तो हैं न ? क्या सिंधुराज जयद्रथ अभी जीवित है ? ॥ २ ॥

राजपुत्रो भवानत्र राजभ्राता महारथः ।
किमर्थं द्रवते युद्धे यौवराज्यमवाप्य हि ॥ ३ ॥

'तुम तो राजाके बेटे, राजाके भाई और महारथी वीर हो । युवराजका पद प्राप्त करके तुम इस युद्धस्थलमें किस लिये भागे फिरते हो ? ॥ ३ ॥

दासी जितासि द्यूते त्वं यथाकामचरी भव ।
वाससां वाहिका राज्ञो भ्रातुर्ज्येष्ठस्य मे भव ॥ ४ ॥

'दुःशासन ! तुमने द्रौपदीसे कहा था 'अरी ! तू जूएमें जीती हुई दासी है । अतः हमारी इच्छाके अनुसार आचरण करनेवाली हो जा । मेरे बड़े भाई राजा दुर्योधनकी वस्त्र-वाहिका बन जा ॥ ४ ॥

न सन्ति पतयः सर्वे तेऽद्य षण्ढतिलैः समा ।
दुःशासनैवं कस्मात् त्वं पूर्वमुक्त्वा पलायसे ॥ ५ ॥

'अब तेरे सम्पूर्ण पति थोथे तिलोंके समान नहीं के बराबर हो गये हैं ।' पहले ऐसी बातें कहकर अब तुम युद्धसे भाग क्यों रहे हो ? ॥ ५ ॥

स्वयं वैरं महत् कृत्वा पञ्चालैः पाण्डवैः सह ।
एकं सात्यकिमासाद्य कथं भीतोऽसि संयुगे ॥ ६ ॥

'पाञ्चालों और पाण्डवोंके साथ स्वयं ही बड़ा भारी वैर ठानकर युद्धस्थलमें अकेले सात्यकिका सामना करके कैसे भयभीत हो उठे हो ? ॥ ६ ॥

न जानीषे पुरा त्वं तु गृह्णन्नक्षान् दुरोदरे ।
शरा ह्येते भविष्यन्ति दारुणाशीविषोपमाः ॥ ७ ॥

'क्या पहले तुम जूएमें पासे उठाते समय नहीं जानते थे कि ये एक दिन भयंकर विषधर सर्पोंके समान विनाशकारी बाण बन जायँगे ॥ ७ ॥

अप्रियाणां हि वचसां पाण्डवस्य विशेषतः ।
द्रौपद्याश्च परिक्लेशस्त्वन्मूलो ह्यभवत् पुरा ॥ ८ ॥

'पूर्वकालमें विशेषतः पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको जो अप्रिय वचन सुनाये गये और द्रौपदीदेवीको जो कष्ट पहुँचाया गया, इन सबकी जड़ तुम्हीं रहे हो ॥ ८ ॥

क्व ते मानश्च दर्पश्च क्व ते वीर्यं क्व गर्जितम् ।
आशीविषसमान् पार्थान् कोपयित्वा क्व यास्यसि ॥ ९ ॥

'कहाँ गया तुम्हारा वह दर्प और अभिमान ? कहाँ है तुम्हारा पराक्रम ? और कहाँ गयी तुम्हारी गर्जना ? विषैले सर्पोंके समान कुन्तीकुमारोंको कुपित करके कहाँ भागे जा रहे हो ? ॥ ९ ॥

शोच्येयं भारती सेना राज्यं चैव सुयोधनः ।
यस्य त्वं कर्कशो भ्राता पलायनपरायणः ॥ १० ॥

'यह कौरवी सेना, यह राज्य और इसका राजा दुर्योधन— ये सभी शोचनीय हो गये हैं; क्योंकि तुम राजाके क्रूरकर्मी भाई होकर आज युद्धमें पीठ दिखाकर भाग रहे हो ॥ १० ॥

ननु नाम त्वया वीर दीर्यमाणा भयार्दिता ।
स्वबाहुबलमास्थाय रक्षितव्या ह्यनीकिनी ॥ ११ ॥

'वीर ! तुम्हें तो अपने बाहुबलका आश्रय लेकर इस भागती हुई भयभीत सेनाकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ११ ॥

स त्वमद्य रणं हित्वा भीतो हर्षयसे परान् ।
विद्रुते त्वयि सैन्यस्य नायके शत्रुसूदन ॥ १२ ॥
कोऽन्यः स्थास्यति संग्रामे भीतो भीते व्यपाश्रये ।

'परंतु तुम आज युद्ध छोड़कर भयभीत हो उठे और शत्रुओंका हर्ष बढ़ा रहे हो। शत्रुसूदन ! तुम तो सेनापति हो। तुम्हारे भागनेपर दूसरा कौन युद्धभूमिमें ठहर सकेगा ? जब आश्रयदाता या रक्षक ही डर जाय, तब दूसरा क्यों न भयभीत होगा ? ॥ १२½ ॥

एकेन सात्वतेनाद्य युध्यमानस्य तेन वै ॥ १३ ॥
पलायने तव मतिः संग्रामाद्धि प्रवर्तते ।
यदा गाण्डीवधन्वानं भीमसेनं च कौरव ॥ १४ ॥
यमौ वा युधि द्रष्टासि तदा त्वं किं करिष्यसि ।

'कौरव ! अकेले सात्यकिके साथ युद्ध करते समय, जब आज तुम्हारी बुद्धि संग्रामसे पलायन करनेमें प्रवृत्त हो गयी, तुमने भागनेका विचार कर लिया, तब जिस समय तुम गाण्डीवधारी अर्जुन, भीमसेन अथवा नकुल-सहदेवको युद्धस्थलमें देखोगे, उस समय तुम क्या करोगे ? ॥ १३-१४½ ॥

युधि फाल्गुनबाणानां सूर्याग्निसमवर्चसाम् ॥ १५ ॥
न तुल्याः सात्यकिशरा येषां भीतः पलायसे ।

'रणक्षेत्रमें अर्जुनके बाण सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी हैं। उनके समान सात्यकिके बाण नहीं हैं, जिनसे भयभीत होकर तुम भागे जा रहे हो ॥ १५½ ॥

त्वरितो वीर गच्छ त्वं गान्धार्युदरमाविश ॥ १६ ॥
पृथिव्यां धावमानस्य नान्यत् पश्यामि जीवनम् ।

'वीर ! जल्दी जाओ। अपनी माता गान्धारीदेवीके पेटमें घुस जाओ; अन्यथा इस भूतलपर दूसरा कोई ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ भाग जानेसे मुझे तुम्हारे जीवनकी रक्षा दिखायी देती हो ॥ १६½ ॥

यदि तावत् कृता बुद्धिः पलायनपरायणा ॥ १७ ॥
पृथिवी धर्मराजाय शमेनैव प्रदीयताम् ।

'यदि तुमने भागनेका ही विचार कर लिया है, तब यह पृथ्वीका राज्य शान्तिपूर्वक ही धर्मराज युधिष्ठिरको सौंप दो ॥ १७½ ॥

यावत् फाल्गुननाराचा निर्मुक्तोरगसंनिभाः ॥ १८ ॥
नाविशन्ति शरीरं ते तावत् संशाम्य पाण्डवैः ।

'केंचुल छोड़कर निकले हुए सर्पोंके समान अर्जुनके बाण जबतक तुम्हारे शरीरमें नहीं घुस रहे हैं, तबतक ही तुम पाण्डवोंके साथ संधि कर लो ॥ १८½ ॥

यावत् ते पृथिवीं पार्था हत्वा भ्रातृशतं रणे ॥ १९ ॥
नाक्षिपन्ति महात्मानस्तावत् संशाम्य पाण्डवैः ।

'महामनस्वी कुन्तीकुमार जबतक तुम्हारे सौ भाइयोंको रणक्षेत्रमें मारकर यह सारी पृथ्वी तुमसे छीन नहीं लेते हैं, तभीतक तुम पाण्डवोंके साथ संधि कर लो ॥ १९½ ॥

यावन्न क्रुद्ध्यते राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २० ॥
कृष्णश्च समरश्लाघी तावत् संशाम्य पाण्डवैः ।

'जबतक धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर तथा युद्धकी प्रशंसा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण क्रोध नहीं करते हैं, तभीतक तुम पाण्डवोंके साथ संधि कर लो ॥ २०½ ॥

यावद् भीमो महाबाहुर्विगाह्य महतीं चमूम् ॥ २१ ॥
सोदरांस्ते न गृह्णाति तावत् संशाम्य पाण्डवैः ।

'जबतक महाबाहु भीमसेन विशाल कौरवसेनामें घुसकर तुम्हारे सारे भाइयोंको दबोच नहीं लेते हैं, तभीतक तुम पाण्डवोंके साथ संधि कर लो ॥ २१½ ॥

पूर्वमुक्तश्च ते भ्राता भीष्मेणासौ सुयोधनः ॥ २२ ॥
अजेयाः पाण्डवाः संख्ये सौम्य संशाम्य तैः सह ।
न च तत् कृतवान् मन्दस्तव भ्राता सुयोधनः ॥ २३ ॥

'पूर्वकालमें भीष्मजीने तुम्हारे भाई दुर्योधनसे यह कहा था कि 'सौम्य ! पाण्डव युद्धमें अजेय हैं। तुम उनके साथ संधि कर लो।' परंतु तुम्हारे मूर्ख भ्राता दुर्योधनने वह कार्य नहीं किया ॥ २२-२३ ॥

स युद्धे धृतिमास्थाय यत्तो युध्यस्व पाण्डवैः ।
तवापि शोणितं भीमः पास्यतीति मया श्रुतम् ॥ २४ ॥
तच्चाप्यवितथं तस्य तत् तथैव भविष्यति ।

'अतः अब तुम रणक्षेत्रमें धैर्य धारण करके प्रयत्नपूर्वक पाण्डवोंके साथ युद्ध करो। मैंने सुना है भीमसेन तुम्हारा भी खून पीयेंगे। भीमसेनकी वह प्रतिज्ञा झूठी नहीं है। वह उसी रूपमें सत्य होगी ॥ २४½ ॥

किं भीमस्य न जानासि विक्रमं त्वं सुबालिश ॥ २५ ॥
यत्त्वया वैरमारब्धं संयुगे प्रपलायिना ।

'ओ मूर्ख ! क्या तुम भीमसेनके पराक्रमको नहीं जानते, जो तुमने उनके साथ वैर ठाना और अब युद्धसे भागे जा रहे हो ? ॥ २५½ ॥

गच्छ तूर्णं रथेनैव यत्र तिष्ठति सात्यकिः ॥ २६ ॥
त्वया हीनं बलं ह्येतद् विद्रविष्यति भारत ।
आत्मार्थं योधय रणे सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥ २७ ॥

'भरतनन्दन ! अब, तुम शीघ्र ही इसी रथके द्वारा जहाँ सात्यकि खड़े हैं, वहाँ जाओ। तुम्हारे न रहनेसे यह सारी सेना भाग जायगी। तुम अपने लाभके लिये रणक्षेत्रमें सत्यपराक्रमी सात्यकिके साथ युद्ध करो' ॥ २६-२७ ॥

एवमुक्तस्तव सुतो नाब्रवीत् किंचिदप्यसौ ।
श्रुतं चाश्रुतवत् कृत्वा प्रायाद् येन स सात्यकिः ॥ २८ ॥

द्रोणाचार्यके ऐसा कहनेपर आपका पुत्र दुःशासन कुछ भी नहीं बोला। वह उनकी सुनी हुई बातोंको भी अनसुनी-सी करके उसी मार्गपर चल दिया, जिससे सात्यकि गये थे ॥

सैन्येन महता युक्तो म्लेच्छानामनिवर्तिनाम् ।
आसाद्य च रणे यत्तो युयुधानमयोधयत् ॥ २९ ॥

उसने युद्धसे पीछे न हटनेवाले म्लेच्छोंकी विशाल सेनाके साथ समराङ्गणमें सात्यकिके पास पहुँचकर उनके साथ प्रयत्नपूर्वक युद्ध आरम्भ किया ॥ २९ ॥

द्रोणोऽपि रथिनां श्रेष्ठः पञ्चालान् पाण्डवांस्तथा ।
अभ्यद्रवत संक्रुद्धो जवमास्थाय मध्यमम् ॥ ३० ॥

इधर रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य भी क्रोधमें भरकर मध्यम वेगका आश्रय ले पाञ्चालों और पाण्डवोंपर टूट पड़े ॥ ३० ॥

प्रविश्य च रणे द्रोणः पाण्डवानां वरूथिनीम् ।
द्रावयामास योधान् वै शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३१ ॥

द्रोणाचार्य रणक्षेत्रमें पाण्डवोंकी विशाल सेनामें प्रवेश करके उनके सैकड़ों और हजारों सैनिकोंको भगाने लगे ॥ ३१ ॥

ततो द्रोणो महाराज नाम विश्राव्य संयुगे ।
पाण्डुपाञ्चालमत्स्यानां प्रचक्रे कदनं महत् ॥ ३२ ॥

महाराज ! उस समय आचार्य द्रोण युद्धस्थलमें अपना नाम सुना-सुनाकर पाण्डव, पाञ्चाल तथा मत्स्यदेशीय सैनिकोंका महान् संहार करने लगे ॥ ३२ ॥

तं जयन्तमनीकानि भारद्वाजं ततस्ततः ।
पाञ्चालपुत्रो द्युतिमान् वीरकेतुः समभ्ययात् ॥ ३३ ॥

इधर-उधर घूम-घूमकर समस्त सेनाओंको पराजित करते हुए द्रोणाचार्यका सामना करनेके लिये उस समय तेजस्वी पाञ्चालराजकुमार वीरकेतु आया ॥ ३३ ॥

स द्रोणं पञ्चभिर्विद्ध्वा शरैः संनतपर्वभिः ।
ध्वजमेकेन विव्याध सारथिं चास्य सप्तभिः ॥ ३४ ॥

उसने झुकी हुई गाँठवाले पाँच बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यको घायल करके एकसे उनके ध्वजको और सात बाणोंसे उनके सारथिको भी बेध दिया ॥ ३४ ॥

तत्राद्भुतं महाराज दृष्टवानस्मि संयुगे ।
यद् द्रोणो रभसं युद्धे पाञ्चाल्यं नाभ्यवर्तत ॥ ३५ ॥

महाराज ! उस युद्धमें मैंने यह अद्भुत बात देखी कि द्रोणाचार्य उस वेगशाली पाञ्चालराजकुमार वीरकेतुकी ओर बढ़ न सके ॥ ३५ ॥

संनिरुद्धं रणे द्रोणं पञ्चाला वीक्ष्य मारिष ।
आवव्रुः सर्वतो राजन् धर्मपुत्रजयैषिणः ॥ ३६ ॥

माननीय नरेश ! द्रोणाचार्यको रणक्षेत्रमें अवरुद्ध हुआ देख धर्मपुत्रकी विजय चाहनेवाले पाञ्चालोंने सब ओरसे उन्हें घेर लिया ॥ ३६ ॥

ते शरैरग्निसंकाशैस्तोमरैश्च महाधनैः ।
शस्त्रैश्च विविधै राजन् द्रोणमेकमवाकिरन् ॥ ३७ ॥

राजन् ! उन्होंने अग्निके समान तेजस्वी बाणों, बहुमूल्य तोमरों तथा नाना प्रकारके शस्त्रोंकी वर्षा करके अकेले द्रोणाचार्यको ढक दिया ॥ ३७ ॥

निहत्य तान् बाणगणैर्द्रोणो राजन् समन्ततः ।
महाजलधरान् व्योम्नि मातरिश्वेव चावभौ ॥ ३८ ॥

नरेश्वर ! द्रोणाचार्यने अपने बाण-समूहोंद्वारा चारों ओरसे उन समस्त अस्त्र-शस्त्रोंके टुकड़े-टुकड़े करके आकाशमें महान् मेघोंकी घटाको छिन्न-भिन्न करनेके पश्चात् प्रवाहित होनेवाले वायुदेवके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ ३८ ॥

ततः शरं महाघोरं सूर्यपावकसंनिभम् ।
संदधे परवीरघ्नो वीरकेतो रथं प्रति ॥ ३९ ॥

तत्पश्चात् शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले आचार्यने सूर्य और अग्निके समान अत्यन्त भयंकर बाणको धनुषपर रक्खा और उसे वीरकेतुके रथपर चला दिया ॥ ३९ ॥

स भित्त्वा तु शरो राजन् पाञ्चालकुलनन्दनम् ।
अभ्यगाद् धरणीं तूर्णं लोहितार्द्रो ज्वलन्निव ॥ ४० ॥

राजन् ! वह प्रज्वलित होता हुआ-सा बाण पाञ्चालकुलनन्दन वीरकेतुको विदीर्ण करके खूनसे लथपथ हो तुरंत ही धरतीमें समा गया ॥ ४० ॥

ततोऽपतद् रथात् तूर्णं पाञ्चालकुलनन्दनः ।
पर्वताग्रादिव महांश्चम्पको वायुपीडितः ॥ ४१ ॥

फिर तो पाञ्चालकुलको आनन्दित करनेवाला वह राजकुमार वायुसे टूटकर पर्वतके शिखरसे नीचे गिरनेवाले चम्पाके विशाल वृक्षके समान तुरंत रथसे नीचे गिर पड़ा ॥ ४१ ॥

तस्मिन् हते महेष्वासे राजपुत्रे महाबले ।
पञ्चालास्त्वरिता द्रोणं समन्तात् पर्यवारयन् ॥ ४२ ॥

उस महान् धनुर्धर महाबली राजकुमारके मारे जानेपर पाञ्चालसैनिकोंने शीघ्र ही आकर द्रोणाचार्यको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४२ ॥

चित्रकेतुः सुधन्वा च चित्रवर्मा च भारत ।
तथा चित्ररथश्चैव भ्रातृव्यसनकर्शिताः ॥ ४३ ॥

अभ्यद्रवन्त सहिता भारद्वाजं युयुत्सवः।
मुञ्चन्तः शरवर्षाणि तपान्ते जलदा इव ॥ ४४ ॥

भारत! चित्रकेतु, सुधन्वा, चित्रवर्मा और चित्ररथ—ये चारों वीर अपने भाईकी मृत्युसे दुःखित हो युद्धकी इच्छा रखकर एक साथ ही द्रोणपर टूट पड़े और जिस प्रकार वर्षाकालमें मेघ पानी बरसाते हैं, उसी प्रकार वे बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४३-४४ ॥

स वध्यमानो बहुधा राजपुत्रैर्महारथैः।
क्रोधमाहारयत् तेषामभावाय द्विजर्षभः ॥ ४५ ॥

उन महारथी राजकुमारोंद्वारा बारंबार घायल किये जानेपर द्विजश्रेष्ठ द्रोणने उनके विनाशके लिये महान् क्रोध प्रकट किया ॥ ४५ ॥

ततः शरमयं जालं द्रोणस्तेषामवासृजत्।
ते हन्यमाना द्रोणस्य शरैराकर्णचोदितैः ॥ ४६ ॥
कर्तव्यं नाभ्यजानन् वै कुमारा राजसत्तम।

तब द्रोणाचार्यने उनके ऊपर बाणोंका जाल-सा बिछा दिया। नृपश्रेष्ठ! द्रोणाचार्यके कानतक खींचकर छोड़े हुए उन बाणोंद्वारा घायल होकर वे राजकुमार यह भी न जान सके कि हमें क्या करना चाहिये? ॥ ४६½ ॥

तान् विमूढान् रणे द्रोणः प्रहसन्निव भारत ॥ ४७ ॥
व्यश्वसूतरथांश्चक्रे कुमारान् कुपितो रणे।

भरतनन्दन! रणक्षेत्रमें कुपित हुए द्रोणाचार्यने हँसते हुए-से अपने बाणोंद्वारा उन किंकर्तव्यविमूढ़ राजकुमारोंको घोड़े, सारथि तथा रथसे हीन कर दिया ॥ ४७½ ॥

अथापरैः सुनिशितैर्भल्लैस्तेषां महायशाः ॥ ४८ ॥
पुष्पाणीव विचिन्वन् हि सोत्तमाङ्गान्यपातयत्।

तत्पश्चात् दूसरे तेज धारवाले भल्लोंसे महायशस्वी द्रोणने उन राजकुमारोंके मस्तक उसी प्रकार काट गिराये, मानो वृक्षोंसे फूल चुन लिये हों ॥ ४८½ ॥

ते रथेभ्यो हताः पेतुः क्षितौ राजन् सुवर्चसः ॥ ४९ ॥
देवासुरे पुरा युद्धे यथा दैतेयदानवाः।

राजन्! जैसे पूर्वकालके देवासुरसंग्राममें दैत्य और दानव धराशायी हुए थे, उसी प्रकार वे सुन्दर कान्तिवाले राजकुमार मारे जाकर उस समय रथोंसे पृथ्वीपर गिर पड़े ४९½

तान् निहत्य रणे राजन् भारद्वाजः प्रतापवान् ॥५०॥
कार्मुकं भ्रामयामास हेमपृष्ठं दुरासदम्।
(तदस्य भ्राजते राजन् मेघमध्ये तडिद् यथा ॥)

महाराज! प्रतापी द्रोणने युद्धस्थलमें उन राजकुमारोंका वध करके सुवर्णमय पृष्ठभागवाले दुर्जय धनुषको घुमाना आरम्भ किया। राजन्! उस समय वह धनुष मेघोंकी घटामें बिजलीके समान प्रकाशित हो रहा था ॥ ५०½ ॥

पाञ्चालान् निहतान् दृष्ट्वा देवकल्पान् महारथान् ॥५१॥
धृष्टद्युम्नो भृशोद्विग्नो नेत्राभ्यां पातयञ्जलम्।
अभ्यवर्तत संग्रामे क्रुद्धो द्रोणरथं प्रति ॥ ५२ ॥

देवताओंके समान तेजस्वी पाञ्चाल महारथियोंको मारा गया देख धृष्टद्युम्न अत्यन्त उद्विग्न हो नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए कुपित हो उठे और संग्रामभूमिमें द्रोणाचार्यके रथकी ओर बढ़े ॥ ५१-५२ ॥

ततो हाहेति सहसा नादः समभवन्नृप।
पाञ्चाल्येन रणे दृष्ट्वा द्रोणमावारितं शरैः ॥ ५३ ॥

राजन्! रणक्षेत्रमें धृष्टद्युम्नके बाणोंसे द्रोणाचार्यकी गति अवरुद्ध हुई देख (कौरवसेनामें) सहसा हाहाकार मच गया ॥ ५३ ॥

स च्छाद्यमानो बहुधा पार्षतेन महात्मना।
न विव्यथे ततो द्रोणः स्मयन्नेवान्वयुध्यत ॥ ५४ ॥

महामना धृष्टद्युम्नके द्वारा बाणोंसे आच्छादित किये जानेपर भी द्रोणाचार्यको तनिक भी व्यथा नहीं हुई। वे मुसकराते हुए ही युद्धमें संलग्न रहे ॥ ५४ ॥

ततो द्रोणं महाराज पाञ्चाल्यः क्रोधमूर्च्छितः।
आजघानोरसि क्रुद्धो नवत्या नतपर्वणाम् ॥ ५५ ॥

महाराज! तत्पश्चात् धृष्टद्युम्नने क्रोधसे अचेत होकर झुकी हुई गाँठवाले नब्बे बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यकी छातीमें प्रहार किया ॥ ५५ ॥

स गाढविद्धो बलिना भारद्वाजो महायशाः।
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं च जगाम ह ॥ ५६ ॥

बलवान् वीर धृष्टद्युम्नके द्वारा गहरी चोट पहुँचायी जानेपर महायशस्वी द्रोणाचार्य रथके पिछले भागमें बैठ गये और मूर्छित हो गये ॥ ५६ ॥

तं वै तथागतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नः पराक्रमी।
चापमुत्सृज्य शीघ्रं तु असिं जग्राह वीर्यवान् ॥ ५७ ॥

उनको उस अवस्थामें देखकर बल और पराक्रमसे सम्पन्न धृष्टद्युम्नने धनुष रख दिया और तुरंत ही तलवार हाथमें ले ली ॥ ५७ ॥

अवप्लुत्य रथाच्चापि त्वरितः स महारथः।
आरुरोह रथं तूर्णं भारद्वाजस्य मारिष ॥ ५८ ॥

माननीय नरेश! महारथी धृष्टद्युम्न शीघ्र ही अपने रथसे कूदकर द्रोणाचार्यके रथपर जा चढ़े ॥ ५८ ॥

हर्तुमिच्छञ्शिरः कायात् क्रोधसंरक्तलोचनः।
प्रत्याश्वस्तस्ततो द्रोणो धनुर्गृह्य महारवम् ॥ ५९ ॥
आसन्नमागतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नं जिघांसया।
शरैर्वैतस्तिकै राजन् विव्याधासन्नवेधिभिः ॥ ६० ॥

राजन्! वे क्रोधसे लाल आँखें करके द्रोणाचार्यके सिरको धड़से अलग कर देना चाहते थे। इसी समय

द्रोणाचार्य होशमें आ गये और उन्होंने अपनेको मार डालनेकी इच्छासे धृष्टद्युम्नको निकट आया देख महान् टङ्कार करनेवाले अपने धनुषको हाथमें लेकर निकटसे वेधनेवाले वित्ते बराबर बाणोंद्वारा उन्हें घायल कर दिया ॥ ५९-६० ॥

योधयामास समरे धृष्टद्युम्नं महारथम् ।
ते हि वैतस्तिका नाम शरा आसन्नयोधिनः ॥ ६१ ॥
द्रोणस्य विहिता राजन् यैर्धृष्टद्युम्नमाक्षिणोत् ।

राजन्! आचार्य समराङ्गणमें महारथी धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध करने लगे। निकटसे युद्ध करनेवाले द्रोणाचार्यके पास उन्हींके बनाये हुए वैतस्तिक नामक बाण थे, जिनके द्वारा उन्होंने धृष्टद्युम्नको क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ६१½ ॥

स वध्यमानो बहुभिः सायकैस्तैर्महाबलः ॥ ६२ ॥
अवप्लुत्य रथात् तूर्णं भग्नवेगः पराक्रमी ।
आरुह्य स्वरथं वीरः प्रगृह्य च महद् धनुः ॥ ६३ ॥
विव्याध समरे द्रोणं धृष्टद्युम्नो महारथः ।
द्रोणश्चापि महाराज शरैर्विव्याध पार्षतम् ॥ ६४ ॥

महाबली और पराक्रमी धृष्टद्युम्न उन बहुसंख्यक बाणों-द्वारा घायल होकर अपना वेग भंग हो जानेके कारण उस रथसे कूद पड़े और पुनः अपने रथपर आरूढ़ हो वे वीर महारथी धृष्टद्युम्न महान् धनुष हाथमें लेकर समराङ्गणमें द्रोणाचार्यको वेधने लगे। महाराज! द्रोणाचार्यने भी अपने बाणोंद्वारा द्रुपदपुत्रको घायल कर दिया ॥ ६२–६४ ॥

तदद्भुतमभूद् युद्धं द्रोणपाञ्चालयोस्तदा ।
त्रैलोक्यकाङ्क्षिणोरासीच्छक्रप्रह्लादयोरिव ॥ ६५ ॥

जैसे त्रिलोकीके राज्यकी इच्छा रखनेवाले इन्द्र और प्रह्लादमें परस्पर युद्ध हुआ था, उसी प्रकार उस समय द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नमें अत्यन्त अद्भुत युद्ध होने लगा ॥ ६५ ॥

मण्डलानि विचित्राणि यमकानीतराणि च ।
चरन्तौ युद्धमार्गज्ञौ ततक्षतुरथेषुभिः ॥ ६६ ॥

वे दोनों ही युद्धकी प्रणालीके ज्ञाता थे। अतः विचित्र मण्डल, यमक तथा अन्य प्रकारके मार्गोंका प्रदर्शन करते हुए एक दूसरेको बाणोंसे क्षत-विक्षत करने लगे ॥ ६६ ॥

मोहयन्तौ मनांस्याजौ योधानां द्रोणपार्षतौ ।
सृजन्तौ शरवर्षाणि वर्षास्विव बलाहकौ ॥ ६७ ॥

वर्षाकालके दो मेघोंके समान बाण-वर्षा करते हुए द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न युद्धस्थलमें सम्पूर्ण योद्धाओंके मन मोहने लगे ॥ ६७ ॥

छादयन्तौ महात्मानौ शरैर्व्योम दिशो महीम् ।
तदद्भुतं तयोर्युद्धं भूतसङ्घा ह्यपूजयन् ॥ ६८ ॥

वे दोनों महामनस्वी वीर अपने बाणोंद्वारा आकाश, दिशाओं तथा पृथ्वीको आच्छादित करने लगे। उन दोनोंके उस अद्भुत युद्धकी सभी प्राणियोंने भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ ६८ ॥

क्षत्रियाश्च महाराज ये चान्ये तव सैनिकाः ।
अवश्यं समरे द्रोणो धृष्टद्युम्नेन सङ्गतः ॥ ६९ ॥
वशमेष्यति नो राजन् पञ्चाला इति चुक्रुशुः ।

महाराज! सभी क्षत्रियों तथा आपके अन्य सैनिकोंने भी उन दोनोंके युद्धकी प्रशंसा की। राजन्! पाञ्चालयोद्धा यों कहकर कोलाहल करने लगे कि द्रोणाचार्य समराङ्गणमें धृष्टद्युम्नके साथ उलझे हुए हैं। वे अवश्य ही हमारे अधीन हो जायँगे ॥ ६९½ ॥

द्रोणस्तु त्वरितो युद्धे धृष्टद्युम्नस्य सारथेः ॥ ७० ॥
शिरः प्रच्यावयामास फलं पक्वं तरोरिव ।

इसी समय द्रोणने युद्धमें बड़ी उतावलीके साथ धृष्टद्युम्नके सारथिका सिर वृक्षके पके हुए फलके समान धड़से नीचे गिरा दिया ॥ ७०½ ॥

ततस्तु प्रद्रुता वाहा राजंस्तस्य महात्मनः ॥ ७१ ॥
तेषु प्रद्रवमाणेषु पञ्चालान् सृञ्जयांस्तथा ।
अयोधयद् रणे द्रोणस्तत्र तत्र पराक्रमी ॥ ७२ ॥

राजन्! फिर तो महामना धृष्टद्युम्नके घोड़े भाग चले। उनके भाग जानेपर पराक्रमी द्रोणाचार्य रणभूमिमें सब ओर घूम-घूमकर पाञ्चालों और सृञ्जयोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ ७१-७२ ॥

विजित्य पाण्डुपञ्चालान् भारद्वाजः प्रतापवान् ।
स्वं व्यूहं पुनरास्थाय स्थितोऽभवदरिंदमः ।
न चैनं पाण्डवा युद्धे जेतुमुत्सेहिरे प्रभो ॥ ७३ ॥

इस प्रकार शत्रुओंका दमन करनेवाले प्रतापी द्रोणाचार्य पाण्डवों और पाञ्चालोंको पराजित करके पुनः अपने व्यूहमें आकर खड़े हो गये। प्रभो! उस समय पाण्डवसैनिक युद्धमें उन्हें जीतनेका साहस न कर सके ॥ ७३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे द्रोणपराक्रमे द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिका प्रवेश और द्रोणाचार्यका पराक्रमविषयक एक सौ बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२२ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ७३½ श्लोक हैं)

त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिका घोर युद्ध और दुःशासनकी पराजय

संजय उवाच

ततो दुःशासनो राजञ्शैनेयं समुपाद्रवत्।
किरञ्शतसहस्राणि पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर दुःशासनने वर्षा करनेवाले मेघके समान लाखों बाण बिखेरते हुए वहाँ शिनि-पौत्र सात्यकिपर धावा कर दिया ॥ १ ॥

स विद्ध्वा सात्यकिं षष्ट्या तथा षोडशभिः शरैः।
नाकम्पयत् स्थितं युद्धे मैनाकमिव पर्वतम् ॥ २ ॥

वह पहले साठ फिर सोलह बाणोंसे बींधकर भी युद्धमें मैनाक पर्वतकी भाँति अविचलभावसे खड़े हुए सात्यकिको कम्पित न कर सका ॥ २ ॥

तं तु दुःशासनः शूरः सायकैरावृणोद् भृशम्।
रथव्रातेन महता नानादेशोद्भवेन च ॥ ३ ॥

शूरवीर दुःशासनने नाना देशोंसे प्राप्त हुए विशाल रथ-समूहके द्वारा तथा बाणोंकी वर्षासे भी सात्यकिको अत्यन्त आवृत कर लिया ॥ ३ ॥

सर्वतो भरतश्रेष्ठ विसृजन् सायकान् बहून्।
पर्जन्य इव घोषेण नादयन् वै दिशो दश ॥ ४ ॥

भरतश्रेष्ठ! उसने मेघके समान अपनी गम्भीर गर्जनासे दसों दिशाओंको निनादित करते हुए चारों ओरसे बहुत-से बाणोंकी वर्षा की ॥ ४ ॥

तमापतन्तमालोक्य सात्यकिः कौरवं रणे।
अभिद्रुत्य महाबाहुश्छादयामास सायकैः ॥ ५ ॥

कुरुवंशी दुःशासनको रणक्षेत्रमें आक्रमण करते देख महाबाहु सात्यकिने उसपर धावा करके अपने बाणोंद्वारा उसे आच्छादित कर दिया ॥ ५ ॥

ते च्छाद्यमाना बाणौघैर्दुःशासनपुरोगमाः।
प्राद्रवन् समरे भीतास्तव सैन्यस्य पश्यतः ॥ ६ ॥

वे दुःशासन आदि योद्धा सात्यकिके बाण-समूहोंसे आच्छादित होनेपर समरभूमिमें भयभीत हो उठे और आपकी सारी सेनाके देखते-देखते भागने लगे ॥ ६ ॥

तेषु द्रवत्सु राजेन्द्र पुत्रो दुःशासनस्तव।
तस्थौ व्यपेतभी राजन् सात्यकिं चार्दयच्छरैः ॥ ७ ॥

राजेन्द्र! उनके भागनेपर भी आपका पुत्र दुःशासन वहीं निर्भय खड़ा रहा। उसने सात्यकिको अपने बाणोंसे पीड़ित कर दिया ॥ ७ ॥

चतुर्भिर्वाजिनस्तस्य सारथिं च त्रिभिः शरैः।
सात्यकिं च शतेनाजौ विद्ध्वा नादं मुमोच सः ॥ ८ ॥

उसने चार बाणोंसे उसके घोड़ोंको, तीनसे सारथिको और सौ बाणोंसे स्वयं सात्यकिको युद्धभूमिमें घायल करके बड़े जोरसे गर्जना की ॥ ८ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज माधवस्तस्य संयुगे।
रथं सूतं ध्वजं तं च चक्रेऽदृश्यमजिह्मगैः ॥ ९ ॥

महाराज! तब मधुवंशी सात्यकिने समराङ्गणमें कुपित होकर दुःशासनके रथ, सारथि और ध्वजको अपने बाणों-द्वारा अदृश्य कर दिया ॥ ९ ॥

स तु दुःशासनं शूरं सायकैरावृणोद् भृशम्।
मशकं समनुप्राप्तमूर्णनाभिरिवोर्णया ॥ १० ॥
त्वरन् समावृणोद् बाणैर्दुःशासनममित्रजित्।

इतना ही नहीं, उन्होंने शूरवीर दुःशासनको अपने बाणोंसे अत्यन्त आच्छादित कर दिया। जैसे मकड़ी अपने जालेसे किसी जीवको लपेट देती है, उसी प्रकार शङ्कित-भावसे पास आये हुए दुःशासनको शत्रुविजयी सात्यकिने बड़ी उतावलीके साथ अपने बाणोंद्वारा आवृत कर लिया ॥ १०½ ॥

दृष्ट्वा दुःशासनं राजा तथा शरशताचितम् ॥ ११ ॥
त्रिगर्तांश्चोदयामास युयुधानरथं प्रति।

इस प्रकार दुःशासनको सैकड़ों बाणोंसे ढका हुआ देख राजा दुर्योधनने त्रिगर्तोंको युयुधानके रथपर आक्रमण करनेकी आज्ञा दी ॥ ११½ ॥

तेऽगच्छन् युयुधानस्य समीपं क्रूरकर्मणः ॥ १२ ॥
त्रिगर्तानां त्रिसाहस्रा रथा युद्धविशारदाः।

वे त्रिगर्तोंके तीन हजार रथी, जो युद्धमें कुशल थे, कठोर कर्म करनेवाले युयुधानके समीप गये ॥ १२½ ॥

ते तु तं रथवंशेन महता पर्यवारयन् ॥ १३ ॥
स्थिरां कृत्वा मतिं युद्धे भूत्वा संशप्तका मिथः।

उन्होंने युद्धके लिये दृढ़ निश्चय करके परस्पर शपथ ग्रहण करनेके अनन्तर विशाल रथ-सेनाके द्वारा उन्हें घेर लिया ॥ १३½ ॥

तेषां प्रयततां युद्धे शरवर्षाणि मुञ्चताम् ॥ १४ ॥
योधान् पञ्चशतान् मुख्यानग्र्यानीके व्यपोथयत्।

तब सात्यकिने युद्धमें बाणवर्षा करते हुए आक्रमण करनेवाले पाँच सौ प्रमुख योद्धाओंको सेनाके मुहानेपर मार गिराया ॥ १४½ ॥

तेऽपतन् निहतास्तूर्णं शिनिप्रवरसायकैः ॥ १५ ॥
महामारुतवेगेन भग्ना इव नगाद् द्रुमाः।

जैसे आँधीके वेगसे टूटे हुए वृक्ष पर्वतसे नीचे गिरते हैं, उसी प्रकार शिनिश्रेष्ठ सात्यकिके बाणोंसे मारे गये वे त्रिगर्त योद्धा तुरंत ही धराशायी हो गये ॥ १५½ ॥

नागैश्च बहुधा छिन्नैर्ध्वजैश्चैव विशाम्पते ॥ १६ ॥
हयैश्च कनकापीडैः पतितैस्तत्र मेदिनी ।
शैनेयशरसंकृत्तैः शोणितौघपरिप्लुतैः ॥ १७ ॥
अशोभत महाराज किंशुकैरिव पुष्पितैः ।

महाराज ! प्रजापालक नरेश ! उस समय गिरे हुए गजराजों, अनेक टुकड़ोंमें कटी हुई ध्वजाओं तथा धरतीपर पड़े हुए, सोनेकी कलँगियोंसे सुशोभित घोड़ोंसे, जो सात्यकिके बाणोंसे क्षत-विक्षत होकर खूनसे लथपथ हो रहे थे, आच्छादित हुई यह पृथ्वी वैसी ही शोभा पा रही थी, मानो वह लाल फूलोंसे भरे हुए पलाशके वृक्षोंद्वारा ढक गयी हो ॥ १६-१७½ ॥

ते वध्यमानाः समरे युयुधानेन तावकाः ॥ १८ ॥
त्रातारं नाध्यगच्छन्त पङ्कमग्ना इव द्विपाः ।

जैसे कीचड़में फँसे हुए हाथियोंको कोई रक्षक नहीं मिलता है, उसी प्रकार समराङ्गणमें युयुधानकी मार खाते हुए आपके सैनिक कोई रक्षक न पा सके ॥ १८½ ॥

ततस्ते पर्यवर्तन्त सर्वे द्रोणरथं प्रति ॥ १९ ॥
भयात् पतगराजस्य गर्तानीव महोरगाः ।

जैसे बड़े-बड़े सर्प गरुड़के भयसे बिलोंमें घुस जाते हैं, उसी प्रकार आपके वे सभी पराजित सैनिक द्रोणाचार्यके रथके पास इकट्ठे हो गये ॥ १९½ ॥

हत्वा पञ्चशतान् योधाञ्छरैराशीविषोपमैः ॥ २० ॥
प्रायात् स शनकैर्वीरो धनंजयरथं प्रति ।

विषधर सर्पके समान भयंकर बाणोंद्वारा पाँच सौ योद्धाओंका संहार करके वीर सात्यकि धीरे-धीरे धनंजयके रथकी ओर बढ़ने लगे ॥ २०½ ॥

तं प्रयान्तं नरश्रेष्ठं पुत्रो दुःशासनस्तव ॥ २१ ॥
विव्याध नवभिस्तूर्णं शरैः संनतपर्वभिः ।

उस समय आपके पुत्र दुःशासनने वहाँसे जाते हुए नरश्रेष्ठ सात्यकिको झुकी हुई गाँठवाले नौ बाणोंद्वारा शीघ्र ही बींध डाला ॥ २१½ ॥

स तु तं प्रतिविव्याध पञ्चभिर्निशितैः शरैः ॥ २२ ॥
रुक्मपुङ्खैर्महेष्वासो गार्ध्रपत्रैरजिह्मगैः ।

तब महाधनुर्धर सात्यकिने भी सोनेके पुंख तथा गीधकी पाँखवाले पाँच तीखे और सीधे जानेवाले बाणोंद्वारा दुःशासनको वेधकर बदला चुकाया ॥ २२½ ॥

सात्यकिं तु महाराज प्रहसन्निव भारत ॥ २३ ॥
दुःशासनस्त्रिभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ।

भरतवंशी महाराज ! इसके बाद दुःशासनने हँसते हुए-से ही वहाँ तीन बाणोंद्वारा सात्यकिको घायल करके पुनः पाँच बाणोंसे बींध डाला ॥ २३½ ॥

शैनेयस्तव पुत्रं तु हत्वा पञ्चभिराशुगैः ॥ २४ ॥
धनुश्चास्य रणे छित्त्वा विस्मयन्नर्जुनं ययौ ।

तब शिनिपौत्र सात्यकि पाँच बाणोंसे आपके पुत्रको रणक्षेत्रमें घायल करके उसका धनुष काटकर मुसकराते हुए वहाँसे अर्जुनकी ओर चल दिये ॥ २४½ ॥

ततो दुःशासनः क्रुद्धो वृष्णिवीराय गच्छते ॥ २५ ॥
सर्वपारशवीं शक्तिं विससर्ज जिघांसया ।

तदनन्तर दुःशासनने वहाँसे जाते हुए वृष्णिवीर सात्यकिपर कुपित हो उन्हें मार डालनेकी इच्छासे सम्पूर्णतः लोहेकी बनी हुई शक्ति चलायी ॥ २५½ ॥

तां तु शक्तिं तदा घोरां तव पुत्रस्य सात्यकिः ॥ २६ ॥
चिच्छेद शतधा राजन् निशितैः कङ्कपत्रिभिः ।

राजन् ! आपके पुत्रकी उस भयंकर शक्तिको उस समय सात्यकिने कंकपत्रयुक्त तीखे बाणोंद्वारा सौ टुकड़ोंमें खण्डित कर दिया ॥ २६½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय पुत्रस्तव जनेश्वर ॥ २७ ॥
सात्यकिं च शरैर्विद्ध्वा सिंहनादं ननर्द ह ।

जनेश्वर ! तत्पश्चात् आपके पुत्रने दूसरा धनुष लेकर सात्यकिको अपने बाणोंद्वारा घायल करके सिंहके समान गर्जना की ॥ २७½ ॥

सात्यकिस्तु रणे क्रुद्धो मोहयित्वा सुतं तव ॥ २८ ॥
शरैरग्निशिखाकारैराजघान स्तनान्तरे ।
त्रिभिरेव महाभागः शरैः संनतपर्वभिः ।

इससे महाभाग सात्यकिने समराङ्गणमें कुपित होकर आपके पुत्रको मोहित करते हुए झुकी हुई गाँठवाले अग्निकी लपटोंके समान प्रज्वलित तीन बाणोंद्वारा उसकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ २८½ ॥

सर्वायसैस्तीक्ष्णवक्त्रैः पुनर्विव्याध चाष्टभिः ॥ २९ ॥
दुःशासनस्तु विंशत्या सात्यकिं प्रत्यविध्यत ।

फिर लोहके बने हुए तीखी धारवाले आठ बाणोंसे उसे पुनः घायल कर दिया । तब दुःशासनने भी बीस बाण मारकर सात्यकिको क्षत-विक्षत कर दिया ॥ २९½ ॥

सात्वतोऽपि महाराज तं विव्याध स्तनान्तरे ॥ ३० ॥
त्रिभिरेव महाभागः शरैः संनतपर्वभिः ।

महाराज ! इधर महाभाग सात्यकिने भी झुकी हुई गाँठवाले तीन बाणोंद्वारा दुःशासनकी छातीमें चोट पहुँचायी ॥

ततोऽस्य वाहान् निशितैः शरैर्जघ्ने महारथः ॥ ३१ ॥
सारथिं च सुसंक्रुद्धः शरैः संनतपर्वभिः ।

इसके बाद महारथी युयुधानने अत्यन्त कुपित हो पैने बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको मार डाला । फिर झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे सारथिको भी यमलोक पहुँचा दिया ॥ ३१½ ॥

धनुरेकेन भल्लेन हस्तावापं च पञ्चभिः ॥ ३२ ॥

ध्वजं च रथशक्तिं च भल्लाभ्यां परमास्त्रवित्।
चिच्छेद विशिखैस्तीक्ष्णैस्तथोभौ पार्ष्णिसारथी ॥ ३३॥

तदनन्तर महान् अस्त्रवेत्ता सात्यकिने एक भल्लसे दुःशासनका धनुष, पाँचसे उसके दस्ताने तथा दो भल्लोंसे उसकी ध्वजा एवं रथशक्तिके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये। इतना ही नहीं, उन्होंने तीखे बाणोंद्वारा उसके दोनों पार्श्वरक्षकोंको भी मार डाला ॥ ३२-३३ ॥

स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
त्रिगर्तसेनापतिना स्वरथेनापवाहितः ॥ ३४ ॥

धनुष कट जानेपर रथ, घोड़े और सारथिसे हीन हुए दुःशासनको त्रिगर्त-सेनापतिने अपने रथपर बिठाकर वहाँसे दूर हटा दिया ॥ ३४ ॥

तमभिद्रुत्य शैनेयो मुहूर्तमिव भारत।
न जघान महाबाहुर्भीमसेनवचः स्मरन् ॥ ३५ ॥

भारत ! उस समय महाबाहु सात्यकिने लगभग दो घड़ीतक दुःशासनका पीछा किया; परंतु भीमसेनकी बात याद आ जानेसे उसका वध नहीं किया ॥ ३५ ॥

भीमसेनेन तु वधः सुतानां तव भारत।
प्रतिज्ञातः सभामध्ये सर्वेषामेव संयुगे ॥ ३६ ॥

भरतनन्दन ! भीमसेनने सभामें सबके सामने ही युद्ध-स्थलमें आपके पुत्रोंका वध करनेकी प्रतिज्ञा की थी ॥ ३६ ॥

ततो दुःशासनं जित्वा सात्यकिः संयुगे प्रभो।
जगाम त्वरितो राजन् येन यातो धनंजयः ॥ ३७ ॥

राजन् ! प्रभो ! इस प्रकार समराङ्गणमें दुःशासनपर विजय पाकर सात्यकि तत्काल ही उसी मार्गपर चल दिये, जिससे अर्जुन गये थे ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे दुःशासनपराजये त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिका प्रवेश और दुःशासनकी पराजयविषयक एक सौ तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२३ ॥

चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

कौरव-पाण्डव-सेनाका घोर युद्ध तथा पाण्डवोंके साथ दुर्योधनका संग्राम

धृतराष्ट्र उवाच

किं तस्यां मम सेनायां नासन् केचिन्महारथाः।
ये तथा सात्यकिं यान्तं नैवाघ्नन् नाप्यवारयन्॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! क्या मेरी उस सेनामें कोई भी महारथी वीर नहीं थे, जिन्होंने जाते हुए सात्यकिको न तो मारा और न उन्हें रोका ही ॥ १ ॥

एको हि समरे कर्म कृतवान् सत्यविक्रमः।
शक्रतुल्यबलो युद्धे महेन्द्रो दानवेष्विव ॥ २ ॥

जैसे देवराज इन्द्र दानवोंके साथ युद्धमें पराक्रम दिखाते हैं, उसी प्रकार इन्द्रतुल्य बलशाली सत्यपराक्रमी सात्यकिने समराङ्गणमें अकेले ही महान् कर्म किया ॥ २ ॥

अथवा शून्यमासीत् तद् येन यातः स सात्यकिः।
हतभूयिष्ठमथवा येन यातः स सात्यकिः ॥ ३ ॥

अथवा जिस मार्गसे सात्यकि आगे बढ़े थे, वह वीरोंसे शून्य तो नहीं हो गया था या वहाँके अधिकांश सैनिक मारे तो नहीं गये थे ॥ ३ ॥

यत् कृतं वृष्णिवीरेण कर्म शंससि मे रणे।
नैतदुत्सहते कर्तुं कर्म शक्रोऽपि संजय ॥ ४ ॥

संजय ! तुम रणक्षेत्रमें वृष्णिवंशी वीर सात्यकिके द्वारा किये हुए जिस कर्मकी प्रशंसा कर रहे हो, वह कर्म देवराज इन्द्र भी नहीं कर सकते ॥ ४ ॥

अश्रद्धेयमचिन्त्यं च कर्म तस्य महात्मनः।
वृष्ण्यन्धकप्रवीरस्य श्रुत्वा मे व्यथितं मनः ॥ ५ ॥

वृष्णि और अंधक वंशके प्रमुख वीर महामना सात्यकिका वह कर्म अचिन्त्य (सम्भावनासे परे) है। उसपर सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता। उसे सुनकर मेरा मन व्यथित हो उठा है ॥ ५ ॥

न सन्ति तस्मात् पुत्रा मे यथा संजय भाषसे।
एको वै बहुलाः सेनाः प्रामृद्नात् सत्यविक्रमः ॥ ६ ॥

संजय ! जैसा कि तुम बता रहे हो, यदि एक ही सत्यपराक्रमी सात्यकिने मेरी बहुत सी सेनाओंको धूलमें मिला दिया है, तब तो मुझे यह मान लेना चाहिये कि अब मेरे पुत्र जीवित नहीं हैं ॥ ६ ॥

कथं च युध्यमानानामपक्रान्तो महात्मनाम्।
एको बहूनां शैनेयस्तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ७ ॥

संजय ! जब बहुत-से महामनस्वी वीर युद्ध कर रहे थे, उस समय अकेले सात्यकि उन्हें पराजित करके कैसे आगे बढ़ गये, यह सब मुझे बताओ ॥ ७ ॥

संजय उवाच

राजन् सेनासमुद्योगो रथनागाश्वपत्तिमान्।
तुमुलस्तव सैन्यानां युगान्तसदृशोऽभवत् ॥ ८ ॥

संजयने कहा—राजन् ! रथ, हाथी, घोड़े और पैदलोंसे भरा हुआ आपका सेनासम्बन्धी उद्योग महान् था।

आपके सैनिकोंका समाहार प्रलयकालके समान भयंकर जान पड़ता था ॥ ८ ॥

आहूतेषु समूहेषु तव सैन्यस्य मानद ।
नाभूल्लोके समः कश्चित् समूह इति मे मतिः ॥ ९ ॥

मानद ! जब आपकी सेनाके भिन्न-भिन्न समूह सब ओरसे बुलाये गये, उस समय जो महान् समुदाय एकत्र हुआ, उसके समान इस संसारमें दूसरा कोई समूह नहीं था, ऐसा मेरा विश्वास है ॥ ९ ॥

तत्र देवास्त्वभाषन्त चारणाश्च समागताः ।
एतदन्ताः समूहा वै भविष्यन्ति महीतले ॥ १० ॥

वहाँ आये हुए देवता तथा चारण ऐसा कहते थे कि इस भूतलपर सारे समूहोंकी अन्तिम सीमा यही होगी ॥१०॥

न च वै तादृशो व्यूह आसीत् कश्चिद् विशाम्पते ।
यादृग् जयद्रथवधे द्रोणेन विहितोऽभवत् ॥ ११ ॥

प्रजानाथ ! जयद्रथ-वधके समय द्रोणाचार्यने जैसा व्यूह बनाया था, वैसा दूसरा कोई भी व्यूह नहीं बन सका था ॥

चण्डवातविभिन्नानां समुद्राणामिव स्वनः ।
रणेऽभवद् बलौघानामन्योन्यमभिधावताम् ॥ १२ ॥

प्रचण्ड वायुके थपेड़े खाकर उद्वेलित हुए समुद्रोंके जलसे जैसा भैरव गर्जन सुनायी देता है, उस रणक्षेत्रमें एक दूसरे-पर धावा करनेवाले सैन्य-समूहोंका कोलाहल भी वैसा ही भयंकर था ॥ १२ ॥

पार्थिवानां समेतानां बहून्यासन् नरोत्तम ।
त्वद्बले पाण्डवानां च सहस्राणि शतानि च ॥ १३ ॥

नरश्रेष्ठ ! आपकी और पाण्डवोंकी सेनाओंमें सब ओरसे एकत्र हुए भूमिपालोंके सैकड़ों और हजारों दल थे ॥ १३ ॥

संरब्धानां प्रवीराणां समरे दृढकर्मणाम् ।
तत्रासीत् सुमहाशब्दस्तुमुलो लोमहर्षणः ॥ १४ ॥

वे सभी प्रमुख वीर रोषावेशसे परिपूर्ण हो समरभूमिमें सुदृढ़ पराक्रम कर दिखानेवाले थे । वहाँ उन सबका महान् एवं तुमुल कोलाहल रोंगटे खड़े कर देनेवाला था ॥ १४ ॥

(पाण्डवानां कुरूणां च गर्जतामितरेतरम् ।
क्ष्वेडाः किलकिलाशब्दास्तत्रासन् वै सहस्रशः ॥

एक दूसरेके प्रति गर्जना करनेवाले पाण्डवों तथा कौरवों-के सिंहनाद और किलकिलाहटके शब्द वहाँ सहस्रों बार प्रकट होते थे ॥

भेरीशब्दाश्च तुमुला बाणशब्दाश्च भारत ।
अन्योन्यं निघ्नतां चैव नराणां शुश्रुवे स्वनः ॥)

भरतनन्दन ! वहाँ नगाड़ोंकी भयानक गड़गड़ाहट, बाणोंकी सनसनाहट तथा परस्पर प्रहार करनेवाले मनुष्योंकी गर्जनाके शब्द बड़े जोरसे सुनायी दे रहे थे ॥

अथाक्रन्दद् भीमसेनो धृष्टद्युम्नश्च मारिष ।
नकुलः सहदेवश्च धर्मराजश्च पाण्डवः ॥ १५ ॥

माननीय नरेश ! तदनन्तर भीमसेन, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव तथा पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिरने अपने सैनिकोंसे पुकारकर कहा—॥ १५ ॥

आगच्छत प्रहरत द्रुतं विपरिधावत ।
प्रविष्टावरिसेनां हि वीरौ माधवपाण्डवौ ॥ १६ ॥

'वीरो ! आओ, शत्रुओंपर प्रहार करो । बड़े वेगसे इनपर टूट पड़ो; क्योंकि वीर सात्यकि और अर्जुन शत्रुओं-की सेनामें घुस गये हैं ॥ १६ ॥

यथा सुखेन गच्छेतां जयद्रथवधं प्रति ।
तथा प्रकुरुत क्षिप्रमिति सैन्यान्यचोदयन् ॥ १७ ॥

'वे दोनों जयद्रथका वध करनेके लिये जैसे सुखपूर्वक आगे जा सकें, उसी प्रकार शीघ्रतापूर्वक प्रयत्न करो ।' इस तरह उन्होंने सारी सेनाओंको आदेश दिया ॥ १७ ॥

तयोरभावे कुरवः कृतार्थाः स्युर्वयं जिताः ।
ते यूयं सहिता भूत्वा तूर्णमेव बलार्णवम् ॥ १८ ॥
क्षोभयध्वं महावेगाः पवनः सागरं यथा ।

(इसके बाद उन्होंने फिर कहा—) 'सात्यकि और अर्जुन-के न होनेपर ये कौरव तो कृतार्थ हो जायँगे और हम पराजित होंगे । अतः तुम सब लोग एक साथ मिलकर महान् वेगका आश्रय ले तुरंत ही इस सैन्य-समुद्रमें हलचल मचा दो । ठीक वैसे ही जैसे प्रचण्ड वायु महासागरको विक्षुब्ध कर देती है' ॥ १८½ ॥

भीमसेनेन ते राजन् पाञ्चाल्येन च नोदिताः ॥ १९ ॥
आजघ्नुः कौरवान् संख्ये त्यक्त्वासूनात्मनः प्रियान् ।

राजन् ! भीमसेन तथा धृष्टद्युम्नके द्वारा इस प्रकार प्रेरित हुए पाण्डव सैनिकोंने अपने प्यारे प्राणोंका मोह छोड़-कर युद्धस्थलमें कौरव-योद्धाओंका संहार आरम्भ कर दिया ॥

इच्छन्तो निधनं युद्धे शस्त्रैरुत्तमतेजसः ॥ २० ॥
स्वर्गेप्सवो मित्रकार्ये नाभ्यनन्दन्त जीवितम् ।

वे उत्तम तेजवाले नरेश स्वर्गलोक प्राप्त करना चाहते थे । अतः उन्हें युद्धमें शस्त्रोंद्वारा मृत्यु आनेकी अभिलाषा थी । इसीलिये उन्होंने मित्रके कार्य सिद्ध करनेके प्रयत्नमें अपने प्राणोंकी परवा नहीं की ॥ २०½ ॥

तथैव तावका राजन् प्रार्थयन्तो महद् यशः ॥ २१ ॥
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा युद्धायैवावतस्थिरे ।

राजन् ! इसी प्रकार आपके सैनिक भी महान् सुयश प्राप्त करना चाहते थे । अतः वे युद्धविषयक श्रेष्ठ बुद्धिका आश्रय ले वहाँ युद्धके लिये ही डटे रहे ॥ २१½ ॥

तस्मिन् सुतुमुले युद्धे वर्तमाने भयावहे ॥ २२ ॥

जित्वा सर्वाणि सैन्यानि प्रायात् सात्यकिरर्जुनम्।

जिस समय वह अत्यन्त भयंकर घमासान युद्ध चल रहा था, उसी समय सात्यकि आपकी सारी सेनाओंको जीतकर अर्जुनकी ओर बढ़ चले ॥ २२½ ॥

कवचानां प्रभास्तत्र सूर्यरश्मिविराजिताः ॥ २३ ॥
दृष्टीः संख्ये सैनिकानां प्रतिजघ्नुः समन्ततः।

वहाँ वीरोंके सुवर्णमय कवचोंकी प्रभाएँ सूर्यकी किरणोंसे उद्भासित हो युद्धस्थलमें सब ओर खड़े हुए सैनिकोंके नेत्रोंमें चकाचौंध पैदा कर रही थी ॥ २३½ ॥

तथा प्रयतमानानां पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ २४ ॥
दुर्योधनो महाराज व्यगाहत महद् बलम्।

महाराज ! इस प्रकार विजयके लिये प्रयत्नशील हुए महामनस्वी पाण्डवोंकी उस विशाल वाहिनीमें राजा दुर्योधनने प्रवेश किया ॥ २४½ ॥

स संनिपातस्तुमुलस्तेषां तस्य च भारत ॥ २५ ॥
अभवत् सर्वभूतानामभावकरणो महान्।

भारत ! पाण्डव सैनिकों तथा दुर्योधनका वह भयंकर संग्राम समस्त प्राणियोंके लिये महान् संहारकारी सिद्ध हुआ ॥ २५½ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

तथा यातेषु सैन्येषु तथा कृच्छ्रगतः स्वयम् ॥ २६ ॥
कच्चिद् दुर्योधनः सूत नाकार्षीत् पृष्ठतो रणम्।

धृतराष्ट्रने पूछा—सूत ! जब इस प्रकार सारी सेनाएँ भाग रही थीं, उस समय स्वयं भी वैसे संकटमें पड़े हुए दुर्योधनने क्या उस युद्धमें पीठ नहीं दिखायी ? ॥ २६½ ॥

एकस्य च बहूनां च संनिपातो महाहवे ॥ २७ ॥
विशेषतो नरपतेर्विषमः प्रतिभाति मे।

उस महासमरमें बहुत-से योद्धाओंके साथ किसी एक वीरका विशेषतः राजा दुर्योधनका युद्ध करना तो मुझे विषम (अयोग्य) प्रतीत हो रहा है ॥ २७½ ॥

सोऽत्यन्तसुखसंवृद्धो लक्ष्म्या लोकस्य चेश्वरः ॥ २८ ॥
एको बहून् समासाद्य कच्चिन्नासीत् पराङ्मुखः।

अत्यन्त सुखमें पला हुआ, इस लोक तथा राजलक्ष्मीका स्वामी अकेला दुर्योधन बहुसंख्यक योद्धाओंके साथ युद्ध करके रणभूमिसे विमुख तो नहीं हुआ ? ॥ २८½ ॥

संजय उवाच

राजन् संग्राममाश्चर्यं तव पुत्रस्य भारत ॥ २९ ॥
एकस्य बहुभिः सार्धं शृणुष्व गदतो मम।

संजयने कहा—भरतवंशी नरेश ! आपके एकमात्र पुत्र दुर्योधनका शत्रुपक्षके बहुसंख्यक योद्धाओंके साथ जो आश्चर्यजनक संग्राम हुआ था, उसे मैं बताता हूँ, सुनिये ॥ २९½ ॥

दुर्योधनेन समरे पृतना पाण्डवी रणे ॥ ३० ॥
नलिनी द्विरदेनेव समन्तात् प्रतिलोडिता।

दुर्योधनने समराङ्गणमें पाण्डवसेनाको सब ओरसे उसी प्रकार मथ डाला, जैसे हाथी कमलोंसे भरे हुए किसी पोखरेको ॥ ३०½ ॥

ततस्तां प्रहितां सेनां दृष्ट्वा पुत्रेण ते नृप ॥ ३१ ॥
भीमसेनपुरोगास्तं पञ्चालाः समुपाद्रवन्।

नरेश्वर ! आपके पुत्रद्वारा आपकी सेनाको आगे बढ़नेके लिये प्रेरित हुई देख भीमसेनको अगुआ बनाकर पाञ्चाल योद्धाओंने दुर्योधनपर आक्रमण कर दिया ॥ ३१½ ॥

स भीमसेनं दशभिः शरैर्विव्याध पाण्डवम् ॥ ३२ ॥
त्रिभिस्त्रिभिर्यमौ वीरौ धर्मराजं च सप्तभिः।

तब दुर्योधनने पाण्डुपुत्र भीमसेनको दस बाणोंसे, वीर नकुल और सहदेवको तीन-तीन बाणोंसे तथा धर्मराज युधिष्ठिरको सात बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ३२½ ॥

विराटद्रुपदौ षड्भिः शतेन च शिखण्डिनम् ॥ ३३ ॥
धृष्टद्युम्नं च विंशत्या द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः।

तत्पश्चात् उसने राजा विराट और द्रुपदको छः-छः बाणोंसे बींध डाला, फिर शिखण्डीको सौ, धृष्टद्युम्नको बीस और द्रौपदीपुत्रोंको तीन-तीन बाणोंसे घायल किया ॥ ३३½ ॥

शतशश्चापरान् योधान् सद्विपांश्च रथान् रणे ॥ ३४ ॥
शरैरवचकर्तोग्रैः क्रुद्धोऽन्तक इव प्रजाः।

तदनन्तर उस रणक्षेत्रमें उसने अपने भयंकर बाणोंद्वारा दूसरे-दूसरे सैकड़ों योद्धाओं, हाथियों और रथोंको उसी प्रकार काट डाला, जैसे क्रोधमें भरा हुआ यमराज समस्त प्राणियोंका विनाश करता है ॥ ३४½ ॥

न संदधन् विमुञ्चन् वा मण्डलीकृतकार्मुकः ॥ ३५ ॥
अदृश्यत रिपून् निघ्नञ्छिक्षयास्त्रबलेन च।

दुर्योधनने अपने धनुषको खींचकर मण्डलाकार बना दिया था। वह अपनी शिक्षा और अस्त्र-बलसे इतनी शीघ्रताके साथ बाणोंको धनुषपर रखता, चलाता तथा शत्रुओंका वध करता था कि कोई उसके इस कार्यको देख नहीं पाता था ॥ ३५½ ॥

तस्य तान् निघ्नतः शत्रून् हेमपृष्ठं महद् धनुः ॥ ३६ ॥
अजस्रं मण्डलीभूतं ददृशुः समरे जनाः।

शत्रुओंके संहारमें लगे हुए दुर्योधनके सुवर्णमय पृष्ठवाले विशाल धनुषको सब लोग समराङ्गणमें सदा मण्डलाकार हुआ ही देखते थे ॥ ३६½ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा भल्लाभ्यामच्छिनद् धनुः ॥ ३७ ॥
तव पुत्रस्य कौरव्य यतमानस्य संयुगे।

कुरुनन्दन ! तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने दो भल्ल मारकर

युद्धमें विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले आपके पुत्रके धनुषको काट दिया ॥ ३७½ ॥

विव्याध चैनं दशभिः सम्यगस्तैः शरोत्तमैः ॥ ३८ ॥
वर्म चाशु समासाद्य ते भित्त्वा क्षितिमाविशन् ।

और उसे विधिपूर्वक चलाये हुए उत्तम दस बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी। वे बाण तुरंत ही उसके कवचमें जा लगे और उसे छेदकर धरतीमें समा गये ॥ ३८½ ॥

ततः प्रमुदिताः पार्थाः परिवव्रुर्युधिष्ठिरम् ॥ ३९ ॥
यथा वृत्रवधे देवाः पुरा शक्रं महर्षयः ।

इससे कुन्तीकुमारोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। जैसे पूर्वकालमें वृत्रासुरका वध होनेपर सम्पूर्ण देवताओं और महर्षियोंने इन्द्रको सब ओरसे घेर लिया था, उसी प्रकार पाण्डव भी युधिष्ठिरको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये ॥ ३९½ ॥

ततोऽन्यद् धनुरादाय तव पुत्रः प्रतापवान् ॥ ४० ॥
तिष्ठ तिष्ठेति राजानं ब्रुवन् पाण्डवमभ्ययात् ।

तत्पश्चात् आपके प्रतापी पुत्रने दूसरा धनुष लेकर 'खड़ा रह, खड़ा रह' ऐसा कहते हुए वहाँ पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरपर आक्रमण किया ॥ ४०½ ॥

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य तव पुत्रं महामृधे ॥ ४१ ॥
प्रत्युद्ययुः समुदिताः पञ्चाला जयगृद्धिनः ।

उस महासमरमें आपके पुत्रको आते देख विजयकी अभिलाषा रखनेवाले पाञ्चाल सैनिक संघबद्ध हो उसका सामना करनेके लिये आगे बढ़े ॥ ४१½ ॥

तान् द्रोणः प्रतिजग्राह परीप्सन् युधि पाण्डवम् ॥ ४२ ॥
चण्डवातोद्धुतान् मेघान् गिरिरम्बुमुचो यथा ।

उस समय युद्धमें युधिष्ठिरको पकड़नेकी इच्छावाले द्रोणाचार्यने उन सब योद्धाओंको उसी प्रकार रोक दिया, जैसे प्रचण्ड वायुद्वारा उड़ाये गये जलवर्षी मेघोंको पर्वत रोक देता है ॥ ४२½ ॥

तत्र राजन् महानासीत् संग्रामो लोमहर्षणः ॥ ४३ ॥
पाण्डवानां महाबाहो तावकानां च संयुगे ।
रुद्रस्याक्रीडसदृशः संहारः सर्वदेहिनाम् ॥ ४४ ॥

राजन् ! महाबाहो ! फिर तो वहाँ युद्धस्थलमें पाण्डवों तथा आपके सैनिकोंमें महान् रोमाञ्चकारी संग्राम होने लगा। जो रुद्रकी क्रीडाभूमि (श्मशानके सदृश) सम्पूर्ण देहधारियोंके लिये संहारका स्थान बन गया था ॥ ४३-४४ ॥

ततः शब्दो महानासीत् पुनर्येन धनंजयः ।
अतीव सर्वशब्देभ्यो लोमहर्षकरः प्रभो ॥ ४५ ॥

प्रभो ! तदनन्तर जिधर अर्जुन गये थे, उसी ओर बड़े जोरका कोलाहल होने लगा, जो सम्पूर्ण शब्दोंसे ऊपर उठकर सुननेवालोंके रोंगटे खड़े किये देता था ॥ ४५ ॥

अर्जुनस्य महाबाहो तावकानां च धन्विनाम् ।
मध्ये भारतसैन्यस्य माधवस्य महारणे ॥ ४६ ॥

महाबाहो ! उस महासमरमें कौरवी सेनाके भीतर आपके धनुर्धरोंकी तथा अर्जुन और सात्यकिकी भीषण गर्जना सुनायी देती थी ॥ ४६ ॥

द्रोणस्यापि परैः सार्धं व्यूहद्वारे महारणे ।
एवमेष क्षयो वृत्तः पृथिव्यां पृथिवीपते ।
क्रुद्धेऽर्जुने तथा द्रोणे सात्वते च महारथे ॥ ४७ ॥

पृथ्वीपते ! उस महायुद्धमें व्यूहके द्वारपर शत्रुओंके साथ जूझते हुए द्रोणाचार्यका भी सिंहनाद प्रकट हो रहा था। इस प्रकार अर्जुन, द्रोणाचार्य तथा महारथी सात्यकिके कुपित होनेपर युद्धभूमिमें यह भयंकर विनाशका कार्य सम्पन्न हुआ ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे संकुलयुद्धे चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिका प्रवेश और दोनों सेनाओंका घमासान युद्धविषयक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२४ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २ श्लोक मिलाकर कुल ४९ श्लोक हैं)

पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्रोणाचार्यके द्वारा बृहत्क्षत्र, धृष्टकेतु, जरासन्धपुत्र सहदेव तथा धृष्टद्युम्नकुमार क्षत्रधर्माका वध और चेकितानकी पराजय

संजय उवाच

अपराह्णे महाराज संग्रामः सुमहानभूत् ।
पर्जन्यसमनिर्घोषः पुनर्द्रोणस्य सोमकैः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! अपराह्णकालमें सोमकोंके साथ द्रोणाचार्यका पुनः महान् संग्राम छिड़ गया, जिसमें मेघोंकी गर्जनाके समान गम्भीर सिंहनाद हो रहा था ॥ १ ॥

शोणाश्वं रथमास्थाय नरवीरः समाहितः ।
समरेऽभ्यद्रवत् पाण्डूञ्जवमास्थाय मध्यमम् ॥ २ ॥

नरवीर द्रोण लाल घोड़ोंवाले रथपर आरूढ़ हो चित्तको एकाग्र करके मध्यम वेगका आश्रय ले समरभूमिमें पाण्डवोंपर टूट पड़े ॥ २ ॥

तव प्रियहिते युक्तो महेष्वासो महाबलः ।
चित्रपुङ्खैः शितैर्बाणैः कलशोत्तमसम्भवः ॥ ३ ॥
(जघान सोमकान् राजन् सृञ्जयान् केकयानपि।)

राजन् ! आपके प्रिय और हित साधनमें लगे हुए महाधनुर्धर महाबली उत्तम कलशजन्मा द्रोणाचार्यने अपने विचित्र पंखोंवाले पैने बाणोंद्वारा सोमकों, संजयों तथा केकयोंका संहार आरम्भ किया ॥ ३ ॥

वरान् वरान् हि योधानां विचिन्वन्निव भारत ।
आक्रीडत रणे राजन् भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ४ ॥

भरतवंशी नरेश ! प्रतापी द्रोणाचार्य मानो उस युद्धस्थलमें प्रधान-प्रधान योद्धाओंको चुन रहे हों, इस प्रकार उनके साथ खेल-सा कर रहे थे ॥ ४ ॥

तमभ्ययाद् बृहत्क्षत्रः केकयानां महारथः ।
भ्रातॄणां नृप पञ्चानां श्रेष्ठः समरकर्कशः ॥ ५ ॥

नरेश्वर ! उस समय रणकर्कश केकय महारथी बृहत्क्षत्र, जो अपने पाँचों भाइयोंमें सबसे बड़े थे, द्रोणाचार्यका सामना करनेके लिये आगे बढ़े ॥ ५ ॥

विमुञ्चन् विशिखांस्तीक्ष्णानाचार्यं भृशमार्दयत् ।
महामेघो यथा वर्षं विमुञ्चन् गन्धमादने ॥ ६ ॥

उन्होंने गन्धमादन पर्वतपर पानी बरसानेवाले महामेघके समान पैने बाणोंकी वर्षा करके आचार्य द्रोणको अत्यन्त पीड़ित कर दिया ॥ ६ ॥

तस्य द्रोणो महाराज स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाशितान् ।
प्रेषयामास संक्रुद्धः सायकान् दश पञ्च च ॥ ७ ॥

महाराज ! तब द्रोणने अत्यन्त कुपित हो सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सोनेके पंखवाले पंद्रह बाणोंका बृहत्क्षत्रपर प्रहार किया ॥ ७ ॥

तांस्तु द्रोणविनिर्मुक्तान् क्रुद्धाशीविषसंनिभान् ।
एकैकं पञ्चभिर्बाणैर्युधि चिच्छेद हृष्टवत् ॥ ८ ॥

द्रोणाचार्यके छोड़े हुए रोषभरे विषधर सर्पोंके समान उन भयंकर बाणोंमेंसे प्रत्येकको बृहत्क्षत्रने युद्धमें पाँच पाँच बाण मारकर प्रसन्नतापूर्वक काट डाला ॥ ८ ॥

तदस्य लाघवं दृष्ट्वा प्रहस्य द्विजपुङ्गवः ।
प्रेषयामास विशिखानष्टौ संनतपर्वणः ॥ ९ ॥

उनकी इस फुर्तीको देखकर विप्रवर द्रोणने हँसते हुए झुकी हुई गाँठवाले आठ बाणोंका प्रहार किया ॥ ९ ॥

तान् दृष्ट्वा पततस्तूर्णं द्रोणचापच्युताञ्शरान् ।
अवारयच्छरैरेव तावद्भिर्निशितैर्मृधे ॥ १० ॥

द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए उन बाणोंको शीघ्र ही अपने ऊपर आते देख बृहत्क्षत्रने उतने ही तीखे बाणोंद्वारा उन्हें युद्धस्थलमें काट गिराया ॥ १० ॥

ततोऽभवन्महाराज तव सैन्यस्य विस्मयः ।
बृहत्क्षत्रेण तत् कर्म कृतं दृष्ट्वा सुदुष्करम् ॥ ११ ॥
ततो द्रोणो महाराज बृहत्क्षत्रं विशेषयन् ।
प्रादुश्चक्रे रणे दिव्यं ब्राह्ममस्त्रं सुदुर्जयम् ॥ १२ ॥

महाराज ! इससे आपकी सेनाको बड़ा आश्चर्य हुआ । बृहत्क्षत्रद्वारा किये हुए उस अत्यन्त दुष्कर कर्मको देखकर उनकी अपेक्षा अपनी विशेषता प्रकट करते हुए द्रोणाचार्यने रणक्षेत्रमें परम दुर्जय दिव्य ब्रह्मास्त्र प्रकट किया ॥ ११-१२ ॥

कैकेयोऽस्त्रं समालोक्य मुक्तं द्रोणेन संयुगे ।
ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र ब्राह्ममस्त्रमशातयत् ॥ १३ ॥

राजेन्द्र ! युद्धभूमिमें द्रोणाचार्यके द्वारा चलाये हुए ब्रह्मास्त्रको देखकर केकयनरेशने ब्रह्मास्त्रद्वारा ही उसे शान्त कर दिया ॥ १३ ॥

ततोऽस्त्रे निहते ब्राह्मे बृहत्क्षत्रस्तु भारत ।
विव्याध ब्राह्मणं षष्ट्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ १४ ॥

भरतनन्दन ! ब्रह्मास्त्रका निवारण हो जानेपर बृहत्क्षत्रने सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सोनेके पंखोंसे युक्त साठ बाणोंद्वारा ब्राह्मण द्रोणाचार्यको वेध दिया ॥ १४ ॥

तं द्रोणो द्विपदां श्रेष्ठो नाराचेन समार्पयत् ।
स तस्य कवचं भित्त्वा प्राविशद् धरणीतलम् ॥ १५ ॥

तब मनुष्योंमें श्रेष्ठ द्रोणने उनपर नाराच चलाया । वह नाराच बृहत्क्षत्रका कवच विदीर्ण करके धरतीमें समा गया ॥ १५ ॥

कृष्णसर्पो यथा मुक्तो वल्मीकं नृपसत्तम ।
तथात्यगान्महीं बाणो भित्त्वा कैकेयमाहवे ॥ १६ ॥

नृपश्रेष्ठ ! जैसे काला साँप बाँबीमें प्रवेश करता है, उसी प्रकार द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटा हुआ वह बाण युद्धस्थलमें केकयराजकुमार बृहत्क्षत्रको विदीर्ण करके पृथ्वीमें घुस गया ॥ १६ ॥

सोऽतिविद्धो महाराज कैकेयो द्रोणसायकैः ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो व्यावृत्य नयने शुभे ॥ १७ ॥

महाराज ! द्रोणाचार्यके बाणोंसे अत्यन्त घायल हो जानेपर केकयराजकुमारको बड़ा क्रोध हुआ । वे अपनी दोनों सुन्दर आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे ॥ १७ ॥

द्रोणं विव्याध सप्तत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।
सारथिं चास्य बाणेन भृशं मर्मस्वताडयत् ॥ १८ ॥

उन्होंने सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्ण-पंखयुक्त सत्तर बाणोंसे द्रोणाचार्यको बींध डाला और एक बाणद्वारा उनके सारथिके मर्मस्थानोंमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ १८ ॥

द्रोणस्तु बहुभिर्विद्धो बृहत्क्षत्रेण मारिष ।
असृजद् विशिखांस्तीक्ष्णान् कैकेयस्य रथं प्रति ॥ १९ ॥

माननीय नरेश ! जब बृहत्क्षत्रने बहुसंख्यक बाणोंसे द्रोणाचार्यको क्षत-विक्षत कर दिया, तब उन्होंने केकयनरेशके रथपर तीखे सायकोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ १९ ॥

व्याकुलीकृत्य तं द्रोणो बृहत्क्षत्रं महारथम् ।

अश्वांश्चतुर्भिर्न्यवधीच्चतुरोऽस्य पतत्रिभिः ॥ २० ॥

द्रोणाचार्यने महारथी बृहत्क्षत्रको व्याकुल करके अपने चार बाणोंद्वारा उनके चारों घोड़ोंको मार डाला ॥ २० ॥

सूतं चैकेन बाणेन रथनीडादपातयत् ।
द्वाभ्यां ध्वजं च छत्रं च छित्त्वा भूमावपातयत् ॥ २१ ॥

फिर एक बाणसे मारकर सारथिको रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया और दो बाणोंसे उनके ध्वज और छत्रको भी पृथ्वीपर काट गिराया ॥ २१ ॥

ततः साधुविसृष्टेन नाराचेन द्विजर्षभः ।
हृद्यविध्यद् बृहत्क्षत्रं स च्छिन्नहृदयोऽपतत् ॥ २२ ॥

तदनन्तर अच्छी तरह चलाये हुए नाराचसे द्विजश्रेष्ठ द्रोणने बृहत्क्षत्रकी छाती छेद डाली । वक्षःस्थल विदीर्ण होनेके कारण बृहत्क्षत्र धरतीपर गिर पड़े ॥ २२ ॥

बृहत्क्षत्रे हते राजन् केकयानां महारथे ।
शैशुपालिरभिक्रुद्धो यन्तारमिदमब्रवीत् ॥ २३ ॥

राजन् ! केकय महारथी बृहत्क्षत्रके मारे जानेपर शिशुपालपुत्र धृष्टकेतुने अत्यन्त कुपित हो अपने सारथिसे इस प्रकार कहा—॥ २३ ॥

सारथे याहि यत्रैष द्रोणस्तिष्ठति दंशितः ।
विनिघ्नन् केकयान् सर्वान् पञ्चालानां च वाहिनीम् ॥ २४ ॥

'सारथे ! जहाँ ये द्रोणाचार्य कवच धारण किये खड़े हैं और समस्त केकयों तथा पाञ्चाल-सेनाका संहार कर रहे हैं, वहीं चलो' ॥ २४ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा सारथी रथिनां वरम् ।
द्रोणाय प्रापयामास काम्बोजैर्जवनैर्हयैः ॥ २५ ॥

उनकी वह बात सुनकर सारथिने काम्बोजदेशीय (काबुली) वेगशाली घोड़ोंद्वारा रथियोंमें श्रेष्ठ धृष्टकेतुको द्रोणाचार्यके निकट पहुँचा दिया ॥ २५ ॥

धृष्टकेतुश्च चेदीनामृषभोऽतिबलोदितः ।
वधायाभ्यद्रवद् द्रोणं पतङ्ग इव पावकम् ॥ २६ ॥

अत्यन्त बलसम्पन्न चेदिराज धृष्टकेतु द्रोणाचार्यका वध करनेके लिये उनकी ओर उसी प्रकार दौड़ा, जैसे फतिंगा आगपर टूट पड़ता है ॥ २६ ॥

सोऽविध्यत तदा द्रोणं षष्ट्या साश्वरथध्वजम् ।
पुनश्चान्यैः शरैस्तीक्ष्णैः सुप्तं व्याघ्रं तुदन्निव ॥ २७ ॥

उसने घोड़े, रथ और ध्वजसहित द्रोणाचार्यको उस समय साठ बाणोंसे बेध दिया । फिर सोते हुए शेरको पीड़ित करते हुए-से उसने अन्य तीखे बाणोंद्वारा भी आचार्यको घायल कर दिया ॥ २७ ॥

तस्य द्रोणो धनुर्मध्ये क्षुरप्रेण शितेन च ।
चकर्त गार्ध्रपत्रेण यतमानस्य शुष्मिणः ॥ २८ ॥

तब द्रोणाचार्यने गीधकी पाँखवाले तीखे क्षुरप्रद्वारा विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले बलवान् धृष्टकेतुके धनुषको बीचसे ही काट दिया ॥ २८ ॥

अथान्यद् धनुरादाय शैशुपालिर्महारथः ।
विव्याध सायकैर्द्रोणं कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥ २९ ॥

यह देख महारथी शिशुपालकुमारने दूसरा धनुष हाथमें लेकर कङ्क और मोरकी पाखोंसे युक्त बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यको घायल कर दिया ॥ २९ ॥

तस्य द्रोणो हयान् हत्वा चतुर्भिश्चतुरः शरैः ।
सारथेश्च शिरः कायाच्चकर्त प्रहसन्निव ॥ ३० ॥

द्रोणाचार्यने चार बाणोंसे धृष्टकेतुके चारों घोड़ोंको मारकर उनके सारथिके भी मस्तकको हँसते हुए-से काटकर धड़से अलग कर दिया ॥ ३० ॥

अथैनं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत् ।
अवप्लुत्य रथाच्चैद्यो गदामादाय सत्वरः ॥ ३१ ॥
भारद्वाजाय चिक्षेप रुषितामिव पन्नगीम् ।

तत्पश्चात् उन्होंने धृष्टकेतुको पचीस बाण मारे । उस समय धृष्टकेतुने शीघ्रतापूर्वक रथसे कूदकर गदा हाथमें ले ली और रोषमें भरी हुई सर्पिणीके समान उसे द्रोणाचार्यपर दे मारा ॥ ३१½ ॥

तामापतन्तीमालोक्य कालरात्रिमिवोद्यताम् ॥ ३२ ॥
अश्मसारमयीं गुर्वीं तपनीयविभूषिताम् ।
शरैरनेकसाहस्रैर्भारद्वाजोऽच्छिनच्छितैः ॥ ३३ ॥

वह गदा लोहेकी बनी हुई और भारी थी । उसमें सोने जड़े हुए थे, उसे उठी हुई कालरात्रिके समान अपने ऊपर गिरती देख द्रोणाचार्यने कई हजार पैने बाणोंसे उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ ३२-३३ ॥

सा छिन्ना बहुभिर्बाणैर्भारद्वाजेन मारिष ।
गदा पपात कौरव्य नादयन्ती धरातलम् ॥ ३४ ॥

माननीय कौरवनरेश ! द्रोणाचार्यद्वारा अनेक बाणोंसे छिन्न-भिन्न की हुई वह गदा भूतलको निनादित करती हुई धमसे गिर पड़ी ॥ ३४ ॥

गदां विनिहतां दृष्ट्वा धृष्टकेतुरमर्षणः ।
तोमरं व्यसृजद् वीरः शक्तिं च कनकोज्ज्वलाम् ॥ ३५ ॥

अपनी गदाको नष्ट हुई देख अमर्षमें भरे हुए वीर धृष्टकेतुने द्रोणाचार्यपर तोमर तथा स्वर्णभूषित तेजस्विनी शक्तिका प्रहार किया ॥ ३५ ॥

तोमरं पञ्चभिर्भित्त्वा शक्तिं चिच्छेद पञ्चभिः ।
तौ जग्मतुर्महीं छिन्नौ सर्पाविव गरुत्मता ॥ ३६ ॥

द्रोणाचार्यने तोमरको पाँच बाणोंसे छिन्न-भिन्न करके पाँच बाणोंद्वारा धृष्टकेतुकी शक्तिके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

वे दोनों अस्त्र गरुड़के द्वारा खण्डित किये हुए दो सर्पोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ३६ ॥

ततोऽस्य विशिखं तीक्ष्णं वधाय वधकाङ्क्षिणः ।
प्रेषयामास समरे भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ३७ ॥

तत्पश्चात् अपने वधकी इच्छा रखनेवाले धृष्टकेतुके वधके लिये प्रतापी द्रोणाचार्यने समरभूमिमें उसके ऊपर एक बाणका प्रहार किया ॥ ३७ ॥

स तस्य कवचं भित्त्वा हृदयं चामितौजसः ।
अभ्यगाद् धरणीं बाणो हंसः पद्मवनं यथा ॥ ३८ ॥

जैसे हंस कमलवनमें प्रवेश करता है, उसी प्रकार वह बाण अमित तेजस्वी धृष्टकेतुके कवच और वक्षःस्थलको विदीर्ण करके धरतीमें समा गया ॥ ३८ ॥

पतङ्गं हि ग्रसेच्चाषो यथा क्षुद्रं बुभुक्षितः ।
तथा द्रोणोऽग्रसच्छूरो धृष्टकेतुं महाहवे ॥ ३९ ॥

जैसे भूखा हुआ नीलकण्ठ छोटे फतिंगेको खा जाता है, उसी प्रकार शूरवीर द्रोणाचार्यने उस महासमरमें धृष्टकेतुको अपने बाणोंका ग्रास बना लिया ॥ ३९ ॥

निहते चेदिराजे तु तत् खण्डं पित्र्यमाविशत् ।
अमर्षवशमापन्नः पुत्रोऽस्य परमास्त्रवित् ॥ ४० ॥

चेदिराजके मारे जानेपर उत्तम अस्त्रोंका ज्ञाता उसका पुत्र अमर्षके वशीभूत हो पिताके स्थानपर आकर डट गया ॥

तमपि प्रहसन् द्रोणः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ।
महाव्याघ्रो महारण्ये मृगशावं यथा बली ॥ ४१ ॥

परंतु हँसते हुए द्रोणाचार्यने उसे भी अपने बाणोंद्वारा उसी प्रकार यमलोक पहुँचा दिया, जैसे बलवान् महाव्याघ्र विशाल वनमें किसी हिरनके बच्चेको दबोच लेता है ॥ ४१॥

तेषु प्रक्षीयमाणेषु पाण्डवेयेषु भारत ।
जरासंधसुतो वीरः स्वयं द्रोणमुपाद्रवत् ॥ ४२ ॥

भरतनन्दन ! उन पाण्डव योद्धाओंके इस प्रकार नष्ट होनेपर जरासंधके वीर पुत्र सहदेवने स्वयं ही द्रोणाचार्यपर धावा किया ॥ ४२ ॥

स तु द्रोणं महाबाहुः शरधाराभिराहवे ।
अदृश्यमकरोत् तूर्णं जलदो भास्करं यथा ॥ ४३ ॥

जैसे बादल आकाशमें सूर्यको ढक लेता है, उसी प्रकार महाबाहु सहदेवने युद्धस्थलमें अपने बाणोंकी धाराओंसे द्रोणाचार्यको तुरंत ही अदृश्य कर दिया ॥ ४३ ॥

तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ।
व्यसृजत् सायकांस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४४ ॥

उसकी वह फुर्ती देखकर क्षत्रियोंका संहार करनेवाले द्रोणाचार्यने शीघ्र ही उसपर सैकड़ों और सहस्रों बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ४४ ॥

छादयित्वा रणे द्रोणो रथस्थं रथिनां वरम् ।
जारासंधिं जघानाशु मिषतां सर्वधन्विनाम् ॥ ४५ ॥

इस प्रकार रणक्षेत्रमें द्रोणाचार्यने सम्पूर्ण धनुर्धरोंके देखते-देखते रथपर बैठे हुए रथियोंमें श्रेष्ठ जरासंधकुमारको अपने बाणोंद्वारा आच्छादित करके उसे शीघ्र ही कालके गालमें डाल दिया ॥ ४५ ॥

यो यः स्म नीयते तत्र तं द्रोणो ह्यन्तकोपमः ।
आदत्त सर्वभूतानि प्राप्ते काले यथान्तकः ॥ ४६ ॥

जैसे काल आनेपर यमराज समस्त प्राणियोंको ग्रस लेता है, उसी प्रकार कालके समान द्रोणाचार्यने जो-जो वीर उनके सामने पहुँचा, उसे-उसे मौतके हवाले कर दिया ॥ ४६ ॥

ततो द्रोणो महाराज नाम विश्राव्य संयुगे ।
शरैरनेकसाहस्रैः पाण्डवेयान् समावृणोत् ॥ ४७ ॥

महाराज ! तदनन्तर द्रोणाचार्यने युद्धस्थलमें अपना नाम सुनाकर अनेक सहस्र बाणोंद्वारा पाण्डवसैनिकोंको ढक दिया ॥

ते तु नामाङ्किता बाणा द्रोणेनास्ताः शिलाशिताः ।
नरान् नागान् हयांश्चैव निजघ्नुः शतशो मृधे ॥ ४८ ॥

द्रोणाचार्यके चलाये हुए वे बाण सानपर चढ़ाकर तेज किये गये थे । उनपर आचार्यके नाम खुदे हुए थे । उन्होंने समरभूमिमें सैकड़ों मनुष्यों, हाथियों और घोड़ोंका संहार कर डाला ॥ ४८ ॥

ते वध्यमाना द्रोणेन शक्रेणेव महासुराः ।
समकम्पन्त पञ्चाला गावः शीतार्दिता इव ॥ ४९ ॥

जैसे सर्दीसे पीड़ित हुई गौएँ थर-थर काँपती हैं और जैसे देवराज इन्द्रकी मार खाकर बड़े-बड़े असुर काँपने लगते हैं, उसी प्रकार द्रोणाचार्यके बाणोंसे विद्ध होकर पाञ्चाल सैनिक काँप उठे ॥ ४९ ॥

ततो निष्टानको घोरः पाण्डवानामजायत ।
द्रोणेन वध्यमानेषु सैन्येषु भरतर्षभ ॥ ५० ॥

भरतश्रेष्ठ ! फिर तो द्रोणाचार्यके द्वारा मारी जाती हुई पाण्डवोंकी सेनाओंमें घोर आर्तनाद होने लगा ॥ ५० ॥

प्रताप्यमानाः सूर्येण हन्यमानाश्च सायकैः ।
अन्वपद्यन्त पञ्चालास्तदा संत्रस्तचेतसः ॥ ५१ ॥

भरतनन्दन ! उस समय ऊपरसे तो सूर्य तपा रहे थे और रणभूमिमें द्रोणाचार्यके सायकोंकी मार पड़ रही थी । उस अवस्थामें पाञ्चाल वीर मन-ही-मन अत्यन्त भयभीत एवं व्याकुल हो उठे ॥ ५१ ॥

मोहिता बाणजालेन भारद्वाजेन संयुगे ।
ऊरुग्राहगृहीतानां पञ्चालानां महारथाः ॥ ५२ ॥

उस युद्धस्थलमें भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्यके बाण-समूहोंसे आहत हो पाञ्चाल महारथी मूर्च्छित हो रहे थे । उनकी जाँघें अकड़ गयी थीं ॥ ५२ ॥

चेदयश्च महाराज सृञ्जयाः काशिकोसलाः ।
अभ्यद्रवन्त संहृष्टा भारद्वाजं युयुत्सया ॥ ५३ ॥

महाराज ! उस समय चेदि, सृंजय, काशी और कोसल प्रदेशोंके सैनिक हर्ष और उत्साहमें भरकर युद्धकी अभिलाषासे द्रोणाचार्यपर टूट पड़े ॥ ५३ ॥

ब्रुवन्तश्च रणेऽन्योन्यं चेदिपञ्चालसृञ्जयाः ।
घ्नत द्रोणं घ्नत द्रोणमिति ते द्रोणमभ्ययुः ॥ ५४ ॥

'द्रोणाचार्यको मार डालो, द्रोणाचार्यको मार डालो' परस्पर ऐसा कहते हुए चेदि, पाञ्चाल और सृंजय वीरोंने द्रोणाचार्यपर धावा किया ॥ ५४ ॥

यतन्तः पुरुषव्याघ्राः सर्वशक्त्या महाद्युतिम् ।
निनीषवो रणे द्रोणं यमस्य सदनं प्रति ॥ ५५ ॥

वे पुरुषसिंह वीर समराङ्गणमें महातेजस्वी आचार्य द्रोणको यमराजके घर भेज देनेकी इच्छासे अपनी सारी शक्ति लगाकर प्रयत्न करने लगे ॥ ५५ ॥

यतमानांस्तु तान् वीरान् भारद्वाजः शिलीमुखैः ।
यमाय प्रेषयामास चेदिमुख्यान् विशेषतः ॥ ५६ ॥

इस प्रकार प्रयत्नमें लगे हुए उन वीरोंको विशेषतः चेदि देशके प्रमुख योद्धाओंको द्रोणाचार्यने अपने बाणोंद्वारा यमलोक भेज दिया ॥ ५६ ॥

तेषु प्रक्षीयमाणेषु चेदिमुख्येषु सर्वशः ।
पञ्चालाः समकम्पन्त द्रोणसायकपीडिताः ॥ ५७ ॥

चेदि देशके प्रधान वीर जब इस प्रकार नष्ट होने लगे, तब द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीड़ित हुए पाञ्चाल योद्धा थर-थर काँपने लगे ॥ ५७ ॥

प्राक्रोशन् भीमसेनं ते धृष्टद्युम्नं च भारत ।
दृष्ट्वा द्रोणस्य कर्माणि तथारूपाणि मारिष ॥ ५८ ॥

माननीय भरतनन्दन ! वे द्रोणके वैसे पराक्रमको देखकर भीमसेन तथा धृष्टद्युम्नको पुकारने लगे ॥ ५८ ॥

ब्राह्मणेन तपो नूनं चरितं दुश्चरं महत् ।
तथा हि युधि संक्रुद्धो दहति क्षत्रियर्षभान् ॥ ५९ ॥

और परस्पर कहने लगे—'इस ब्राह्मणने निश्चय ही कोई बड़ी भारी दुष्कर तपस्या की है, तभी तो यह युद्धमें अत्यन्त कुपित होकर श्रेष्ठ क्षत्रियोंको दग्ध कर रहा है ॥ ५९ ॥

धर्मो युद्धं क्षत्रियस्य ब्राह्मणस्य परं तपः ।
तपस्वी कृतविद्यश्च प्रेक्षितेनापि निर्दहेत् ॥ ६० ॥

'युद्ध करना तो क्षत्रियका धर्म है । तप करना ही ब्राह्मणका उत्तम धर्म माना गया है । यह तपस्वी और अस्त्रविद्याका विद्वान् ब्राह्मण अपने दृष्टिपातमात्रसे दग्ध कर सकता है' ॥

द्रोणाग्निमस्त्रसंस्पर्शं प्रविष्टाः क्षत्रियर्षभाः ।
बहवो दुस्तरं घोरं यत्रादह्यन्त भारत ॥ ६१ ॥

भारत ! उस युद्धमें बहुत-से क्षत्रियशिरोमणि वीर अस्त्ररूपी दाहक स्पर्शवाले द्रोणाचार्यरूपी भयंकर एवं दुस्तर अग्निमें प्रविष्ट होकर भस्म हो गये ॥ ६१ ॥

यथाबलं यथोत्साहं यथासत्त्वं महाद्युतिः ।
मोहयन् सर्वभूतानि द्रोणो हन्ति बलानि नः ॥ ६२ ॥

पाञ्चाल सैनिक कहने लगे—'महातेजस्वी द्रोण अपने बल, उत्साह और धैर्यके अनुसार समस्त प्राणियोंको मोहित करते हुए हमारी सेनाओंका संहार कर रहे हैं' ॥ ६२ ॥

तेषां तद् वचनं श्रुत्वा क्षत्रधर्मा व्यवस्थितः ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद क्षत्रधर्मा महाबलः ॥ ६३ ॥
क्रोधसंविग्नमनसो द्रोणस्य सशरं धनुः ।

उनकी यह बात सुनकर क्षत्रधर्मा युद्धके लिये द्रोणाचार्यके सामने आकर खड़ा हो गया । उस महाबली वीरने अर्धचन्द्राकार बाण मारकर क्रोधसे उद्विग्न मनवाले द्रोणाचार्यके धनुष और बाणको काट दिया ॥ ६३½ ॥

स संरब्धतरो भूत्वा द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ६४ ॥
अन्यत् कार्मुकमादाय भास्वरं वेगवत्तरम् ।
तत्राधाय शरं तीक्ष्णं परानीकविशातनम् ॥ ६५ ॥
आकर्णपूर्णमाचार्यो बलवानभ्यवासृजत् ।
स हत्वा क्षत्रधर्माणं जगाम धरणीतलम् ॥ ६६ ॥

इससे क्षत्रियोंका मर्दन करनेवाले द्रोणाचार्य अत्यन्त कुपित हो उठे और अत्यन्त वेगशाली तथा प्रकाशमान दूसरा धनुष हाथमें लेकर उन्होंने एक तीखा बाण अपने धनुषपर रक्खा, जो शत्रुसेनाका विनाश करनेवाला था । बलवान् आचार्यने कानतक धनुषको खींचकर उस बाणको छोड़ दिया । वह बाण क्षत्रधर्माका वध करके धरतीमें समा गया ॥ ६४–६६ ॥

स भिन्नहृदयो वाहान्न्यपतन्मेदिनीतले ।
ततः सैन्यान्यकम्पन्त धृष्टद्युम्नसुते हते ॥ ६७ ॥

क्षत्रधर्मा हृदय विदीर्ण हो जानेके कारण रथसे पृथ्वीपर गिर पड़ा । इस प्रकार धृष्टद्युम्नकुमारके मारे जानेपर सारी सेनाएँ भयसे काँपने लगीं ॥ ६७ ॥

अथ द्रोणं समारोहच्चेकितानो महाबलः ।
स द्रोणं दशभिर्विद्ध्वा प्रत्यविद्ध्यत् स्तनान्तरे ॥ ६८ ॥
चतुर्भिः सारथिं चास्य चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।

तदनन्तर महाबली चेकितानने द्रोणाचार्यपर चढ़ाई की । उन्होंने दस बाणोंसे द्रोणको घायल करके उनकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी । साथ ही चार बाणोंसे उनके सारथिको और चार ही बाणोंद्वारा उनके चारों घोड़ोंको भी बींध डाला ॥ ६८ ॥

तमाचार्यस्त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ६९ ॥
ध्वजं सप्तभिरुन्मथ्य यन्तारमवधीत् त्रिभिः ।

तब आचार्यने उनकी दोनों भुजाओं और छातीमें कुल तीन बाण मारे। फिर सात सायकोंद्वारा उनकी ध्वजाके टुकड़े-टुकड़े करके तीन बाणोंसे सारथिका वध कर दिया ६९½

तस्य सूते हते तेऽश्वा रथमादाय विद्रुताः ॥ ७० ॥
समरे शरसंवीता भारद्वाजेन मारिष ।

चेकितानके सारथिके मारे जानेपर वे घोड़े उनका रथ लेकर भाग चले। आर्य ! द्रोणाचार्यने समराङ्गणमें उनके शरीरोंको बाणोंसे भर दिया था ॥ ७०½ ॥

चेकितानरथं दृष्ट्वा हताश्वं हतसारथिम् ॥ ७१ ॥
तान् समेतान् रणे शूरांश्चेदिपञ्चालसृञ्जयान् ।
समन्ताद् द्रावयन् द्रोणो बह्वशोभत मारिष ॥ ७२ ॥

जिसके घोड़े और सारथि मार दिये गये थे, चेकितानके उस रथको देखकर तथा रणक्षेत्रमें एकत्र हुए चेदि, पाञ्चाल तथा सृंजय वीरोंपर दृष्टिपात करके द्रोणाचार्यने उन सबको चारों ओर भगा दिया। आर्य ! उस समय उनकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ७१-७२ ॥

आकर्णपलितः श्यामो वयसाशीतिपञ्चकः ।
रणे पर्यचरद् द्रोणो वृद्धः षोडशवर्षवत् ॥ ७३ ॥

जिनके कानतकके बाल पक गये थे, शरीरकी कान्ति श्याम थी तथा जो पचासी (या चार सौ) वर्षोंकी अवस्थाके बूढ़े थे, वे द्रोणाचार्य रणक्षेत्रमें सोलह वर्षके नवजवानकी भाँति विचर रहे थे ॥ ७३ ॥

अथ द्रोणं महाराज विचरन्तमभीतवत् ।
वज्रहस्तममन्यन्त शत्रवः शत्रुसूदनम् ॥ ७४ ॥

महाराज ! रणभूमिमें निर्भय-से विचरते हुए शत्रुसूदन द्रोणको शत्रुओंने वज्रधारी इन्द्र समझा ॥ ७४ ॥

ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्द्रुपदो बुद्धिमान् नृप ।
लुब्धोऽयं क्षत्रियान् हन्ति व्याघ्रः क्षुद्रमृगानिव ॥ ७५ ॥

नरेश्वर ! उस समय महाबाहु बुद्धिमान् राजा द्रुपदने कहा—'जैसे बाघ छोटे मृगको मारता है, उसी प्रकार यह व्याघ-तुल्य ब्राह्मण क्षत्रियोंका संहार कर रहा है ॥ ७५ ॥

कृच्छ्रान् दुर्योधनो लोकान् पापः प्राप्स्यति दुर्मतिः ।
यस्य लोभाद् विनिहताः समरे क्षत्रियर्षभाः ॥ ७६ ॥

'दुर्बुद्धि पापी दुर्योधन अत्यन्त कष्टप्रद लोकोंमें जायगा, जिसके लोभसे इस समराङ्गणमें बहुत से क्षत्रियशिरोमणि वीर मारे गये हैं ॥ ७६ ॥

शतशः शेरते भूमौ निकृत्ता गोवृषा इव ।
रुधिरेण परीताङ्गाः श्वशृगालादनीकृताः ॥ ७७ ॥

'सैकड़ों योद्धा कटकर गाय-बैलोंके समान धरतीपर सो रहे हैं। इन सबके शरीर खूनसे लथपथ हो गये हैं और ये कुत्तों तथा सियारोंके भोजन बन गये हैं' ॥ ७७ ॥

एवमुक्त्वा महाराज द्रुपदोऽक्षौहिणीपतिः ।
पुरस्कृत्य रणे पार्थान् द्रोणमभ्यद्रवद् द्रुतम् ॥ ७८ ॥

महाराज ! ऐसा कहकर एक अक्षौहिणी सेनाके स्वामी राजा द्रुपदने रणक्षेत्रमें कुन्तीके पुत्रोंको आगे करके तुरंत ही द्रोणाचार्यपर धावा बोल दिया ॥ ७८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणपराक्रमे पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें द्रोणपराक्रमविषयक एक सौ पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२५ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ७८½ श्लोक हैं)

षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

युधिष्ठिरका चिन्तित होकर भीमसेनको अर्जुन और सात्यकिका पता लगानेके लिये भेजना

संजय उवाच

व्यूहेष्वालोड्यमानेषु पाण्डवानां ततस्ततः ।
सुदूरमन्वयुः पार्थाः पञ्चालाः सह सोमकैः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! जब द्रोणाचार्य पाण्डवोंके व्यूहोंको इस प्रकार जहाँ-तहाँसे रौंदने लगे, तब पार्थ, पाञ्चाल तथा सोमक योद्धा उनसे बहुत दूर हट गये ॥ १ ॥

वर्तमाने तथा रौद्रे संग्रामे लोमहर्षणे ।
संक्षये जगतस्तीव्रे युगान्त इव भारत ॥ २ ॥

भरतनन्दन ! वह रोमाञ्चकारी भयंकर संग्राम प्रलयकालमें होनेवाले जगत्के भीषण संहार-सा उपस्थित हुआ था ॥२॥

द्रोणे युधि पराक्रान्ते नर्दमाने मुहुर्मुहुः ।
पञ्चालेषु च क्षीणेषु वध्यमानेषु पाण्डुषु ॥ ३ ॥
नापश्यच्छरणं किञ्चिद् धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
चिन्तयामास राजेन्द्र कथमेतद् भविष्यति ॥ ४ ॥

जब द्रोणाचार्य युद्धमें पराक्रम प्रकट करके बारंबार गर्जना कर रहे थे, पाञ्चाल वीरोंका विनाश हो रहा था और पाण्डव सैनिक मारे जा रहे थे, उस समय धर्मराज युधिष्ठिरको कोई भी अपना आश्रय या रक्षक नहीं दिखायी दिया। राजेन्द्र ! वे सोचने लगे कि यह कैसे होगा ? ॥ ३-४ ॥

ततो वीक्ष्य दिशः सर्वाः सव्यसाचिदिदृक्षया ।
युधिष्ठिरो ददर्शाथ नैव पार्थं न माधवम् ॥ ५ ॥

तदनन्तर युधिष्ठिरने सव्यसाची अर्जुनको देखनेकी इच्छासे सम्पूर्ण दिशाओंमें दृष्टि दौड़ायी; परंतु उन्हें कहीं भी अर्जुन और सात्यकि नहीं दिखायी दिये ॥ ५ ॥

सोऽपश्यन् नरशार्दूलं वानरर्षभलक्षणम् ।
गाण्डीवस्य च निर्घोषमशृण्वन् व्यथितेन्द्रियः ॥ ६ ॥

वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌के चिह्नसे युक्त ध्वजवाले पुरुषसिंह अर्जुनको न देखकर और उनके गाण्डीवका गम्भीर घोष न सुनकर उनकी सारी इन्द्रियाँ व्यथित हो उठीं ॥ ६ ॥

अपश्यन् सात्यकिं चापि वृष्णीनां प्रवरं रथम् ।
चिन्तयाभिपरीताङ्गो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ७ ॥

वृष्णिवंशके प्रमुख महारथी सात्यकिको भी न देखनेके कारण धर्मराज युधिष्ठिरका एक-एक अंग चिन्ताकी आगसे संतप्त हो उठा ॥ ७ ॥

नाध्यगच्छत् तदा शान्तिं तावपश्यन् नरोत्तमौ ।
लोकोपक्रोशभीरुत्वाद् धर्मराजो महामनाः ॥ ८ ॥

महामनस्वी धर्मराज युधिष्ठिर लोकनिन्दाके डरसे बहुत डरते थे । अतः नरश्रेष्ठ अर्जुन और सात्यकिको न देखनेसे उस समय उन्हें तनिक भी शान्ति नहीं मिली ॥ ८ ॥

अचिन्तयन्महाबाहुः शैनेयस्य रथं प्रति ।
पदवीं प्रेषितश्चैव फाल्गुनस्य मया रणे ॥ ९ ॥
शैनेयः सात्यकिः सत्यो मित्राणामभयंकरः ।
तदिदं ह्येकमेवासीद् द्विधा जातं ममाद्य वै ॥ १० ॥

महाबाहु युधिष्ठिर सात्यकिके रथके विषयमें मन-ही-मन इस प्रकार चिन्ता करने लगे—'अहो ! मैंने ही रणक्षेत्रमें मित्रोंको अभय देनेवाले सत्यवादी शिनिपौत्र सात्यकिको अर्जुनके मार्गपर जानेके लिये भेजा था । इसलिये यह मेरा हृदय जो पहले एक हीकी चिन्तामें निमग्न था, अब दो व्यक्तियोंके लिये चिन्तित होकर दो भागोंमें बँट गया है ९-१०

सात्यकिश्च हि विज्ञेयः पाण्डवश्च धनंजयः ।
सात्यकिं प्रेषयित्वा तु पाण्डवस्य पदानुगम् ॥ ११ ॥
सात्वतस्यापि कं युद्धे प्रेषयिष्ये पदानुगम् ।

'इस समय सात्यकिका भी पता लगाना चाहिये और पाण्डुपुत्र अर्जुनका भी । मैंने पाण्डुपुत्र अर्जुनके पीछे तो सात्यकिको भेज दिया । अब सात्यकिके पीछे किसको युद्धभूमिमें भेजूँगा ? ॥ ११½ ॥

करिष्यामि प्रयत्नेन भ्रातुरन्वेषणं यदि ॥ १२ ॥
युयुधानमनन्विष्य लोको मां गर्हयिष्यति ।

'यदि मैं युयुधानकी खोज न कराकर प्रयत्नपूर्वक केवल अपने भाई अर्जुनका ही अन्वेषण करूँगा तो संसार मेरी निन्दा करेगा ॥ १२½ ॥

भ्रातुरन्वेषणं कृत्वा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १३ ॥
परित्यजति वार्ष्णेयं सात्यकिं सत्यविक्रमम् ।

'सब लोग यही कहेंगे कि धर्मपुत्र युधिष्ठिर अपने भाईकी खोज करके वृष्णिवंशी वीर सत्यपराक्रमी सात्यकिकी उपेक्षा कर रहे हैं ॥ १३½ ॥

लोकापवादभीरुत्वात् सोऽहं पार्थं वृकोदरम् ॥ १४ ॥
पदवीं प्रेषयिष्यामि माधवस्य महात्मनः ।

'मुझे लोकनिन्दासे बड़ा भय मालूम होता है । अतः कुन्तीनन्दन भीमसेनको मैं महामनस्वी सात्यकिका पता लगानेके लिये भेजूँगा ॥ १४½ ॥

यथैव च मम प्रीतिरर्जुने शत्रुसूदने ॥ १५ ॥
तथैव वृष्णिवीरेऽपि सात्वते युद्धदुर्मदे ।
अतिभारे नियुक्तश्च मया शैनेयनन्दनः ॥ १६ ॥

'शत्रुसूदन अर्जुनपर जैसा मेरा प्रेम है, वैसा ही रणदुर्मद वृष्णिवंशी वीर सात्यकिपर भी है । मैंने शिनिवंशका आनन्द बढ़ानेवाले सात्यकिको महान् कार्यभार सौंप रक्खा था १५-१६

स तु मित्रोपरोधेन गौरवात्तु महाबलः ।
प्रविष्टो भारतीं सेनां मकरः सागरं यथा ॥ १७ ॥

'उन महाबली सात्यकिने मित्रके अनुरोधसे और अपने लिये गौरवकी बात समझकर समुद्रमें मगरकी भाँति कौरव-सेनामें प्रवेश किया था ॥ १७ ॥

असौ हि श्रूयते शब्दः शूराणामनिवर्तिनाम् ।
मिथः संयुध्यमानानां वृष्णिवीरेण धीमता ॥ १८ ॥

'बुद्धिमान् वृष्णिवंशी वीर सात्यकिके साथ परस्पर युद्ध करनेवाले उन शूरवीरोंका वह महान् कोलाहल सुनायी पड़ता है, जो युद्धसे कभी पीछे नहीं हटते हैं ॥ १८ ॥

प्राप्तकालं सुबलवन्निश्चितं बहुधा हि मे ।
तत्रैव पाण्डवेयस्य भीमसेनस्य धन्विनः ॥ १९ ॥
गमनं रोचते मह्यं यत्र यातौ महारथौ ।

'इस समय जो कर्तव्य प्राप्त है, उसपर मैंने अनेक प्रकारसे प्रबल विचार कर लिया है । जहाँ महारथी अर्जुन और सात्यकि गये हैं, वहीं धनुर्धर वीर पाण्डुनन्दन भीमसेनको भी जाना चाहिये—यही मुझे ठीक जँचता है ॥ १९½ ॥

न चाप्यसह्यं भीमस्य विद्यते भुवि किंचन ॥ २० ॥
शक्तो ह्येष रणे यत्तः पृथिव्यां सर्वधन्विनाम् ।
स्वबाहुबलमास्थाय प्रतिव्यूहितुमञ्जसा ॥ २१ ॥

'इस भूतलपर कोई ऐसा कार्य नहीं है, जो भीमसेनके लिये असह्य हो । ये अपने बाहुबलका आश्रय ले रणक्षेत्रमें प्रयत्नशील होकर भूमण्डलके समस्त धनुर्धरोंका अनायास ही सामना करनेमें समर्थ हैं ॥ २०-२१ ॥

यस्य बाहुबलं सर्वे समाश्रित्य महात्मनः ।
वनवासान्निवृत्ताः स्म न च युद्धेषु निर्जिताः ॥ २२ ॥

'इस महामनस्वी वीरके बाहुबलका आश्रय लेकर हम सब भाई वनवाससे सकुशल लौटे हैं, और युद्धोंमें कभी पराजित नहीं हुए हैं ॥ २२ ॥

इतो गते भीमसेने सात्वतं प्रति पाण्डवे ।

सनाथौ भवितारौ हि युधि सात्वतफाल्गुनौ ॥ २३ ॥

'यहाँसे सात्यकिके पथपर पाण्डुपुत्र भीमसेनके जानेपर युद्धस्थलमें डटे हुए सात्यकि और अर्जुन सनाथ हो जायँगे ॥

कामं त्वशोचनीयौ तौ रणे सात्वतफाल्गुनौ ।
रक्षितौ वासुदेवेन स्वयं शस्त्रविशारदौ ॥ २४ ॥

'निश्चय ही सात्यकि और अर्जुन रणक्षेत्रमें शोकके योग्य नहीं हैं; क्योंकि वे दोनों स्वयं तो शस्त्रविद्यामें कुशल हैं ही, भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा भी पूर्णरूपसे सुरक्षित हैं ॥२४॥

अवश्यं तु मया कार्यमात्मनः शोकनाशनम् ।
तस्माद् भीमं नियोक्ष्यामि सात्वतस्य पदानुगम् ॥ २५ ॥

'तथापि मुझे अपने मानसिक दुःखको निवारण करनेके लिये ऐसी व्यवस्था अवश्य करनी चाहिये । इसलिये मैं भीमसेनको सात्यकिके मार्गका अनुगामी अवश्य बनाऊँगा ॥२५॥

ततः प्रतिकृतं मन्ये विधानं सात्यकिं प्रति ।
एवं निश्चित्य मनसा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २६ ॥
यन्तारमब्रवीद् राजा भीमं प्रति नयस्व माम् ।

'ऐसा करके ही मैं समझूँगा कि मैंने सात्यकिके प्रति समुचित कर्तव्यका पालन किया है ।' मन-ही-मन ऐसा निश्चय करके धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने अपने सारथिसे कहा—'मुझे भीमके पास ले चलो' ॥ २६½ ॥

धर्मराजवचः श्रुत्वा सारथिर्हयकोविदः ॥ २७ ॥
रथं हेमपरिष्कारं भीमान्तिकमुपानयत् ।

धर्मराजकी बात सुनकर अश्वसंचालनमें कुशल सारथिने उनके सुवर्णभूषित रथको भीमसेनके निकट पहुँचा दिया ॥ २७½ ॥

भीमसेनमनुप्राप्य प्राप्तकालमचिन्तयत् ॥ २८ ॥
कश्मलं प्राविशद् राजा बहु तत्र समादिशन् ।

भीमसेनके पास पहुँचकर राजा युधिष्ठिर समयोचित कर्तव्यका चिन्तन करने लगे और वहाँ बहुत कुछ कहते हुए वे मूर्छित-से हो गये ॥ २८½ ॥

स कश्मलसमाविष्टो भीममाहूय पार्थिवः ॥ २९ ॥
अब्रवीद् वचनं राजन् कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।

राजन् ! इस प्रकार मोहाविष्ट हुए कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरने भीमसेनको सम्बोधित करके इस प्रकार कहा—२९½

यः सदेवान् सगन्धर्वान् दैत्यांश्चैकरथोऽजयत् ॥ ३० ॥
तस्य लक्ष्म न पश्यामि भीमसेनानुजस्य ते ।

'भीमसेन ! जिन्होंने एकमात्र रथकी सहायतासे देवताओं-सहित गन्धर्वों और दैत्योंपर भी विजय पायी थी, उन्हीं तुम्हारे छोटे भाई अर्जुनका आज मुझे कोई चिह्न नहीं दिखायी देता है' ॥ ३०½ ॥

ततोऽब्रवीद् धर्मराजं भीमसेनस्तथागतम् ॥ ३१ ॥
नैवाद्राक्षं न चाश्रौषं तव कश्मलमीदृशम् ।

तब वैसी अवस्थामें पड़े हुए धर्मराज युधिष्ठिरसे भीमसेनने कहा—'राजन् ! आपकी ऐसी घबराहट तो पहले मैंने न कभी देखी थी और न सुनी ही थी ॥ ३१½ ॥

पुरातिदुःखदीर्णानां भवान् गतिरभूद्धि नः ॥ ३२ ॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजेन्द्र शाधि किं करवाणि ते ।

'पहले जब कभी हमलोग अत्यन्त दुःखसे अधीर हो उठते थे, तब आप ही हमें सहारा दिया करते थे । राजेन्द्र ! उठिये, उठिये, आज्ञा दीजिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? ॥ ३२½ ॥

न ह्यसाध्यमकार्यं वा विद्यते मम मानद ॥ ३३ ॥
आज्ञापय कुरुश्रेष्ठ मा च शोके मनः कृथाः ।

'मानद ! इस संसारमें ऐसा कोई कार्य नहीं है, जो मेरे लिये असाध्य हो अथवा जिसे मैं आपकी आज्ञा मिलनेपर न करूँ । कुरुश्रेष्ठ ! आज्ञा दीजिये । अपने मनको शोकमें न डालिये' ॥ ३३½ ॥

तमब्रवीदश्रुपूर्णः कृष्णसर्प इव श्वसन् ॥ ३४ ॥
भीमसेनमिदं वाक्यं प्रम्लानवदनो नृपः ।

तब राजा युधिष्ठिर म्लानमुख हो काले सर्पके समान लंबी साँसें खींचते हुए नेत्रोंमें आँसू भरकर भीमसेनसे इस प्रकार बोले—॥ ३४½ ॥

यथा शङ्खस्य निर्घोषः पाञ्चजन्यस्य श्रूयते ॥ ३५ ॥
पूरितो वासुदेवेन संरब्धेन यशस्विना ।
नूनमद्य हतः शेते तव भ्राता धनंजयः ॥ ३६ ॥

'भैया ! इस समय पाञ्चजन्य शङ्खकी जैसी ध्वनि सुनायी देती है और यशस्वी वासुदेवने क्रोधमें भरकर उस शङ्खको जिस तरह बजाया है, उससे जान पड़ता है, आज तुम्हारा भाई अर्जुन निश्चय ही मारा जाकर रणभूमिमें सो रहा है ॥

तस्मिन् विनिहते नूनं युध्यतेऽसौ जनार्दनः ।
यस्य सत्त्ववतो वीर्यं ह्युपजीवन्ति पाण्डवाः ॥ ३७ ॥
यं भयेष्वभिगच्छन्ति सहस्राक्षमिवामराः ।
स शूरः सैन्धवप्रेप्सुरन्वयाद् भारतीं चमूम् ॥ ३८ ॥

'उसके मारे जानेपर स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही युद्ध कर रहे हैं । जिस शक्तिशाली वीरके पराक्रमका भरोसा करके हम समस्त पाण्डव जी रहे हैं, भयके अवसरोंपर हम उसी प्रकार जिसका आश्रय लेते हैं, जैसे देवता देवराज इन्द्रका, वही शूरवीर अर्जुन सिंधुराज जयद्रथको अपने वशमें करनेके लिये कौरव-सेनामें घुसा है ॥ ३७-३८ ॥

तस्य वै गमनं विद्मो भीम नावर्तनं पुनः ।
श्यामो युवा गुडाकेशो दर्शनीयो महारथः ॥ ३९ ॥

'भीमसेन ! हमें उसके जानेका ही पता है, पुनः लौटनेका नहीं । अर्जुनकी अङ्गकान्ति श्याम है । वह नवयुवक, निद्रापर विजय पानेवाला, देखनेमें सुन्दर और महारथी है ॥

व्यूढोरस्को महाबाहुर्मत्तद्विरदविक्रमः ।
चकोरनेत्रस्ताम्रास्यो द्विषतां भयवर्धनः ॥ ४० ॥

'उसकी छाती चौड़ी और भुजाएँ बड़ी बड़ी हैं। उसका पराक्रम मतवाले हाथीके समान है, आँखें चकोरके नेत्रोंके समान विशाल हैं और उसके मुख एवं ओष्ठ लाल-लाल हैं। वह शत्रुओंका भय बढ़ाता है ॥ ४० ॥

(मम प्रियहितार्थं च शक्रलोकादिहागतः ।
वृद्धोपसेवी धृतिमान् कृतज्ञः सत्यसङ्गरः ॥
प्रविष्टो महतीं सेनामपर्यन्तां धनंजयः ।
प्रविष्टे च चमूं घोरामर्जुने शत्रुनाशने ॥
प्रेषितः सात्वतो वीरः फाल्गुनस्य पदानुगः ।
तस्याभिगमनं जाने भीम नावर्तनं पुनः ॥)

'अर्जुन मेरे प्रिय और हितके लिये इन्द्रलोकसे यहाँ आया है। वह वृद्धजनोंका सेवक, धैर्यवान्, कृतज्ञ तथा सत्यप्रतिज्ञ है। वह धनंजय शत्रुओंकी विशाल एवं अपार सेनामें घुसा है। शत्रुनाशन अर्जुनके उस भयंकर सेनामें प्रवेश करनेपर मैंने सात्वतवीर सात्यकिको उसके चरणोंका अनुगामी बनाकर भेजा है। भीमसेन! सात्यकिके भी मुझे जानेका ही पता है, लौटनेका नहीं॥

तदिदं मम भद्रं ते शोकस्थानमरिंदम ।
अर्जुनार्थे महाबाहो सात्वतस्य च कारणात् ॥ ४१ ॥
वर्धते हविषेवाग्निरिध्यमानः पुनः पुनः ।
तस्य लक्ष्म न पश्यामि तेन विन्दामि कश्मलम् ॥ ४२ ॥

'शत्रुदमन महाबाहु भीम! तुम्हारा कल्याण हो। यही मेरे शोकका कारण है। अर्जुन और सात्यकिके लिये ही मैं दुखी हो रहा हूँ। जैसे बारंबार घी डालनेसे आग प्रज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार मेरी शोकाग्नि बढ़ती जाती है। मैं अर्जुनका कोई चिह्न नहीं देखता, इसीसे मुझपर मोह छा रहा है ॥ ४१-४२ ॥

तं विद्धि पुरुषव्याघ्रं सात्वतं च महारथम् ।
स तं महारथं पश्चादनुयातस्तवानुजम् ॥ ४३ ॥

'उन सात्वतवंशी पुरुषसिंह महारथी सात्यकिका भी पता लगाओ। वे तुम्हारे छोटे भाई महारथी अर्जुनके पीछे गये हैं॥

तमपश्यन्महाबाहुमहं विन्दामि कश्मलम् ।
पार्थे तस्मिन् हते चैव युध्यते नूनमग्रणीः ॥ ४४ ॥

'उन महाबाहु सात्यकिको न देखनेके कारण भी मैं भारी घबराहटमें पड़ गया हूँ। पार्थके मारे जानेपर अवश्य ही सात्यकि भी आगे होकर युद्ध कर रहे हैं ॥ ४४ ॥

सहायो नास्य वै कश्चित् तेन विन्दामि कश्मलम्।
तस्मिन् कृष्णो हते नूनं युध्यते युद्धकोविदः ॥ ४५ ॥

'उनका कोई दूसरा सहायक नहीं है। इससे मुझे बड़ी घबराहट हो रही है। निश्चय ही उनके मारे जानेपर युद्धकलाकोविद भगवान् श्रीकृष्ण युद्ध कर रहे हैं ॥ ४५ ॥

न हि मे शुध्यते भावस्तयोरेव परंतप ।
स तत्र गच्छ कौन्तेय यत्र यातो धनंजयः ॥ ४६ ॥
सात्यकिश्च महावीर्यः कर्तव्यं यदि मन्यसे ।
वचनं मम धर्मज्ञ भ्राता ज्येष्ठो भवामि ते ॥ ४७ ॥
न तेऽर्जुनस्तथा ज्ञेयो ज्ञातव्यः सात्यकिर्यथा ।
चिकीर्षुर्मत्प्रियं पार्थ स यातः सव्यसाचिनः ।
पदवीं दुर्गमां घोरामगम्यामकृतात्मभिः ॥ ४८ ॥

'परंतप! अर्जुन और सात्यकिके जीवनके विषयमें जो मेरे मनमें संशय उत्पन्न हो गया है, वह दूर नहीं हो रहा है। अतः कुन्तीनन्दन! तुम वहीं जाओ, जहाँ अर्जुन और महापराक्रमी सात्यकि गये हैं। धर्मज्ञ! मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूँ। यदि तुम मेरी आज्ञाका पालन करना उचित मानते हो तो ऐसा ही करो। तुम्हें अर्जुनकी उतनी खोज नहीं करनी है, जितनी सात्यकिकी। पार्थ! सात्यकिने मेरा प्रिय करनेकी इच्छासे सव्यसाची अर्जुनके उस दुर्गम एवं भयंकर पथका अनुसरण किया है, जो अजितात्मा पुरुषोंके लिये अगम्य है ॥ ४६-४८ ॥

दृष्ट्वा कुशलिनौ कृष्णौ सात्वतं चैव सात्यकिम् ।
संविदं चैव कुर्यास्त्वं सिंहनादेन पाण्डव ॥ ४९ ॥

'पाण्डुनन्दन! जब तुम भगवान् श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा सात्वतवंशी वीर सात्यकिको सकुशल देखना, तब उच्च स्वरसे सिंहनाद करके मुझे इसकी सूचना दे देना' ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरचिन्तायां षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें युधिष्ठिरकी चिन्ताविषयक एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२६॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३ श्लोक मिलाकर कुल ५२ श्लोक हैं)

सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेनका कौरवसेनामें प्रवेश, द्रोणाचार्यके सारथिसहित रथका चूर्ण कर देना तथा उनके द्वारा धृतराष्ट्रके ग्यारह पुत्रोंका वध; अवशिष्ट पुत्रोंसहित सेनाका पलायन

भीमसेन उवाच

ब्रह्मेशानेन्द्रवरुणानवहद् यः पुरा रथः ।
तमास्थाय गतौ कृष्णौ न तयोर्विद्यते भयम् ॥ १ ॥

भीमसेनने कहा—महाराज! जो रथ पहले ब्रह्मा,

महादेव, इन्द्र और वरुणकी सवारीमें आ चुका है, उसीपर बैठकर श्रीकृष्ण और अर्जुन युद्धके लिये गये हैं। अतः उनके लिये तनिक भी भय नहीं है ॥ १ ॥

आज्ञां तु शिरसा बिभ्रदेष गच्छामि मा शुचः।
समेत्य तान् नरव्याघ्रांस्तव दास्यामि संविदम् ॥ २ ॥

तथापि आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके यह मैं जा रहा हूँ। आप शोक या चिन्ता न करें। मैं उन पुरुषसिंहोंसे मिलकर आपको सूचना दूँगा ॥ २ ॥

संजय उवाच

एतावदुक्त्वा प्रययौ परिदाय युधिष्ठिरम्।
धृष्टद्युम्नाय बलवान् सुहृद्भ्यश्च पुनः पुनः ॥ ३ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! ऐसा कहकर बलवान् भीमसेन राजा युधिष्ठिरको धृष्टद्युम्न तथा अन्य सुहृदोंकी देख-रेखमें सौंपकर वहाँसे चल दिये ॥ ३ ॥

धृष्टद्युम्नं चेदमाह भीमसेनो महाबलः।
विदितं ते महाबाहो यथा द्रोणो महारथः ॥ ४ ॥
ग्रहणे धर्मराजस्य सर्वोपायेन वर्तते।

जाते समय महाबली भीमसेनने धृष्टद्युम्नसे इस प्रकार कहा—'महाबाहो! तुम्हें तो यह मालूम ही है कि महारथी द्रोण सारे उपाय करके किस प्रकार धर्मराजको पकड़नेपर तुले हुए हैं ॥ ४½ ॥

न च मे गमने कृत्यं तादृक् पार्षत विद्यते ॥ ५ ॥
यादृशं रक्षणे राज्ञः कार्यमात्ययिकं हि नः।

'अतः द्रुपदनन्दन! मेरे लिये वहाँ जानेकी वैसी आवश्यकता नहीं है, जैसी यहाँ रहकर राजाकी रक्षा करनेकी है। यही हमलोगोंके लिये सबसे महान् कार्य है ॥५½॥

एवमुक्तोऽस्मि पार्थेन प्रतिवक्तुं न चोत्सहे ॥ ६ ॥
प्रयास्ये तत्र यत्रासौ मुमूर्षुः सैन्धवः स्थितः।
धर्मराजस्य वचने स्थातव्यमविशङ्कया ॥ ७ ॥

'परंतु जब कुन्तीनन्दन महाराजने इस प्रकार मुझे वहाँ जानेकी आज्ञा दे दी है, तब मैं उन्हें कोरा जवाब नहीं दे सकता—उनकी आज्ञा टाल नहीं सकता। अतः जहाँ मरणासन्न जयद्रथ खड़ा है, वहीं मैं जाऊँगा। मुझे बिना किसी संशयके धर्मराज युधिष्ठिरकी आज्ञाके अधीन रहना चाहिये॥

यास्यामि पदवीं भ्रातुः सात्वतस्य च धीमतः।
सोऽद्य यत्तो रणे पार्थ परिरक्ष युधिष्ठिरम् ॥ ८ ॥
एतद्धि सर्वकार्याणां परमं कृत्यमाहवे।

'अतः अब मैं भाई अर्जुन तथा बुद्धिमान् सात्यकिके पथका अनुसरण करूँगा। अब तुम सावधान हो प्रयत्नपूर्वक रणभूमिमें कुन्तीकुमार राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करो। इस युद्धस्थलमें यही हमारे लिये सब कार्योंसे बढ़कर महान् कार्य है' ॥ ८½ ॥

तमब्रवीन्महाराज धृष्टद्युम्नो वृकोदरम् ॥ ९ ॥
ईप्सितं ते करिष्यामि गच्छ पार्थाविचारयन्।

महाराज! यह सुनकर धृष्टद्युम्नने भीमसेनसे कहा—'कुन्तीनन्दन! तुम कुछ भी सोच-विचार न करके जाओ। मैं तुम्हारी इच्छाके अनुसार सब कार्य करूँगा ॥ ९½ ॥

नाहत्वा समरे द्रोणो धृष्टद्युम्नं कथञ्चन ॥ १० ॥
निग्रहं धर्मराजस्य प्रकरिष्यति संयुगे।

'द्रोणाचार्य संग्राममें धृष्टद्युम्नका वध किये बिना किसी प्रकार धर्मराजको कैद नहीं कर सकेंगे' ॥ १०½ ॥

ततो निक्षिप्य राजानं धृष्टद्युम्ने च पाण्डवम् ॥ ११ ॥
अभिवाद्य गुरुं ज्येष्ठं प्रययौ येन फाल्गुनः।

तब भीमसेन पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरको धृष्टद्युम्नके हाथमें सौंपकर अपने बड़े भाईको प्रणाम करके जिस मार्गसे अर्जुन गये थे, उसीपर चल दिये ॥ ११½ ॥

परिष्वक्तश्च कौन्तेयो धर्मराजेन भारत ॥ १२ ॥
आघ्रातश्च तथा मूर्ध्नि श्रावितश्चाशिषः शुभाः।

भारत! उस समय धर्मराज युधिष्ठिरने कुन्तीकुमार भीमसेनको गलेसे लगाया, उनका सिर सूँघा और उन्हें शुभ आशीर्वाद सुनाये ॥ १२½ ॥

कृत्वा प्रदक्षिणान् विप्रानर्चितांस्तुष्टमानसान् ॥ १३ ॥
आलभ्य मङ्गलान्यष्टौ पीत्वा कैरातकं मधु।
द्विगुणद्रविणो वीरो मदरक्तान्तलोचनः ॥ १४ ॥

तदनन्तर पूजित एवं संतुष्टचित्त हुए ब्राह्मणोंकी परिक्रमा करके आठ प्रकारकी माङ्गलिक वस्तुओंका स्पर्श[1] करनेके पश्चात् भीमसेनने कैरातक मधुका पान किया। फिर तो वीर भीमसेनका बल और उत्साह दुगुना हो गया, उनके नेत्र मदसे लाल हो गये थे ॥ १३-१४ ॥

विप्रैः कृतस्वस्त्ययनो विजयोत्पादसूचितः।
पश्यन्नेवात्मनो बुद्धिं विजयानन्दकारिणीम् ॥ १५ ॥

उस समय ब्राह्मणोंने स्वस्तिवाचन किया, जिससे विजय-लाभ सूचित होता था। उन्हें अपनी बुद्धि विजयानन्दका अनुभव करती-सी दिखायी दी ॥ १५ ॥

अनुलोमानिलैश्चाशु प्रदर्शितजयोदयः।
भीमसेनो महाबाहुः कवची शुभकुण्डली ॥ १६ ॥
साङ्गदः सतलत्राणः सरथो रथिनां वरः।

अनुकूल हवा चलकर उन्हें शीघ्र ही अवश्यम्भावी विजयकी सूचना देने लगी। रथियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु भीमसेन

1. अनलो गौर्हिरण्यं च दूर्वागोरोचनामृतम्।
अक्षतं दधि चेत्यष्टौ मङ्गलानि प्रचक्षते ॥
अग्नि, गौ, सुवर्ण, दूर्वा, गोरोचन, अमृत (घी), अक्षत और दही—इन आठ वस्तुओंको माङ्गलिक कहते हैं।

कवच, सुन्दर कुण्डल, बाजूबन्द और तलत्राण (दस्ताने) धारण करके रथपर आरूढ़ हो गये ॥ १६½ ॥

तस्य कार्ष्णायसं वर्म हेमचित्रं महर्द्धिमत् ॥ १७ ॥
विबभौ सर्वतः श्लिष्टं सविद्युदिव तोयदः ।

उनका काले लोहेका बना हुआ सुवर्णजटित बहुमूल्य कवच उनके सारे अङ्गोंमें सटकर बिजलीसहित मेघके समान सुशोभित हो रहा था ॥ १७½ ॥

पीतरक्तासितसितैर्वासोभिश्च सुवेष्टितः ॥ १८ ॥
कण्ठत्राणेन च बभौ सेन्द्रायुध इवाम्बुदः ।

लाल, पीले, काले और सफेद वस्त्रोंसे अपने शरीरको सुसज्जित करके कण्ठत्राण पहनकर वे इन्द्रधनुषयुक्त मेघके समान शोभा पा रहे थे ॥ १८½ ॥

प्रयाते भीमसेने तु तव सैन्यं युयुत्सया ॥ १९ ॥
पाञ्चजन्यरवो घोरः पुनरासीद् विशाम्पते ।

प्रजानाथ ! जब भीमसेन युद्धकी इच्छासे आपकी सेनाकी ओर प्रस्थित हुए, उस समय पुनः पाञ्चजन्य शङ्खकी भयंकर ध्वनि प्रकट हुई ॥ १९½ ॥

तं श्रुत्वा निनदं घोरं त्रैलोक्यत्रासनं महत् ॥ २० ॥
पुनर्भीमं महाबाहुं धर्मपुत्रोऽभ्यभाषत ।

त्रिलोकीको डरा देनेवाले उस घोर एवं महान् सिंहनाद-को सुनकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरने (जाते हुए) महाबाहु भीम-सेनसे पुनः इस प्रकार कहा—॥ २०½ ॥

एष वृष्णिप्रवीरेण ध्मातः सलिलजो भृशम् ॥ २१ ॥
पृथिवीं चान्तरिक्षं च विनादयति शङ्खराट् ।
नूनं व्यसनमापन्ने सुमहत् सव्यसाचिनि ॥ २२ ॥
कुरुभिर्युध्यते सार्धं सर्वैश्चक्रगदाधरः ।

'भीम ! देखो, यह वृष्णिवंशके प्रमुख वीर भगवान् श्रीकृष्णने बड़े जोरसे शङ्ख बजाया है । यह शङ्खराज इस समय पृथ्वी और आकाश दोनोंको अपनी ध्वनिसे परिपूर्ण किये देता है । निश्चय ही सव्यसाची अर्जुनके भारी संकट-में पड़ जानेपर चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण समस्त कौरवोंके साथ युद्ध कर रहे हैं ॥ २१–२२½ ॥

आह कुन्ती नूनमार्या पापमद्य निदर्शनम् ॥ २३ ॥
द्रौपदी च सुभद्रा च पश्यन्त्यौ सह बन्धुभिः ।

'आज अवश्य ही माता कुन्ती किसी दुःखद अपशकुन-की चर्चा करती होंगी । बन्धुओंसहित द्रौपदी और सुभद्रा भी कोई असगुन देख रही होंगी ॥ २३½ ॥

स भीम त्वरया युक्तो याहि यत्र धनंजयः ॥ २४ ॥
मुह्यन्तीव हि मे सर्वा धनंजयदिदृक्षया ।
दिशश्च प्रदिशः पार्थ सात्वतस्य च कारणात् ॥ २५ ॥

'अतः भीम ! तुम तुरंत ही जहाँ अर्जुन हैं, वहाँ जाओ । आज अर्जुनको देखनेके लिये मेरी सारी दिशाएँ मोहाच्छन्न-सी हो रही हैं । सात्यकिको न देख पानेके कारण भी मेरे लिये सारी दिशाओंमें अँधेरा छा गया है' ॥ २४-२५ ॥

गच्छ गच्छेति गुरुणा सोऽनुज्ञातो वृकोदरः ।
ततः पाण्डुसुतो राजन् भीमसेनः प्रतापवान् ॥ २६ ॥
बद्धगोधाङ्गुलित्राणः प्रगृहीतशरासनः ।
ज्येष्ठेन प्रहितो भ्रात्रा भ्राता भ्रातुः प्रियंकरः ॥ २७ ॥

राजन् ! इस प्रकार 'जाओ, जाओ' कहकर बड़े भाईके आज्ञा देनेपर उदरमें वृक नामक अग्निको धारण करनेवाले प्रतापी पाण्डुपुत्र भीमसेन गोहके चमड़ेके बने हुए दस्ताने पहनकर हाथमें धनुष ले वहाँसे जानेके लिये तैयार हुए । वे भाईका प्रिय करनेवाले भाई थे और बड़े भाईके भेजनेसे ही वहाँसे जानेको उद्यत हुए थे ॥ २६-२७ ॥

आहत्य दुन्दुभिं भीमः शङ्खं प्रध्माप्य चासकृत् ।
विनद्य सिंहनादेन ज्यां विकर्षन् पुनः पुनः ॥ २८ ॥

भीमसेनने बारंबार डंका पीटा और अनेक बार शङ्ख बजाकर बारंबार धनुषकी प्रत्यञ्चा खींचते हुए सिंहके दहाड़ने-के समान भयंकर गर्जना की ॥ २८ ॥

तेन शब्देन वीराणां पातयित्वा मनांस्युत ।
दर्शयन् घोरमात्मानममित्रान् सहसाभ्ययात् ॥ २९ ॥

उस तुमुल शब्दके द्वारा बड़े-बड़े वीरोंके दिल दहला-कर अपना भयंकर रूप दिखाते हुए उन्होंने सहसा शत्रुओं-पर धावा बोल दिया ॥ २९ ॥

तमूहुर्जवना दान्ता विरुवन्तो हयोत्तमाः ।
विशोकेनाभिसम्पन्ना मनोमारुतरंहसः ॥ ३० ॥

उस समय विशोक नामक सारथिके द्वारा संचालित होनेवाले, मन और वायुके समान वेगशाली तीव्रगामी और सुशिक्षित सुन्दर घोड़े हर्षसूचक शब्द करते हुए उनका भार वहन करते थे ॥ ३० ॥

आरुजन् विरुजन् पार्थो ज्यां विकर्षंश्च पाणिना ।
सम्प्रकर्षन् विमर्षंश्च सेनाग्रं समलोडयत् ॥ ३१ ॥

कुन्तीकुमार भीम अपने हाथसे धनुषकी डोरी खींचकर चढ़ाते, उसे भलीभाँति कानतक खींचते, बाणोंकी वर्षा करते तथा शत्रुओंको घायल करके उनके अङ्ग-भङ्ग करते हुए सेनाके अग्रभागको मथे डालते थे ॥ ३१ ॥

तं प्रयान्तं महाबाहुं पञ्चालाः सहसोमकाः ।
पृष्ठतोऽनुययुः शूरा मघवन्तमिवामराः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार यात्रा करते हुए महाबाहु भीमसेनके पीछे पाञ्चाल और सोमक वीर भी चले, मानो देवगण देवराज इन्द्रका अनुसरण कर रहे हों ॥ ३२ ॥

तं समेत्य महाराज तावकाः पर्यवारयन् ।

दुःशलश्चित्रसेनश्च कुण्डभेदी विविंशतिः ॥ ३३ ॥
दुर्मुखो दुःसहश्चैव विकर्णश्च शलस्तथा ।
विन्दानुविन्दौ सुमुखो दीर्घबाहुः सुदर्शनः ॥ ३४ ॥
वृन्दारकः सुहस्तश्च सुषेणो दीर्घलोचनः ।
अभयो रौद्रकर्मा च सुवर्मा दुर्विमोचनः ॥ ३५ ॥
शोभन्तो रथिनां श्रेष्ठाः सहसैन्यपदानुगाः ।
संयत्ताः समरे वीरा भीमसेनमुपाद्रवन् ॥ ३६ ॥

महाराज ! उस समय आपके पुत्रोंने भीमसेनका सामना करके उन्हें रोका । दुःशल, चित्रसेन, कुण्डभेदी, विविंशति, दुर्मुख, दुःसह, विकर्ण, शल, विन्द, अनुविन्द, सुमुख, दीर्घबाहु, सुदर्शन, वृन्दारक, सुहस्त, सुषेण, दीर्घलोचन, अभय, रौद्रकर्मा, सुवर्मा और दुर्विमोचन—इन शोभाशाली रथिश्रेष्ठ वीरोंने अपने सैनिकों और सेवकोंके साथ सावधान एवं प्रयत्नशील होकर समराङ्गणमें भीमसेनपर धावा किया॥

तैः समन्ताद् वृतः शूरैः समरेषु महारथः ।
तान् समीक्ष्य तु कौन्तेयो भीमसेनः पराक्रमी ।
अभ्यवर्तत वेगेन सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥ ३७ ॥

उन शूरवीरोंके द्वारा समरभूमिमें महारथी भीम सब ओरसे घिर गये थे । उन सबको सामने देखकर पराक्रमशाली कुन्तीकुमार भीमसेन उसी प्रकार वेगसे आगे बढ़े, जैसे सिंह क्षुद्र मृगोंकी ओर बढ़ता है ॥ ३७ ॥

ते महास्त्राणि दिव्यानि तत्र वीरा अदर्शयन् ।
छादयन्तः शरैर्भीमं मेघाः सूर्यमिवोदितम् ॥ ३८ ॥

परंतु जैसे बादल उगे हुए सूर्यको ढक लेता है, उसी प्रकार वे वीरगण अपने बाणोंद्वारा भीमसेनको आच्छादित करते हुए वहाँ बड़े-बड़े दिव्यास्त्रोंका प्रदर्शन करने लगे ३८

स तानतीत्य वेगेन द्रोणानीकमुपाद्रवत् ।
अग्रतश्च गजानीकं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३९ ॥

किंतु भीमसेन अपने वेगसे उन सबको लाँघकर द्रोणाचार्यकी सेनापर टूट पड़े और सामने खड़ी हुई गजसेनाको अपने बाणोंकी वर्षासे आच्छादित करने लगे ॥ ३९ ॥

सोऽचिरेणैव कालेन तद् गजानीकमाशुगैः ।
दिशः सर्वाः समभ्यस्य व्यधमत् पवनात्मजः ॥ ४० ॥

पवनपुत्र भीमने सम्पूर्ण दिशाओंमें बारंबार बाणोंकी वर्षा करके उनके द्वारा थोड़े ही समयमें उस गजसेनाको मार भगाया ॥ ४० ॥

त्रासिताः शरभस्येव गर्जितेन वने मृगाः ।
प्राद्रवन् द्विरदाः सर्वे नदन्तो भैरवान् रवान् ॥ ४१ ॥

जैसे शरभकी गर्जनासे भयभीत हो वनके सारे मृग भाग जाते हैं, उसी प्रकार भीमसेनसे डरे हुए समस्त गजराज भैरव स्वरसे आर्तनाद करते हुए भाग निकले ॥ ४१ ॥

पुनश्चातीव वेगेन द्रोणानीकमुपाद्रवत् ।
तमवारयदाचार्यो वेलोद्वृत्तमिवार्णवम् ॥ ४२ ॥

फिर उन्होंने बड़े वेगसे द्रोणाचार्यकी सेनापर चढ़ाई की । उस समय उत्ताल तरंगोंके साथ उठे हुए महासागरको जैसे तटकी भूमि रोक देती है, उसी प्रकार द्रोणाचार्यने भीमसेनको रोका ॥ ४२ ॥

ललाटेऽताडयच्चैनं नाराचेन स्मयन्निव ।
ऊर्ध्वरश्मिरिवादित्यो विबभौ तेन पाण्डवः ॥ ४३ ॥

द्रोणने मुसकराते हुए-से नाराच चलाकर भीमसेनके ललाटमें चोट पहुँचायी । उस नाराचसे पाण्डुपुत्र भीमसेन ऊपर उठी किरणोंवाले सूर्यके समान सुशोभित होने लगे ॥

स मन्यमानस्त्वाचार्यो ममायं फाल्गुनो यथा ।
भीमः करिष्यते पूजामित्युवाच वृकोदरम् ॥ ४४ ॥

द्रोणाचार्य यह समझकर कि यह भीम भी अर्जुनके समान मेरी पूजा करेगा, उनसे इस प्रकार बोले—॥ ४४॥

भीमसेन न ते शक्या प्रवेष्टुमरिवाहिनी ।
मामनिर्जित्य समरे शत्रुमद्य महाबल ॥ ४५ ॥

'महाबली भीमसेन ! तुम समरभूमिमें आज मुझ शत्रुको पराजित किये बिना इस शत्रुसेनामें प्रवेश नहीं कर सकोगे ॥

यदि ते सोऽनुजः कृष्णः प्रविष्टोऽनुमते मम ।
अनीकं न तु शक्यं मे प्रवेष्टुमिह वै त्वया ॥ ४६ ॥

'तुम्हारे छोटे भाई अर्जुन मेरी अनुमतिसे इस सेनाके भीतर घुस गये हैं । यदि इच्छा हो तो उसी तरह तुम भी जा सकते हो; अन्यथा मेरे इस सैन्यव्यूहमें प्रवेश नहीं करने पाओगे' ॥ ४६ ॥

अथ भीमस्तु तच्छ्रुत्वा गुरोर्वाक्यमपेतभीः ।
क्रुद्धः प्रोवाच वै द्रोणं रक्तताम्रेक्षणस्त्वरन् ॥ ४७ ॥

गुरुका यह वचन सुनकर भीमसेनके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये, वे बड़ी उतावलीके साथ द्रोणाचार्यसे निर्भय होकर बोले-॥ ४७ ॥

तवार्जुनो नानुमते ब्रह्मबन्धो रणाजिरम् ।
प्रविष्टः स हि दुर्धर्षः शक्रस्यापि विशेद् बलम् ॥ ४८ ॥

'ब्रह्मबन्धो ! अर्जुन तुम्हारी अनुमतिसे इस समराङ्गणमें नहीं प्रविष्ट हुए हैं । वे तो दुर्जय हैं । देवराज इन्द्रकी सेनामें भी घुस सकते हैं ॥ ४८ ॥

तेन वै परमां पूजां कुर्वता मानितो ह्यसि ।
नार्जुनोऽहं घृणी द्रोण भीमसेनोऽस्मि ते रिपुः ॥ ४९ ॥

'उन्होंने तुम्हारी बड़ी पूजा करके निश्चय ही तुम्हें सम्मान दिया है, परंतु द्रोण ! मैं दयालु अर्जुन नहीं हूँ । मैं तो तुम्हारा शत्रु भीमसेन हूँ ॥ ४९ ॥

पिता नस्त्वं गुरुर्बन्धुस्तथा पुत्रास्तु ते वयम् ।
इति मन्यामहे सर्वे भवन्तं प्रणताः स्थिताः ॥ ५० ॥

'तुम हमारे पिता, गुरु और बंधु हो और हम तुम्हारे पुत्रके तुल्य हैं। हम सब लोग यही मानते हैं और सदा तुम्हारे सामने प्रणतभावसे खड़े होते हैं ॥ ५० ॥

अद्य तद्विपरीतं ते वदतोऽस्मासु दृश्यते।
यदि त्वं शत्रुमात्मानं मन्यसे तत्तथास्त्विह ॥ ५१ ॥
एष ते सदृशं शत्रोः कर्म भीमः करोम्यहम्।

'परंतु आज तुम्हारे मुँहसे जो बात निकल रही है, उससे हमलोगोंपर तुम्हारा विपरीत भाव लक्षित होता है। यदि तुम अपने आपको शत्रु मानते हो तो ऐसा ही सही। यह मैं भीमसेन तुम्हारे शत्रुके अनुरूप कर्म कर रहा हूँ' ॥ ५१½ ॥

अथोद्भ्राम्य गदां भीमः कालदण्डमिवान्तकः ॥ ५२ ॥
द्रोणाय व्यसृजद् राजन् स रथादवपुप्लुवे।

राजन्! ऐसा कहकर भीमसेनने गदा उठा ली, मानो यमराजने कालदण्ड हाथमें ले लिया हो। उन्होंने उस गदाको घुमाकर द्रोणाचार्यपर दे मारा, किंतु द्रोणाचार्य शीघ्र ही रथसे कूद पड़े ॥ ५२½ ॥

साश्वसूतध्वजं यानं द्रोणस्यापोथयत् तदा ॥ ५३ ॥
प्रामृद्नाच्च बहून् योधान् वायुर्वृक्षानिवौजसा।

जैसे हवा अपने वेगसे वृक्षोंको उखाड़ फेंकती है, उसी प्रकार उस गदाने उस समय घोड़े, सारथि और ध्वजसहित द्रोणाचार्यके रथको चूर-चूर कर दिया और बहुत-से योद्धाओंको भी धूलमें मिला दिया ॥ ५३½ ॥

तं पुनः परिवव्रुस्ते तव पुत्रा रथोत्तमम् ॥ ५४ ॥
अन्यं तु रथमास्थाय द्रोणः प्रहरतां वरः।
व्यूहद्वारं समासाद्य युद्धाय समुपस्थितः ॥ ५५ ॥

उस समय उस श्रेष्ठ महारथी वीरको आपके पुत्रोंने पुनः आकर चारों ओरसे घेर लिया। योद्धाओंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य दूसरे रथपर बैठकर व्यूहके द्वारपर आ पहुँचे और युद्धके लिये उद्यत हो गये ॥ ५४-५५ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज भीमसेनः पराक्रमी।
अग्रतः स्यन्दनानीकं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ५६ ॥

महाराज! तब क्रोधमें भरे हुए पराक्रमी भीमसेनने सामने खड़ी हुई रथसेनापर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥

ते वध्यमानाः समरे तव पुत्रा महारथाः।
भीमं भीमबला युद्धे योधयन्ति जयैषिणः ॥ ५७ ॥

युद्धस्थलमें भयंकर बलशाली विजयाभिलाषी आपके महारथी पुत्र बाणोंकी मार खाकर भी समराङ्गणमें भीमसेनके साथ युद्ध करते रहे ॥ ५७ ॥

ततो दुःशासनः क्रुद्धो रथशक्तिं समाक्षिपत्।
सर्वपारसवीं तीक्ष्णां जिघांसुः पाण्डुनन्दनम् ॥ ५८ ॥

उस समय कुपित हुए दुःशासनने पाण्डुनन्दन भीमसेनको मार डालनेकी इच्छासे उनके ऊपर एक तीखी रथशक्ति चलायी, जो सम्पूर्णतः लोहेकी बनी हुई थी ॥ ५८ ॥

आपतन्तीं महाशक्तिं तव पुत्रप्रणोदिताम्।
द्विधा चिच्छेद तां भीमस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ५९ ॥

आपके पुत्रकी चलायी हुई उस महाशक्तिको अपने ऊपर आती देख भीमसेनने उसके दो टुकड़े कर दिये। वह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ ५९ ॥

अथान्यैर्विशिखैस्तीक्ष्णैः संक्रुद्धः कुण्डभेदिनम्।
सुषेणं दीर्घनेत्रं च त्रिभिस्त्रीनवधीद् बली ॥ ६० ॥

फिर अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए बलवान् भीमने दूसरे तीन तीखे बाणोंद्वारा कुण्डभेदी, सुषेण तथा दीर्घलोचन (दीर्घरोमा)-इन तीनोंको मार डाला (जो आपके पुत्र थे) ॥ ६० ॥

ततो वृन्दारकं वीरं कुरूणां कीर्तिवर्धनम्।
पुत्राणां तव वीराणां युध्यतामवधीत् पुनः ॥ ६१ ॥

तत्पश्चात् आपके (अन्य) वीर पुत्रोंके युद्ध करते रहने पर भी उन्होंने पुनः कुरुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले वीर वृन्दारकका वध कर दिया ॥ ६१ ॥

अभयं रौद्रकर्माणं दुर्विमोचनमेव च।
त्रिभिस्त्रीनवधीद् भीमः पुनरेव सुतांस्तव ॥ ६२ ॥

इसके बाद भीमने पुनः तीन बाण मारकर अभय, रौद्रकर्मा तथा दुर्विमोचन (दुर्विरोचन)—आपके इन तीन पुत्रोंको भी मार गिराया ॥ ६२ ॥

वध्यमाना महाराज पुत्रास्तव बलीयसा।
भीमं प्रहरतां श्रेष्ठं समन्तात् पर्यवारयन् ॥ ६३ ॥

महाराज! अत्यन्त बलवान् भीमसेनके बाणोंसे घायल होते हुए आपके पुत्रोंने योद्धाओंमें श्रेष्ठ भीमसेनको फिर चारों ओरसे घेर लिया ॥ ६३ ॥

ते शरैर्भीमकर्माणं ववर्षुः पाण्डवं युधि।
मेघा इवातपापाये धाराभिर्धरणीधरम् ॥ ६४ ॥

जैसे वर्षा-ऋतुमें मेघ पर्वतपर जलधाराओंकी वर्षा करते हैं, उसी प्रकार वे आपके पुत्र युद्धस्थलमें भयंकर कर्म करनेवाले पाण्डुपुत्र भीमसेनपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ६४ ॥

स तद् बाणमयं वर्षमश्मवर्षमिवाचलः।
प्रतीच्छन् पाण्डुदायादो न प्राव्यथत शत्रुहा ॥ ६५ ॥

जैसे पत्थरोंकी वर्षा ग्रहण करते हुए पर्वतको कोई पीड़ा नहीं होती, उसी प्रकार शत्रुसूदन पाण्डुपुत्र भीमसेन उस बाण वर्षाको सहन करते हुए भी व्यथित नहीं हुए ॥ ६५ ॥

विन्दानुविन्दौ सहितौ सुवर्माणं च ते सुतम्।
प्रहसन्नेव कौन्तेयः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ ६६ ॥

कुन्तीनन्दन भीमने हँसते हुए ही अपने बाणोंद्वारा एक साथ आये हुए दोनों भाई विन्द और अनुविन्दको तथा आपके पुत्र सुवर्माको भी यमलोक पहुँचा दिया ॥ ६६ ॥

ततः सुदर्शनं वीरं पुत्रं ते भरतर्षभ ।
विव्याध समरे तूर्णं स पपात ममार च ॥ ६७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर उन्होंने समरभूमिमें आपके वीर पुत्र सुदर्शन (उर्णनाभ) को घायल कर दिया । इससे वह तुरंत ही गिरा और मर गया ॥ ६७ ॥

सोऽचिरेणैव कालेन तद्रथानीकमाशुगैः ।
दिशः सर्वाः समालोक्य व्यधमत् पाण्डुनन्दनः ॥ ६८ ॥

इस प्रकार पाण्डुनन्दन भीमसेनने सम्पूर्ण दिशाओंमें दृष्टिपात करके अपने बाणोंद्वारा थोड़े ही समयमें उस रथ-सेनाको नष्ट कर दिया ॥ ६८ ॥

ततो वै रथघोषेण गर्जितेन मृगा इव ।
भज्यमानाश्च समरे तव पुत्रा विशाम्पते ॥ ६९ ॥

प्रजानाथ ! तदनन्तर भीमसेनके रथकी घरघराहट और गर्जनासे समराङ्गणमें मृगोंके समान भयभीत हुए आपके पुत्रोंका उत्साह भंग हो गया ॥ ६९ ॥

प्राद्रवन् सहसा सर्वे भीमसेनभयार्दिताः ।
अनुयायाच्च कौन्तेयः पुत्राणां ते महद् बलम् ॥ ७० ॥

वे सब-के-सब भीमसेनके भयसे पीड़ित हो सहसा भाग खड़े हुए । कुन्तीकुमार भीमसेनने आपके पुत्रोंकी विशाल सेनाका दूरतक पीछा किया ॥ ७० ॥

विव्याध समरे राजन् कौरवेयान् समन्ततः ।
वध्यमाना महाराज भीमसेनेन तावकाः ॥ ७१ ॥
त्यक्त्वा भीमं रणाज्जग्मुश्चोदयन्तो हयोत्तमान् ।

राजन् ! उन्होंने रणक्षेत्रमें सब ओर कौरवोंको घायल किया । महाराज ! भीमसेनके द्वारा मारे जाते हुए आपके सभी पुत्र उन्हें छोड़कर अपने उत्तम घोड़ोंको हाँकते हुए रणभूमिसे दूर चले गये ॥ ७१½ ॥

तांस्तु निर्जित्य समरे भीमसेनो महाबलः ॥ ७२ ॥
सिंहनादरवं चक्रे बाहुशब्दं च पाण्डवः ।

उन सबको संग्राममें पराजित करके महाबली पाण्डुपुत्र भीमसेनने अपनी भुजाओंपर ताल ठोकी और सिंहके समान गर्जना की ॥ ७२½ ॥

तलशब्दं च सुमहत् कृत्वा भीमो महाबलः ॥ ७३ ॥
भीषयित्वा रथानीकं हत्वा योधान् वरान् वरान् ।
व्यतीत्य रथिनश्चापि द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥ ७४ ॥

बड़े जोरसे ताली बजाकर महाबली भीमने रथसेनाको डरा दिया और श्रेष्ठ-श्रेष्ठ योद्धाओंको चुन-चुनकर मारा । फिर समस्त रथियोंको लाँघकर द्रोणाचार्यकी सेनापर धावा बोल दिया ॥ ७३-७४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमसेनप्रवेशे भीमपराक्रमे सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भीमसेनका प्रवेश और भयंकर पराक्रमविषयक एक सौ सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२७ ॥

अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेनका द्रोणाचार्य और अन्य कौरव योद्धाओंको पराजित करते हुए द्रोणाचार्यके रथको आठ बार फेंक देना तथा श्रीकृष्ण और अर्जुनके समीप पहुँचकर गर्जना करना तथा युधिष्ठिरका प्रसन्न होकर अनेक प्रकारकी बातें सोचना

संजय उवाच

समुत्तीर्णं रथानीकं पाण्डवं विहसन् रणे ।
विवारयिषुराचार्यः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! रथसेनाको पार करके आये हुए पाण्डुनन्दन भीमसेनको युद्धमें रोकनेकी इच्छासे आचार्य द्रोणने हँसते-हँसते उनपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ १ ॥

पिबन्निव शरौघांस्तान् द्रोणचापपरिच्युतान् ।
सोऽभ्यद्रवत सोदर्यान् मोहयन् बलमायया ॥ २ ॥

द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए उन बाणोंको पीते हुए-से भीमसेन अपने बलकी मायासे समस्त कौरव बन्धुओंको मोहित करते हुए उनपर टूट पड़े ॥ २ ॥

तं मृधे वेगमास्थाय नृपाः परमधन्विनः ।
चोदितास्तव पुत्रैश्च सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ३ ॥

उस समय आपके पुत्रोंद्वारा प्रेरित हुए बहुत-से महाधनुर्धर नरेशोंने महान् वेगका आश्रय ले युद्धस्थलमें भीमसेनको सब ओरसे घेर लिया ॥ ३ ॥

स तैस्तु संवृतो भीमः प्रहसन्निव भारत ।
उद्यच्छन् स गदां तेभ्यः सुघोरां सिंहवन्नदन् ।
अवासृजच्च वेगेन शत्रुपक्षविनाशिनीम् ॥ ४ ॥

भरतनन्दन ! उनसे घिरे हुए भीमने हँसते हुए-से अपनी अत्यन्त भयंकर गदा ऊपर उठायी और सिंहनाद करते हुए उन्होंने शत्रुपक्षका विनाश करनेवाली उस गदाको बड़े वेगसे उन राजाओंपर दे मारा ॥ ४ ॥

इन्द्राशनिरिवेन्द्रेण प्रविद्धा संहतात्मना ।
प्रामथ्नात् सा महाराज सैनिकांस्तव संयुगे ॥ ५ ॥

महाराज ! सुस्थिरचित्तवाले इन्द्र जिस प्रकार अपने वज्र-

का प्रयोग करते हैं, उसी तरह भीमसेनद्वारा चलायी हुई उस गदाने युद्धस्थलमें आपके सैनिकोंका कचूमर निकाल दिया ॥ ५ ॥

घोषेण महता राजन् पूरयन्तीव मेदिनीम् ।
ज्वलन्ती तेजसा भीमा त्रासयामास ते सुतान् ॥ ६ ॥

राजन् ! तेजसे प्रज्वलित होनेवाली उस भयंकर गदाने अपने महान् घोषसे इस पृथ्वीको परिपूर्ण करके आपके पुत्रोंको भयभीत कर दिया ॥ ६ ॥

तां पतन्तीं महावेगां दृष्ट्वा तेजोऽभिसंवृताम् ।
प्राद्रवंस्तावकाः सर्वे नदन्तो भैरवान् रवान् ॥ ७ ॥

उस महावेगशालिनी तेजस्विनी गदाको गिरती देख आपके समस्त सैनिक घोर स्वरमें आर्तनाद करते हुए वहाँसे भाग गये ॥ ७ ॥

तं च शब्दमसह्यं वै तस्याः संलक्ष्य मारिष ।
प्रापतन्मनुजास्तत्र रथेभ्यो रथिनस्तदा ॥ ८ ॥

माननीय नरेश ! उस गदाके असह्य शब्दको सुनकर उस समय कितने ही रथी मानव अपने रथोंसे नीचे गिर पड़े ॥

ते हन्यमाना भीमेन गदाहस्तेन तावकाः ।
प्राद्रवन्त रणे भीता व्याघ्रघ्राता मृगा इव ॥ ९ ॥

रणभूमिमें गदाधारी भीमके द्वारा मारे जानेवाले आपके सैनिक व्याघ्रोंके सूँघे हुए मृगोंके समान भयभीत होकर भाग निकले ॥ ९ ॥

स तान् विद्राव्य कौन्तेयः संख्येऽमित्रान् दुरासदान् ।
सुपर्ण इव वेगेन पक्षिराडत्यगाच्चमूम् ॥ १० ॥

कुन्तीकुमार भीमसेन युद्धस्थलमें उन दुर्जय शत्रुओंको भगाकर पक्षिराज गरुडके समान वेगसे उस सेनाको लाँघ गये ॥ १० ॥

तथा तु विप्रकुर्वाणं रथयूथपयूथपम् ।
भारद्वाजो महाराज भीमसेनं समभ्ययात् ॥ ११ ॥

महाराज ! रथयूथपतियोंके भी यूथपति भीमसेनको इस प्रकार सेनाका संहार करते देख द्रोणाचार्य उनका सामना करनेके लिये आगे बढ़े ॥ ११ ॥

भीमं तु समरे द्रोणो वारयित्वा शरोर्मिभिः ।
अकरोत् सहसा नादं पाण्डूनां भयमादधत् ॥ १२ ॥

उस समराङ्गणमें अपने बाणरूपी तरङ्गोंसे भीमसेनको रोककर आचार्य द्रोणने पाण्डवोंके मनमें भय उत्पन्न करते हुए सहसा सिंहनाद किया ॥ १२ ॥

तद् युद्धमासीत् सुमहद् घोरं देवासुरोपमम् ।
द्रोणस्य च महाराज भीमस्य च महात्मनः ॥ १३ ॥

महाराज ! द्रोणाचार्य तथा महामनस्वी भीमसेनका वह महान् युद्ध देवासुर-संग्रामके समान भयंकर था ॥ १३ ॥

यदा तु विशिखैस्तीक्ष्णैर्द्रोणचापविनिःसृतैः ।
वध्यन्ते समरे वीराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १४ ॥
ततो रथादवप्लुत्य वेगमास्थाय पाण्डवः ।
निमील्य नयने राजन् पदातिर्द्रोणमभ्ययात् ॥ १५ ॥
अंसे शिरो भीमसेनः करौ कृत्वोरसि स्थिरौ ।
वेगमास्थाय बलवान् मनोऽनिलगरुत्मताम् ॥ १६ ॥

राजन् ! जब इस प्रकार द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए पैने बाणोंद्वारा समराङ्गणमें सैकड़ों और हजारों वीर मारे जाने लगे, तब बलवान् पाण्डुनन्दन भीम वेगपूर्वक रथसे कूद पड़े तथा दोनों नेत्र मूँदकर सिरको कंधेपर सिकोड़कर दोनों हाथोंको छातीपर सुस्थिर करके मन, वायु तथा गरुडके समान वेगका आश्रय ले पैदल ही द्रोणाचार्यकी ओर दौड़े ॥ १४-१६ ॥

यथा हि गोवृषो वर्षं प्रतिगृह्णाति लीलया ।
तथा भीमो नरव्याघ्रः शरवर्षं समग्रहीत् ॥ १७ ॥

जैसे साँड़ लीलापूर्वक वर्षाका वेग अपने शरीरपर ग्रहण करता है, उसी प्रकार पुरुषसिंह भीमसेनने आचार्यकी उस बाण-वर्षाको अपने शरीरपर ग्रहण किया ॥ १७ ॥

स वध्यमानः समरे रथं द्रोणस्य मारिष ।
ईषायां पाणिना गृह्य प्रचिक्षेप महाबलः ॥ १८ ॥

आर्य ! समराङ्गणमें बाणोंसे आहत होते हुए महाबली भीमने द्रोणाचार्यके रथके ईषादण्डको हाथसे पकड़कर समूचे रथको दूर फेंक दिया ॥ १८ ॥

द्रोणस्तु सत्वरो राजन् क्षिप्तो भीमेन संयुगे ।
रथमन्यं समारुह्य व्यूहद्वारं ययौ पुनः ॥ १९ ॥

राजन् ! उस युद्धस्थलमें भीमसेनद्वारा फेंके गये आचार्य द्रोण तुरंत ही दूसरे रथपर आरूढ़ हो पुनः व्यूहके द्वारपर जा पहुँचे ॥ १९ ॥

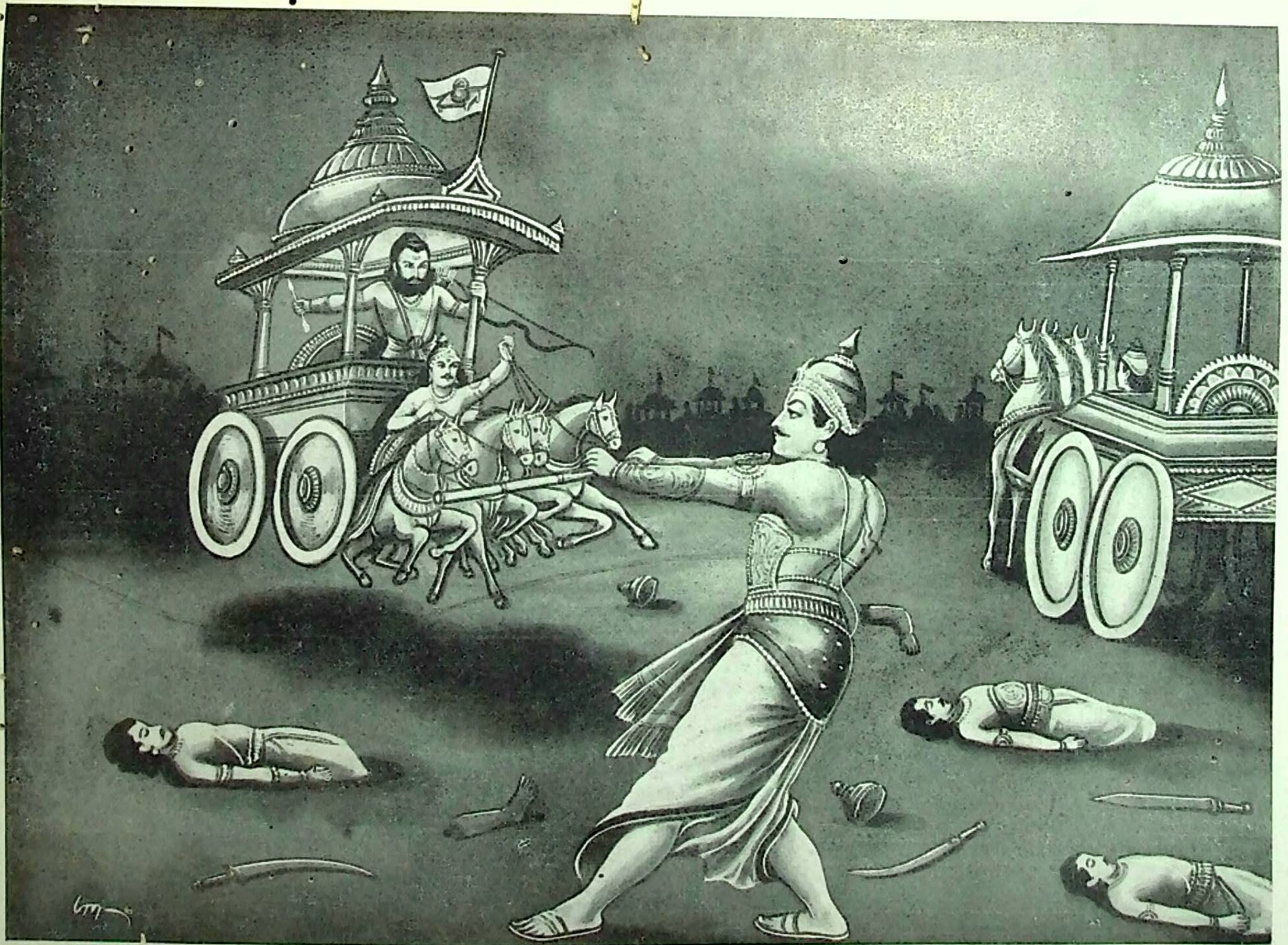
तमायान्तं तथा दृष्ट्वा भग्नोत्साहं गुरुं तदा ।
गत्वा वेगात् पुनर्भीमो धुरं गृह्य रथस्य तु ॥ २० ॥
तमप्यतिरथं भीमश्चिक्षेप भृशरोषितः ।
एवमष्टौ रथाः क्षिप्ता भीमसेनेन लीलया ॥ २१ ॥

उस समय गुरु द्रोणका उत्साह भंग हो गया था। उन्हें उस अवस्थामें आते देख भीमने पुनः वेगपूर्वक आगे बढ़कर उनके रथकी धुरी पकड़ ली और अत्यन्त रोषमें भरकर उन अतिरथी वीर द्रोणको भी पुनः रथके साथ ही फेंक दिया। इस प्रकार भीमसेनने खेल-सा करते हुए आठ रथ फेंके ॥ २०-२१ ॥

व्यदृश्यत निमेषेण पुनः स्वरथमास्थितः ।
दृश्यते तावकैर्योधैर्विस्मयोत्फुल्ललोचनैः ॥ २२ ॥

परंतु द्रोणाचार्य पुनः पलक मारते-मारते अपने रथपर बैठे दिखायी देते थे। उस समय आपके योद्धा विस्मयसे

महाभारत



भीमसेनके द्वारा द्रोणाचार्यके रथको दूर फेंकनेका उपक्रम

आँखें फाड़-फाड़कर यह दृश्य देख रहे थे ॥ २१ ॥

तस्मिन् क्षणे तस्य यन्ता तूर्णमश्वानचोदयत् ।
भीमसेनस्य कौरव्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २३ ॥

कुरुनन्दन ! इसी समय भीमसेनका सारथि तुरंत ही घोड़ोंको हाँककर वहाँ ले आया। वह एक अद्भुत-सी बात थी॥

ततः स्वरथमास्थाय भीमसेनो महाबलः ।
अभ्यद्रवत वेगेन तव पुत्रस्य वाहिनीम् ॥ २४ ॥

तत्पश्चात् महाबली भीमसेन पुनः अपने रथपर आरूढ़ हो आपके पुत्रकी सेनापर वेगपूर्वक टूट पड़े ॥ २४ ॥

स मृद्नन् क्षत्रियानाजौ वातो वृक्षानिवोद्धतः ।
आगच्छद् दारयन् सेनां सिन्धुवेगो नगानिव॥ २५॥

जैसे उठी हुई आँधी वृक्षोंको उखाड़ फेंकती है और सिंधुका वेग पर्वतोंको विदीर्ण कर देता है, उसी प्रकार युद्धस्थलमें क्षत्रियोंको रौंदते और कौरव-सेनाको विदीर्ण करते हुए भीमसेन आगे बढ़ गये ॥ २५ ॥

भोजानीकं समासाद्य हार्दिक्येनाभिरक्षितम् ।
प्रमथ्य तरसा वीरस्तदप्यतिबलोऽभ्ययात् ॥ २६ ॥

फिर अत्यन्त बलशाली वीर भीमसेन कृतवर्माद्वारा सुरक्षित भोजवंशियोंकी सेनाके पास जा पहुँचे और उसे वेगपूर्वक मथकर आगे चले गये ॥ २६ ॥

संत्रासयन्ननीकानि तलशब्देन पाण्डवः ।
अजयत् सर्वसैन्यानि शार्दूल इव गोवृषान् ॥ २७ ॥

जैसे सिंह गाय-बैलोंको जीत लेता है, उसी प्रकार पाण्डुनन्दन भीमने ताली बजाकर शत्रुसेनाओंको संत्रस्त करते हुए समस्त सैनिकोंपर विजय पा ली ॥ २७ ॥

भोजानीकमतिक्रम्य दरदानां च वाहिनीम् ।
तथा म्लेच्छगणानन्यान् बहून् युद्धविशारदान्॥ २८ ॥
सात्यकिं चैव सम्प्रेक्ष्य युध्यमानं महारथम् ।
रथेन यत्तः कौन्तेयो वेगेन प्रययौ तदा ॥ २९ ॥

उस समय कुन्तीकुमार भीमसेन भोजवंशियोंकी सेनाको लाँघकर दरदोंकी विशाल वाहिनीको पार कर गये तथा बहुत-से युद्धविशारद म्लेच्छोंको परास्त करके महारथी सात्यकिको शत्रुओंके साथ युद्ध करते देख सावधान हो रथके द्वारा वेगपूर्वक आगे बढ़े ॥

भीमसेनो महाराज द्रष्टुकामो धनंजयम् ।
अतीत्य समरे योधांस्तावकान् पाण्डुनन्दनः ॥ ३० ॥

महाराज ! अर्जुनको देखनेकी इच्छा लिये पाण्डुनन्दन भीमसेन समराङ्गणमें आपके योद्धाओंको लाँघते हुए वहाँ पहुँचे थे ॥ ३० ॥

सोऽपश्यदर्जुनं तत्र युध्यमानं महारथम् ।
सैन्धवस्य वधार्थं हि पराक्रान्तं पराक्रमी ॥ ३१ ॥

पराक्रमी भीमने वहाँ सिंधुराजके वधके लिये पराक्रम करते हुए युद्धतत्पर महारथी अर्जुनको देखा ॥ ३१ ॥

तं दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रश्चुक्रोश महतो रवान् ।
प्रावृट्काले महाराज नर्दन्निव बलाहकः ॥ ३२ ॥

महाराज ! उन्हें देखते ही पुरुषसिंह भीमने वर्षाकालमें गरजते हुए मेघके समान बड़े जोरसे सिंहनाद किया ॥ ३२ ॥

तं तस्य निनदं घोरं पार्थः शुश्राव नर्दतः ।
वासुदेवश्च कौरव्य भीमसेनस्य संयुगे ॥ ३३ ॥

कुरुनन्दन ! गरजते हुए भीमसेनके उस भयंकर सिंहनादको युद्धस्थलमें कुन्तीकुमार अर्जुन तथा भगवान् श्रीकृष्णने सुना ॥ ३३ ॥

तौ श्रुत्वा युगपद् वीरौ निनदं तस्य शुष्मिणः ।
पुनः पुनः प्राणदतां दिदृक्षन्तौ वृकोदरम् ॥ ३४ ॥

उस महाबली वीरके सिंहनादको एक ही साथ सुनकर उन दोनों वीरोंने भीमसेनको देखनेकी इच्छा प्रकट करते हुए बारंबार गर्जना की ॥ ३४ ॥

ततः पार्थो महानादं मुञ्चन् वै माधवश्च ह ।
अभ्ययातां महाराज नर्दन्तौ गोवृषाविव ॥ ३५ ॥

महाराज ! गरजते हुए दो साँड़ोंके समान अर्जुन और श्रीकृष्ण महान् सिंहनाद करते हुए आगे बढ़ने लगे ॥ ३५ ॥

भीमसेनरवं श्रुत्वा फाल्गुनस्य च धन्विनः ।
अप्रीयत महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३६ ॥

नरेश्वर ! भीमसेन तथा धनुर्धर अर्जुनकी गर्जना सुनकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए ॥ ३६ ॥

विशोकश्चाभवद् राजा श्रुत्वा तं निनदं तयोः ।
धनंजयस्य समरे जयमाशास्तवान् विभुः ॥ ३७ ॥

उन दोनोंका सिंहनाद सुनकर राजाका शोक दूर हो गया । वे शक्तिशाली नरेश समरभूमिमें अर्जुनकी विजयके लिये शुभ कामना करने लगे ॥ ३७ ॥

तथा तु नर्दमाने वै भीमसेने मदोत्कटे ।
स्मितं कृत्वा महाबाहुर्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३८ ॥
हृद्गतं मनसा प्राह ध्यात्वा धर्मभृतां वरः ।

मदोन्मत्त भीमसेनके बारंबार गर्जना करनेपर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ धर्मपुत्र महाबाहु युधिष्ठिर मुसकराकर मन-ही-मन कुछ सोचते हुए अपने हृदयकी बात इस प्रकार कहने लगे— ॥

दत्ता भीम त्वया संवित् कृतं गुरुवचस्तथा ॥ ३९ ॥
न हि तेषां जयो युद्धे येषां द्वेष्टासि पाण्डव ।
दिष्ट्या जीवति संग्रामे सव्यसाची धनंजयः ॥ ४० ॥

'भीम ! तुमने सूचना दे दी और गुरुजनकी आज्ञाका पालन कर दिया । पाण्डुनन्दन ! जिनके शत्रु तुम हो, उन्हें युद्धमें विजय नहीं प्राप्त हो सकती । सौभाग्यकी बात है कि संग्रामभूमिमें सव्यसाची अर्जुन जीवित है ॥ ३९-४० ॥

दिष्ट्या च कुशली वीरः सात्यकिः सत्यविक्रमः।
दिष्ट्या शृणोमि गर्जन्तौ वासुदेवधनंजयौ ॥ ४१ ॥

'यह भी आनन्दकी बात है कि सत्यपराक्रमी वीर सात्यकि सकुशल हैं। मैं सौभाग्यवश इस समय भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनकी गर्जना सुन रहा हूँ ॥ ४१ ॥

येन शक्रं रणे जित्वा तर्पितो हव्यवाहनः।
स हन्ता द्विषतां संख्ये दिष्ट्या जीवति फाल्गुनः॥४२॥

'जिसने रणक्षेत्रमें इन्द्रको जीतकर अग्निदेवको तृप्त किया था, वह शत्रुहन्ता अर्जुन मेरे सौभाग्यसे युद्धस्थलमें जीवित है ॥ ४२ ॥

यस्य बाहुबलं सर्वे वयमाश्रित्य जीविताः।
स हन्ता रिपुसैन्यानां दिष्ट्या जीवति फाल्गुनः॥४३॥

'जिसके बाहुबलका भरोसा करके हम सब लोग जीवन धारण करते हैं, शत्रुसेनाओंका संहार करनेवाला वह अर्जुन हमारे सौभाग्यसे जीवित है ॥ ४३ ॥

निवातकवचा येन देवैरपि सुदुर्जयाः।
निर्जिता धनुषैकेन दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥ ४४ ॥

'जिसने देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्जय निवातकवच नामक दानवोंको एकमात्र धनुषकी सहायतासे जीत लिया था, वह कुन्तीकुमार अर्जुन हमारे भाग्यसे जीवित है ॥

कौरवान् सहितान् सर्वान् गोग्रहार्थे समागतान्।
योऽजयन्मत्स्यनगरे दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥ ४५ ॥

'विराटकी गौओंका अपहरण करनेके लिये एक साथ आये हुए समस्त कौरवोंको जिसने मत्स्य देशकी राजधानीके समीप पराजित किया था, वह पार्थ जीवित है, यह सौभाग्यकी बात है ॥ ४५ ॥

कालकेयसहस्राणि चतुर्दश महारणे।
योऽवधीद् भुजवीर्येण दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥४६॥

'जिसने महासमरमें अपने बाहुबलसे चौदह हजार कालकेय नामक दैत्योंका वध किया था, वह अर्जुन हमारे भाग्यसे जीवित है ॥ ४६ ॥

गन्धर्वराजं बलिनं दुर्योधनकृते च वै।
जितवान् योऽस्त्रवीर्येण दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥४७॥

'जिसने अपने अस्त्र-बलसे दुर्योधनके लिये बलवान् गन्धर्वराज चित्रसेनको परास्त किया था, वह पार्थ सौभाग्यवश जीवित है ॥ ४७ ॥

किरीटमाली बलवाञ्छ्वेताश्वः कृष्णसारथिः।
मम प्रियश्च सततं दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥ ४८ ॥

'जिसके मस्तकपर किरीट शोभा पाता है, जिसके रथमें श्वेत घोड़े जोते जाते हैं, भगवान् श्रीकृष्ण जिसके सारथि हैं तथा जो सदा ही मुझे प्रिय लगता है, वह बलवान् अर्जुन अभी जीवित है, यह सौभाग्यकी बात है ॥ ४८ ॥

पुत्रशोकाभिसंतप्तश्चिकीर्षन् कर्म दुष्करम्।
जयद्रथवधान्वेषी प्रतिज्ञां कृतवान् हि यः ॥ ४९ ॥
कच्चित् स सैन्धवं संख्ये हनिष्यति धनंजयः।
कच्चित् तीर्णप्रतिज्ञं हि वासुदेवेन रक्षितम् ॥ ५० ॥
अनस्तमित आदित्ये समेष्याम्यहमर्जुनम्।

'जिसने पुत्रशोकसे संतप्त हो दुष्कर कर्म करनेकी इच्छा रखकर जयद्रथके वधकी अभिलाषासे भारी प्रतिज्ञा कर ली है, वह अर्जुन क्या आज युद्धमें सिंधुराजको मार डालेगा ? क्या सूर्यास्त होनेसे पहले ही प्रतिज्ञा पूर्ण करके लौटे हुए, भगवान् श्रीकृष्णद्वारा सुरक्षित अर्जुनसे मैं मिल सकूँगा ? ॥ ४९-५०½ ॥

कच्चित् सैन्धवको राजा दुर्योधनहिते रतः ॥ ५१ ॥
नन्दयिष्यत्यमित्रान् हि फाल्गुनेन निपातितः।

'क्या दुर्योधनके हितमें तत्पर रहनेवाला राजा जयद्रथ अर्जुनके हाथसे मारा जाकर शत्रुपक्षको आनन्दित करेगा ?॥

कच्चिद् दुर्योधनो राजा फाल्गुनेन निपातितम् ॥ ५२ ॥
दृष्ट्वा सैन्धवकं संख्ये शममस्मासु धास्यति।

'क्या युद्धमें सिंधुराजको अर्जुनके हाथसे मारा गया देखकर राजा दुर्योधन हमारे साथ संधि कर लेगा ?॥५२½॥

दृष्ट्वा विनिहतान् भ्रातॄन् भीमसेनेन संयुगे ॥ ५३ ॥
कच्चिद् दुर्योधनो मन्दः शममस्मासु धास्यति।

'क्या मूर्ख दुर्योधन संग्रामभूमिमें भीमसेनके हाथसे अपने भाइयोंका वध होता देखकर हमारे साथ संधि कर लेगा ?॥

दृष्ट्वा चान्यान् महायोधान् पातितान् धरणीतले।
कच्चिद् दुर्योधनो मन्दः पश्चात्तापं गमिष्यति ॥ ५४ ॥

'अन्यान्य बड़े-बड़े योद्धाओंको भी धराशायी किये गये देखकर क्या मन्दबुद्धि दुर्योधनको पश्चात्ताप होगा ? ॥५४॥

कच्चिद् भीष्मेण नो वैरं शममेकेन यास्यति।
शेषस्य रक्षणार्थं च संधास्यति सुयोधनः ॥ ५५ ॥

'क्या एकमात्र भीष्मकी मृत्युसे हमलोगोंका वैर शान्त हो जायगा ? क्या शेष वीरोंकी रक्षाके लिये दुर्योधन हमारे साथ संधि कर लेगा ?' ॥ ५५ ॥

एवं बहुविधं तस्य राज्ञश्चिन्तयतस्तदा।
कृपयाभिपरीतस्य घोरं युद्धमवर्तत ॥ ५६ ॥

इस प्रकार राजा युधिष्ठिर जब दयासे द्रवित होकर भाँति-भाँतिकी बातें सोच रहे थे, उस समय दूसरी ओर घोर युद्ध हो रहा था ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमसेनप्रवेशे युधिष्ठिरहर्षे अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भीमसेनका कौरव-सेनामें प्रवेश तथा युधिष्ठिरका हर्षविषयक एक सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२८ ॥

एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेन और कर्णका युद्ध तथा कर्णकी पराजय

धृतराष्ट्र उवाच

निनदन्तं तथा तं तु भीमसेनं महाबलम्।
मेघस्तनितनिर्घोषं के वीराः पर्यवारयन्॥ १॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! इस प्रकार मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर स्वरसे सिंहनाद करते हुए महाबली भीमसेनको किन वीरोंने रोका?॥ १॥

न हि पश्याम्यहं तं वै त्रिषु लोकेषु कंचन।
क्रुद्धस्य भीमसेनस्य यस्तिष्ठेदग्रतो रणे॥ २॥

मैं तो तीनों लोकोंमें किसीको ऐसा नहीं देखता, जो क्रोधमें भरे हुए भीमसेनके सामने युद्धस्थलमें खड़ा हो सके॥

गदां युयुत्समानस्य कालस्येवेह संजय।
न हि पश्याम्यहं युद्धे यस्तिष्ठेदग्रतः पुमान्॥ ३॥

संजय! मुझे ऐसा कोई वीर पुरुष नहीं दिखायी देता, जो कालके समान गदा उठाकर युद्धकी इच्छा रखनेवाले भीमसेनके सामने समरभूमिमें ठहर सके॥ ३॥

रथं रथेन यो हन्यात् कुञ्जरं कुञ्जरेण च।
कस्तस्य समरे स्थाता साक्षादपि पुरंदरः॥ ४॥

जो रथसे रथको और हाथीसे हाथीको मार सकता है, उस वीर पुरुषके सामने साक्षात् इन्द्र ही क्यों न हो, कौन युद्धके लिये खड़ा होगा?॥ ४॥

क्रुद्धस्य भीमसेनस्य मम पुत्रान् जिघांसतः।
दुर्योधनहिते युक्ताः समतिष्ठन्त केऽग्रतः॥ ५॥

क्रोधमें भरकर मेरे पुत्रोंका वध करनेकी इच्छावाले भीमसेनके आगे दुर्योधनके हितमें तत्पर रहनेवाले कौन-कौन योद्धा खड़े हो सके?॥ ५॥

भीमसेनदवाग्नेस्तु मम पुत्रांस्तृणोपमान्।
प्रधक्ष्यतो रणमुखे केऽतिष्ठन्नग्रतो नराः॥ ६॥

भीमसेन दावानलके समान हैं और मेरे पुत्र तिनकोंके समान। उन्हें जला डालनेकी इच्छावाले भीमसेनके सामने युद्धके मुहानेपर कौन-कौन-से वीर खड़े हुए?॥ ६॥

काल्यमानांस्तु पुत्रान् मे दृष्ट्वा भीमेन संयुगे।
कालेनेव प्रजाः सर्वाः के भीमं पर्यवारयन्॥ ७॥

जैसे काल समस्त प्रजाको अपना ग्रास बना लेता है, उसी प्रकार युद्धस्थलमें भीमसेनके द्वारा मेरे पुत्रोंको कालके गालमें जाते देख किन वीरोंने आगे बढ़कर भीमसेनको रोका?॥

न मेऽर्जुनाद् भयं तादृक् कृष्णान्नापि च सात्वतात्।
हुतभुग्जन्मनो नैव यादृग्भीमाद् भयं मम॥ ८॥

मुझे भीमसेनसे जैसा भय लगता है, वैसा न तो अर्जुनसे और न श्रीकृष्णसे, न सात्यकिसे और न धृष्टद्युम्नसे ही लगता है॥ ८॥

भीमवह्नेः प्रदीप्तस्य मम पुत्रान् दिधक्षतः।
के शूराः पर्यवर्तन्त तन्ममाचक्ष्व संजय॥ ९॥

संजय! मेरे पुत्रोंको दग्ध करनेकी इच्छासे प्रज्वलित हुए भीमरूपी अग्निदेवके सामने कौन-कौन शूरवीर डटे रह सके, यह मुझे बताओ॥ ९॥

संजय उवाच

तथा तु नर्दमानं तं भीमसेनं महाबलम्।
तुमुलेनैव शब्देन कर्णोऽप्यभ्यद्रवद् बली॥ १०॥

संजयने कहा—राजन्! इस प्रकार गरजते हुए महाबली भीमसेनपर बलवान् कर्णने भयंकर सिंहनादके साथ आक्रमण किया॥ १०॥

व्याक्षिपन् सुमहच्चापमतिमात्रममर्षणः।
कर्णः सुयुद्धमाकाङ्क्षन् दर्शयिष्यन् बलं मृधे॥ ११॥
रुरोध मार्गं भीमस्य वातस्येव महीरुहः।

अत्यन्त अमर्षशील कर्णने रणभूमिमें अपना बल दिखानेके लिये अपने विशाल धनुषको खींचते और युद्धकी अभिलाषा रखते हुए, जैसे वृक्ष वायुका मार्ग रोकता है, उसी प्रकार भीमसेनका मार्ग अवरुद्ध कर दिया॥ ११½॥

भीमोऽपि दृष्ट्वा सावेगं पुरो वैकर्तनं स्थितम्॥ १२॥
चुकोप बलवद्वीरश्चिक्षेपास्य शिलाशितान्।

वीर भीमसेन भी अपने सामने कर्णको खड़ा देख अत्यन्त कुपित हो उठे और तुरंत ही उसके ऊपर सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए बाण बलपूर्वक छोड़ने लगे॥ १२½॥

तान् प्रत्यगृह्णात् कर्णोऽपि प्रतीपं प्राहिणोच्छरान्॥ १३॥

कर्णने भी उन बाणोंको ग्रहण किया और उनके विपरीत बहुत-से बाण चलाये॥ १३॥

ततस्तु सर्वयोधानां यततां प्रेक्षतां तदा।
प्रावेपन्निव गात्राणि कर्णभीमसमागमे॥ १४॥

उस समय कर्ण और भीमसेनके संघर्षमें विजयके लिये प्रयत्नशील होकर देखनेवाले सम्पूर्ण योद्धाओंके शरीर काँपने-से लगे॥ १४॥

रथिनां सादिनां चैव तयोः श्रुत्वा तलस्वनम्।
भीमसेनस्य निनदं श्रुत्वा घोरं रणाजिरे॥ १५॥

उन दोनोंके ताल ठोकनेकी आवाज सुनकर तथा समराङ्गणमें भीमसेनकी घोर गर्जना सुनकर रथियों और घुड़सवारोंके भी शरीर थर-थर काँपने लगे॥ १५॥

खं च भूमिं च संरुद्धां मेनिरे क्षत्रियर्षभाः।
पुनर्घोरेण नादेन पाण्डवस्य महात्मनः ॥ १६ ॥

वहाँ आये हुए क्षत्रियशिरोमणि योद्धा महामना पाण्डुनन्दन भीमसेनके बारंबार होनेवाले घोर सिंहनादसे आकाश और पृथ्वीको व्याप्त मानने लगे ॥ १६ ॥

समरे सर्वयोधानां धनूंष्यभ्यपतन् क्षितौ।
शस्त्राणि न्यपतन् दोर्भ्यः केषांचिच्चासवोऽद्रवन् ॥ १७ ॥

उस समराङ्गणमें प्रायः सम्पूर्ण योद्धाओंके धनुष तथा अन्य अस्त्र-शस्त्र हाथोंसे छूटकर पृथ्वीपर गिर पड़े। कितनोंके तो प्राण ही निकल गये ॥ १७ ॥

वित्रस्तानि च सर्वाणि शकृन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः।
वाहनानि च सर्वाणि बभूवुर्विमनांसि च ॥ १८ ॥
प्रादुरासन् निमित्तानि घोराणि सुबहून्युत।
गृध्रकङ्कबलैश्चासीदन्तरिक्षं समावृतम् ॥ १९ ॥
तस्मिन् सुतुमुले राजन् कर्णभीमसमागमे।

सारी सेनाके समस्त वाहन संत्रस्त होकर मल-मूत्र त्यागने लगे। उनका मन उदास हो गया। बहुत-से भयंकर अपशकुन प्रकट होने लगे। राजन्! कर्ण और भीमके उस भयंकर युद्धमें आकाश गीधों, कौवों और कंकोंसे छा गया १८-१९½

ततः कर्णस्तु विंशत्या शराणां भीममार्दयत् ॥ २० ॥
विव्याध चास्य त्वरितः सूतं पञ्चभिराशुगैः।

तदनन्तर कर्णने बीस बाणोंसे भीमसेनको गहरी चोट पहुँचायी। फिर तुरंत ही उनके सारथिको पाँच बाणोंसे बींध डाला ॥ २०½ ॥

प्रहस्य भीमसेनोऽपि कर्णं प्रत्याद्रवद् रणे ॥ २१ ॥
सायकानां चतुःषष्ट्या क्षिप्रकारी महायशाः।

तब शीघ्रता करनेवाले महायशस्वी भीमसेनने भी हँसकर चौंसठ बाणोंद्वारा रणभूमिमें कर्णपर आक्रमण किया ॥२१½॥

तस्य कर्णो महेष्वासः सायकांश्चतुरोऽक्षिपत् ॥ २२ ॥
असम्प्राप्तांश्च तान् भीमः सायकैर्नतपर्वभिः।
चिच्छेद बहुधा राजन् दर्शयन् पाणिलाघवम् ॥ २३ ॥

राजन्! फिर महाधनुर्धर कर्णने चार बाण चलाये। परंतु भीमसेनने अपने हाथकी फुर्ती दिखाते हुए झुकी हुई गाँठवाले अनेक बाणोंद्वारा अपने पास आनेके पहले ही कर्णके बाणोंके टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ २२-२३ ॥

तं कर्णश्छादयामास शरव्रातैरनेकशः।
संछाद्यमानः कर्णेन बहुधा पाण्डुनन्दनः ॥ २४ ॥
चिच्छेद चापं कर्णस्य मुष्टिदेशे महारथः।
विव्याध चैनं बहुभिः सायकैर्नतपर्वभिः ॥ २५ ॥

तब कर्णने अनेकों बार बाण-समूहोंकी वर्षा करके भीमसेनको आच्छादित कर दिया। कर्णके द्वारा बारंबार आच्छादित होते हुए पाण्डुनन्दन महारथी भीमने कर्णके धनुषको मुट्ठी पकड़नेकी जगहसे काट दिया और झुकी हुई गाँठवाले बहुत-से बाणोंद्वारा उसे घायल कर दिया ॥ २४-२५ ॥

अथान्यद् धनुरादाय सज्यं कृत्वा च सूतजः।
विव्याध समरे भीमं भीमकर्मा महारथः ॥ २६ ॥

तत्पश्चात् भयंकर कर्म करनेवाले महारथी सूतपुत्र कर्णने दूसरा धनुष लेकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और समरभूमिमें भीमसेनको घायल कर दिया ॥ २६ ॥

तस्य भीमो भृशं क्रुद्धस्त्रीञ्शरान् नतपर्वणः।
निचखानोरसि क्रुद्धः सूतपुत्रस्य वेगतः ॥ २७ ॥

तब भीमसेनको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने वेगपूर्वक सूतपुत्रकी छातीमें झुकी हुई गाँठवाले तीन बाण धँसा दिये ॥

तैः कर्णोऽराजत शरैरुरोमध्यगतैस्तदा।
महीधर इवोदग्रस्त्रिशृङ्गो भरतर्षभ ॥ २८ ॥

भरतश्रेष्ठ! ठीक छातीके बीचमें गड़े हुए उन बाणोंद्वारा कर्ण तीन शिखरोंवाले ऊँचे पर्वतके समान सुशोभित हुआ ॥ २८ ॥

सुस्राव चास्य रुधिरं विद्धस्य परमेषुभिः।
धातुप्रस्यन्दिनः शैलाद् यथा गैरिकधातवः ॥ २९ ॥

उन उत्तम बाणोंसे बिंधे हुए कर्णकी छातीसे बहुत रक्त गिरने लगा, मानो धातुकी धाराएँ बहानेवाले पर्वतसे गेरु धातु (गेरु) प्रवाहित हो रहा हो ॥ २९ ॥

किंचिद् विचलितः कर्णः सुप्रहाराभिपीडितः।
आकर्णपूर्णमाकृष्य भीमं विव्याध सायकैः ॥ ३० ॥

उस गहरे प्रहारसे पीड़ित हो कर्ण कुछ विचलित हो उठा। फिर धनुषको कानतक खींचकर उसने अनेक बाणोंद्वारा भीमसेनको बींध डाला ॥ ३० ॥

चिक्षेप च पुनर्बाणाञ्शतशोऽथ सहस्रशः।
स शरैरर्दितस्तेन कर्णेन दृढधन्विना।
धनुर्ज्यामच्छिनत् तूर्णं भीमस्तस्य क्षुरेण ह ॥ ३१ ॥

तत्पश्चात् उनपर पुनः सैकड़ों और हजारों बाणोंका प्रहार किया। सुदृढ़ धनुर्धर कर्णके बाणोंसे पीड़ित हो भीमसेनने एक क्षुरके द्वारा तुरंत ही उसके धनुषकी प्रत्यञ्चा काट दी ॥ ३१ ॥

सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत्।
वाहांश्च चतुरस्तस्य व्यसूंश्चक्रे महारथः ॥ ३२ ॥

साथ ही उसके सारथिको एक भल्लसे मारकर रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया। इतना ही नहीं, महारथी भीमने उसके चारों घोड़ोंके भी प्राण ले लिये ॥ ३२ ॥

हताश्वात् तु रथात् कर्णः समाप्लुत्य विशाम्पते।
स्यन्दनं वृषसेनस्य तूर्णमापुप्लुवे भयात् ॥ ३३ ॥

प्रजानाथ ! उस समय कर्ण भयके मारे उस अश्वहीन रथसे कूदकर तुरंत ही वृषसेनके रथपर जा बैठा ॥ ३३ ॥

निर्जित्य तु रणे कर्णं भीमसेनः प्रतापवान् ।
ननाद बलवान् नादं पर्जन्यनिनदोपमम् ॥ ३४ ॥

इस प्रकार बलवान् एवं प्रतापी भीमसेनने रणभूमिमें कर्णको पराजित करके मेघ-गर्जनाके समान गम्भीर स्वरसे सिंहनाद किया ॥ ३४ ॥

तस्य तं निनदं श्रुत्वा प्रहृष्टोऽभूद् युधिष्ठिरः ।
कर्णं पराजितं मत्वा भीमसेनेन संयुगे ॥ ३५ ॥

भीमसेनका वह महान् सिंहनाद सुनकर उनके द्वारा युद्धमें कर्णको पराजित हुआ जान राजा युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए ॥ ३५ ॥

समन्ताच्छङ्खनिनदं पाण्डुसेनाकरोत् तदा ।
शत्रुसेनाध्वनिं श्रुत्वा तावका ह्यनदन् भृशम् ॥ ३६ ॥

उस समय पाण्डव-सेना सब ओर शङ्खनाद करने लगी। शत्रुसेनाकी शङ्खध्वनि सुनकर आपके सैनिक भी जोर-जोरसे गर्जना करने लगे ॥ ३६ ॥

स शङ्खबाणनिनदैर्हर्षाद् राजा स्ववाहिनीम् ।
चक्रे युधिष्ठिरः संख्ये हर्षनादैश्च संकुलाम् ॥ ३७ ॥

राजा युधिष्ठिरने युद्धस्थलमें हर्षके कारण अपनी सेनाको शङ्ख और बाणोंकी ध्वनि तथा हर्षनादसे व्याप्त कर दिया ॥

गाण्डीवं व्याक्षिपत् पार्थः कृष्णोऽप्यब्जमवादयत् ।
तमन्तर्धाय निनदं भीमस्य नदतो ध्वनिः ।
अश्रूयत तदा राजन् सर्वसैन्येषु दारुणः ॥ ३८ ॥

इसी समय अर्जुनने गाण्डीव धनुषकी टंकार की और भगवान् श्रीकृष्णने पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया। परंतु उसकी ध्वनिको तिरोहित करके गरजते हुए भीमसेनका भयंकर सिंहनाद सम्पूर्ण सेनाओंमें सुनायी देने लगा ॥ ३८ ॥

ततो व्यायच्छतामस्त्रैः पृथक् पृथगजिह्मगैः ।
मृदुपूर्वं तु राधेयो दृढपूर्वं तु पाण्डवः ॥ ३९ ॥

तदनन्तर वे दोनों वीर एक दूसरेपर पृथक्-पृथक् सीधे जानेवाले बाणोंका प्रहार करने लगे। राधानन्दन कर्ण मृदुतापूर्वक बाण चलाता था और पाण्डुनन्दन भीमसेन कठोरतापूर्वक ॥ ३९ ॥

(दृष्ट्वा कर्णं च पार्थेन बाधितं बहुभिः शरैः ।
दुर्योधनो महाराज दुःशलं प्रत्यभाषत ॥
कर्णं कृच्छ्रगतं पश्य शीघ्रं यानं प्रयच्छ ह ।

महाराज ! कुन्तीपुत्र भीमसेनके द्वारा कर्णको बहुसंख्यक बाणोंसे पीड़ित हुआ देख, दुर्योधनने दुःशलसे कहा—'दुःशल ! देखो, कर्ण संकटमें पड़ा है। तुम शीघ्र उसके लिये रथ प्रस्तुत करो' ॥

एवमुक्तस्ततो राज्ञा दुःशलः समुपाद्रवत् ।
दुःशलस्य रथं कर्णश्चारुरोह महारथः ॥
तौ पार्थः सहसा गत्वा विव्याध दशभिः शरैः ।
पुनश्च कर्णं विव्याध दुःशलस्य शिरोऽहरत् ॥)

राजाके ऐसा कहनेपर दुःशल कर्णके पास दौड़ा गया; फिर महारथी कर्ण दुःशलके रथपर आरूढ़ हो गया। इसी समय भीमसेनने सहसा जाकर दस बाणोंसे उन दोनोंको घायल कर दिया। तत्पश्चात् पुनः कर्णपर आघात किया और दुःशलका सिर काट लिया ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमप्रवेशे कर्णपराजये एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भीमसेनका प्रवेश और कर्णकी पराजयविषयक एक सौ उनतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२९ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३½ श्लोक मिलाकर कुल ४२½ श्लोक हैं)

त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

दुर्योधनका द्रोणाचार्यको उपालम्भ देना, द्रोणाचार्यका उसे द्यूतका परिणाम दिखाकर युद्धके लिये वापस भेजना और उसके साथ युधामन्यु तथा उत्तमौजाका युद्ध

संजय उवाच

तस्मिन् विलुलिते सैन्ये सैन्धवायार्जुने गते ।
सात्वते भीमसेने च पुत्रस्ते द्रोणमभ्ययात् ॥ १ ॥
त्वरन्नेकरथेनैव बहुकृत्यं विचिन्तयन् ।

संजय कहते हैं—महाराज ! इस प्रकार जब वह सेना विचलित होकर भाग चली, अर्जुन सिंधुराजके वधके लिये आगे बढ़ गये और उनके पीछे सात्यकि तथा भीमसेन भी वहाँ जा पहुँचे, तब आपका पुत्र दुर्योधन बड़ी उतावलीके साथ एकमात्र रथद्वारा बहुत-से आवश्यक कार्योंके सम्बन्धमें सोचता-विचारता हुआ द्रोणाचार्यके पास गया ॥ १½ ॥

स रथस्तव पुत्रस्य त्वरया परया युतः ॥ २ ॥
तूर्णमभ्यद्रवद् द्रोणं मनोमारुतवेगवान् ।

आपके पुत्रका वह रथ मन और वायुके समान वेगशाली था। वह बड़ी तेजीके साथ तत्काल द्रोणाचार्यके पास जा पहुँचा ॥ २½ ॥

उवाच चैनं पुत्रस्ते संरम्भाद् रक्तलोचनः ॥ ३ ॥
ससम्भ्रममिदं वाक्यमब्रवीत् कुरुनन्दनः ।

उस समय आपका पुत्र कुरुनन्दन दुर्योधन क्रोधसे लाल आँखें करके घबराहटके स्वरमें द्रोणाचार्यसे इस प्रकार बोला—॥ ३½ ॥

अर्जुनो भीमसेनश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥ ४ ॥
विजित्य सर्वसैन्यानि सुमहान्ति महारथाः ।
सम्प्राप्ताः सिन्धुराजस्य समीपमनिवारिताः ॥ ५ ॥

'आचार्य ! अर्जुन, भीमसेन और अपराजित वीर सात्यकि—ये तीनों महारथी मेरी सम्पूर्ण एवं विशाल सेनाओंको पराजित करके सिंधुराज जयद्रथके समीप पहुँच गये हैं। उन्हें कोई रोक नहीं सका है ॥ ४-५ ॥

व्यायच्छन्ति च तत्रापि सर्व एवापराजिताः।
यदि तावद् रणे पार्थो व्यतिक्रान्तो महारथः ॥ ६ ॥
कथं सात्यकिभीमाभ्यां व्यतिक्रान्तोऽसि मानद।

'वहाँ भी वे सब-के-सब अपराजित होकर मेरी सेनापर प्रहार कर रहे हैं। मान लिया, महारथी अर्जुन रणभूमिमें (अधिक शक्तिशाली होनेके कारण) आपको लाँघकर आगे बढ़ गये हैं; परंतु दूसरोंको मान देनेवाले गुरुदेव ! सात्यकि और भीमसेनने किस तरह आपका लंघन किया है ? ॥ ६½ ॥

आश्चर्यभूतं लोकेऽस्मिन् समुद्रस्येव शोषणम् ॥ ७ ॥
निर्जयस्तव विप्राग्र्य सात्वतेनार्जुनेन च।
तथैव भीमसेनेन लोकः संवदते भृशम् ॥ ८ ॥

'विप्रवर ! सात्यकि, भीमसेन तथा अर्जुनके द्वारा आपकी पराजय समुद्रको सुखा देनेके समान इस संसारमें एक आश्चर्यभरी घटना है। लोग बड़े जोरसे इस बातकी चर्चा कर रहे हैं ॥ ७-८ ॥

कथं द्रोणो जितः संख्ये धनुर्वेदस्य पारगः।
इत्येवं ब्रुवते योधा अश्रद्धेयमिदं तव ॥ ९ ॥

'सारे योद्धा यह कह रहे हैं कि धनुर्वेदके पारंगत आचार्य द्रोण कैसे युद्धमें पराजित हो गये। आपका यह हारना लोगोंके लिये अविश्वसनीय हो गया है ॥ ९ ॥

नाश एव तु मे नूनं मन्दभाग्यस्य संयुगे।
यत्र त्वां पुरुषव्याघ्रं व्यतिक्रान्तास्त्रयो रथाः ॥ १० ॥

'वास्तवमें मेरा भाग्य ही खोटा है। ये तीनों महारथी जहाँ आप-जैसे पुरुषसिंह वीरको लाँघकर आगे बढ़ गये हैं, उस युद्धमें मेरा विनाश ही अवश्यम्भावी है ॥ १० ॥

एवं गते तु कृत्येऽस्मिन् ब्रूहि यत् ते विवक्षितम्।
यद् गतं गतमेवेदं शेषं चिन्तय मानद ॥ ११ ॥

'ऐसी परिस्थितिमें जो कर्तव्य है, उसके सम्बन्धमें आपकी क्या राय है, यह बताइये। मानद ! जो हो गया सो तो हो ही गया। अब जो शेष कार्य है, उसका विचार कीजिये ११

यत् कृत्यं सिन्धुराजस्य प्राप्तकालमनन्तरम्।
तत् संविधीयतां क्षिप्रं साधु संचिन्त्य नो द्विज ॥ १२ ॥

'ब्रह्मन् ! इस समय सिंधुराजकी रक्षाके लिये तुरंत करने योग्य जो कार्य हमारे सामने प्राप्त है; उसे अच्छी तरह सोच-विचारकर शीघ्र सम्पन्न कीजिये' ॥ १२ ॥

द्रोण उवाच

चिन्त्यं बहुविधं तात यत् कृत्यं तच्छृणुष्व मे।
त्रयो हि समतिक्रान्ताः पाण्डवानां महारथाः ॥ १३ ॥
यावत् तेषां भयं पश्चात् तावदेषां पुरःसरम्।
तद् गरीयस्तरं मन्ये यत्र कृष्णधनंजयौ ॥ १४ ॥

द्रोणाचार्यने कहा—तात ! सोचने-विचारनेको तो बहुत कुछ है, किंतु इस समय जो कर्तव्य प्राप्त है, वह मुझसे सुनो। पाण्डवपक्षके तीन महारथी हमारी सेनाको लाँघकर आगे बढ़ गये हैं। पीछे उनका जितना भय है, उतना ही आगे भी है। परंतु जहाँ अर्जुन और श्रीकृष्ण हैं, वहीं मेरी समझमें अधिक भयकी आशंका है ॥ १३-१४ ॥

सा पुरस्ताच्च पश्चाच्च गृहीता भारती चमूः।
तत्र कृत्यमहं मन्ये सैन्धवस्याभिरक्षणम् ॥ १५ ॥

इस समय कौरव-सेना आगे और पीछेसे भी शत्रुओंके आक्रमणका शिकार हो रही है। इस परिस्थितिमें मैं सबसे आवश्यक कार्य यही मानता हूँ कि सिंधुराज जयद्रथकी रक्षा की जाय ॥ १५ ॥

स नो रक्ष्यतमस्तात क्रुद्धाद् भीतो धनंजयात्।
गतौ च सैन्धवं भीमौ युयुधानवृकोदरौ ॥ १६ ॥

तात ! जयद्रथ कुपित हुए अर्जुनसे डरा हुआ है। अतः वह हमारे लिये सबसे रक्षणीय है। भयंकर वीर सात्यकि और भीमसेन भी जयद्रथको ही लक्ष्य करके गये हैं ॥ १६ ॥

सम्प्राप्तं तदिदं द्यूतं यत् तच्छकुनिबुद्धिजम्।
न सभायां जयो वृत्तो नापि तत्र पराजयः ॥ १७ ॥
इह नो ग्लहमानानामद्य तावज्जयाजयौ।

शकुनिकी बुद्धिमें जो जूआ खेलनेकी बात पैदा हुई थी, वह वास्तवमें आज इस रूपमें सफल हो रही है। उस दिन सभामें किसी पक्षकी जीत या हार नहीं हुई थी। आज यहाँ जो हमलोग प्राणोंकी बाजी लगाकर जूआ खेल रहे हैं, इसीमें वास्तविक हार-जीत होनेवाली है ॥ १७½ ॥

यान् स तान् ग्लहते घोराञ्छकुनिः कुरुसंसदि ॥ १८ ॥
अक्षान् स मन्यमानः प्राक् शरास्ते हि दुरासदाः।

शकुनि कौरवसभामें पहले जिन भयंकर पासोंको हाथमें लेकर जूएका खेल खेलता था, उन्हें वह तो पासे ही समझता था, परंतु वास्तवमें वे दुर्धर्ष बाण थे ॥ १८½ ॥

यत्र ते बहवस्तात कौरवेया व्यवस्थिताः ॥ १९ ॥
सेनां दुरोदरं विद्धि शरानक्षान् विशाम्पते।
ग्लहं च सैन्धवं राजंस्तत्र द्यूतस्य निश्चयः ॥ २० ॥

तात ! (असली जूआ तो वहाँ हो रहा है) जहाँ तुम्हारे बहुत-से कौरव योद्धा खड़े हैं। इस सेनाको ही तुम जुआरी समझो। प्रजानाथ ! बाणोंको ही पासे मान लो। राजन् ! सिंधुराज जयद्रथको ही बाजी या दाँव समझो। उसीपर जूएकी हार-जीतका फैसला होगा ॥ १९-२० ॥

सैन्धवे तु महद् द्यूतं समासक्तं परैः सह।
अत्र सर्वे महाराज त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ २१ ॥
सैन्धवस्य रणे रक्षां विधिवत् कर्तुमर्हथ।
तत्र नो ग्लहमानानां ध्रुवौ जयपराजयौ ॥ २२ ॥

महाराज ! सिंधुराजके ही जीवनकी बाजी लगाकर शत्रुओंके साथ हमारी भारी द्यूतक्रीड़ा चल रही है। यहाँ तुम सब लोग अपने जीवनका मोह छोड़कर रणभूमिमें विधिपूर्वक जयद्रथकी रक्षा करो। निश्चय ही उसीपर हम द्यूतक्रीड़ा करनेवालोंकी असली हार-जीत निर्भर है ॥ २१-२२ ॥

यत्र ते परमेष्वासा यत्ता रक्षन्ति सैन्धवम्।
तत्र गच्छ स्वयं शीघ्रं तांश्च रक्षस्व रक्षिणः॥ २३॥

राजन् ! जहाँ वे महाधनुर्धर योद्धा सावधान होकर सिंधुराजकी रक्षा करने लगे हैं, वहीं तुम स्वयं भी शीघ्र चले जाओ और सिंधुराजके उन रक्षकोंकी रक्षा करो ॥ २३ ॥

इहैव त्वहमास्थिष्ये प्रेषयिष्यामि चापरान्।
निरोत्स्यामि च पञ्चालान् सहितान् पाण्डुसृञ्जयैः॥२४॥

मैं तो यहीं रहूँगा और तुम्हारे पास दूसरे-दूसरे रक्षकोंको भेजता रहूँगा। साथ ही पाण्डवों तथा सृंजयोंसहित आये हुए पाञ्चालोंको व्यूहके भीतर जानेसे रोकूँगा ॥ २४ ॥

ततो दुर्योधनोऽगच्छत् तूर्णमाचार्यशासनात्।
उद्यम्यात्मानमुग्राय कर्मणे सपदानुगः॥ २५॥

तदनन्तर आचार्यकी आज्ञासे दुर्योधन अपने आपको उग्र कर्म करनेके लिये तैयार करके अपने अनुचरोंके साथ शीघ्र वहाँसे चला गया ॥ २५ ॥

चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ।
बाह्येन सेनामभ्येत्य जग्मतुः सव्यसाचिनम्॥ २६॥

अर्जुनके चक्ररक्षक पाञ्चालराजकुमार युधामन्यु और उत्तमौजा सेनाके बाहरी भागसे होकर सव्यसाची अर्जुनके समीप जाने लगे ॥ २६ ॥

यौ तु पूर्वं महाराज वारितौ कृतवर्मणा।
प्रविष्टे त्वर्जुने राजंस्तव सैन्यं युयुत्सया॥ २७॥

महाराज ! जब अर्जुन युद्धकी इच्छासे आपकी सेनाके भीतर घुसे थे, उस समय (ये दोनों भीमके साथ ही थे, किंतु) कृतवर्माने उन दोनोंको पहले रोक दिया था ॥ २७ ॥

पार्श्वे भित्त्वा चमूं वीरौ प्रविष्टौ तव वाहिनीम्।
पार्श्वेन सैन्यमायान्तौ कुरुराजो ददर्श ह॥ २८॥

अब वे दोनों वीर पार्श्वभागसे आपकी सेनाका भेदन करके उसके भीतर घुस गये। पार्श्वभागसे सेनाके भीतर आते हुए उन दोनों वीरोंको कुरुराज दुर्योधनने देखा॥२८॥

ताभ्यां दुर्योधनः सार्धमकरोत् संख्यमुत्तमम्।
त्वरितस्त्वरमाणाभ्यां भ्रातृभ्यां भारतो बली॥ २९॥

तब उस बलवान् भरतवंशी वीर दुर्योधनने तुरंत आगे बढ़कर बड़ी उतावलीके साथ आते हुए उन दोनों भाइयोंके साथ भारी युद्ध छेड़ दिया ॥ २९ ॥

तावेनमभ्यद्रवतामुभावुद्यतकार्मुकौ।
महारथसमाख्यातौ क्षत्रियप्रवरौ युधि॥ ३०॥

वे दोनों क्षत्रियशिरोमणि विख्यात महारथी वीर थे। उन दोनोंने युद्धस्थलमें धनुष उठाकर दुर्योधनपर धावा बोल दिया ॥ ३० ॥

तमविध्यद् युधामन्युस्त्रिंशता कङ्कपत्रिभिः।
विंशत्या सारथिं चास्य चतुर्भिश्चतुरो हयान्॥ ३१॥

युधामन्युने कंकपत्रयुक्त तीस बाणोंद्वारा दुर्योधनको घायल कर दिया। फिर बीस बाणोंसे उसके सारथिको और चारसे चारों घोड़ोंको बींध डाला ॥ ३१ ॥

दुर्योधनो युधामन्योर्ध्वजमेकेषुणाच्छिनत्।
एकेन कार्मुकं चास्य चकर्त तनयस्तव॥ ३२॥

तब आपके पुत्र दुर्योधनने एक बाणसे युधामन्युकी ध्वजा काट डाली और एकसे उसके धनुषके दो टुकड़े कर दिये ॥ ३२ ॥

सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपाहरत्।
ततोऽविध्यच्छरैस्तीक्ष्णैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान्॥ ३३॥

इतना ही नहीं, एक भल्ल मारकर उसने युधामन्युके सारथिको भी रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया। फिर चार तीखे बाणोंद्वारा उसके चारों घोड़ोंको भी घायल कर दिया ॥

युधामन्युश्च संक्रुद्धः शरांस्त्रिंशतमाहवे।
व्यसृजत् तव पुत्रस्य त्वरमाणः स्तनान्तरे॥ ३४॥

इससे युधामन्यु भी कुपित हो उठा। उसने युद्धस्थलमें बड़ी उतावलीके साथ आपके पुत्रकी छातीमें तीस बाण मारे ॥

तथोत्तमौजाः संक्रुद्धः शरैर्हेमविभूषितैः।
अविध्यत् सारथिं चास्य प्राहिणोद् यमसादनम्॥३५॥

इसी प्रकार उत्तमौजाने भी अत्यन्त कुपित हो अपने सुवर्णभूषित बाणोंद्वारा उसके सारथिको गहरी चोट पहुँचायी और उसे यमलोक भेज दिया ॥ ३५ ॥

दुर्योधनोऽपि राजेन्द्र पाञ्चाल्यस्योत्तमौजसः।
जघान चतुरोऽश्वानुभौ तौ पार्ष्णिसारथी॥ ३६॥

राजेन्द्र ! तब दुर्योधनने भी पाञ्चालराज उत्तमौजाके चारों घोड़ों और दोनों पार्श्वरक्षकोंको सारथिसहित मार डाला ॥ ३६ ॥

उत्तमौजा हताश्वस्तु हतसूतश्च संयुगे।
आरुरोह रथं भ्रातुर्युधामन्योरभित्वरन्॥ ३७॥

युद्धमें घोड़ों और सारथिके मारे जानेपर उत्तमौजा शीघ्रतापूर्वक अपने भाई युधामन्युके रथपर जा चढ़ा ॥३७॥

स रथं प्राप्य तं भ्रातुर्दुर्योधनहयाञ्शरैः।
बहुभिस्ताडयामास ते हताः प्रापतन् भुवि॥ ३८॥

भाईके रथपर बैठकर उत्तमौजाने अपने बहुसंख्यक बाणोंद्वारा दुर्योधनके घोड़ोंपर इतना प्रहार किया कि वे प्राणशून्य होकर धरतीपर गिर पड़े ॥ ३८ ॥

हयेषु पतितेष्वस्य चिच्छेद परमेषुणा।
युधामन्युर्धनुः शीघ्रं शरावापं च संयुगे॥ ३९॥

'आचार्य ! अर्जुन, भीमसेन और अपराजित वीर सात्यकि—ये तीनों महारथी मेरी सम्पूर्ण एवं विशाल सेनाओंको पराजित करके सिंधुराज जयद्रथके समीप पहुँच गये हैं। उन्हें कोई रोक नहीं सका है ॥ ४-५ ॥

व्यायच्छन्ति च तत्रापि सर्व एवापराजिताः।
यदि तावद् रणे पार्थो व्यतिक्रान्तो महारथः ॥ ६ ॥
कथं सात्यकिभीमाभ्यां व्यतिक्रान्तोऽसि मानद।

'वहाँ भी वे सब-के-सब अपराजित होकर मेरी सेनापर प्रहार कर रहे हैं। मान लिया, महारथी अर्जुन रणभूमिमें (अधिक शक्तिशाली होनेके कारण) आपको लाँघकर आगे बढ़ गये हैं; परंतु दूसरोंको मान देनेवाले गुरुदेव ! सात्यकि और भीमसेनने किस तरह आपका लंघन किया है ? ॥ ६½ ॥

आश्चर्यभूतं लोकेऽस्मिन् समुद्रस्येव शोषणम् ॥ ७ ॥
निर्जयस्तव विप्राग्र्य सात्वतेनार्जुनेन च।
तथैव भीमसेनेन लोकः संवदते भृशम् ॥ ८ ॥

'विप्रवर ! सात्यकि, भीमसेन तथा अर्जुनके द्वारा आपकी पराजय समुद्रको सुखा देनेके समान इस संसारमें एक आश्चर्यभरी घटना है। लोग बड़े जोरसे इस बातकी चर्चा कर रहे हैं ॥ ७-८ ॥

कथं द्रोणो जितः संख्ये धनुर्वेदस्य पारगः।
इत्येवं ब्रुवते योधा अश्रद्धेयमिदं तव ॥ ९ ॥

'सारे योद्धा यह कह रहे हैं कि धनुर्वेदके पारंगत आचार्य द्रोण कैसे युद्धमें पराजित हो गये। आपका यह हारना लोगोंके लिये अविश्वसनीय हो गया है ॥ ९ ॥

नाश एव तु मे नूनं मन्दभाग्यस्य संयुगे।
यत्र त्वां पुरुषव्याघ्रं व्यतिक्रान्तास्त्रयो रथाः ॥ १० ॥

'वास्तवमें मेरा भाग्य ही खोटा है। ये तीनों महारथी जहाँ आप-जैसे पुरुषसिंह वीरको लाँघकर आगे बढ़ गये हैं, उस युद्धमें मेरा विनाश ही अवश्यम्भावी है ॥ १० ॥

एवं गते तु कृत्येऽस्मिन् ब्रूहि यत् ते विवक्षितम्।
यद् गतं गतमेवेदं शेषं चिन्तय मानद ॥ ११ ॥

'ऐसी परिस्थितिमें जो कर्तव्य है, उसके सम्बन्धमें आपकी क्या राय है, यह बताइये। मानद ! जो हो गया सो तो हो ही गया। अब जो शेष कार्य है, उसका विचार कीजिये ११

यत् कृत्यं सिन्धुराजस्य प्राप्तकालमनन्तरम्।
तत् संविधीयतां क्षिप्रं साधु संचिन्त्य नो द्विज ॥ १२ ॥

'ब्रह्मन् ! इस समय सिंधुराजकी रक्षाके लिये तुरंत करने योग्य जो कार्य हमारे सामने प्राप्त है, उसे अच्छी तरह सोच-विचारकर शीघ्र सम्पन्न कीजिये' ॥ १२ ॥

द्रोण उवाच

चिन्त्यं बहुविधं तात यत् कृत्यं तच्छृणुष्व मे।
त्रयो हि समतिक्रान्ताः पाण्डवानां महारथाः ॥ १३ ॥
यावत् तेषां भयं पश्चात् तावदेषां पुरःसरम्।
तद् गरीयस्तरं मन्ये यत्र कृष्णधनंजयौ ॥ १४ ॥

द्रोणाचार्यने कहा—तात ! सोचने-विचारनेको तो बहुत कुछ है, किंतु इस समय जो कर्तव्य प्राप्त है, वह मुझसे सुनो। पाण्डवपक्षके तीन महारथी हमारी सेनाको लाँघकर आगे बढ़ गये हैं। पीछे उनका जितना भय है, उतना ही आगे भी है। परंतु जहाँ अर्जुन और श्रीकृष्ण हैं, वहीं मेरी समझमें अधिक भयकी आशंका है ॥ १३-१४ ॥

सा पुरस्ताच्च पश्चाच्च गृहीता भारती चमूः।
तत्र कृत्यमहं मन्ये सैन्धवस्याभिरक्षणम् ॥ १५ ॥

इस समय कौरव-सेना आगे और पीछेसे भी शत्रुओंके आक्रमणका शिकार हो रही है। इस परिस्थितिमें मैं सबसे आवश्यक कार्य यही मानता हूँ कि सिंधुराज जयद्रथकी रक्षा की जाय ॥ १५ ॥

स नो रक्ष्यतमस्तात क्रुद्धाद् भीतो धनंजयात्।
गतौ च सैन्धवं भीमौ युयुधानवृकोदरौ ॥ १६ ॥

तात ! जयद्रथ कुपित हुए अर्जुनसे डरा हुआ है। अतः वह हमारे लिये सबसे रक्षणीय है। भयंकर वीर सात्यकि और भीमसेन भी जयद्रथको ही लक्ष्य करके गये हैं ॥ १६ ॥

सम्प्राप्तं तदिदं द्यूतं यत् तच्छकुनिबुद्धिजम्।
न सभायां जयो वृत्तो नापि तत्र पराजयः ॥ १७ ॥
इह नो ग्लहमानानामद्य तावज्जयाजयौ।

शकुनिकी बुद्धिमें जो जूआ खेलनेकी बात पैदा हुई थी, वह वास्तवमें आज इस रूपमें सफल हो रही है। उस दिन सभामें किसी पक्षकी जीत या हार नहीं हुई थी। आज यहाँ जो हमलोग प्राणोंकी बाजी लगाकर जूआ खेल रहे हैं, इसीमें वास्तविक हार-जीत होनेवाली है ॥ १७½ ॥

यान् स तान् ग्लहते घोराञ्छकुनिः कुरुसंसदि ॥ १८ ॥
अक्षान् स मन्यमानः प्राक् शरास्ते हि दुरासदाः।

शकुनि कौरवसभामें पहले जिन भयंकर पासोंको हाथमें लेकर जूएका खेल खेलता था, उन्हें वह तो पासे ही समझता था, परंतु वास्तवमें वे दुर्धर्ष बाण थे ॥ १८½ ॥

यत्र ते बहवस्तात कौरवेया व्यवस्थिताः ॥ १९ ॥
सेनां दुरोदरं विद्धि शरानक्षान् विशाम्पते।
ग्लहं च सैन्धवं राजंस्तत्र द्यूतस्य निश्चयः ॥ २० ॥

तात ! (असली जूआ तो वहाँ हो रहा है) जहाँ तुम्हारे बहुत-से कौरव योद्धा खड़े हैं। इस सेनाको ही तुम जुआरी समझो। प्रजानाथ ! बाणोंको ही पासे मान लो। राजन् ! सिंधुराज जयद्रथको ही बाजी या दाँव समझो। उसीपर जूएकी हार-जीतका फैसला होगा ॥ १९-२० ॥

सैन्धवे तु महद् द्यूतं समासक्तं परैः सह।
अत्र सर्वे महाराज त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ २१ ॥
सैन्धवस्य रणे रक्षां विधिवत् कर्तुमर्हथ।
तत्र नो ग्लहमानानां ध्रुवौ जयपराजयौ ॥ २२ ॥

महाराज ! सिंधुराजके ही जीवनकी बाजी लगाकर शत्रुओंके साथ हमारी भारी द्यूतक्रीड़ा चल रही है। यहाँ तुम सब लोग अपने जीवनका मोह छोड़कर रणभूमिमें विधिपूर्वक जयद्रथकी रक्षा करो। निश्चय ही उसीपर हम द्यूतक्रीड़ा करनेवालोंकी असली हार-जीत निर्भर है ॥ २१-२२ ॥

यत्र ते परमेष्वासा यत्ता रक्षन्ति सैन्धवम्।
तत्र गच्छ स्वयं शीघ्रं तांश्च रक्षस्व रक्षिणः॥ २३॥

राजन् ! जहाँ वे महाधनुर्धर योद्धा सावधान होकर सिंधुराजकी रक्षा करने लगे हैं, वहीं तुम स्वयं भी शीघ्र चले जाओ और सिंधुराजके उन रक्षकोंकी रक्षा करो ॥ २३ ॥

इहैव त्वहमासिष्ये प्रेषयिष्यामि चापरान्।
निरोत्स्यामि च पञ्चालान् सहितान् पाण्डुसृञ्जयैः॥२४॥

मैं तो यहीं रहूँगा और तुम्हारे पास दूसरे-दूसरे रक्षकोंको भेजता रहूँगा। साथ ही पाण्डवों तथा सृंजयोंसहित आये हुए पाञ्चालोंको व्यूहके भीतर जानेसे रोकूँगा ॥ २४ ॥

ततो दुर्योधनोऽगच्छत् तूर्णमाचार्यशासनात्।
उद्यम्यात्मानमुग्राय कर्मणे सपदानुगः॥ २५॥

तदनन्तर आचार्यकी आज्ञासे दुर्योधन अपने आपको उग्र कर्म करनेके लिये तैयार करके अपने अनुचरोंके साथ शीघ्र वहाँसे चला गया ॥ २५ ॥

चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ।
बाह्येन सेनामभ्येत्य जग्मतुः सव्यसाचिनम्॥ २६॥

अर्जुनके चक्ररक्षक पाञ्चालराजकुमार युधामन्यु और उत्तमौजा सेनाके बाहरी भागसे होकर सव्यसाची अर्जुनके समीप जाने लगे ॥ २६ ॥

यौ तु पूर्वं महाराज वारितौ कृतवर्मणा।
प्रविष्टे त्वर्जुने राजंस्तव सैन्यं युयुत्सया॥ २७॥

महाराज ! जब अर्जुन युद्धकी इच्छासे आपकी सेनाके भीतर घुसे थे, उस समय (ये दोनों भीमके साथ ही थे, किंतु) कृतवर्माने उन दोनोंको पहले रोक दिया था ॥ २७ ॥

पार्श्वे भित्त्वा चमूं वीरौ प्रविष्टौ तव वाहिनीम्।
पार्श्वेन सैन्यमायान्तौ कुरुराजो ददर्श ह॥ २८॥

अब वे दोनों वीर पार्श्वभागसे आपकी सेनाका भेदन करके उसके भीतर घुस गये। पार्श्वभागसे सेनाके भीतर आते हुए उन दोनों वीरोंको कुरुराज दुर्योधनने देखा ॥२८॥

ताभ्यां दुर्योधनः सार्धमकरोत् संख्यमुत्तमम्।
त्वरितस्त्वरमाणाभ्यां भ्रातृभ्यां भारतो बली॥ २९॥

तब उस बलवान् भरतवंशी वीर दुर्योधनने तुरंत आगे बढ़कर बड़ी उतावलीके साथ आते हुए उन दोनों भाइयोंके साथ भारी युद्ध छेड़ दिया ॥ २९ ॥

तावेनमभ्यद्रवतामुभावुद्यतकार्मुकौ।
महारथसमाख्यातौ क्षत्रियप्रवरौ युधि॥ ३०॥

वे दोनों क्षत्रियशिरोमणि विख्यात महारथी वीर थे। उन दोनोंने युद्धस्थलमें धनुष उठाकर दुर्योधनपर धावा बोल दिया ॥ ३० ॥

तमविध्यद् युधामन्युस्त्रिंशता कङ्कपत्रिभिः।
विंशत्या सारथिं चास्य चतुर्भिश्चतुरो हयान्॥ ३१॥

युधामन्युने कंकपत्रयुक्त तीस बाणोंद्वारा दुर्योधनको घायल कर दिया। फिर बीस बाणोंसे उसके सारथिको और चारसे चारों घोड़ोंको बींध डाला ॥ ३१ ॥

दुर्योधनो युधामन्योर्ध्वजमेकेषुणाच्छिनत्।
एकेन कार्मुकं चास्य चकर्त तनयस्तव॥ ३२॥

तब आपके पुत्र दुर्योधनने एक बाणसे युधामन्युकी ध्वजा काट डाली और एकसे उसके धनुषके दो टुकड़े कर दिये ॥ ३२ ॥

सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपाहरत्।
ततोऽविध्यच्छरैस्तीक्ष्णैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान्॥ ३३॥

इतना ही नहीं, एक भल्ल मारकर उसने युधामन्युके सारथिको भी रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया। फिर चार तीखे बाणोंद्वारा उसके चारों घोड़ोंको भी घायल कर दिया ॥

युधामन्युश्च संक्रुद्धः शरांस्त्रिंशतमाहवे।
व्यसृजत् तव पुत्रस्य त्वरमाणः स्तनान्तरे॥ ३४॥

इससे युधामन्यु भी कुपित हो उठा। उसने युद्धस्थलमें बड़ी उतावलीके साथ आपके पुत्रकी छातीमें तीस बाण मारे ॥

तथोत्तमौजाः संक्रुद्धः शरैर्हेमविभूषितैः।
अविध्यत् सारथिं चास्य प्राहिणोद् यमसादनम्॥३५॥

इसी प्रकार उत्तमौजाने भी अत्यन्त कुपित हो अपने सुवर्णभूषित बाणोंद्वारा उसके सारथिको गहरी चोट पहुँचायी और उसे यमलोक भेज दिया ॥ ३५ ॥

दुर्योधनोऽपि राजेन्द्र पाञ्चाल्यस्योत्तमौजसः।
जघान चतुरोऽस्याश्वानुभौ तौ पार्ष्णिसारथी॥ ३६॥

राजेन्द्र ! तब दुर्योधनने भी पाञ्चालराज उत्तमौजाके चारों घोड़ों और दोनों पार्श्वरक्षकोंको सारथिसहित मार डाला ॥ ३६ ॥

उत्तमौजा हताश्वस्तु हतसूतश्च संयुगे।
आरुरोह रथं भ्रातुर्युधामन्योरभित्वरन्॥ ३७॥

युद्धमें घोड़ों और सारथिके मारे जानेपर उत्तमौजा शीघ्रतापूर्वक अपने भाई युधामन्युके रथपर जा चढ़ा ॥३७॥

स रथं प्राप्य तं भ्रातुर्दुर्योधनहयाञ्शरैः।
बहुभिस्ताडयामास ते हताः प्रापतन् भुवि॥ ३८॥

भाईके रथपर बैठकर उत्तमौजाने अपने बहुसंख्यक बाणोंद्वारा दुर्योधनके घोड़ोंपर इतना प्रहार किया कि वे प्राणशून्य होकर धरतीपर गिर पड़े ॥ ३८ ॥

हयेषु पतितेष्वस्य चिच्छेद परमेषुणा।
युधामन्युर्धनुः शीघ्रं शरावापं च संयुगे॥ ३९॥

घोड़ोंके धराशायी हो जानेपर युधामन्युने उस युद्धस्थलमें उत्तम बाणका प्रहार करके दुर्योधनके धनुष और तरकसको भी शीघ्रतापूर्वक काट गिराया ॥ ३९ ॥

हताश्वसूतात् स रथादवतीर्य नराधिपः ।
गदामादाय ते पुत्रः पाञ्चाल्यावभ्यधावत ॥ ४० ॥

घोड़े और सारथिके मारे जानेपर आपका पुत्र राजा दुर्योधन रथसे उतर पड़ा और गदा हाथमें लेकर पाञ्चाल देशके उन दोनों वीरोंकी ओर दौड़ा ॥ ४० ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य क्रुद्धं कुरुपतिं तदा ।
अवप्लुतौ रथोपस्थाद् युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ ४१ ॥

उस समय क्रोधमें भरे हुए कुरुराज दुर्योधनको अपनी ओर आते देख दोनों भाई युधामन्यु और उत्तमौजा रथके पिछले भागसे नीचे कूद गये ॥ ४१ ॥

ततः स हेमचित्रं तं गदया स्यन्दनं गदी ।
संक्रुद्धः पोथयामास साश्वसूतध्वजं नृप ॥ ४२ ॥

नरेश्वर ! तदनन्तर अत्यन्त कुपित हुए गदाधारी दुर्योधनने घोड़े, सारथि और ध्वजसहित उस सुवर्णजटित सुन्दर रथको गदाके आघातसे चूर-चूर कर दिया ॥ ४२ ॥

भङ्क्त्वा रथं स पुत्रस्ते हताश्वो हतसारथिः ।
मद्रराजरथं तूर्णमारुरोह परंतपः ॥ ४३ ॥

इस प्रकार उस रथको तोड़-फोड़कर घोड़ों और सारथिसे हीन हुआ शत्रुसंतापी दुर्योधन शीघ्र ही मद्रराज शल्यके रथपर जा चढ़ा ॥ ४३ ॥

पञ्चालानां ततो मुख्यौ राजपुत्रौ महारथौ ।
रथावन्यौ समारुह्य बीभत्सुमभिजग्मतुः ॥ ४४ ॥

तत्पश्चात् पाञ्चालसेनाके वे दोनों प्रधान महारथी राजकुमार युधामन्यु और उत्तमौजा दूसरे दो रथोंपर आरूढ़ होकर अर्जुनके समीप चले गये ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनयुद्धे त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें दुर्योधनका युद्धविषयक एक सौ तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३० ॥

एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेनके द्वारा कर्णकी पराजय

संजय उवाच

वर्तमाने महाराज संग्रामे लोमहर्षणे ।
व्याकुलेषु च सर्वेषु पीड्यमानेषु सर्वशः ॥ १ ॥
राधेयो भीममानर्च्छद् युद्धाय भरतर्षभ ।
यथा नागो वने नागं मत्तो मत्तमभिद्रवन् ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—भरतश्रेष्ठ महाराज ! इस प्रकार रोमाञ्चकारी संग्राम छिड़ जानेपर जब सारी सेनाएँ सब ओरसे पीड़ित और व्याकुल हो गयीं, तब राधानन्दन कर्ण युद्धके लिये पुनः भीमसेनके सामने आया । ठीक उसी तरह, जैसे वनमें एक मतवाला हाथी दूसरे मदोन्मत्त हाथीपर आक्रमण करता है ॥ १-२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

यौ तौ कर्णश्च भीमश्च सम्प्रयुद्धौ महाबलौ ।
अर्जुनस्य रथोपान्ते कीदृशः सोऽभवद् रणः ॥ ३ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! महाबली कर्ण और भीमसेनने अर्जुनके रथके निकट जाकर जो बड़े वेगसे युद्ध किया, उनका वह संग्राम कैसा हुआ ? ॥ ३ ॥

पूर्वं हि निर्जितः कर्णो भीमसेनेन संयुगे ।
कथं भूयः स राधेयो भीममागान्महारथः ॥ ४ ॥

भीमसेनने युद्धमें जब राधानन्दन महारथी कर्णको पहले ही जीत लिया था; तब वह पुनः उनका सामना करनेके लिये कैसे आया ? ॥ ४ ॥

भीमो वा सूततनयं प्रत्युद्यातः कथं रणे ।
महारथं समाख्यातं पृथिव्यां प्रवरं रथम् ॥ ५ ॥

अथवा भीमसेन भूमण्डलके श्रेष्ठ एवं विख्यात महारथी सूतपुत्र कर्णसे समराङ्गणमें युद्ध करनेके लिये कैसे आगे बढ़े ? ॥ ५ ॥

भीष्मद्रोणावतिक्रम्य धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
नान्यतो भयमादत्त विना कर्णान्महारथात् ॥ ६ ॥

भीष्म और द्रोणसे पार पाकर धर्मराज युधिष्ठिरको अब महारथी कर्णके सिवा दूसरे किसीसे भय नहीं रह गया है ॥ ६ ॥

भयाद् यस्य महाबाहोर्न शेते बहुलाः समाः ।
चिन्तयन् नित्यशो वीर्यं राधेयस्य महात्मनः ।
तं कथं सूतपुत्रं तु भीमोऽयोधयताहवे ॥ ७ ॥

पहले जिस महाबाहु महामना राधानन्दन कर्णके बल-पराक्रमका नित्य चिन्तन करते हुए राजा युधिष्ठिर भयके मारे बहुत वर्षोंतक नींद नहीं लेते थे, उसी सूतपुत्र कर्णके साथ भीमसेनने समरभूमिमें किस तरह युद्ध किया ? ॥ ७ ॥

ब्रह्मण्यं वीर्यसम्पन्नं समरेष्वनिवर्तिनम् ।
कथं कर्णं युधां श्रेष्ठं योधयामास पाण्डवः ॥ ८ ॥

जो ब्राह्मणभक्त, पराक्रमसम्पन्न और समरभूमिमें कभी पीछे न हटनेवाला है, योद्धाओंमें श्रेष्ठ उस कर्णके साथ भीमसेनने किस प्रकार युद्ध किया ? ॥ ८ ॥

यौ तौ समीयतुर्वीरौ वैकर्तनवृकोदरौ ।
कथं तावत्र युध्येतां महाबलपराक्रमौ ॥ ९ ॥

जो वीर पहले आपसमें भिड़ चुके थे, वे ही महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न कर्ण और भीमसेन यहाँ पुनः कैसे युद्धमें प्रवृत्त हुए ? ॥ ९ ॥

भ्रातृत्वं दर्शितं पूर्वं घृणी चापि स सूतजः ।
कथं भीमेन युयुधे कुन्त्या वाक्यमनुस्मरन् ॥ १० ॥

पहले तो सूतपुत्र कर्णने अर्जुनके सिवा अन्य पाण्डवोंके प्रति बन्धुत्व दिखाया था और वह दयालु भी है ही, तथापि कुन्तीके वचनोंको बारंबार स्मरण करते हुए भी उसने भीमसेनके साथ कैसे युद्ध किया ? ॥ १० ॥

भीमो वा सूतपुत्रेण स्मरन् वैरं पुरा कृतम् ।
अयुध्यत कथं शूरः कर्णेन सह संयुगे ॥ ११ ॥

अथवा शूरवीर भीमसेनने पहलेके किये हुए वैरका स्मरण करके सूतपुत्र कर्णके साथ उस रणक्षेत्रमें किस प्रकार युद्ध किया ? ॥ ११ ॥

आशास्ते च सदा सूत पुत्रो दुर्योधनो मम ।
कर्णो जेष्यति संग्रामे समस्तान् पाण्डवानिति ॥१२॥

संजय ! मेरा बेटा दुर्योधन सदा यही आशा करता है कि कर्ण संग्राममें समस्त पाण्डवोंको जीत लेगा ॥ १२ ॥

जयाशा यत्र पुत्रस्य मम मन्दस्य संयुगे ।
स कथं भीमकर्माणं भीमसेनमयोधयत् ॥ १३ ॥

युद्धस्थलमें जिसके ऊपर मेरे मूर्ख पुत्रकी विजयकी आशा लगी हुई है, उस कर्णने भयंकर कर्म करनेवाले भीमसेनके साथ किस प्रकार युद्ध किया ? ॥ १३ ॥

यं समासाद्य पुत्रैर्मे कृतं वैरं महारथैः ।
तं सूततनयं तात कथं भीमो ह्ययोधयत् ॥ १४ ॥

तात ! जिसका आश्रय लेकर मेरे पुत्रोंने महारथी पाण्डवोंके साथ वैर ठाना है, उस सूतपुत्र कर्णके साथ भीमसेनने किस प्रकार युद्ध किया ? ॥ १४ ॥

अनेकान् विप्रकारांश्च सूतपुत्रसमुद्भवान् ।
स्मरमाणः कथं भीमो युयुधे सूतसूनुना ॥ १५ ॥

सूतपुत्रके द्वारा किये गये अनेक अपकारोंको स्मरण करके भीमसेनने उसके साथ किस तरह युद्ध किया ? ॥१५॥

योऽजयत् पृथिवीं सर्वां रथेनैकेन वीर्यवान् ।
तं सूततनयं युद्धे कथं भीमो ह्ययोधयत् ॥ १६ ॥

जिस पराक्रमी वीरने एकमात्र रथकी सहायतासे सारी पृथ्वीको जीत लिया, उस सूतपुत्रके साथ रणभूमिमें भीमसेनने किस तरह युद्ध किया ? ॥ १६ ॥

यो जातः कुण्डलाभ्यां च कवचेन सहैव च ।
तं सूतपुत्रं समरे भीमः कथमयोधयत् ॥ १७ ॥

जो जन्मसे ही कवच और कुण्डलोंके साथ उत्पन्न हुआ था, उस सूतपुत्रके साथ समराङ्गणमें भीमसेनने किस प्रकार युद्ध किया ? ॥ १७ ॥

यथा तयोर्युद्धमभूद् यश्चासीद् विजयी तयोः ।
तन्ममाचक्ष्व तत्त्वेन कुशलो ह्यसि संजय ॥ १८ ॥

संजय ! उन दोनों वीरोंमें जिस प्रकार युद्ध हुआ और उनमेंसे जिस एकको विजय प्राप्त हुई, उसका वह सब समाचार मुझे ठीक-ठीक बताओ; क्योंकि तुम इस कार्यमें कुशल हो ॥ १८ ॥

संजय उवाच

भीमसेनस्तु राधेयमुत्सृज्य रथिनां वरम् ।
इयेष गन्तुं यत्रास्तां वीरौ कृष्णधनंजयौ ॥ १९ ॥

संजयने कहा—राजन् ! भीमसेनने रथियोंमें श्रेष्ठ राधापुत्र कर्णको छोड़कर वहाँ जानेकी इच्छा की, जहाँ वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन विद्यमान थे ॥ १९ ॥

तं प्रयान्तमभिद्रुत्य राधेयः कङ्कपत्रिभिः ।
अभ्यवर्षन्महाराज मेघो वृष्ट्येव पर्वतम् ॥ २० ॥

महाराज ! वहाँसे जाते हुए भीमसेनपर आक्रमण करके राधापुत्र कर्णने उनके ऊपर कङ्कपत्रयुक्त बाणोंकी उसी प्रकार वर्षा आरम्भ कर दी, जैसे बादल पर्वतपर जलकी वर्षा करता है ॥ २० ॥

फुल्लता पङ्कजेनेव वक्त्रेण विहसन् बली ।
आजुहाव रणे यान्तं भीममाधिरथिस्तदा ॥ २१ ॥

बलवान् अधिरथपुत्रने खिलते हुए कमलके समान मुखसे हँसकर जाते हुए भीमसेनको युद्धके लिये ललकारा ॥ २१ ॥

कर्ण उवाच

भीमाहितैस्तव रणे स्वप्नेऽपि न विभावितम् ।
तद् दर्शयसि कस्मान्मे पृष्ठं पार्थदिदृक्षया ॥ २२ ॥

कर्णने कहा—भीमसेन ! तुम्हारे शत्रुओंने स्वप्नमें भी यह नहीं सोचा था कि तुम युद्धमें पीठ दिखाओगे; परंतु इस समय अर्जुनसे मिलनेके लिये तुम मुझे पीठ क्यों दिखा रहे हो ? ॥ २२ ॥

कुन्त्याः पुत्रस्य सदृशं नेदं पाण्डवनन्दन ।
तेन मामभितः स्थित्वा शरवर्षैरवाकिर ॥ २३ ॥

पाण्डवनन्दन ! तुम्हारा यह कार्य कुन्तीके पुत्रके योग्य नहीं है। अतः मेरे सम्मुख रहकर मुझपर बाणोंकी वर्षा करो ॥ २३ ॥

भीमसेनस्तदाह्वानं कर्णान्नामर्षयद् युधि ।
अर्धमण्डलमावृत्य सूतपुत्रमयोधयत् ॥ २४ ॥

कर्णकी ओरसे रणक्षेत्रमें वह युद्धकी ललकार भीमसेन न सह सके। उन्होंने अर्धमंण्डल गतिसे घूमकर सूतपुत्रके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया ॥ २४ ॥

अवक्रगामिभिर्बाणैरभ्यवर्षन्महायशाः ।
दंशितं द्वैरथे यत्तं सर्वशस्त्रविशारदम् ॥ २५ ॥

महायशस्वी भीमसेन सम्पूर्ण शस्त्रोंके चलानेमें निपुण, कवचधारी तथा द्वैरथ युद्धके लिये तैयार कर्णके ऊपर सीधे जानेवाले बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २५ ॥

विधित्सुः कलहस्यान्तं जिघांसुः कर्णमक्षिणोत् ।
हत्वा तस्यानुगांस्तं च हन्तुकामो महाबलः ॥ २६ ॥

कलहका अन्त करनेकी इच्छासे महाबली भीमसेन कर्णको मार डालना चाहते थे और इसीलिये उसे बाणोंद्वारा क्षत-विक्षत कर रहे थे । वे कर्णको मारकर उसके अनुगामी सेवकोंका भी वध करनेकी इच्छा रखते थे ॥ २६ ॥

तस्मै व्यसृजदुग्राणि विविधानि परंतपः ।
अमर्षात् पाण्डवः क्रुद्धः शरवर्षाणि मारिष ॥ २७ ॥

माननीय नरेश ! शत्रुओंको संताप देनेवाले पाण्डुनन्दन भीमसेन कुपित हो अमर्षवश कर्णपर नाना प्रकारके भयंकर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २७ ॥

तस्य तानीषुवर्षाणि मत्तद्विरदगामिनः ।
सूतपुत्रोऽस्त्रमायाभिरग्रसत् परमास्त्रवित् ॥ २८ ॥

उत्तम अस्त्रोंका ज्ञान रखनेवाले सूतपुत्र कर्णने अपने अस्त्रोंकी मायासे मतवाले हाथीके समान मस्तीसे चलनेवाले भीमसेनकी उस बाणवर्षाको ग्रस लिया ॥ २८ ॥

स यथावन्महाबाहुर्विद्यया वै सुपूजितः ।
आचार्यवन्महेष्वासः कर्णः पर्यचरद् बली ॥ २९ ॥

महाबाहु महाधनुर्धर बलवान् कर्ण अपनी विद्याद्वारा आचार्य द्रोणके समान यथावत् पूजित हो रणक्षेत्रमें विचरने लगा ॥ २९ ॥

युध्यमानं तु संरम्भाद् भीमसेनं हसन्निव ।
अभ्यपद्यत कौन्तेयं कर्णो राजन् वृकोदरम् ॥ ३० ॥

राजन् ! क्रोधपूर्वक युद्ध करनेवाले कुन्तीपुत्र भीमसेनकी हँसी उड़ाता हुआ-सा कर्ण उनके सामने जा पहुँचा ॥ ३० ॥

तन्नामृष्यत कौन्तेयः कर्णस्य स्मितमाहवे ।
युध्यमानेषु वीरेषु पश्यत्सु च समन्ततः ॥ ३१ ॥
तं भीमसेनः सम्प्राप्तं वत्सदन्तैः स्तनान्तरे ।
विव्याध बलवान् क्रुद्धस्तोत्त्रैरिव महाद्विपम् ॥ ३२ ॥

कुन्तीकुमार भीम युद्धस्थलमें कर्णकी उस हँसीको न सह सके । सब ओर युद्ध करते हुए समस्त वीरोंको देखते-देखते बलवान् भीमसेनने कुपित हो सामने आये हुए कर्णकी छातीमें वत्सदन्त नामक बाणोंद्वारा उसी प्रकार चोट पहुँचायी, जैसे महावत महान् गजराजको अंकुशोंद्वारा पीड़ित करता है ॥ ३१-३२ ॥

पुनश्च सूतपुत्रं तु स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।
सुमुक्तैश्चित्रवर्माणं निर्बिभेद त्रिसप्तभिः ॥ ३३ ॥

तत्पश्चात् विचित्र कवच धारण करनेवाले सूतपुत्रको सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले तथा अच्छी तरह छोड़े हुए इक्कीस बाणोंद्वारा पुनः क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ३३ ॥

कर्णो जाम्बूनदैर्जालैः संछन्नान् वातरंहसः ।
हयान् विव्याध भीमस्य पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ॥ ३४ ॥

उधर कर्णने भीमसेनके सोनेकी जालियोंसे आच्छादित हुए वायुके समान वेगशाली घोड़ोंको पाँच-पाँच बाणोंसे बेध दिया ॥ ३४ ॥

ततो बाणमयं जालं भीमसेनरथं प्रति ।
कर्णेन विहितं राजन् निमेषार्धाददृश्यत ॥ ३५ ॥

राजन् ! तदनन्तर आधे निमेषमें ही भीमसेनके रथपर कर्णद्वारा बाणोंका जाल-सा बिछाया जाता दिखायी दिया ॥ ३५ ॥

सरथः सध्वजस्तत्र ससूतः पाण्डवस्तदा ।
प्राच्छाद्यत महाराज कर्णचापच्युतैः शरैः ॥ ३६ ॥

महाराज ! वहाँ कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा उस समय रथ, ध्वज और सारथिसहित पाण्डुनन्दन भीमसेन आच्छादित हो गये ॥ ३६ ॥

तस्य कर्णश्चतुःषष्ट्या व्यधमत् कवचं दृढम् ।
क्रुद्धश्चाप्यहनत् पार्थं नाराचैर्मर्मभेदिभिः ॥ ३७ ॥

कर्णने चौंसठ बाण मारकर भीमसेनके सुदृढ़ कवचकी धज्जियाँ उड़ा दीं । फिर कुपित होकर उसने मर्मभेदी नाराचोंसे कुन्तीकुमारको अच्छी तरह घायल किया ॥ ३७ ॥

ततोऽचिन्त्य महाबाहुः कर्णकार्मुकनिःसृतान् ।
समाश्लिष्यदसम्भ्रान्तः सूतपुत्रं वृकोदरः ॥ ३८ ॥

महाबाहु भीमसेन कर्णके धनुषसे छूटे हुए उन बाणोंकी कोई परवा न करके बिना किसी घबराहटके सूतपुत्रके इतने समीप पहुँच गये, मानो उससे सटे जा रहे हों ॥ ३८ ॥

स कर्णचापप्रभवानिषूनाशीविषोपमान् ।
बिभ्रद् भीमो महाराज न जगाम व्यथां रणे ॥ ३९ ॥

महाराज ! कर्णके धनुषसे छूटे हुए विषधर सर्पके समान भयंकर बाणोंको अपने शरीरपर धारण करते हुए भीमसेन रणक्षेत्रमें व्यथित नहीं हुए ॥ ३९ ॥

ततो द्वात्रिंशता भल्लैर्निशितैस्तिग्मतेजनैः ।
विव्याध समरे कर्णं भीमसेनः प्रतापवान् ॥ ४० ॥

तत्पश्चात् अच्छी तरह तेज किये हुए बत्तीस तीखे भल्लोंसे प्रतापी भीमसेनने समराङ्गणमें कर्णको भारी चोट पहुँचायी ॥ ४० ॥

अयत्नेनैव तं कर्णः शरैर्भृशमवाकिरत् ।
भीमसेनं महाबाहुं सैन्धवस्य वधैषिणम् ॥ ४१ ॥

उधर कर्ण जयद्रथके वधकी इच्छावाले महाबाहु भीमसेनपर अनायास ही बाणोंकी बड़ी भारी वर्षा करने लगा ॥ ४१ ॥

मृदुपूर्वं तु राधेयो भीममाजावयोधयत् ।
क्रोधपूर्वं तथा भीमः पूर्वं वैरमनुस्मरन् ॥ ४२ ॥

राधानन्दन कर्ण तो भीमसेनपर कोमल प्रहार करता हुआ रणभूमिमें उनके साथ युद्ध करता था; परंतु भीमसेन पहलेके वैरको बारंबार स्मरण करते हुए क्रोधपूर्वक उसके साथ जूझ रहे थे ॥ ४२ ॥

तं भीमसेनो नामृष्यदवमानममर्षणः ।
स तस्मै व्यसृजत् तूर्णं शरवर्षममित्रहा ॥ ४३ ॥

शत्रुओंका नाश करनेवाले अमर्षशील भीमसेन कर्णद्वारा दिखायी जानेवाली कोमलता या ढिलाईको अपने लिये अपमान समझकर उसे सह न सके। अतः उन्होंने भी तुरंत ही उसपर बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ ४३ ॥

ते शराः प्रेषितास्तेन भीमसेनेन संयुगे ।
निपेतुः सर्वतो वीरे कूजन्त इव पक्षिणः ॥ ४४ ॥

युद्धस्थलमें भीमसेनके द्वारा चलाये हुए वे बाण कूजते हुए पक्षियोंके समान वीर कर्णपर सब ओरसे पड़ने लगे ॥४४॥

हेमपुङ्खाः प्रसन्नाग्रा भीमसेनधनुश्च्युताः ।
प्राच्छादयंस्ते राधेयं शलभा इव पावकम् ॥ ४५ ॥

भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए चमचमाती हुई धारवाले सुवर्णमय पंखोंसे सुशोभित उन बाणोंने राधानन्दन कर्णको उसी प्रकार ढक दिया, जैसे पतिंगे आगको आच्छादित कर लेते हैं ॥ ४५ ॥

कर्णस्तु रथिनां श्रेष्ठश्छाद्यमानः समन्ततः ।
राजन् व्यसृजदुग्राणि शरवर्षाणि भारत ॥ ४६ ॥

भरतवंशी नरेश ! इस प्रकार सब ओरसे बाणोंद्वारा आच्छादित होते हुए रथियोंमें श्रेष्ठ कर्णने भी भीमपर भयंकर बाणवर्षा आरम्भ कर दी ॥ ४६ ॥

तस्य तानशनिप्रख्यानिषून् समरशोभिनः ।
चिच्छेद बहुभिर्भल्लैरसम्प्राप्तान् वृकोदरः ॥ ४७ ॥

परंतु समरभूमिमें शोभा पानेवाले कर्णके उन वज्रोपम बाणोंको भीमसेनने अपने पास आनेसे पहले ही बहुत-से भल्लोंद्वारा काट गिराया ॥ ४७ ॥

पुनश्च शरवर्षेण च्छादयामास भारत ।
कर्णो वैकर्तनो युद्धे भीमसेनमरिंदमः ॥ ४८ ॥

भरतनन्दन ! शत्रुओंका दमन करनेवाले सूर्यपुत्र कर्णने युद्धमें पुनः बाणवर्षा करके भीमसेनको ढक दिया ॥४८॥

तत्र भारत भीमं तु दृष्टवन्तः स्म सायकैः ।
समाचिततनुं संख्ये श्वाविधं शललैरिव ॥ ४९ ॥

भारत ! उस समय युद्धस्थलमें बाणोंसे चिने हुए शरीरवाले भीमसेनको सब लोगोंने कंटकोंसे युक्त साहीके समान देखा ॥ ४९ ॥

हेमपुङ्खाञ्छिलाधौतान् कर्णचापच्युताञ्छरान् ।
दधार समरे वीरः स्वरश्मीनिव रश्मिवान् ॥ ५० ॥

वीर भीमसेनने कर्णके धनुषसे छूटे और शिलापर तेज किये हुए सुवर्णपंखयुक्त बाणोंको समराङ्गणमें अपने शरीरपर उसी प्रकार धारण किया था, जैसे अंशुमाली सूर्य अपने किरणोंको धारण करते हैं ॥ ५० ॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गो भीमसेनो व्यराजत ।
समृद्धकुसुमापीडो वसन्तेऽशोकवृक्षवत् ॥ ५१ ॥

भीमसेनका सारा शरीर खूनसे लथपथ हो रहा था। वे वसन्तऋतुमें खिले हुए अधिकाधिक पुष्पोंसे सम्पन्न अशोक वृक्षके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ ५१ ॥

तत्तु भीमो महाबाहोः कर्णस्य चरितं रणे ।
नामृष्यत महाबाहुः क्रोधादुद्वृत्तलोचनः ॥ ५२ ॥

महाबाहु भीमसेन रणभूमिमें विशालबाहु कर्णके उस चरित्रको न सह सके। उस समय क्रोधसे उनके नेत्र घूमने लगे ॥ ५२ ॥

स कर्णं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत् ।
महीधरमिव श्वेतं गूढपादैर्विषोल्बणैः ॥ ५३ ॥

उन्होंने कर्णपर पचीस नाराच चलाये; उनके लगनेसे कर्ण छिपे हुए पैरोंवाले विषैले सर्पोंसे युक्त श्वेत पर्वतके समान जान पड़ता था ॥ ५३ ॥

पुनरेव च विव्याध षड्भिरष्टाभिरेव च ।
मर्मस्वमरविक्रान्तः सूतपुत्रं तनुत्यजम् ॥ ५४ ॥

फिर देवोपम पराक्रमी भीमने अपने शरीरकी परवा न करनेवाले सूतपुत्रको उसके मर्मस्थानोंमें छः और आठ बाण मारकर घायल कर दिया ॥ ५४ ॥

पुनरन्येन बाणेन भीमसेनः प्रतापवान् ।
चिच्छेद कार्मुकं तूर्णं कर्णस्य प्रहसन्निव ॥ ५५ ॥

इसके बाद हँसते हुए-से प्रतापी भीमसेनने दूसरा बाण मारकर तुरंत ही कर्णके धनुषको काट दिया ॥ ५५ ॥

जघान चतुरश्चाश्वान् सूतं च त्वरितः शरैः ।
नाराचैरर्करश्म्याभैः कर्णं विव्याध चोरसि ॥ ५६ ॥

फिर शीघ्रतापूर्वक बाणोंका प्रहार करके उसके चारों घोड़ों और सारथिको भी मार डाला। साथ ही सूर्यकी किरणोंके समान तेजस्वी नाराचोंसे कर्णकी छातीमें भारी आघात किया ॥ ५६ ॥

ते जग्मुर्धरणीमाशु कर्णं निर्भिद्य पत्रिणः ।
यथा जलधरं भित्त्वा दिवाकरमरीचयः ॥ ५७ ॥

जैसे सूर्यकी किरणें बादलोंको भेदकर सब ओर फैल जाती हैं, उसी प्रकार भीमसेनके बाण कर्णके शरीरको छेदकर शीघ्र ही धरतीमें समा गये ॥ ५७ ॥

स वैक्लव्यं महत् प्राप्य छिन्नधन्वा शराहतः ।
तथा पुरुषमानी स प्रत्यपायाद् रथान्तरम् ॥ ५८ ॥

यद्यपि कर्णको अपने पुरुषत्वका बड़ा अभिमान था, तो भी भीमसेनके बाणोंसे घायल हो धनुष कट जानेपर रथहीन होनेके कारण वह बड़ी भारी घबराहटमें पड़ गया और दूसरे रथपर बैठनेके लिये वहाँसे भाग निकला ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णपराजये एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें कर्णकी पराजयविषयक एक सौ इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३१ ॥

द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेन और कर्णका घोर युद्ध

धृतराष्ट्र उवाच

स्वयं शिष्यो महेशस्य भृगूत्तमधनुर्धरः ।
शिष्यत्वं प्राप्तवान् कर्णस्तस्य तुल्योऽस्त्रविद्यया ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय ! भृगुवंशशिरोमणि धनुर्धर परशुरामजी साक्षात् भगवान् शङ्करके शिष्य हैं तथा कर्ण उन्हींका शिष्यत्व ग्रहण करके अस्त्रविद्यामें उनके समान ही सुयोग्य हो गया था ॥ १ ॥

तद्विशिष्टोऽपि वा कर्णः शिष्यः शिष्यगुणैर्युतः ।
कुन्तीपुत्रेण भीमेन निर्जितः स तु लीलया ॥ २ ॥

अथवा शिष्योचित सद्गुणोंसे सम्पन्न परशुरामका वह शिष्य उनसे भी बढ़-चढ़कर है, तो भी उसे कुन्तीकुमार भीमसेनने खेल-खेलमें ही पराजित कर दिया ॥ २ ॥

यस्मिञ्जयाशा महती पुत्राणां मम संजय ।
तं भीमाद् विमुखं दृष्ट्वा किं नु दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ ३ ॥

संजय ! जिसपर मेरे पुत्रोंको विजयकी बड़ी भारी आशा लगी हुई है, उसे भीमसेनसे पराजित होकर युद्धसे विमुख हुआ देख दुर्योधनने क्या कहा ? ॥ ३ ॥

कथं च युयुधे भीमो वीर्यश्लाघी महाबलः ।
कर्णो वा समरे तात किमकार्षीत् ततः परम् ।
भीमसेनं रणे दृष्ट्वा ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ ४ ॥

तात ! अपने पराक्रमसे सुशोभित होनेवाले महाबली भीमसेनने किस प्रकार युद्ध किया ? अथवा कर्णने रणक्षेत्रमें भीमसेनको अग्निके समान तेजसे प्रज्वलित होते देख उसके बाद क्या किया ? ॥ ४ ॥

संजय उवाच

रथमन्यं समास्थाय विधिवत् कल्पितं पुनः ।
अभ्ययात् पाण्डवं कर्णो वातोद्धूत इवार्णवः ॥ ५ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! वायुके वेगसे ऊपर उठते हुए समुद्रके समान कर्णने विधिपूर्वक सजाये हुए दूसरे रथपर आरूढ़ होकर पुनः पाण्डुनन्दन भीमपर आक्रमण किया ॥ ५ ॥

क्रुद्धमाधिरथिं दृष्ट्वा पुत्रास्तव विशाम्पते ।
भीमसेनममन्यन्त वैश्वानरमुखे हुतम् ॥ ६ ॥

प्रजानाथ ! उस समय अधिरथपुत्र कर्णको क्रोधमें भरा हुआ देखकर आपके पुत्रोंने यही मान लिया कि भीमसेन अब अग्निके मुखमें दी हुई आहुतिके समान नष्ट हो जायँगे ॥ ६ ॥

चापशब्दं ततः कृत्वा तलशब्दं च भैरवम् ।
अभ्यद्रवत राधेयो भीमसेनरथं प्रति ॥ ७ ॥

तदनन्तर धनुषकी टंकार और हथेलीका भयानक शब्द करते हुए राधानन्दन कर्णने भीमसेनके रथपर धावा बोल दिया ॥ ७ ॥

पुनरेव तयो राजन् घोर आसीत् समागमः ।
वैकर्तनस्य शूरस्य भीमस्य च महात्मनः ॥ ८ ॥

राजन् ! शूरवीर कर्ण और महामनस्वी भीमसेन—इन दोनों वीरोंमें पुनः घोर संग्राम छिड़ गया ॥ ८ ॥

संरब्धौ हि महाबाहू परस्परवधैषिणौ ।
अन्योन्यमीक्षांचक्राते दहन्ताविव लोचनैः ॥ ९ ॥

एक दूसरेके वधकी इच्छावाले वे दोनों महाबाहु वीर अत्यन्त कुपित हो एक दूसरेको नेत्रोंद्वारा दग्ध-से करते हुए परस्पर दृष्टिपात करने लगे ॥ ९ ॥

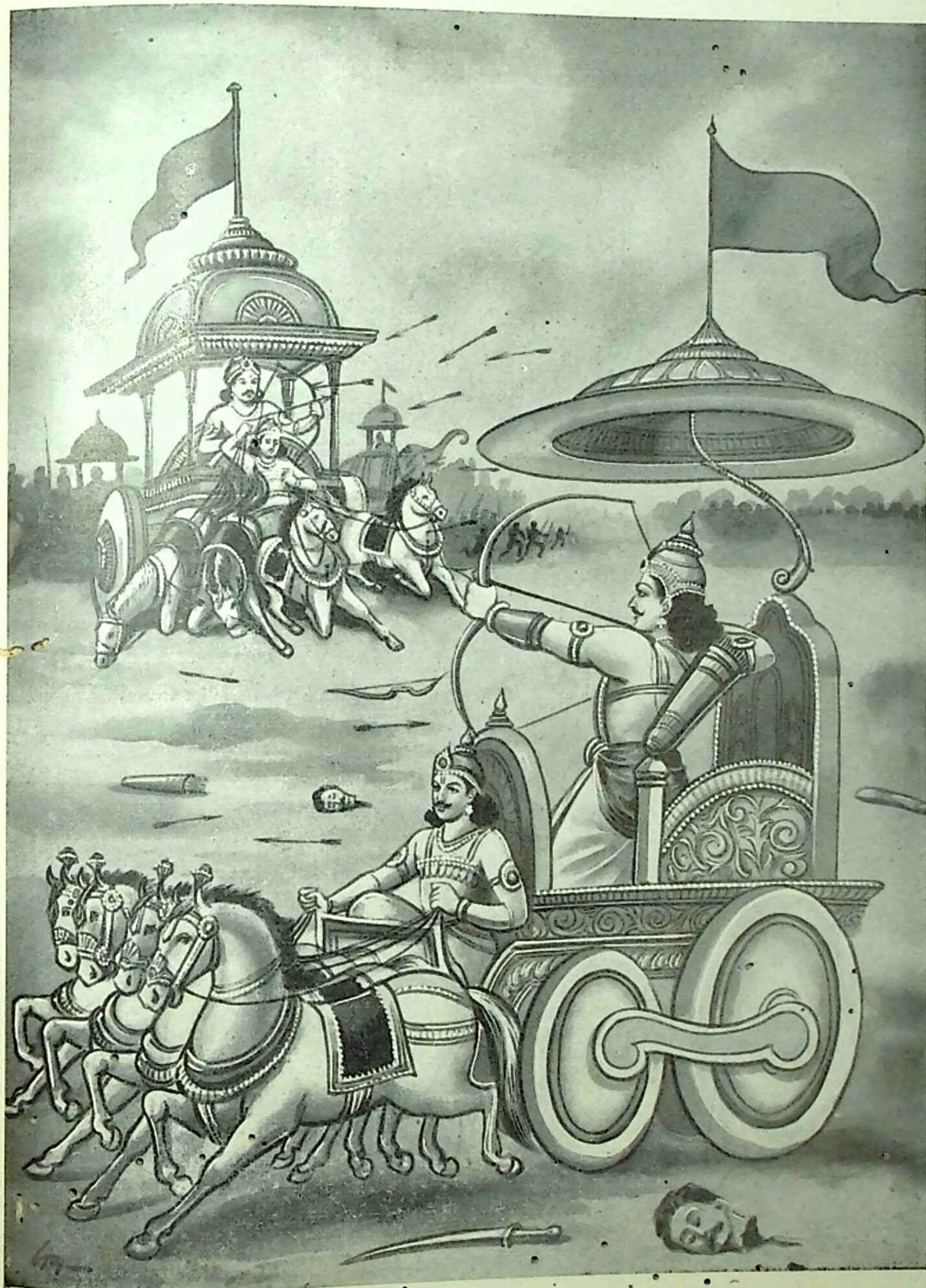
क्रोधरक्तेक्षणौ तीव्रौ निःश्वसन्ताविवोरगौ ।
शूरावन्योन्यमासाद्य ततक्षतुररिंदमौ ॥ १० ॥

उन दोनोंकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयी थीं । दोनों ही फुफकारते हुए सर्पोंके समान लंबी साँस खींच रहे थे । दोनों ही शत्रुदमन वीर उग्र हो परस्पर भिड़कर एक दूसरेको बाणोंद्वारा क्षत-विक्षत करने लगे ॥ १० ॥

व्याघ्राविव सुसंरब्धौ श्येनाविव च शीघ्रगौ ।
शरभाविव संक्रुद्धौ युयुधाते परस्परम् ॥ ११ ॥

वे दो व्याघ्रोंके समान रोषावेशमें भरकर दो बाजोंके समान परस्पर शीघ्रतापूर्वक झपटते थे तथा अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए दो शरभोंके समान परस्पर युद्ध करते थे ॥ ११ ॥

ततो भीमः स्मरन् क्लेशानक्षद्यूते वनेऽपि च ।
विराटनगरे चैव दुःखं प्राप्तमरिंदमः ॥ १२ ॥
राष्ट्राणां स्फीतरत्नानां हरणं च तवात्मजैः ।
सततं च परिक्लेशान् सपुत्रेण त्वया कृतान् ॥ १३ ॥
दग्धुमैच्छच्च यः कुन्तीं सपुत्रां त्वमनागसम् ।
कृष्णायाश्च परिक्लेशं सभामध्ये दुरात्मभिः ॥ १४ ॥
केशपक्षग्रहं चैव दुःशासनकृतं तथा ।



भीमसेनके द्वारा कर्णकी पराजय

परुषाणि च वाक्यानि कर्णेनोक्तानिभारत ॥ १५ ॥
पतिमन्यं परीप्सस्व न सन्ति पतयस्तव ।
पतिता नरके पार्थाः सर्वे षण्ढतिलोपमाः ॥ १६ ॥
समक्षं तव कौरव्य यदूचुः कौरवास्तदा ।
दासीभावेन कृष्णां च भोक्तुकामाः सुतास्तव ॥ १७ ॥
यच्चापि तान् प्रव्रजतः कृष्णाजिननिवासिनः ।
परुषाण्युक्तवान् कर्णः सभायां संनिधौ तव ॥ १८ ॥
तृणीकृत्य यथा पार्थांस्तव पुत्रो ववल्ग ह ।
विषमस्थान् समस्थो हि संरब्धो गतचेतनः ॥ १९ ॥
बाल्यात् प्रभृति चारिघ्नः स्वानि दुःखानि चिन्तयन् ।
निरविद्यत धर्मात्मा जीवितेन वृकोदरः ॥ २० ॥

जूआके समय, वनवासकालमें तथा विराटनगरमें जो दुःख प्राप्त हुआ था, उनका स्मरण करके, आपके पुत्रोंने जो पाण्डवोंके राज्यों तथा समुज्ज्वल रत्नोंका अपहरण किया था, उसे याद करके, पुत्रोंसहित आपने पाण्डवोंको जो निरन्तर क्लेश प्रदान किये हैं, उन्हें ध्यानमें लाकर, निरपराध कुन्ती-देवी तथा उनके पुत्रोंको जो आपने जला डालनेकी इच्छा की थी, सभाके भीतर आपके दुरात्मा पुत्रोंने जो द्रौपदीको महान् कष्ट पहुँचाया था, दुःशासनने जो उसके केश पकड़े थे, भारत ! कर्णने जो उसके प्रति कठोर वचन सुनाये थे तथा जनार्दन ! आपकी आँखोंके सामने ही कौरवोंने जो द्रौपदीसे यह कहा था कि 'कृष्णे ! तू दूसरा पति कर ले, तेरे ये पति अब नहीं रहे, कुन्तीके सभी पुत्र थोथे तिलोंके समान निर्वीर्य होकर नरक (दुःख) में पड़ गये हैं ।' महाराज ! आपके पुत्र जो द्रौपदीको दासी बनाकर उसका उपभोग करना चाहते थे तथा काले मृगचर्म धारण करके वनकी ओर प्रस्थान करते समय पाण्डवोंके प्रति सभामें आपके समीप ही कर्णने जो कटुवचन सुनाये थे और पाण्डवोंको तिनकोंके समान समझ कर जो आपका पुत्र दुर्योधन उछलता-कूदता था, स्वयं सुखमयी परिस्थितिमें रहते हुए भी जो उस अचेत मूर्खने संकटमें पड़े हुए पाण्डवोंके प्रति क्रोधका भाव दिखाया था, इन सब बातोंको तथा बचपनसे लेकर अबतक आपकी ओरसे प्राप्त हुए अपने दुःखोंको याद करके शत्रुओंका दमन करनेवाले शत्रुनाशक धर्मात्मा भीमसेन अपने जीवनसे विरक्त हो उठे थे ॥ १२–२० ॥

ततो विस्फार्य सुमहद्धेमपृष्ठं दुरासदम् ।
चापं भरतशार्दूलस्त्यक्तात्मा कर्णमभ्ययात् ॥ २१ ॥

उस समय भरतवंशके उस सिंहने अपने जीवनका मोह छोड़कर सुवर्णमय पृष्ठभागसे सुशोभित दुर्धर्ष एवं विशाल धनुषकी टंकार करते हुए वहाँ कर्णपर धावा किया ॥ २१ ॥

स सायकमयैर्जालैर्भीमः कर्णरथं प्रति ।
भानुमद्भिः शिलाधौतैर्भानोः प्राच्छादयत् प्रभाम् ॥ २२ ॥

कर्णके रथपर भीमसेनने सानपर चढ़ाकर स्वच्छ किये हुए तेजस्वी बाणोंका जाल-सा बिछाकर सूर्यकी प्रभाको आच्छादित कर दिया ॥ २२ ॥

ततः प्रहस्याधिरथिस्तूर्णमस्य शिलाशितैः ।
व्यधमद् भीमसेनस्य शरजालानि पत्रिभिः ॥ २३ ॥

तब अधिरथपुत्र कर्णने हँसकर शिलापर तेज किये हुए पंखयुक्त बाणोंद्वारा भीमसेनके उन बाण-समूहोंको तुरंत ही छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ २३ ॥

महारथो महाबाहुर्महाबाणैर्महाबलः ।
विव्याधाधिरथिर्भीमं नवभिर्निशितैस्तदा ॥ २४ ॥

महारथी महाबाहु महाबली अधिरथपुत्र कर्णने उस समय नौ तीखे महाबाणोंसे भीमसेनको घायल कर दिया॥ २४॥

स तोत्त्रैरिव मातङ्गो वार्यमाणः पतत्रिभिः ।
अभ्यधावदसम्भ्रान्तः सूतपुत्रं वृकोदरः ॥ २५ ॥

जैसे मतवाला हाथी अङ्कुशसे रोका जाय, उसी प्रकार पंखयुक्त बाणोंद्वारा रोके जाते हुए भीमसेन तनिक भी घबराहटमें न पड़कर सूतपुत्र कर्णपर चढ़ आये ॥ २५ ॥

तमापतन्तं वेगेन रभसं पाण्डवर्षभम् ।
कर्णः प्रत्युद्ययौ युद्धे मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ २६ ॥

जैसे मतवाला हाथी दूसरे मतवाले हाथीपर धावा करता है, उसी प्रकार पाण्डवशिरोमणि वेगशाली भीमको वेगपूर्वक आक्रमण करते देख कर्ण भी युद्धस्थलमें उनका सामना करनेके लिये आगे बढ़ा ॥ २६ ॥

ततः प्रध्माप्य जलजं भेरीशतसमस्वनम् ।
अक्षुभ्यत बलं हर्षादुद्धूत इव सागरः ॥ २७ ॥

तदनन्तर कर्णने हर्षपूर्वक सैकड़ों भेरियोंके समान गम्भीर ध्वनि करनेवाले शङ्खको बजाकर सब ओर गुँजा दिया । इससे पाण्डवोंकी सेनामें विक्षुब्ध समुद्रके समान हलचल पैदा हो गयी ॥ २७ ॥

तदुद्धूतं बलं दृष्ट्वा नागाश्वरथपत्तिमत् ।
भीमः कर्णं समासाद्य च्छादयामास सायकैः ॥ २८ ॥

हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसे युक्त उस सेनाको विक्षुब्ध हुई देख भीमसेनने कर्णके पास जाकर उसे बाणोंद्वारा आच्छादित कर दिया ॥ २८ ॥

अश्वानृक्षसवर्णांश्च हंसवर्णैर्हयोत्तमैः ।
व्यामिश्रयद् रणे कर्णः पाण्डवं छादयञ्छरैः ॥ २९ ॥

उस रणक्षेत्रमें पाण्डुनन्दन भीमको अपने बाणोंसे आच्छादित करते हुए कर्णने रीछके समान रंगवाले अपने काले घोड़ोंको भीमसेनके हंस-सदृश श्वेतवर्णवाले उत्तम घोड़ोंके साथ मिला दिया ॥ २९ ॥

ऋक्षवर्णान् हयान् कर्कैर्मिश्रान् मारुतरंहसः ।
निरीक्ष्य तव पुत्राणां हाहाकृतमभूद् बलम् ॥ ३० ॥

रीछके समान रंगवाले और वायुके समान वेगशाली घोड़ोंको श्वेत अश्वोंके साथ मिला हुआ देख आपके पुत्रोंकी सेनामें हाहाकार मच गया ॥ ३० ॥

ते हया बह्वशोभन्त मिश्रिता वातरंहसः ।
सितासिता महाराज यथा व्योम्नि बलाहकाः ॥ ३१ ॥

महाराज ! वायुके समान वेगवाले वे सफेद और काले घोड़े परस्पर मिलकर आकाशमें उठे हुए सफेद और काले बादलोंके समान अधिक शोभा पा रहे थे ॥ ३१ ॥

संरब्धौ क्रोधताम्राक्षौ प्रेक्ष्य कर्णवृकोदरौ ।
संत्रस्ताः समकम्पन्त त्वदीयानां महारथाः ॥ ३२ ॥

रोषावेशमें भरकर क्रोधसे लाल आँखें किये कर्ण और भीमसेनको देखकर आपके महारथी भयभीत हो काँपने लगे ॥

यमराष्ट्रोपमं घोरमासीदायोधनं तयोः ।
दुर्दर्शं भरतश्रेष्ठ प्रेतराजपुरं यथा ॥ ३३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उन दोनोंका संग्राम यमराजके राज्यके समान अत्यन्त भयंकर था । प्रेतराजकी पुरीके समान उसकी ओर देखना अत्यन्त कठिन हो रहा था ॥ ३३ ॥

समाजमिव तच्चित्रं प्रेक्षमाणा महारथाः ।
नालक्षयञ्जयं व्यक्तमेकस्यैव महारणे ॥ ३४ ॥

उस विचित्र-से समाजको देखते हुए महारथियोंने उस महासमरमें निश्चय ही उन दोनोंमेंसे किसी एक ही व्यक्तिकी विजय होती नहीं देखी ॥ ३४ ॥

तयोः प्रैक्षन्त सम्मर्दं संनिकृष्टं महास्त्रयोः ।
तव दुर्मन्त्रिते राजन् सपुत्रस्य विशाम्पते ॥ ३५ ॥

राजन् ! प्रजानाथ ! पुत्रोंसहित आपकी कुमन्त्रणाके फलस्वरूप महान् अस्त्रधारी भीमसेन और कर्णका अत्यन्त निकटसे होनेवाला संघर्ष सब लोग देख रहे थे ॥ ३५ ॥

छादयन्तौ हि शत्रुघ्नावन्योन्यं सायकैः शितैः ।
शरजालावृतं व्योम चक्रातेऽद्भुतविक्रमौ ॥ ३६ ॥

उन दोनों अद्भुत पराक्रमी शत्रुहन्ता वीरोंने एक-दूसरेको तीखे बाणोंसे आच्छादित करते हुए आकाशको बाण-समूहोंसे व्याप्त कर दिया ॥ ३६ ॥

तावन्योन्यं जिघांसन्तौ शरैस्तीक्ष्णैर्महारथौ ।
प्रेक्षणीयतरावास्तां वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ ॥ ३७ ॥

पैने बाणोंद्वारा एक दूसरेको मार डालनेकी इच्छावाले वे दोनों महारथी वीर वर्षा करनेवाले बादलोंके समान अत्यन्त दर्शनीय हो रहे थे ॥ ३७ ॥

सुवर्णविकृतान् बाणान् विमुञ्चन्तावरिंदमौ ।
भास्वरं व्योम चक्राते महोल्काभिरिव प्रभो ॥ ३८ ॥

प्रभो ! उन दोनों शत्रुहन्ता वीरोंने सुवर्णनिर्मित बाणोंकी वर्षा करके आकाशको उसी प्रकार प्रकाशमान कर दिया, जैसे बड़ी-बड़ी उल्काओंके गिरनेसे वह प्रकाशित होने लगता है ॥ ३८ ॥

ताभ्यां मुक्ताः शरा राजन् गार्ध्रपत्राश्चकाशिरे ।
श्रेण्यः शरदि मत्तानां सारसानामिवाम्बरे ॥ ३९ ॥

राजन् ! उन दोनोंके छोड़े हुए गीधकी पाँखवाले बाण शरद् ऋतुके आकाशमें मतवाले सारसोंकी श्रेणियोंके समान सुशोभित होते थे ॥ ३९ ॥

संसक्तं सूतपुत्रेण दृष्ट्वा भीममरिंदमम् ।
अतिभारममन्येतां भीमे कृष्णधनंजयौ ॥ ४० ॥

शत्रुदमन भीमसेनको सूतपुत्रके साथ उलझा हुआ देख श्रीकृष्ण और अर्जुनने भीमपर यह बहुत बड़ा भार समझा ॥

तत्राधिरथिभीमाभ्यां शरैर्मुक्तैर्दृढं हताः ।
इषुपातमतिक्रम्य पेतुरश्वनरद्विपाः ॥ ४१ ॥

उस युद्धस्थलमें कर्ण और भीमसेनके छोड़े हुए बाणोंसे अत्यन्त घायल हुए घोड़े, मनुष्य और हाथी बाणोंके गिरनेके स्थानको लाँघकर उससे दूर जा गिरते थे ॥ ४१ ॥

पतद्भिः पतितैश्चान्यैर्गतासुभिरनेकशः ।
कृतो राजन् महाराज पुत्राणां ते जनक्षयः ॥ ४२ ॥

राजन् ! महाराज ! कुछ सैनिक गिर रहे थे, कुछ गिर चुके थे और दूसरे बहुत-से योद्धा प्राणशून्य हो गये थे; इन सबके कारण आपके पुत्रोंकी सेनामें बड़ा भारी नर-संहार हुआ ॥ ४२ ॥

मनुष्याश्वगजानां च शरीरैर्गतजीवितैः ।
क्षणेन भूमिः संजज्ञे संवृता भरतर्षभ ॥ ४३ ॥
(आक्रीडमिव रुद्रस्य दक्षयज्ञनिबर्हणे ।)

भरतश्रेष्ठ ! मनुष्य, घोड़े और हाथियोंके निष्प्राण शरीरोंसे वहाँकी भूमि क्षणभरमें ढक गयी और दक्षयज्ञके संहारकालमें रुद्रकी क्रीड़ाभूमिके समान प्रतीत होने लगी ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमकर्णयुद्धे द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भीमसेन और कर्णका युद्धविषयक एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३२ ॥

(दक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ४३½ श्लोक हैं)

त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेन और कर्णका युद्ध, कर्णके सारथिसहित रथका विनाश तथा धृतराष्ट्रपुत्र दुर्जयका वध

धृतराष्ट्र उवाच

अत्यद्भुतमहं मन्ये भीमसेनस्य विक्रमम् ।
यत् कर्णं योधयामास समरे लघुविक्रमम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! मैं भीमसेनके पराक्रमको

अत्यन्त अद्भुत मानता हूँ कि उन्होंने समराङ्गणमें शीघ्रता-पूर्वक पराक्रम दिखानेवाले कर्णके साथ भी युद्ध किया ॥१॥

त्रिदशानपि वा युक्तान् सर्वशस्त्रधरान् युधि।
वारयेद् यो रणे कर्णः सयक्षासुरमानुषान् ॥ २ ॥
स कथं पाण्डवं युद्धे भ्राजमानमिव श्रिया।
नातरत् संयुगे पार्थं तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ३ ॥

संजय ! जो कर्ण रणक्षेत्रमें युद्धके लिये सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंको धारण करके सुसज्जित हुए देवताओं तथा यक्षों, असुरों और मनुष्योंका भी निवारण कर सकता है, वह युद्धमें विजय-लक्ष्मीसे सुशोभित होते हुए-से पाण्डुनन्दन कुन्तीकुमार भीमसेनको कैसे नहीं लाँघ सका ? इसका कारण मुझे बताओ ॥ २-३ ॥

कथं च युद्धं सम्भूतं तयोः प्राणदुरोदरे।
अत्र मन्ये समायत्तो जयो वाजय एव च ॥ ४ ॥

उन दोनोंमें प्राणोंकी बाजी लगाकर किस प्रकार युद्ध हुआ ? मैं समझता हूँ कि यहीं उभय पक्षकी जय अथवा विजय निर्भर है ॥ ४ ॥

कर्णं प्राप्य रणे सूत मम पुत्रः सुयोधनः।
जेतुमुत्सहते पार्थान् सगोविन्दान् ससात्वतान्॥ ५ ॥

सूत ! रणक्षेत्रमें कर्णको पाकर मेरा पुत्र दुर्योधन श्रीकृष्ण तथा सात्यकि आदि यादवोंसहित समस्त कुन्तीकुमारोंको जीतनेका उत्साह रखता है ॥ ५ ॥

श्रुत्वा तु निर्जितं कर्णमसकृद् भीमकर्मणा।
भीमसेनेन समरे मोह आविशतीव माम् ॥ ६ ॥

समराङ्गणमें भयंकर कर्म करनेवाले भीमसेनके द्वारा कर्णके बारंबार पराजित होनेकी बात सुनकर मेरे मनपर मोह-सा छा जाता है ॥ ६ ॥

विनष्टान् कौरवान् मन्ये मम पुत्रस्य दुर्नयैः।
न हि कर्णो महेष्वासान् पार्थाञ्जेष्यति संजय ॥ ७ ॥

मेरे पुत्रकी दुर्नीतियोंके कारण मैं समस्त कौरवोंको नष्ट हुआ ही मानता हूँ ? संजय ! कर्ण कभी महाधनुर्धर कुन्तीकुमारोंको नहीं जीत सकेगा ॥ ७ ॥

कृतवान् यानि युद्धानि कर्णः पाण्डुसुतैः सह।
सर्वत्र पाण्डवाः कर्णमजयन्त रणाजिरे ॥ ८ ॥

कर्णने पाण्डुपुत्रोंके साथ जो-जो युद्ध किये हैं, उन सबमें पाण्डवोंने ही रणक्षेत्रमें कर्णको जीता है ॥ ८ ॥

अजेयाः पाण्डवास्तात देवैरपि सवासवैः।
न च तद् बुध्यते मन्दः पुत्रो दुर्योधनो मम ॥ ९ ॥

तात ! इन्द्र आदि देवताओंके लिये भी पाण्डवोंपर विजय पाना असम्भव है; परंतु मेरा मूर्ख पुत्र दुर्योधन इस बातको नहीं समझता है ॥ ९ ॥

धनं धनेश्वरस्येव हृत्वा पार्थस्य मे सुतः।
मधुप्रेप्सुरिवाबुद्धिः प्रपातं नावबुध्यते ॥ १० ॥

मेरा पुत्र कुबेरके समान कुन्तीकुमार युधिष्ठिरके धनका अपहरण करके ऊँचे स्थानसे मधु लेनेकी इच्छावाले मूर्ख मनुष्यके समान पतनके भयको नहीं समझ रहा है ॥ १० ॥

निकृत्या निकृतिप्रज्ञो राज्यं हृत्वा महात्मनाम्।
जितमित्येव मन्वानः पाण्डवानवमन्यते ॥ ११ ॥

वह छल-कपटकी विद्याको जानता है। अतः छलसे ही उन महामनस्वी पाण्डवोंके राज्यका अपहरण करके उसे जीता हुआ मानकर पाण्डवोंका अपमान करता है ॥ ११ ॥

पुत्रस्नेहाभिभूतेन मया चाप्यकृतात्मना।
धर्मे स्थिता महात्मानो निकृताः पाण्डुनन्दनाः॥ १२ ॥

मुझ अकृतात्माने भी पुत्रस्नेहके वशीभूत होकर सदा धर्मपर स्थित रहनेवाले महात्मा पाण्डवोंको ठगा है ॥ १२ ॥

शमकामःससोदर्यो दीर्घप्रेक्षी युधिष्ठिरः।
अशक्त इति मत्वा तु मम पुत्रैर्निराकृतः ॥ १३ ॥

दूरदर्शी युधिष्ठिर अपने भाइयोंसहित संधिकी अभिलाषा रखते थे; परंतु उन्हें असमर्थ मानकर मेरे पुत्रोंने उनकी बात ठुकरा दी ॥ १३ ॥

तानि दुःखान्यनेकानि विप्रकारांश्च सर्वशः।
हृदि कृत्वा महाबाहुर्भीमोऽयुध्यत सूतजम् ॥ १४ ॥

अनेक बार दिये गये उन दुःखों और सम्पूर्ण अपकारोंको मनमें रखकर महाबाहु भीमसेनने सूतपुत्र कर्णके साथ युद्ध किया है ॥ १४ ॥

तस्मान्मे संजय ब्रूहि कर्णभीमौ यथा रणे।
अयुध्येतां युधि श्रेष्ठौ परस्परवधैषिणौ ॥ १५ ॥

अतः संजय ! एक दूसरेके वधकी इच्छावाले युद्धस्थलके श्रेष्ठ वीर कर्ण और भीमसेनने समराङ्गणमें जिस प्रकार युद्ध किया, वह सब मुझे बताओ ॥ १५ ॥

संजय उवाच

शृणु राजन् यथावृत्तं संग्रामं कर्णभीमयोः।
परस्परवधप्रेप्स्वोर्वनकुञ्जरयोरिव ॥ १६ ॥

संजयने कहा—राजन् ! कर्ण और भीमसेनके युद्धका यथावत् वृत्तान्त सुनिये। वे दोनों जंगली हाथियोंके समान एक दूसरेके वधके लिये उत्सुक थे ॥ १६ ॥

राजन् वैकर्तनो भीमं क्रुद्धः क्रुद्धमरिंदमम्।
पराक्रान्तं पराक्रम्य विव्याध त्रिंशता शरैः ॥ १७ ॥

राजन् ! क्रोधमें भरे हुए सूर्यपुत्र कर्णने कुपित हुए शत्रुदमन पराक्रमी भीमसेनको अपने बल-पराक्रमका परिचय देते हुए तीस बाणोंसे बींध डाला ॥ १७ ॥

महावेगैः प्रसन्नाग्रैः शातकुम्भपरिष्कृतैः।

अहनद् भरतश्रेष्ठ भीमं वैकर्तनः शरैः ॥ १८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! कर्णने चमकते हुए अग्रभागवाले सुवर्ण-जटित महान् वेगशाली बाणोंद्वारा भीमसेनको घायल कर दिया ॥ १८ ॥

तस्यास्यतो धनुर्भीमश्चकर्त निशितैस्त्रिभिः।
रथनीडाच्च यन्तारं भल्लेनापातयत् क्षितौ ॥ १९ ॥

इस प्रकार बाण चलाते हुए कर्णके धनुषको भीमसेनने तीन तीखे बाणोंद्वारा काट डाला और एक भल्ल मारकर सारथिको रथकी बैठकसे नीचे पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ १९ ॥

स काङ्क्षन् भीमसेनस्य वधं वैकर्तनो भृशम्।
शक्तिं कनकवैदूर्यचित्रदण्डां परामृशत् ॥ २० ॥

तब भीमसेनके वधकी अभिलाषा रखकर कर्णने वेगपूर्वक एक शक्ति हाथमें ली, जिसका डंडा सुवर्ण और वैदूर्यमणिसे जटित होनेके कारण विचित्र दिखायी देता था ॥ २० ॥

प्रगृह्य च महाशक्तिं कालशक्तिमिवापराम्।
समुत्क्षिप्य च राधेयः संधाय च महाबलः ॥ २१ ॥
चिक्षेप भीमसेनाय जीवितान्तकरीमिव।

वह महाशक्ति दूसरी कालशक्तिके समान प्रतीत होती थी। महाबली राधापुत्र कर्णने जीवनका अन्त कर देनेवाली उस शक्तिको लेकर ऊपर उठाया और उसे धनुषपर रखकर भीमसेनपर चला दिया ॥ २१½ ॥

शक्तिं विसृज्य राधेयः पुरंदर इवाशनिम् ॥ २२ ॥
ननाद सुमहानादं बलवान् सूतनन्दनः।
तं च नादं ततः श्रुत्वा पुत्रास्ते हर्षिताऽभवन् ॥ २३ ॥

इन्द्रके वज्रकी भाँति उस शक्तिको छोड़कर बलवान् सूतनन्दन कर्णने बड़े जोरसे गर्जना की। उस समय उस सिंहनादको सुनकर आपके पुत्र बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२-२३ ॥

तां कर्णभुजनिर्मुक्तामर्कवैश्वानरप्रभाम्।
शक्तिं वियति चिच्छेद भीमः सप्तभिराशुगैः ॥ २४ ॥

कर्णके हाथोंसे छूटकर आकाशमें सूर्य और अग्निके समान प्रकाशित होनेवाली उस शक्तिको भीमसेनने सात बाणोंसे आकाशमें ही काट डाला ॥ २४ ॥

छित्त्वा शक्तिं ततो भीमो निर्मुक्तोरगसंनिभाम्।
मार्गमाण इव प्राणान् सूतपुत्रस्य मारिष ॥ २५ ॥
प्राहिणोत् क्रुतसंरम्भः शरान् बर्हिणवाससः।
स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाधौतान् यमदण्डोपमान् मृधे ॥ २६ ॥

माननीय नरेश ! केचुलसे छूटी हुई सर्पिणीके समान उस शक्तिके टुकड़े-टुकड़े करके फिर भीमसेनने कुपित हो युद्धस्थलमें सूतपुत्र कर्णके प्राणोंकी खोज करते हुए-से सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए, यमदण्डके समान भयंकर, मयूरपंख एवं स्वर्णपंखसे विभूषित बाणोंको उसके ऊपर चलाना आरम्भ किया ॥ २५-२६ ॥

कर्णोऽप्यन्यद् धनुर्गृह्य हेमपृष्ठं दुरासदम्।
विकृष्य तन्महच्चापं व्यसृजत् सायकांस्तदा ॥ २७ ॥

तब कर्णने भी सुवर्णमय पीठवाले दूसरे दुर्धर्ष एवं विशाल धनुषको हाथमें लेकर खींचा और बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ २७ ॥

तान् पाण्डुपुत्रश्चिच्छेद नवभिर्नतपर्वभिः।
वसुषेणेन निर्मुक्तान् नव राजन् महाशरान् ॥ २८ ॥

राजन् ! वसुषेण (कर्ण) के छोड़े हुए नौ विशाल बाणोंको पाण्डुपुत्र भीमसेनने झुकी हुई गाँठवाले नौ बाणोंद्वारा काट गिराया ॥ २८ ॥

छित्त्वा भीमो महाराज नादं सिंह इवानदत्।
तौ वृषाविव नर्दन्तौ बलिनौ वासितान्तरे ॥ २९ ॥
शार्दूलाविव चान्योन्यमामिषार्थेऽभ्यगर्जताम्।

महाराज ! भीमसेनने कर्णके बाणोंको काटकर सिंहके समान गर्जना की। वे दोनों बलवान् वीर कभी गायके लिये लड़नेवाले दो साँड़ोंके समान हुँकड़ते और कभी मांसके लिये परस्पर जूझनेवाले दो सिंहोंके समान दहाड़ते थे ॥ २९½ ॥

अन्योन्यं प्रजिहीर्षन्तावन्योन्यस्यान्तरैषिणौ ॥ ३० ॥
अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ गोष्ठेष्विव महर्षभौ।

वे गोशालाओंमें लड़नेवाले दो बड़े-बड़े साँड़ोंके समान एक दूसरेपर चोट करनेकी इच्छा रखते हुए अवसर ढूँढ़ते और परस्पर आँखें तरेर कर देखते थे ॥ ३०½ ॥

महागजाविवासाद्य विषाणाग्रैः परस्परम् ॥ ३१ ॥
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः।

जैसे दो विशाल गजराज अपने दाँतोंके अग्रभागोंद्वारा एक दूसरेसे भिड़ गये हों, उसी प्रकार कर्ण और भीमसेन धनुषको पूर्णतः खींचकर छोड़े गये बाणोंद्वारा एक दूसरेको चोट पहुँचाते थे ॥ ३१½ ॥

निर्दहन्तौ महाराज शस्त्रवृष्ट्या परस्परम् ॥ ३२ ॥
अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ कोपाद् विवृतलोचनौ।
प्रहसन्तौ तथान्योन्यं भर्त्सयन्तौ मुहुर्मुहुः ॥ ३३ ॥
शङ्खशब्दं च कुर्वाणौ युयुधाते परस्परम्।

महाराज ! वे परस्पर शस्त्रोंकी वर्षा करके एक दूसरेको दग्ध करते, क्रोधसे आँखें फाड़-फाड़कर देखते, कभी हँसते और कभी बारंबार एक दूसरेको डाँटते एवं शङ्ख-नाद करते हुए परस्पर जूझ रहे थे ॥ ३२-३३½ ॥

तस्य भीमः पुनश्चापं मुष्टौ चिच्छेद मारिष ॥ ३४ ॥
शङ्खवर्णांश्च तानश्वान् बाणैर्निन्ये यमक्षयम्।
सारथिं च तथाप्यस्य रथनीडादपातयत् ॥ ३५ ॥

आर्य ! भीमसेनने पुनः कर्णके धनुषको मुट्ठी पकड़नेकी जगहसे काट डाला, शङ्खके समान श्वेत रंगवाले उसके घोड़ों-

को भी बाणोंद्वारा यमलोक पहुँचा दिया और उसके सारथिको भी मारकर रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया ॥ ३४-३५ ॥

ततो वैकर्तनः कर्णश्चिन्तां प्राप दुरत्ययाम् ।
स च्छाद्यमानः समरे हताश्वो हतसारथिः ॥ ३६ ॥

घोड़े और सारथिके मारे जानेपर समराङ्गणमें बाणोंद्वारा आच्छादित हुआ सूर्यपुत्रकर्ण दुस्तर चिन्तामें निमग्न हो गया ।

मोहितः शरजालेन कर्तव्यं नाभ्यपद्यत ।
तथा कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा कर्णं दुर्योधनो नृपः ॥ ३७ ॥
वेपमान इव क्रोधाद् व्यादिदेशाथ दुर्जयम् ।
गच्छ दुर्जय राधेयं पुरो ग्रसति पाण्डवः ॥ ३८ ॥
जहि तूबरकं क्षिप्रं कर्णस्य बलमादधत् ।

बाण-समूहोंसे मोहित होनेके कारण उसे यह नहीं सूझता था कि अब क्या करना चाहिये । कर्णको इस प्रकार संकटमें पड़ा देख राजा दुर्योधन क्रोधसे काँपने-सा लगा और दुर्जयको आदेश देता हुआ बोला—'दुर्जय ! जाओ । राधानन्दन कर्णको सामने ही पाण्डुपुत्र भीमसेन कालका ग्रास बनाना चाहता है । तुम कर्णका बल बढ़ाते हुए उस बिना दाढ़ी-मूँछके मुंडे भीमसेनको शीघ्र मार डालो' । ३७-३८½ ।

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा तव पुत्रं तवात्मजः ॥ ३९ ॥
अभ्यद्रवद् भीमसेनं व्यासक्तं विकिरञ्छरैः ।

ऐसा आदेश मिलनेपर आपके पुत्र दुर्योधनसे 'बहुत अच्छा' कहकर आपके दूसरे पुत्र दुर्जयने युद्धमें आसक्त हुए भीमसेनपर बाणोंकी वर्षा करते हुए आक्रमण किया ॥

स भीमं नवभिर्बाणैरश्वानष्टभिरार्पयत् ॥ ४० ॥
षड्भिः सूतं त्रिभिः केतुं पुनस्तं चापि सप्तभिः ।

उसने नौ बाणोंसे भीमसेनको, आठ बाणोंसे उनके घोड़ोंको और छः बाणोंसे सारथिको घायल कर दिया । फिर तीन बाणोंद्वारा उनकी ध्वजापर आघात करके उन्हें भी पुनः सात बाणोंसे बींध डाला ॥ ४०½ ॥

भीमसेनोऽपि संक्रुद्धः साश्वयन्तारमाशुगैः ॥ ४१ ॥
दुर्जयं भिन्नमर्माणमनयद् यमसादनम् ।

तब भीमसेनने भी अत्यन्त कुपित होकर अपने शीघ्रगामी बाणोंद्वारा दुर्जय(दुष्पराजय)के मर्मस्थलको विदीर्ण करके उसे सारथि और घोड़ोंसहित यमलोक भेज दिया ॥ ४१½ ॥

स्वलंकृतं क्षितौ क्षुण्णं चेष्टमानं यथोरगम् ॥ ४२ ॥
रुदन्नार्तस्तव सुतं कर्णश्चक्रे प्रदक्षिणम् ।

आभूषणभूषित दुर्जय अपने क्षत-विक्षत अङ्गोंसे पृथ्वीपर गिरकर चोट खाये हुए सर्पके समान छटपटाने लगा । उस समय कर्णने शोकार्त होकर रोते-रोते आपके पुत्रकी परिक्रमा की ॥ ४२½ ॥

स तु तं विरथं कृत्वा स्मयन्नत्यन्तवैरिणम् ॥ ४३ ॥
समाचिनोद् बाणगणैः शतघ्नीभिश्च शङ्कुभिः ।

इस प्रकार अपने अत्यन्त वैरी कर्णको रथहीन करके मुसकराते हुए भीमसेनने उसे बाण-समूहों, शतघ्नियों और शङ्कुओंसे आच्छादित कर दिया ॥ ४३½ ॥

तथाप्यतिरथः कर्णो भिद्यमानोऽस्य सायकैः ॥ ४४ ॥
न जहौ समरे भीमं क्रुद्धरूपं परंतपः ॥ ४५ ॥

भीमसेनके बाणोंसे क्षत-विक्षत होनेपर भी शत्रुओंको संताप देनेवाला अतिरथी कर्ण समर-भूमिमें कुपित भीमसेनको छोड़कर भागा नहीं ॥ ४४-४५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णभीमयुद्धे त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें कर्ण और भीमसेनका युद्धविषयक एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३३ ॥

चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेन और कर्णका युद्ध, धृतराष्ट्रपुत्र दुर्मुखका वध तथा कर्णका पलायन

संजय उवाच

सर्वथा विरथः कर्णः पुनर्भीमेन निर्जितः ।
रथमन्यं समास्थाय पुनर्विव्याध पाण्डवम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! सब प्रकारसे रथहीन एवं भीमसेनके द्वारा पुनः पराजित हुए कर्णने दूसरे रथपर बैठकर पाण्डुकुमार भीमसेनको पुनः बींध डाला ॥ १ ॥

महागजाविवासाद्य विषाणाग्रैः परस्परम् ।
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ २ ॥

जैसे दो विशाल गजराज अपने दाँतोंके अग्रभागोंद्वारा एक दूसरेसे भिड़ गये हों, उसी प्रकार कर्ण और भीमसेन धनुषको पूर्णतः खींचकर छोड़े गये बाणोंद्वारा एक दूसरेको चोट पहुँचाने लगे ॥ २ ॥

अथ कर्णः शरव्रातैर्भीमसेनं समार्पयत् ।
ननाद च महानादं पुनर्विव्याध चोरसि ॥ ३ ॥

तदनन्तर कर्णने अपने बाण-समूहोंद्वारा भीमसेनको घायल कर दिया । उसने बड़े जोरसे गर्जना की और पुनः भीमसेनकी छातीमें चोट पहुँचायी ॥ ३ ॥

तं भीमो दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यदजिह्मगैः ।
पुनर्विव्याध सप्तत्या शराणां नतपर्वणाम् ॥ ४ ॥

तब भीमने सीधे जानेवाले दस बाणोंसे कर्णको मारकर

बदला चुकाया। तत्पश्चात् झुकी हुई गाँठवाले सत्तर बाणों-द्वारा पुनः कर्णको बींध डाला ॥ ४ ॥

कर्णं तु नवभिर्भीमो भित्त्वा राजन् स्तनान्तरे।
ध्वजमेकेन विव्याध सायकेन शितेन ह ॥ ५ ॥

राजन्! भीमसेनने कर्णकी छातीमें नौ बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचाकर एक तीखे बाणसे उसकी ध्वजाको भी छेद दिया ॥ ५ ॥

सायकानां ततः पार्थस्त्रिषष्ट्या प्रत्यविध्यत।
तोत्रैरिव महानागं कशाभिरिव वाजिनम् ॥ ६ ॥

तदनन्तर जैसे विशाल गजराजको अङ्कुशोंसे और घोड़ेको कोड़ोंसे पीटा जाय, उसी प्रकार कुन्तीकुमार भीमने तिरसठ बाणोंद्वारा कर्णको घायल कर दिया ॥ ६ ॥

सोऽतिविद्धो महाराज पाण्डवेन यशस्विना।
सृक्किणी लेलिहन् वीरः क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ७ ॥

महाराज! यशस्वी पाण्डुपुत्रके द्वारा अत्यन्त घायल होकर वीर कर्ण क्रोधसे लाल आँखें करके अपने दोनों जबड़ों-को चाटने लगा ॥ ७ ॥

ततः शरं महाराज सर्वकायावदारणम्।
प्राहिणोद् भीमसेनाय बलायेन्द्र इवाशनिम् ॥ ८ ॥

राजन्! तदनन्तर जैसे इन्द्रने बलासुरपर वज्र चलाया था, उसी प्रकार उसने भीमसेनपर समस्त शरीरको विदीर्ण कर देनेवाले बाणका प्रहार किया ॥ ८ ॥

स निर्भिद्य रणे पार्थं सूतपुत्रधनुश्च्युतः।
अगच्छद् दारयन् भूमिं चित्रपुङ्खः शिलीमुखः ॥ ९ ॥

रणक्षेत्रमें सूतपुत्रके धनुषसे छूटा हुआ वह विचित्र पंखोंवाला बाण भीमसेनको विदीर्ण करके पृथ्वीको चीरता हुआ उसके भीतर समा गया ॥ ९ ॥

ततो भीमो महाबाहुः क्रोधसंरक्तलोचनः।
वज्रकल्पां चतुष्किष्कुं गुर्वीं रुक्माङ्गदां गदाम् ॥ १० ॥
प्राहिणोत् सूतपुत्राय षडस्रामविचारयन्।

तब क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले महाबाहु भीमसेनने चार वित्तेकी बनी हुई वज्रके समान भयंकर तथा सुवर्णमय भुजबंदसे विभूषित छः कोणोंवाली भारी गदा उठाकर उसे बिना विचारे सूतपुत्र कर्णपर चला दिया ॥ १०½ ॥

तया जघानाधिरथेः सदश्वान् साधुवाहिनः ॥ ११ ॥
गदया भारतः क्रुद्धो वज्रेणेन्द्र इवासुरान्।

जैसे कुपित हुए इन्द्रने वज्रसे असुरोंका वध किया था, उसी प्रकार क्रोधमें भरे भरतवंशी भीमने अपनी उस गदासे अधिरथ-पुत्र कर्णके उन उत्तम घोड़ोंको मार डाला, जो अच्छी तरह सवारीका काम देते थे ॥ ११½ ॥

ततो भीमो महाबाहुः क्षुराभ्यां भरतर्षभ ॥ १२ ॥
ध्वजमाधिरथेश्छित्त्वा सूतमभ्यहनच्छरैः।

भरतश्रेष्ठ! तत्पश्चात् महाबाहु भीमसेनने दो छुरोंसे कर्णकी ध्वजा काटकर अपने बाणोंद्वारा उसके सारथिको भी मार डाला ॥ १२½ ॥

हताश्वसूतमुत्सृज्य स रथं पतितध्वजम् ॥ १३ ॥
विस्फारयन् धनुः कर्णस्तस्थौ भारत दुर्मनाः।

भारत! घोड़े और सारथिके मारे जाने तथा ध्वजाके गिर जानेपर कर्ण उस रथको छोड़कर धनुषकी टंकार करता हुआ दुखी मनसे वहाँ खड़ा हो गया ॥ १३½ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम राधेयस्य पराक्रमम् ॥ १४ ॥
विरथो रथिनां श्रेष्ठो वारयामास यद् रिपुम्।

वहाँ हमलोगोंने राधानन्दन कर्णका अद्भुत पराक्रम देखा। रथियोंमें श्रेष्ठ उस वीरने रथहीन होनेपर भी अपने शत्रुको आगे नहीं बढ़ने दिया ॥ १४½ ॥

विरथं तं नरश्रेष्ठं दृष्ट्वाऽऽधिरथिमाहवे ॥ १५ ॥
दुर्योधनस्ततो राजन्नभ्यभाषत दुर्मुखम्।
एष दुर्मुख राधेयो भीमेन विरथीकृतः ॥ १६ ॥
तं रथेन नरश्रेष्ठं सम्पादय महारथम्।

राजन्! नरश्रेष्ठ कर्णको युद्धस्थलमें रथहीन खड़ा देख दुर्योधनने अपने भाई दुर्मुखसे कहा—'दुर्मुख! यह राधानन्दन कर्ण भीमसेनके द्वारा रथसे वञ्चित कर दिया गया है। इस महारथी नरश्रेष्ठ वीरको रथसे सम्पन्न करो' ॥

ततो दुर्योधनवचः श्रुत्वा भारत दुर्मुखः ॥ १७ ॥
त्वरमाणोऽभ्ययात् कर्णं भीमं चावारयच्छरैः।
दुर्मुखं प्रेक्ष्य संग्रामे सूतपुत्रपदानुगम् ॥ १८ ॥
वायुपुत्रः प्रहृष्टोऽभूत् सृक्किणी परिसंलिहन्।

भरतनन्दन! दुर्योधनकी यह बात सुनकर दुर्मुख बड़ी उतावलीके साथ कर्णके समीप आ पहुँचा और भीमसेनको अपने बाणोंद्वारा रोका। संग्राममें सूतपुत्रके चरणोंका अनुसरण करनेवाले दुर्मुखको देखकर वायुपुत्र भीमसेन बड़े प्रसन्न हुए। वे अपने दोनों गलफर चाटने लगे ॥ १७–१८½ ॥

ततः कर्णं महाराज वारयित्वा शिलीमुखैः ॥ १९ ॥
दुर्मुखाय रथं तूर्णं प्रेषयामास पाण्डवः।

महाराज! तदनन्तर कर्णको अपने बाणोंद्वारा रोककर पाण्डुकुमार भीम तुरंत ही अपने रथको दुर्मुखके पास ले गये ॥ १९½ ॥

तस्मिन् क्षणे महाराज नवभिर्नतपर्वभिः ॥ २० ॥
सुमुखैर्दुर्मुखं भीमः शरैर्निन्ये यमक्षयम्।

राजन्! फिर झुकी हुई गाँठवाले नौ सुमुख बाणोंद्वारा भीमसेनने दुर्मुखको उसी क्षण यमलोक पहुँचा दिया ॥ २०½ ॥

ततस्तमेवाधिरथिः स्यन्दनं दुर्मुखे हते ॥ २१ ॥
आस्थितः प्रबभौ राजन् दीप्यमान इवांशुमान्।

नरेश्वर! दुर्मुखके मारे जानेपर कर्ण उसी रथपर बैठकर देदीप्यमान सूर्यके समान प्रकाशित होने लगा ॥ २१½ ॥

शयानं भिन्नमर्माणं दुर्मुखं शोणितोक्षितम् ॥ २२ ॥

दृष्ट्वा कर्णोऽश्रुपूर्णाक्षो मुहूर्तं नाभ्यवर्तत ।
तं गतासुमतिक्रम्य कृत्वा कर्णः प्रदक्षिणम् ॥ २३ ॥
दीर्घमुष्णं श्वसन् वीरो न किंचित् प्रत्यपद्यत ।

दुर्मुखका मर्मस्थान विदीर्ण हो गया था। वह खूनसे लथपथ हो पृथ्वीपर पड़ा था। उसे उस दशामें देखकर कर्णके नेत्रोंमें आँसू भर आया। वह दो घड़ीतक विपक्षीका सामना न कर सका। जब उसके प्राणपखेरू उड़ गये, तब कर्ण उस शवकी परिक्रमा करके आगे बढ़ा। वह वीर गरम-गरम लंबी साँस खींचता हुआ किसी कर्तव्यका निश्चय न कर सका ॥ २२–२३½ ॥

तस्मिंस्तु विवरे राजन् नाराचान् गार्ध्रवाससः ॥ २४ ॥
प्राहिणोत् सूतपुत्राय भीमसेनश्चतुर्दश ।

राजन्! इसी अवसरमें भीमसेनने सूतपुत्रपर गीधकी पाँखवाले चौदह नाराच चलाये ॥ २४½ ॥

ते तस्य कवचं भित्त्वा स्वर्णचित्रं महौजसः ॥ २५ ॥
हेमपुङ्खा महाराज व्यशोभन्त दिशो दश ।

महाराज! वे महातेजस्वी सुनहरी पाँखवाले बाण उसके सुवर्णजटित कवचको छिन्न-भिन्न करके दसों दिशाओंको सुशोभित करने लगे ॥ २५½ ॥

अपिबन् सूतपुत्रस्य शोणितं रक्तभोजनाः ॥ २६ ॥
क्रुद्धा इव मनुष्येन्द्र भुजङ्गाः कालचोदिताः ।

नरेन्द्र! वे रक्तका आहार करनेवाले बाण क्रोधभरे कालप्रेरित भुजंगोंके समान सूतपुत्र कर्णका खून पीने लगे ॥

प्रसर्पमाणा मेदिन्यां ते व्यरोचन्त मार्गणाः ॥ २७ ॥
अर्धप्रविष्टाः संरब्धा बिलानीव महोरगाः ।

जैसे क्रोधमें भरे हुए महान् सर्प बिलोंमें प्रवेश करते समय आधे ही घुस पाये हों, उसी प्रकार वे बाण पृथ्वीमें घुसते हुए शोभा पा रहे थे ॥ २७½ ॥

तं प्रत्यविध्यद् राधेयो जाम्बूनदविभूषितैः ॥ २८ ॥
चतुर्दशभिरत्युग्रैर्नाराचैरविचारयन् ।

तब कर्णने कुछ विचार न करके अत्यन्त भयंकर एवं सुवर्णभूषित चौदह नाराचोंसे भीमसेनको भी घायल कर दिया ॥ २८½ ॥

ते भीमसेनस्य भुजं सव्यं निर्भिद्य पत्रिणः ॥ २९ ॥
प्राविशन् मेदिनीं भीमाः क्रौञ्चं पत्ररथा इव ।

वे पुंखधारी भयानक बाण भीमसेनकी बायीं भुजा छेदकर पृथ्वीमें समा गये, मानो पक्षी क्रौञ्च पर्वतको जा रहे हों ॥ २९½ ॥

ते व्यरोचन्त नाराचाः प्रविशन्तो वसुंधराम् ॥ ३० ॥
गच्छत्यस्तं दिनकरे दीप्यमाना इवांशवः ।

वे नाराच इस पृथ्वीमें प्रवेश करते समय वैसी ही शोभा पा रहे थे, जैसे सूर्यके डूबते समय उनकी चमकीली किरणें प्रकाशित होती हैं ॥ ३०½ ॥

स निर्भिन्नो रणे भीमो नाराचैर्मर्मभेदिभिः ॥ ३१ ॥
सुस्राव रुधिरं भूरि पर्वतः सलिलं यथा ।

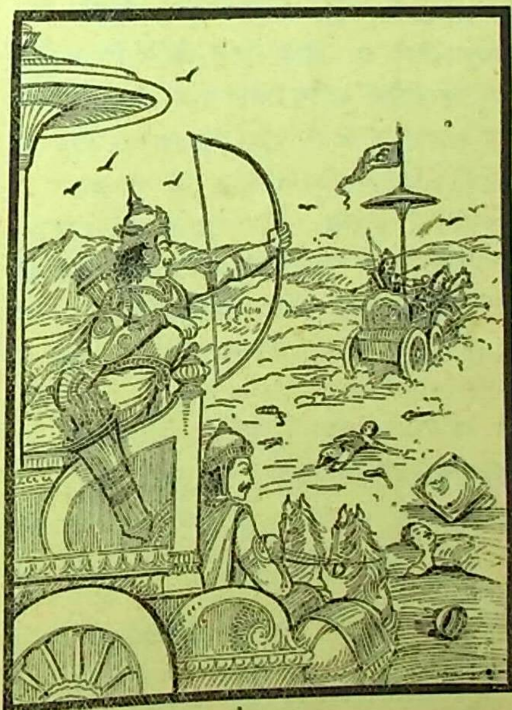
मर्मभेदी नाराचोंसे रणक्षेत्रमें विदीर्ण हुए भीमसेन उसी प्रकार भूरि-भूरि रक्त बहाने लगे, जैसे पर्वत झरनेका जल गिराता है ॥ ३१½ ॥

स भीमस्त्रिभिरायत्तः सूतपुत्रं पतत्रिभिः ॥ ३२ ॥
सुपर्णवेगैर्विव्याध सारथिं चास्य सप्तभिः ।

तब भीमसेनने भी प्रयत्नपूर्वक गरुडके समान वेगशाली तीन बाणोंद्वारा सूतपुत्र कर्णको तथा सात बाणोंसे उसके सारथिको भी घायल कर दिया ॥ ३२½ ॥

स विह्वलो महाराज कर्णो भीमशराहतः ॥ ३३ ॥
प्राद्रवज्जवनैरश्वै रणं हित्वा महाभयात् ।

महाराज! भीमके बाणोंसे आहत होकर कर्ण विह्वल हो उठा और महान् भयके कारण युद्ध छोड़कर शीघ्रगामी घोड़ोंकी सहायतासे भाग निकला ॥ ३३½ ॥



भीमसेनस्तु विस्फार्य चापं हेमपरिष्कृतम् ॥ ३४ ॥
आहवेऽतिरथोऽतिष्ठज्ज्वलन्निव हुताशनः ॥ ३५ ॥

परंतु अतिरथी भीमसेन अपने सुवर्णभूषित धनुषको ताने हुए प्रज्वलित अग्निके समान युद्धस्थलमें ही खड़े रहे ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णापयाने चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें कर्णका पलायनविषयक एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३४ ॥

पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका खेदपूर्वक भीमसेनके बलका वर्णन और अपने पुत्रोंकी निन्दा करना तथा भीमके द्वारा दुर्मर्षण आदि धृतराष्ट्रके पाँच पुत्रोंका वध

धृतराष्ट्र उवाच

दैवमेव परं मन्ये धिक् पौरुषमनर्थकम् ।
यत्राधिरथिरायत्तो नातरत् पाण्डवं रणे ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय ! मैं तो दैवको ही बड़ा मानता हूँ । पुरुषार्थ तो व्यर्थ है । उसे धिक्कार है; क्योंकि उसमें स्थित हुआ अधिरथपुत्र कर्ण सब प्रकारसे प्रयत्न करके भी रणक्षेत्रमें पाण्डुनन्दन भीमसे पार न पा सका ॥ १ ॥

कर्णः पार्थान् सगोविन्दान् जेतुमुत्सहते रणे ।
न च कर्णसमं योधं लोके पश्यामि कञ्चन ॥ २ ॥

'कर्ण युद्धस्थलमें कृष्णसहित समस्त कुन्तीकुमारोंको जीतनेका उत्साह रखता है । मैं संसारमें कर्णके समान दूसरे किसी योद्धाको नहीं देख रहा हूँ' ॥ २ ॥

इति दुर्योधनस्याहमश्रौषं जल्पतो मुहुः ।
कर्णो हि बलवाञ्छूरो दृढधन्वा जितक्लमः ॥ ३ ॥
इति मामब्रवीत् सूत मन्दो दुर्योधनः पुरा ।
वसुषेणसहायं मां नालं देवाऽपि संयुगे ॥ ४ ॥
किं नु पाण्डुसुता राजन् गतसत्त्वा विचेतसः ।

इस प्रकार दुर्योधनके मुँहसे मैंने बारंबार सुना है । सूत ! मूर्ख दुर्योधनने पहले मुझसे यह भी कहा था कि 'कर्ण बलवान्, शूरवीर, सुदृढ़ धनुर्धर और युद्धमें श्रम तथा थकावटपर विजय पानेवाला है । राजन् ! कर्णके साथ रहनेपर समरभूमिमें मुझे देवता भी परास्त नहीं कर सकते; फिर शक्तिहीन और विवेकशून्य पाण्डव मेरा क्या कर सकते हैं ?' ॥ ३-४½ ॥

तत्र तं निर्जितं दृष्ट्वा भुजङ्गमिव निर्विषम् ॥ ५ ॥
युद्धात् कर्णमपक्रान्तं किंस्विद् दुर्योधनोऽब्रवीत् ।

परंतु रणक्षेत्रमें विषहीन सर्पके समान कर्णको पराजित और युद्धसे भागा हुआ देखकर दुर्योधनने क्या कहा था ॥ ५½ ॥

अहो दुर्मुखमेवैकं युद्धानामविशारदम् ॥ ६ ॥
प्रावेशयद्धुतवहं पतङ्गमिव मोहितः ।

अहो ! दुर्योधनने मोहित होकर युद्धकी कलासे अनभिज्ञ दुर्मुखको अकेले ही पतंगकी भाँति आगमें झोंक दिया ॥ ६½ ॥

अश्वत्थामा मद्रराजः कृपः कर्णश्च संगताः ॥ ७ ॥
न शक्ताः प्रमुखे स्थातुं नूनं भीमस्य संजय ।

संजय ! अश्वत्थामा, मद्रराज शल्य, कृपाचार्य और कर्ण—ये सब मिलकर भी निश्चय ही भीमके सामने नहीं ठहर सकते ॥ ७½ ॥

तेऽपि चास्य महाघोरं बलं नागायुतोपमम् ॥ ८ ॥
जानन्तो व्यवसायं च क्रूरं मारुततेजसः ।
किमर्थं क्रूरकर्माणं यमकालान्तकोपमम् ॥ ९ ॥
बलसंरम्भवीर्यज्ञाः कोपयिष्यन्ति संयुगे ।

वे भी वायुके तुल्य तेजस्वी भीमसेनके दस हजार हाथियोंके समान अत्यन्त घोर बलको तथा उनके क्रूरतापूर्ण निश्चयको जानते हैं; उनके बल, पराक्रम और क्रोधसे परिचित हैं । ऐसी दशामें वे यम, काल और अन्तकके समान क्रूर कर्म करनेवाले भीमसेनको युद्धमें अपने ऊपर कैसे कुपित करेंगे ? ॥ ८-९½ ॥

कर्णस्त्वेको महाबाहुः स्वबाहुबलदर्पितः ॥ १० ॥
भीमसेनमनादृत्य रणेऽयुध्यत सूतजः ।

अकेला सूतपुत्र महाबाहु कर्ण ही अपने बाहुबलके घमंडमें भरकर भीमसेनका तिरस्कार करके रणभूमिमें उनके साथ जूझता रहा ॥ १०½ ॥

योऽजयत् समरे कर्णं पुरंदर इवासुरम् ॥ ११ ॥
न स पाण्डुसुतो जेतुं शक्यः केनचिदाहवे ।

जिन्होंने समराङ्गणमें असुरोंपर विजय पानेवाले देवराज इन्द्रके समान कर्णको पराजित कर दिया, उन पाण्डुपुत्र भीमसेनको कोई भी युद्धमें जीत नहीं सकता ॥ ११½ ॥

द्रोणं यः सम्प्रमथ्यैकः प्रविष्टो मम वाहिनीम् ॥ १२ ॥
भीमो धनंजयान्वेषी कस्तमार्च्छेज्जिजीविषुः ।

जो भीमसेन अकेले ही द्रोणाचार्यको मथकर धनंजयका पता लगानेके लिये मेरी सेनामें घुस आये, उनका सामना करनेके लिये जीवित रहनेकी इच्छावाला कौन पुरुष जा सकता है ? ॥ १२½ ॥

को हि संजय भीमस्य स्थातुमुत्सहतेऽग्रतः ॥ १३ ॥
उद्यताशनिहस्तस्य महेन्द्रस्येव दानवः ।

संजय ! जैसे हाथमें वज्र लिये हुए देवराज इन्द्रके सामने कोई दानव खड़ा नहीं हो सकता, उसी प्रकार भीमसेनके सम्मुख भला कौन ठहर सकता है ? ॥ १३½ ॥

प्रेतराजपुरं प्राप्य निवर्तेतापि मानवः ॥ १४ ॥
न भीमसेनं सम्प्राप्य निवर्तेत कदाचन ।

मनुष्य यमलोकमें भी जाकर लौट सकता है; परंतु युद्धमें भीमसेनके सामने जाकर कदापि जीवित नहीं लौट सकता ॥ १४½ ॥

पतङ्गा इव वह्निं ते प्राविशन्नल्पचेतसः ॥ १५ ॥
ये भीमसेनं संक्रुद्धमन्वधावन् विमोहिताः ।

मेरे जो मन्दबुद्धि पुत्र मोहित होकर क्रोधमें भरे हुए भीमसेनकी ओर दौड़े थे, वे पतंगोंके समान मानो आगमें ही कूद पड़े थे ॥ १५½ ॥

यत् तत् सभायां भीमेन मम पुत्रवधाश्रयम् ॥ १६ ॥
उक्तं संरम्भिणोग्रेण कुरूणां शृण्वतां तदा।
तन्नूनमभिसंचिन्त्य दृष्ट्वा कर्णं च निर्जितम् ॥ १७ ॥
दुःशासनः सह भ्रात्रा भयाद् भीमादुपारमत्।

क्रोधमें भरे हुए भयंकर भीमसेनने सभाभवनमें उस दिन समस्त कौरवोंके सुनते हुए मेरे पुत्रोंके वधके सम्बन्धमें जो प्रतिज्ञा की थी, उसका विचार करके और कर्णको पराजित देखकर अपने भाई दुर्योधनसहित दुःशासन निश्चय ही भयके मारे भीमसेनसे दूर हट गया होगा ॥ १६-१७½ ॥

यश्च संजय दुर्बुद्धिरब्रवीत् समितौ मुहुः ॥ १८ ॥
कर्णो दुःशासनोऽहं च जेष्यामो युधि पाण्डवान्।

संजय ! खोटी बुद्धिवाले दुर्योधनने सभामें बारंबार कहा था कि 'कर्ण, दुःशासन तथा मैं—तीनों मिलकर युद्धमें अवश्य पाण्डवोंको जीत लेंगे' ॥ १८½ ॥

स नूनं विरथं दृष्ट्वा कर्णं भीमेन निर्जितम् ॥ १९ ॥
प्रत्याख्यानाच्च कृष्णस्य भृशं तप्यति पुत्रकः।

परंतु अब कर्णको भीमसेनके द्वारा पराजित और रथहीन हुआ देख श्रीकृष्णकी बात न माननेके कारण मेरा वह पुत्र निश्चय ही बड़ा भारी पश्चात्ताप कर रहा होगा ॥ १९½ ॥

दृष्ट्वा भ्रातॄन् हतान् संख्ये भीमसेनेन दंशितान् ॥ २० ॥
आत्मापराधे सुमहन्नूनं तप्यति पुत्रकः।

अपने कवचधारी भ्राताओंको युद्धमें भीमसेनके द्वारा मारा गया देख मेरे पुत्रको अपने अपराधके लिये अवश्य ही महान् अनुताप हो रहा होगा ॥ २०½ ॥

को हि जीवितमन्विच्छन् प्रतीपं पाण्डवं व्रजेत् ॥ २१ ॥
भीमं भीमायुधं क्रुद्धं साक्षात् कालमिव स्थितम्।

अपने जीवनकी इच्छा रखनेवाला कौन पुरुष क्रोधमें भरकर साक्षात् कालके समान खड़े हुए भयानक अस्त्र-शस्त्रधारी पाण्डुपुत्र भीमसेनके विरुद्ध युद्धमें जा सकता है ॥ २१½ ॥

बडवामुखमध्यस्थो मुच्येतापि हि मानवः ॥ २२ ॥
न भीममुखसम्प्राप्तो मुच्येदिति मतिर्मम।

मेरा तो ऐसा विश्वास है कि बडवानलके मुखमें पड़ा हुआ मनुष्य शायद जीवित बच जाय; परंतु भीमसेनके सम्मुख युद्धके लिये आया हुआ कोई भी शूरमा जीवित नहीं छूट सकता ॥ २२½ ॥

न पार्था न च पञ्चाला न च केशवसात्यकी ॥ २३ ॥
जानते युधि संरब्धा जीवितं परिरक्षितुम्।
अहो मम सुतानां हि विपन्नं सूत जीवितम् ॥ २४ ॥

सूत ! युद्धमें कुद्ध होनेपर पाण्डव, पाञ्चाल, श्रीकृष्ण तथा सात्यकि—ये कोई भी शत्रुके जीवनकी रक्षा करना नहीं जानते हैं। अहो ! मेरे पुत्रोंका जीवन भारी विपत्तिमें पड़ गया है ॥ २३-२४ ॥

संजय उवाच

यस्त्वं शोचसि कौरव्य वर्तमाने महाभये।
त्वमस्य जगतो मूलं विनाशस्य न संशयः ॥ २५ ॥

संजयने कहा—कुरुनन्दन ! यह महान् भय जब सिरपर आ गया है, तब आप शोक करने बैठे हैं, यह ठीक नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस जगत्के विनाशका मूल कारण आप ही हैं ॥ २५ ॥

स्वयं वैरं महत् कृत्वा पुत्राणां वचने स्थितः।
उच्यमानो न गृह्णीषे मर्त्यः पथ्यमिवौषधम् ॥ २६ ॥

पुत्रोंकी हाँमें हाँ मिलाकर आपने स्वयं ही इस महान् वैरकी नींव डाली है और जब इसे मिटानेके लिये आपसे किसीने कोई बात कही, तब आपने उसे नहीं माना, ठीक उसी तरह, जैसे मरणासन्न मनुष्य हितकारक औषध नहीं ग्रहण करता है ॥ २६ ॥

स्वयं पीत्वा महाराज कालकूटं सुदुर्जरम्।
तस्येदानीं फलं कृत्स्नमवाप्नुहि नरोत्तम ॥ २७ ॥

नरश्रेष्ठ ! महाराज ! जिसको पचाना अत्यन्त कठिन है, उस कालकूट विषको स्वयं पीकर अब उसके सारे परिणामोंको आप ही भोगिये ॥ २७ ॥

यत् तु कुत्सयसे योधान् युध्यमानान् महाबलान्।
तत्र ते वर्तयिष्यामि यथा युद्धमवर्तत ॥ २८ ॥

युद्धमें लगे हुए महाबली योद्धाओंको जो आप कोस रहे हैं, वह व्यर्थ है। अब जिस प्रकार वहाँ युद्ध हुआ था, वह सब आपको बता रहा हूँ, सुनिये ॥ २८ ॥

दृष्ट्वा कर्णं तु पुत्रास्ते भीमसेनपराजितम्।
नामृष्यन्त महेष्वासाः सोदर्याः पञ्च भारत ॥ २९ ॥

भरतनन्दन ! कर्णको भीमसेनसे पराजित हुआ देख आपके पाँच महाधनुर्धर पुत्र जो परस्पर सगे भाई थे, सह न सके ॥ २९ ॥

दुर्मर्षणो दुःसहश्च दुर्मदो दुर्धरो जयः।
पाण्डवं चित्रसंनाहास्तं प्रतीपमुपाद्रवन् ॥ ३० ॥

उन पाँचोंके नाम ये हैं—दुर्मर्षण, दुःसह, दुर्मद, दुर्धर (दुराधार) और जय। इन सबने विचित्र कवच धारण करके अपने विरोधी पाण्डुपुत्र भीमसेनपर आक्रमण किया ॥ ३० ॥

ते समन्तान्महाबाहुं परिवार्य वृकोदरम्।
दिशः शरैः समावृण्वञ्शलभानामिव व्रजैः ॥ ३१ ॥

उन्होंने महाबाहु भीमसेनकी चारों ओरसे घेरकर टिड्डी-दलोंके समान अपने बाणसमूहोंद्वारा सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित कर दिया ॥ ३१ ॥

आगच्छतस्तान् सहसा कुमारान् देवरूपिणः ।
प्रतिजग्राह समरे भीमसेनो हसन्निव ॥ ३२ ॥

उन देवतुल्य राजकुमारोंको सहसा देख समरभूमिमें भीमसेनने हँसते हुए-से उनका आघात सहन किया ॥ ३२ ॥

तव दृष्ट्वा तु तनयान् भीमसेनपुरोगतान् ।
अभ्यवर्तत राधेयो भीमसेनं महाबलम् ॥ ३३ ॥

आपके पुत्रोंको भीमसेनके सामने गया हुआ देख राधानन्दन कर्ण पुनः महाबली भीमसेनका सामना करनेके लिये आ पहुँचा ॥ ३३ ॥

विसृजन् विशिखांस्तीक्ष्णान् स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाशितान् ।
तं तु भीमोऽभ्ययात् तूर्णं वार्यमाणः सुतैस्तव ॥ ३४ ॥

वह शानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखोंसे युक्त पैने बाणोंकी वर्षा कर रहा था। उस समय आपके पुत्रोंद्वारा रोके जानेपर भी भीमसेन तुरंत ही कर्णके साथ युद्ध करनेके लिये आगे बढ़ गये ॥ ३४ ॥

कुरवस्तु ततः कर्णं परिवार्य समन्ततः ।
अवाकिरन् भीमसेनं शरैः संनतपर्वभिः ॥ ३५ ॥

तब उन कौरवोंने कर्णको चारों ओरसे घेरकर भीमसेन-पर झुकी हुई गाँठवाले बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ३५ ॥

तान् बाणैः पञ्चविंशत्या साश्वान् राजन् नरर्षभान् ।
ससूतान् भीमधनुषो भीमो निन्ये यमक्षयम् ॥ ३६ ॥

राजन्! यह देखकर भीमसेनने पचीस बाणोंका प्रहार करके सारथि और घोड़ोंसहित भयंकर धनुष धारण करनेवाले उन नरश्रेष्ठ राजकुमारोंको यमलोक पहुँचा दिया ॥ ३६ ॥

प्रापतन् स्यन्दनेभ्यस्ते सार्धं सूतैर्गतासवः ।
चित्रपुष्पधरा भग्ना वातेनेव महाद्रुमाः ॥ ३७ ॥

वे प्राणशून्य होकर सारथियोंके साथ रथोंसे नीचे गिर पड़े, मानो प्रचण्ड आँधीने विचित्र पुष्प धारण करनेवाले विशाल वृक्षोंको उखाड़कर धराशायी कर दिया हो ॥ ३७ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम भीमसेनस्य विक्रमम् ।
संवार्याधिरथिं बाणैर्यज्जघान तवात्मजान् ॥ ३८ ॥

वहाँ हमने भीमसेनका यह अद्भुत पराक्रम देखा कि उन्होंने सूतपुत्र कर्णको अपने बाणोंद्वारा रोककर आपके पुत्रोंको मार डाला ॥ ३८ ॥

स वार्यमाणो भीमेन शितैर्बाणैः समन्ततः ।
सूतपुत्रो महाराज भीमसेनमवैक्षत ॥ ३९ ॥

महाराज! भीमसेनके पैने बाणोंद्वारा चारों ओरसे रोके जानेपर भी सूतपुत्र कर्णने भीमसेनकी ओर क्रोधपूर्वक देखा ॥ ३९ ॥

तं भीमसेनः संरम्भात् क्रोधसंरक्तलोचनः ।
विस्फार्य सुमहच्चापं मुहुः कर्णमवैक्षत ॥ ४० ॥

इधर क्रोधसे लाल आँखें किये भीमसेन भी अपने विशाल धनुषको फैलाकर कर्णकी ओर रोषपूर्वक बारंबार देखने लगे ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमसेनपराक्रमे पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भीमसेनका पराक्रमविषयक एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३५ ॥

षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेन और कर्णका युद्ध, कर्णका पलायन, धृतराष्ट्रके सात पुत्रोंका वध तथा भीमका पराक्रम

संजय उवाच

तवात्मजांस्तु पतितान् दृष्ट्वा कर्णः प्रतापवान् ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो निर्विण्णोऽभूत् स जीवितात् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! आपके पुत्रोंको रणभूमिमें गिरा हुआ देख प्रतापी कर्ण अत्यन्त कुपित हो अपने जीवनसे विरक्त हो उठा ॥ १ ॥

आगस्कृतमिवात्मानं मेने चाधिरथिस्तदा ।
यत्प्रत्यक्षं तव सुता भीमेन निहता रणे ॥ २ ॥

उस समय अधिरथपुत्र कर्ण अपने आपको अपराधी-सा मानने लगा; क्योंकि भीमसेनने उसकी आँखोंके सामने रणभूमिमें आपके पुत्रोंको मार डाला था ॥ २ ॥

भीमसेनस्ततः क्रुद्धः कर्णस्य निशिताञ्शरान् ।
निचखान स सम्भ्रान्तः पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ३ ॥

तदनन्तर पहलेके वैरका बारंबार स्मरण करके कुपित हुए भीमसेनने कर्णके शरीरमें बड़े वेगसे अपने पैने बाण धँसा दिये ॥ ३ ॥

स भीमं पञ्चभिर्विद्ध्वा राधेयः प्रहसन्निव ।
पुनर्विव्याध सप्तत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ ४ ॥

तब राधानन्दन कर्णने हँसते हुए-से पाँच बाण मारकर भीमसेनको घायल कर दिया। फिर शानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले सत्तर बाणोंद्वारा उन्हें गहरी चोट पहुँचायी ॥ ४ ॥

अविचिन्त्याथ तान् बाणान् कर्णेनास्तान् वृकोदरः ।
रणे विव्याध राधेयं शतेनानतपर्वणाम् ॥ ५ ॥

कर्णके चलाये हुए उन बाणोंकी कुछ भी परवा न करके भीमसेनने रणभूमिमें झुकी हुई गाँठवाले सौ बाणोंद्वारा राधापुत्रको घायल कर दिया ॥ ५ ॥

पुनश्च विशिखैस्तीक्ष्णैर्विद्ध्वा मर्मसु पञ्चभिः ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सूतपुत्रस्य मारिष ॥ ६ ॥

माननीय नरेश ! फिर पाँच तीखे बाणोंद्वारा सूतपुत्रके मर्मस्थानोंमें चोट पहुँचाकर भीमसेनने एक भल्लद्वारा उसका धनुष काट दिया ॥ ६ ॥

अथान्यद् धनुरादाय कर्णो भारत दुर्मनाः ।
इषुभिश्छादयामास भीमसेनं परंतपः ॥ ७ ॥

भारत ! तब शत्रुओंको संताप देनेवाले कर्णने खिन्न होकर दूसरा धनुष हाथमें ले भीमसेनको अपने बाणोंद्वारा आच्छादित कर दिया ॥ ७ ॥

तस्य भीमो हयान् हत्वा विनिहत्य च सारथिम्।
प्रजहास महाहासं कृते प्रतिकृते पुनः ॥ ८ ॥

भीमसेनने उसके घोड़ों और सारथिको मारकर उसके प्रहारका बदला चुका लेनेके पश्चात् पुनः बड़े जोरसे अट्टहास किया ॥ ८ ॥

इषुभिः कार्मुकं चास्य चकर्त पुरुषर्षभः ।
तत् पपात महाराज स्वर्णपृष्ठं महास्वनम् ॥ ९ ॥

महाराज ! पुरुषशिरोमणि भीमने अपने बाणोंद्वारा कर्णका धनुष भी फिर काट दिया । स्वर्णमय पृष्ठभागसे युक्त और गम्भीर टङ्कार करनेवाला उसका वह धनुष पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ९ ॥

अवारोहद् रथात् तस्मादथ कर्णो महारथः ।
गदां गृहीत्वा समरे भीमाय प्राहिणोद् रुषा ॥ १० ॥

महारथी कर्ण उस रथसे उतर गया और गदा लेकर उसने समरभूमिमें भीमसेनपर रोषपूर्वक चला दी ॥ १० ॥

तामापतन्तीमालक्ष्य भीमसेनो महागदाम् ।
शरैरवारयद् राजन् सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ११ ॥

राजन् ! उस विशाल गदाको अपने ऊपर आती देख भीमसेनने सब सेनाओंके देखते-देखते बाणोंद्वारा उसका निवारण कर दिया ॥ ११ ॥

ततो बाणसहस्राणि प्रेषयामास पाण्डवः ।
सूतपुत्रवधाकाङ्क्षी त्वरमाणः पराक्रमी ॥ १२ ॥

तब सूतपुत्रके वधकी इच्छावाले पराक्रमी पाण्डुपुत्र भीमसेनने बड़ी उतावलीके साथ एक हजार बाण चलाये ॥ १२ ॥

तानिषूनिषुभिः कर्णो वारयित्वा महामृधे ।
कवचं भीमसेनस्य पातयामास सायकैः ॥ १३ ॥

परंतु कर्णने उस महासमरमें अपने बाणोंद्वारा उन सभी बाणोंका निवारण करके भीमसेनके कवचको बाणोंसे छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ १३ ॥

अथैनं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत् ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १४ ॥

तदनन्तर उसने सब सेनाओंके देखते-देखते भीमसेनपर पचीस नाराचोंका प्रहार किया । वह अद्भुत-सी बात हुई ॥ १४ ॥

ततो भीमो महाबाहुर्नवभिर्नतपर्वभिः ।
प्रेषयामास संक्रुद्धः सूतपुत्रस्य मारिष ॥ १५ ॥

माननीय नरेश ! तब अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए महाबाहु भीमसेनने सूतपुत्रको झुकी हुई गाँठवाले नौ बाण मारे॥१५॥

ते तस्य कवचं भित्त्वा तथा बाहुं च दक्षिणम् ।
अभ्ययुर्धरणीं तीक्ष्णा वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ १६ ॥

वे तीखे बाण कर्णके कवच तथा दाहिनी भुजाको विदीर्ण करके बाँबीमें घुसनेवाले सर्पोंके समान धरतीमें समा गये ॥ १६ ॥

स च्छाद्यमानो बाणौघैर्भीमसेनधनुश्च्युतैः ।
पुनरेवाभवत् कर्णो भीमसेनात् पराङ्मुखः ॥ १७ ॥

भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए बाणसमूहोंसे आच्छादित होकर कर्ण पुनः भीमसेनसे विमुख हो गया (उन्हें पीठ दिखाकर भाग चला) ॥ १७ ॥

तं पराङ्मुखमालोक्य पदातिं सूतनन्दनम् ।
कौन्तेयशरसंछन्नं राजा दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ १८ ॥

सूतपुत्र कर्णको युद्धसे विमुख, पैदल तथा भीमसेनके बाणोंसे आच्छादित देखकर राजा दुर्योधन अपने सैनिकोंसे बोला—॥ १८ ॥

त्वरध्वं सर्वतो यत्ता राधेयस्य रथं प्रति ।
ततस्तव सुता राजञ्छ्रुत्वा भ्रातुर्वचो द्रुतम् ॥ १९ ॥
अभ्ययुः पाण्डवं युद्धे विसृजन्तः शिलीमुखान् ।

'वीरो ! सब ओरसे राधानन्दन कर्णके रथकी ओर शीघ्र आओ और उसकी रक्षाका प्रबन्ध करो ।' राजन् ! तब भाईकी यह बात सुनकर आपके पुत्र शीघ्रतापूर्वक युद्धमें पाण्डुपुत्र भीमपर बाणोंकी वर्षा करते हुए आ पहुँचे ॥१९½॥

चित्रोपचित्रश्चित्राक्षश्चारुचित्रः शरासनः ॥ २० ॥
चित्रायुधश्चित्रवर्मा समरे चित्रयोधिनः ।

उनके नाम इस प्रकार हैं—चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, चित्रायुध और चित्रवर्मा । ये सब-के-सब समरभूमिमें विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले थे ॥ २०½ ॥

तानापतत एवाशु भीमसेनो महारथः ॥ २१ ॥
एकैकेन शरेणाजौ पातयामास ते सुतान् ।
ते हता न्यपतन् भूमौ वातरुग्णा इव द्रुमाः ॥ २२ ॥

महारथी भीमसेनने उनके आते ही शीघ्रतापूर्वक एक-एक बाण मारकर आपके सभी पुत्रोंको युद्धमें धराशायी कर दिया। वे मारे जाकर आँधीके उखाड़े हुए वृक्षोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २१-२२ ॥

दृष्ट्वा विनिहतान् पुत्रांस्तव राजन् महारथान् ।
अश्रुपूर्णमुखः कर्णः क्षत्तुः सस्मार तद् वचः ॥ २३ ॥

राजन्! आपके महारथी पुत्रोंको इस प्रकार मारा गया देख कर्णके मुखपर आँसुओंकी धारा बह चली। उस समय उसे विदुरजीकी कही हुई बात याद आयी ॥ २३ ॥

रथं चान्यं समास्थाय विधिवत् कल्पितं पुनः ।
अभ्ययात् पाण्डवं युद्धे त्वरमाणः पराक्रमी ॥ २४ ॥

फिर उस पराक्रमी वीरने विधिपूर्वक सजाये हुए दूसरे रथपर बैठकर युद्धमें शीघ्रतापूर्वक पाण्डुपुत्र भीमसेनपर धावा किया ॥ २४ ॥

तावन्योन्यं शरैर्भित्त्वा स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।
व्यभ्राजेतां यथा मेघौ संस्यूतौ सूर्यरश्मिभिः ॥ २५ ॥

वे दोनों एक दूसरेको शिलापर तेज किये हुए सुवर्ण-पंखयुक्त बाणोंद्वारा क्षत-विक्षत करके सूर्यकी किरणोंमें पिरोये हुए बादलोंके समान सुशोभित होने लगे ॥ २५ ॥

षट्त्रिंशद्भिस्ततो भल्लैर्निशितैस्तिग्मतेजनैः ।
व्यधमत् कवचं क्रुद्धः सूतपुत्रस्य पाण्डवः ॥ २६ ॥

तत्पश्चात् क्रोधमें भरे हुए भीमसेनने प्रचण्ड तेजवाले छत्तीस तीखे भल्लोंका प्रहार करके सूतपुत्रके कवचकी धज्जियाँ उड़ा दीं ॥ २६ ॥

सूतपुत्रोऽपि कौन्तेयं शरैः संनतपर्वभिः ।
पञ्चाशता महाबाहुर्विव्याध भरतर्षभ ॥ २७ ॥

भरतश्रेष्ठ! फिर महाबाहु सूतपुत्रने भी कुन्तीकुमार भीमसेनको झुकी हुई गाँठवाले पचास बाणोंसे बींध डाला ॥

रक्तचन्दनदिग्धाङ्गौ शरैः कृतमहाव्रणौ ।
शोणिताक्तौ व्यराजेतां चन्द्रसूर्याविवोदितौ ॥ २८ ॥

उन दोनोंने अपने शरीरमें लाल चन्दन लगा रक्खे थे। इसके सिवा उनके शरीरमें बाणोंके आघातसे बड़े-बड़े घाव हो गये थे। इस प्रकार खूनसे लथपथ हुए वे दोनों योद्धा उदयकालीन सूर्य और चन्द्रमाके समान शोभा पा रहे थे ॥ २८ ॥

तौ शोणितोक्षितैर्गात्रैः शरैश्छिन्नतनुच्छदौ ।
कर्णभीमौ व्यराजेतां निर्मुक्ताविव पन्नगौ ॥ २९ ॥
व्याघ्राविव नरव्याघ्रौ दंष्ट्राभिरितरेतरम् ।
शरधाराम्बुजौ वीरौ मेघाविव ववर्षतुः ॥ ३० ॥

बाणोंद्वारा उन दोनोंके कवच कट गये थे और सारे अङ्ग रक्तसे भीग गये थे। उस दशामें वे कर्ण और भीमसेन केंचुल छोड़कर निकले हुए दो सर्पोंके समान शोभा पाने लगे। जैसे दो व्याघ्र अपनी दाढ़ोंसे एक दूसरेपर चोट करते हैं, उसी प्रकार वे दोनों पुरुषव्याघ्र योद्धा परस्पर प्रहार कर रहे थे। वे दोनों वीर दो मेघोंके समान बाणधाराकी वर्षा कर रहे थे ॥ २९-३० ॥

वारणाविव चान्योन्यं विषाणाभ्यामरिंदमौ ।
निर्भिन्दन्तौ स्वगात्राणि सायकैश्चारु रेजतुः ॥ ३१ ॥

जैसे दो हाथी अपने दाँतोंसे एक दूसरेपर आघात करते हैं, उसी प्रकार वे शत्रुदमन वीर अपने बाणोंद्वारा एक दूसरेके शरीरोंको विदीर्ण करते हुए सुशोभित हो रहे थे ॥

नादयन्तौ प्रहर्षन्तौ विक्रीडन्तौ परस्परम् ।
मण्डलानि विकुर्वाणौ रथाभ्यां रथसत्तमौ ॥ ३२ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ भीम और कर्ण सिंहनाद करते, अत्यन्त हर्षसे उत्फुल्ल हो उठते और आपसमें खेल-सा करते हुए रथोंद्वारा मण्डलगतिसे विचरते थे ॥ ३२ ॥

वृषाविवाथ नर्दन्तौ बलिनौ वासितान्तरे ।
सिंहाविव पराक्रान्तौ नरसिंहौ महाबलौ ॥ ३३ ॥
परस्परं वीक्षमाणौ क्रोधसंरक्तलोचनौ ।
युयुधाते महावीर्यौ शक्रवैरोचनी यथा ॥ ३४ ॥

जैसे गायके लिये दो बलवान् साँड़ गरजते हुए लड़ जाते हैं, उसी प्रकार वे सिंहके समान पराक्रमी महान् बलशाली पुरुषसिंह कर्ण और भीम क्रोधसे लाल आँखें करके एक दूसरेको देखते हुए महापराक्रमी इन्द्र और बलिके समान युद्ध कर रहे थे ॥ ३३-३४ ॥

ततो भीमो महाबाहुर्बाहुभ्यां विक्षिपन् धनुः ।
व्यराजत रणे राजन्सविद्युदिव तोयदः ॥ ३५ ॥

राजन्! उस रणक्षेत्रमें महाबाहु भीमसेन अपनी भुजाओंसे धनुषकी टंकार करते हुए बिजलीसहित मेघके समान शोभा पा रहे थे ॥ ३५ ॥

स नेमिघोषस्तनितश्चापविद्युच्छराम्बुभिः ।
भीमसेनमहामेघः कर्णपर्वतमावृणोत् ॥ ३६ ॥

रथके पहियोंकी घरघराहट जिसकी गम्भीर गर्जना थी और धनुष ही विद्युत्के समान प्रकाशित होता था, भीमसेनरूपी उस महामेघने बाणरूपी जलकी वर्षासे कर्णरूपी पर्वतको ढक दिया ॥ ३६ ॥

ततः शरसहस्रेण सम्यगस्तेन भारत ।
पाण्डवो व्यकिरत् कर्णं भीमो भीमपराक्रमः ॥ ३७ ॥

भरतनन्दन! तदनन्तर अच्छी तरह चलाये हुए सहस्रों बाणोंसे भयंकर पराक्रमी पाण्डुपुत्र भीमने कर्णको आच्छादित कर दिया ॥ ३७ ॥

तत्रापश्यंस्तव सुता भीमसेनस्य विक्रमम् ।
सुपुङ्खैः कङ्कवासोभिर्यत् कर्णं छादयच्छरैः ॥ ३८ ॥

आपके पुत्रोंने वहाँ भीमसेनका यह अद्भुत पराक्रम देखा कि उन्होंने कङ्कपत्रयुक्त सुन्दर पंखवाले बाणोंसे कर्णको आच्छादित कर दिया ॥ ३८ ॥

स नन्दयन् रणे पार्थं केशवं च यशस्विनम् ।
सात्यकिं चक्ररक्षौ च भीमः कर्णमयोधयत् ॥ ३९ ॥

भीमसेन रणक्षेत्रमें कुन्तीकुमार अर्जुन, यशस्वी श्रीकृष्ण, सात्यकि तथा दोनों चक्ररक्षक युधामन्यु एवं उत्तमौजाको आनन्दित करते हुए कर्णके साथ युद्ध कर रहे थे ॥ ३९ ॥

विक्रमं भुजयोर्वीर्यं धैर्यं च विदितात्मनः ।
पुत्रास्तव महाराज दृष्ट्वा विमनसोऽभवन् ॥ ४० ॥

महाराज ! सुविख्यात भीमसेनके पराक्रम, बाहुबल और धैर्यको देखकर आपके सभी पुत्र उदास हो गये ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमयुद्धे षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भीमसेनका युद्धविषयक एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३६ ॥

सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेन और कर्णका युद्ध तथा दुर्योधनके सात भाइयोंका वध

संजय उवाच

भीमसेनस्य राधेयः श्रुत्वा ज्यातलनिःस्वनम् ।
नामृष्यत यथा मत्तो गजः प्रतिगजस्वनम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! भीमसेनके धनुषकी टंकार सुनकर राधानन्दन कर्ण उसे सहन न कर सका । जैसे मतवाला हाथी अपने प्रतिपक्षी गजराजकी गर्जनाको नहीं सहन कर पाता ॥ १ ॥

सोऽपक्रम्य मुहूर्तं तु भीमसेनस्य गोचरात् ।
पुत्रांस्तव ददर्शाथ भीमसेनेन पातितान् ॥ २ ॥

उसने थोड़ी देरके लिये भीमसेनकी दृष्टिसे दूर हटनेपर देखा कि भीमसेनने आपके पुत्रोंको मार गिराया है ॥ २ ॥

तानवेक्ष्य नरश्रेष्ठ विमना दुःखितस्तदा ।
निःश्वसन् दीर्घमुष्णं च पुनः पाण्डवमभ्ययात् ॥ ३ ॥

नरश्रेष्ठ ! उनकी वह अवस्था देखकर उस समय कर्णको बहुत दुःख हुआ । उसका मन उदास हो गया । वह गरम-गरम लंबी साँस खींचता हुआ पुनः पाण्डुनन्दन भीमसेनके सामने आया ॥ ३ ॥

स ताम्रनयनः क्रोधाच्छ्वसन्निव महोरगः ।
बभौ कर्णः शरानस्यन् रश्मीनिव दिवाकरः ॥ ४ ॥

उसकी आँखें क्रोधसे लाल हो रही थीं और वह फुफकारते हुए महान् सर्पके समान उच्छ्वास खींच रहा था । उस समय बाणोंकी वर्षा करता हुआ कर्ण अपनी किरणोंका प्रसार करते हुए सूर्यदेवके समान शोभा पा रहा था ॥ ४ ॥

किरणैरिव सूर्यस्य महीध्रो भरतर्षभ ।
कर्णचापच्युतैर्बाणैः प्राच्छाद्यत वृकोदरः ॥ ५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! जैसे सूर्यकी किरणोंसे पर्वत ढक जाता है, उसी प्रकार कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा भीमसेन आच्छादित हो गये ॥ ५ ॥

ते कर्णचापप्रभवाः शरा बर्हिणवाससः ।
विविशुः सर्वतः पार्थं वासायेवाण्डजा द्रुमम् ॥ ६ ॥

कर्णके धनुषसे छूटे हुए वे मयूरपंखधारी बाण सब ओरसे आकर भीमसेनके शरीरमें उसी प्रकार घुसने लगे, जैसे पक्षी बसेरा लेनेके लिये वृक्षोंपर आ जाते हैं ॥ ६ ॥

कर्णचापच्युता बाणाः सम्पतन्तस्ततस्ततः ।
रुक्मपुङ्खा व्यराजन्त हंसाः श्रेणीकृता इव ॥ ७ ॥

कर्णके धनुषसे छूटकर इधर-उधर पड़नेवाले सुवर्णपंखयुक्त बाण श्रेणीबद्ध हंसोंके समान शोभा पा रहे थे ॥ ७ ॥

चापध्वजोपस्करेभ्यश्छत्रादीषामुखाद् युगात् ।
प्रभवन्तो व्यदृश्यन्त राजन्नाधिरथेः शराः ॥ ८ ॥

राजन् ! उस समय अधिरथपुत्र कर्णके बाण केवल धनुषसे ही नहीं, ध्वज आदि अन्य समानोंसे, छत्रसे, ईषादण्ड आदिसे तथा रथके जूएसे भी प्रकट होते दिखायी देते थे ॥ ८ ॥

खं पूरयन् महावेगान् खगमान् गृध्रवाससः ।
सुवर्णविकृतांश्चित्रान् मुमोचाधिरथिः शरान् ॥ ९ ॥

अधिरथपुत्र कर्णने अन्तरिक्षको व्याप्त करते हुए महान् वेगशाली, आकाशमें विचरनेवाले गृध्रके पंखोंसे युक्त और सुवर्णके बने हुए विचित्र बाण चलाये ॥ ९ ॥

तमन्तकमिवायस्तमापतन्तं वृकोदरः ।
त्यक्त्वा प्राणानतिक्रम्य विव्याध निशितैः शरैः ॥ १० ॥

कर्णको यमराजके समान आयासयुक्त हो आते देख भीमसेन प्राणोंका मोह छोड़कर पराक्रमपूर्वक उसे पैने बाणों-द्वारा बींधने लगे ॥ १० ॥

तस्य वेगमसह्यं स दृष्ट्वा कर्णस्य पाण्डवः ।
महतश्च शरौघांस्तान् न्यवारयत वीर्यवान् ॥ ११ ॥

पराक्रमी पाण्डुपुत्र भीमने कर्णके वेगको असह्य देखकर उसके महान् बाणसमूहोंका निवारण किया ॥ ११ ॥

ततो विधम्याधिरथेः शरजालानि पाण्डवः ।
विव्याध कर्णं विंशत्या पुनरन्यैः शिलाशितैः ॥ १२ ॥

पाण्डुकुमार भीमने अधिरथपुत्रके बाणसमूहोंका निवारण

करके शिलापर चढ़ाकर तेज किये हुए बीस अन्य बाणोंद्वारा कर्णको घायल कर दिया ॥ १२ ॥

यथैव हि स कर्णेन पार्थः प्रच्छादितः शरैः ।
तथैव स रणे कर्णं छादयामास पाण्डवः ॥ १३ ॥

जैसे कर्णने अपने बाणोंद्वारा भीमसेनको आच्छादित किया था, उसी प्रकार पाण्डुपुत्र भीमने भी कर्णको ढक दिया ॥ १३ ॥

दृष्ट्वा तु भीमसेनस्य विक्रमं युधि भारत ।
अभ्यनन्दंस्त्वदीयाश्च सम्प्रहृष्टाश्च चारणाः ॥ १४ ॥

भरतनन्दन ! युद्धमें भीमसेनका वह पराक्रम देखकर आपके योद्धाओं तथा चारणोंने भी प्रसन्न होकर उनका अभिनन्दन किया ॥ १४ ॥

भूरिश्रवाः कृपो द्रौणिर्मद्रराजो जयद्रथः ।
उत्तमौजा युधामन्युः सात्यकिः केशवार्जुनौ ॥ १५ ॥
कुरुपाण्डवप्रवरा दश राजन् महारथाः ।
साधु साध्विति वेगेन सिंहनादमथानदन् ॥ १६ ॥

राजन् ! भूरिश्रवा, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, मद्रराज शल्य, जयद्रथ, उत्तमौजा, युधामन्यु, सात्यकि, श्रीकृष्ण तथा अर्जुन—ये कौरव और पाण्डव-पक्षके दस श्रेष्ठ महारथी 'साधु-साधु' कहकर वेगपूर्वक सिंहनाद करने लगे ॥ १५-१६ ॥

तस्मिन् समुत्थिते शब्दे तुमुले लोमहर्षणे ।
अभ्यभाषत पुत्रस्ते राजन् दुर्योधनस्त्वरन् ॥ १७ ॥
राज्ञः सराजपुत्रांश्च सोदर्यांश्च विशेषतः ।
कर्णं गच्छत भद्रं वः परीप्सन्तो वृकोदरात् ॥ १८ ॥

महाराज ! उस रोमाञ्चकारी भयंकर शब्दके प्रकट होनेपर आपके पुत्र राजा दुर्योधनने बड़ी उतावलीके साथ राजाओं, राजकुमारों और विशेषतः अपने भाइयोंसे कहा—'तुम्हारा कल्याण हो, तुम सब लोग भीमसेनसे कर्णकी रक्षा करनेके लिये जाओ ॥ १७-१८ ॥

पुरा निघ्नन्ति राधेयं भीमचापच्युताः शराः ।
ते यतध्वं महेष्वासाः सूतपुत्रस्य रक्षणे ॥ १९ ॥

'कहीं ऐसा न हो कि भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए बाण राधानन्दन कर्णको पहले ही मार डालें । अतः महाधनुर्धर वीरो ! तुम सब लोग सूतपुत्रकी रक्षाका प्रयत्न करो' ॥ १९ ॥

दुर्योधनसमादिष्टाः सोदर्याः सप्त भारत ।
भीमसेनमभिद्रुत्य संरब्धाः पर्यवारयन् ॥ २० ॥

भारत ! दुर्योधनकी आज्ञा पाकर उसके सात भाइयोंने कुपित हो भीमसेनपर आक्रमण करके उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ २० ॥

ते समासाद्य कौन्तेयमावृण्वञ्शरवृष्टिभिः ।
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकाः ॥ २१ ॥

जैसे वर्षाऋतुमें मेघ पर्वतपर जलकी धाराएँ बरसाते हैं, उसी प्रकार उन कौरवोंने कुन्तीकुमारके समीप जाकर उन्हें अपने बाणोंकी वर्षासे आच्छादित कर दिया ॥ २१ ॥

तेऽपीडयन् भीमसेनं क्रुद्धाः सप्त महारथाः ।
प्रजासंहरणे राजन् सोमं सप्त ग्रहा इव ॥ २२ ॥

राजन् ! उन सात महारथियोंने कुपित हो भीमसेनको उसी प्रकार पीड़ा दी, जैसे सात ग्रह प्रजाओंके संहारकालमें सोमको पीड़ा देते हैं ॥ २२ ॥

ततो वेगेन कौन्तेयः पीडयित्वा शरासनम् ।
मुष्टिना पाण्डवो राजन् दृढेन सुपरिष्कृतम् ॥ २३ ॥
मनुष्यसमतां ज्ञात्वा सप्त संधाय सायकान् ।
तेभ्यो व्यसृजदायस्तः सूर्यरश्मिनिभान् प्रभुः ॥ २४ ॥

महाराज ! तब कुन्तीकुमार पाण्डुपुत्र भीमने अत्यन्त स्वच्छ धनुषको सुदृढ़ मुट्ठीसे वेगपूर्वक दबाकर उन सातों भाइयोंको साधारण मनुष्य जानकर उनके लिये धनुषपर सात बाणोंका संधान किया । सूर्यकिरणोंके समान उन चमकीले बाणोंको शक्तिशाली भीमने परिश्रमपूर्वक आपके उन पुत्रोंपर छोड़ दिया ॥ २३-२४ ॥

निरस्यन्निव देहेभ्यस्तनयानामसूंस्तव ।
भीमसेनो महाराज पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ २५ ॥

नरेश्वर ! पहलेके वैरका बारंबार स्मरण करके भीमसेनने आपके पुत्रोंके प्राणोंको उनके शरीरोंसे निकालते हुए-से उन बाणोंका प्रहार किया था ॥ २५ ॥

ते क्षिप्ता भीमसेनेन शरा भारत भारतान् ।
विदार्य खं समुत्पेतुः स्वर्णपुङ्खाः शिलाशिताः ॥ २६ ॥

भारत ! भीमसेनके चलाये हुए वे बाण सुवर्णमय पंखोंसे सुशोभित तथा शिलापर तेज किये गये थे । वे आपके पुत्रोंको विदीर्ण करके आकाशमें उड़ चले ॥ २६ ॥

तेषां विदार्य चेतांसि शरा हेमविभूषिताः ।
व्यराजन्त महाराज सुपर्णा इव खेचराः ॥ २७ ॥

महाराज ! वे स्वर्णविभूषित बाण उन सातों भाइयोंके वक्षःस्थलको विदीर्ण करके आकाशमें विचरनेवाले गरुड़पक्षियोंके समान शोभा पाने लगे ॥ २७ ॥

शोणितादिग्धवाजाग्राः सप्त हेमपरिष्कृताः ।
पुत्राणां तव राजेन्द्र पीत्वा शोणितमुद्गताः ॥ २८ ॥

राजेन्द्र ! वे सुवर्णभूषित सातों बाण आपके पुत्रोंका रक्त पीकर लाल हो ऊपरको उछले थे । उनके पंख और अग्रभागोंपर अधिक रक्त जम गया था ॥ २८ ॥

ते शरैर्भिन्नमर्माणो रथेभ्यः प्रापतन् क्षितौ ।
गिरिसानुरुहा भग्ना द्विपेनेव महाद्रुमाः ॥ २९ ॥

उन बाणोंसे मर्मस्थल विदीर्ण हो जानेके कारण वे सातों

वीर रथोंसे पृथ्वीपर गिर पड़े, मानो किसी हाथीने पर्वतके शिखरपर खड़े हुए विशाल वृक्षोंको तोड़ गिराया हो ॥ २९ ॥

शत्रुंजयः शत्रुसहश्चित्रश्चित्रायुधो दृढः ।
चित्रसेनो विकर्णश्च सप्तैते विनिपातिताः ॥ ३० ॥

शत्रुञ्जय, शत्रुसह, चित्र (चित्रवाण), चित्रायुध (अग्रायुध), दृढ़ (दृढवर्मा), चित्रसेन (उग्रसेन) और विकर्ण—इन सातों भाइयोंको भीमसेनने मार गिराया ॥

पुत्राणां तव सर्वेषां निहतानां वृकोदरः ।
शोचत्यतिभृशं दुःखाद् विकर्णं पाण्डवः प्रियम् ॥ ३१ ॥

राजन् ! वहाँ मारे गये आपके सभी पुत्रोंमेंसे विकर्ण पाण्डवोंको अधिक प्रिय था । पाण्डुनन्दन भीमसेन उसके लिये अत्यन्त दुखी होकर शोक करने लगे ॥ ३१ ॥

प्रतिज्ञेयं मया वृत्ता निहन्तव्यास्तु संयुगे ।
विकर्ण तेनासि हतः प्रतिज्ञा रक्षिता मया ॥ ३२ ॥

वे बोले—'विकर्ण ! मैंने यह प्रतिज्ञा कर रक्खी थी कि युद्धस्थलमें धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंको मार डालूँगा ! इसीलिये तुम मेरे हाथसे मारे गये हो । ऐसा करके मैंने अपनी प्रतिज्ञाका पालन किया है ॥ ३२ ॥

त्वमागाः समरं वीर क्षात्रधर्ममनुस्मरन् ।
ततो विनिहतः संख्ये युद्धधर्मो हि निष्ठुरः ॥ ३३ ॥

'वीर ! तुम क्षत्रिय-धर्मका विचार करके समरभूमिमें आ गये । इसीलिये इस युद्धमें मारे गये; क्योंकि युद्धधर्म कठोर होता है ॥ ३३ ॥

विशेषतो हि नृपतेस्तथास्माकं हिते रतः ।
न्यायतोऽन्यायतो वापि हतः शेते महाद्युतिः ॥ ३४ ॥
अगाधबुद्धिर्गाङ्गेयः क्षितौ सुरगुरोः समः ।
त्याजितः समरे प्राणांस्तस्माद् युद्धं हि निष्ठुरम् ॥ ३५ ॥

'जो विशेषतः राजा युधिष्ठिरके और हमारे हितमें तत्पर रहते थे, वे बृहस्पतिके समान अगाध बुद्धिवाले महातेजस्वी गङ्गानन्दन भीष्म भी न्याय अथवा अन्यायसे मारे जाकर समरभूमिमें सो रहे हैं और प्राणत्यागकी परिस्थितिमें डाल दिये गये हैं । इसीसे कहना पड़ता है कि युद्ध अत्यन्त निष्ठुर कर्म है' ॥ ३४-३५ ॥

संजय उवाच

तान् निहत्य महाबाहू राधेयस्यैव पश्यतः ।
सिंहनादरवं घोरमसृजत् पाण्डुनन्दनः ॥ ३६ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! राधानन्दन कर्णके देखते-देखते उन सातों भाइयोंको मारकर पाण्डुनन्दन महाबाहु भीमने भयंकर सिंहनाद किया ॥ ३६ ॥

स रवस्तस्य शूरस्य धर्मराजस्य भारत ।
आचख्याविव तद् युद्धं विजयं चात्मनो महत् ॥ ३७ ॥

भारत ! उस सिंहनादने धर्मराज युधिष्ठिरको शूरवीर भीमके उस युद्धकी तथा अपनी महान् विजयकी मानो सूचना दे दी ॥ ३७ ॥

तं श्रुत्वा तु महानादं भीमसेनस्य धन्विनः ।
बभूव परमा प्रीतिर्धर्मराजस्य धीमतः ॥ ३८ ॥

धनुर्धर भीमसेनके उस महानादको सुनकर बुद्धिमान् धर्मराज युधिष्ठिरको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ३८ ॥

ततो हृष्टमना राजन् वादित्राणां महास्वनैः ।
सिंहनादरवं भ्रातुः प्रतिजग्राह पाण्डवः ॥ ३९ ॥

राजन् ! तब प्रसन्नचित्त होकर युधिष्ठिरने वाद्योंकी गम्भीर ध्वनिके द्वारा भाईके उस सिंहनादको स्वागतपूर्वक ग्रहण किया ॥ ३९ ॥

हर्षेण महता युक्तः कृतसंज्ञो वृकोदरे ।
अभ्ययात् समरे द्रोणं सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ४० ॥

इस प्रकार भीमसेनको अपनी प्रसन्नताका संकेत करके सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरने बड़े हर्षके साथ रणभूमिमें द्रोणाचार्यपर आक्रमण किया ॥ ४० ॥

एकत्रिंशन्महाराज पुत्रांस्तव निपातितान् ।
हतान् दुर्योधनो दृष्ट्वा क्षत्तुः सस्मार तद् वचः ॥ ४१ ॥

महाराज ! आपके इकतीस (दुःशलको लेकर बत्तीस) पुत्रोंको मारा गया देखकर दुर्योधनको विदुरजीकी कही हुई बात याद आ गयी ॥ ४१ ॥

तदिदं समनुप्राप्तं क्षत्तुर्निःश्रेयसं वचः ।
इति संचिन्त्य ते पुत्रो नोत्तरं प्रत्यपद्यत ॥ ४२ ॥

विदुरजीने जो कल्याणकारी वचन कहा था, उसके अनुसार ही यह संकट प्राप्त हुआ है । ऐसा सोचकर आपके पुत्रसे कोई उत्तर देते न बना ॥ ४२ ॥

यद् द्यूतकाले दुर्बुद्धिरब्रवीत् तनयस्तव ।
सभामानाय्य पाञ्चालीं कर्णेन सहितोऽल्पधीः ॥ ४३ ॥
यच्च कर्णोऽब्रवीत् कृष्णां सभायां परुषं वचः ।
प्रमुखे पाण्डुपुत्राणां तव चैव विशाम्पते ॥ ४४ ॥
शृण्वतस्तव राजेन्द्र कौरवाणां च सर्वशः ।
विनष्टाः पाण्डवाः कृष्णे शाश्वतं नरकं गताः ॥ ४५ ॥
पतिमन्यं वृणीष्वेति तस्येदं फलमागतम् ।

द्यूतके समय कर्णके साथ आपके मन्दमति पुत्र दुर्बुद्धि दुर्योधनने पाञ्चालराजकुमारी द्रौपदीको सभामें बुलाकर उसके प्रति जो दुर्वचन कहा था तथा प्रजानाथ ! महाराज ! पाण्डवों और आपके सामने समस्त कौरवोंके सुनते हुए कर्णने सभामें द्रौपदीके प्रति जो यह कठोर वचन कहा था कि 'कृष्णे ! पाण्डव नष्ट हो गये । सदाके लिये नरकमें पड़ गये । तू दूसरा पति कर ले', उसी अन्यायका आज यह फल प्राप्त हुआ है ॥ ४३-४५½ ॥

यच्च षण्ढतिलादीनि परुषाणि तवात्मजैः ।
श्रावितास्ते महात्मानः पाण्डवाः कोपयिष्णुभिः ॥ ४६ ॥

१. किसी-किसी प्रतिमें शत्रुंजय और शत्रुसह—इन दो नामोंके स्थानमें क्रमशः 'दृढसन्ध और 'जरासन्ध' नाम मिलते हैं ।

तं भीमसेनः क्रोधाग्निं त्रयोदश समाः स्थितम्।
उद्गिरंस्तव पुत्राणामन्तं गच्छति पाण्डवः ॥ ४७ ॥

आपके पुत्रोंने जो पाण्डवोंको कुपित करनेके लिये षण्ढतिल (सारहीन तिल या नपुंसक) आदि कठोर बातें उन महामनस्वी पाण्डवोंको सुनायी थीं, उसके कारण पाण्डुपुत्र भीमसेनके हृदयमें तेरह वर्षोंतक जो क्रोधाग्नि धधकती रही है, उसीको निकालते हुए भीमसेन आपके पुत्रोंका अन्त कर रहे हैं ॥ ४६-४७ ॥

विलपंश्च बहु क्षत्ता शमं नालभत त्वयि।
सपुत्रो भरतश्रेष्ठ तस्य भुङ्क्ष्व फलोदयम् ॥ ४८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! विदुरजीने आपके समीप बहुत विलाप किया; परंतु उन्हें शान्तिकी भिक्षा नहीं प्राप्त हुई। आपके उसी अन्यायका यह फल प्रकट हुआ है। अब आप पुत्रोंसहित इसे भोगिये ॥ ४८ ॥

त्वया वृद्धेन धीरेण कार्यतत्त्वार्थदर्शिना।
न कृतं सुहृदां वाक्यं दैवमत्र परायणम् ॥ ४९ ॥

आप वृद्ध हैं, धीर हैं, कार्यके तत्त्व और प्रयोजनको देखते और समझते हैं, तो भी आपने हितैषी सुहृदोंकी बातें नहीं मानीं। इसमें दैव ही प्रधान कारण है ॥ ४९ ॥

तन्मा शुचो नरव्याघ्र तवैवापनयो महान्।
विनाशहेतुः पुत्राणां भवानेव मतो मम ॥ ५० ॥

अतः नरश्रेष्ठ ! आप शोक न कीजिये। इसमें आपका ही महान् अन्याय कारण है। मैं तो आपको ही आपके पुत्रोंके विनाशका मुख्य हेतु मानता हूँ ॥ ५० ॥

हतो विकर्णो राजेन्द्र चित्रसेनश्च वीर्यवान्।
प्रवराश्चात्मजानां ते सुताश्चान्ये महारथाः ॥ ५१ ॥

राजेन्द्र ! विकर्ण मारा गया। पराक्रमी चित्रसेनको भी प्राणोंका त्याग करना पड़ा। आपके पुत्रोंमें जो प्रमुख थे, वे तथा अन्य महारथी भी कालके गालमें चले गये ॥ ५१ ॥

यानन्यान् ददृशे भीमश्चक्षुर्विषयमागतान्।
पुत्रांस्तव महाराज त्वरया ताञ्जघान ह ॥ ५२ ॥

महाराज ! भीमसेनने अपने नेत्रोंके सामने आये हुए जिन-जिन पुत्रोंको देखा, उन सबको तुरंत ही मार डाला ॥

त्वत्कृते ह्यहमद्राक्षं दह्यमानां वरूथिनीम्।
सहस्रशः शरैर्मुक्तैः पाण्डवेन वृषेण च ॥ ५३ ॥

आपके ही कारण मैंने भीमसेन और कर्णके छोड़े हुए हजारों बाणोंसे राजाओंकी विशाल सेना दग्ध होती देखी है ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमयुद्धे सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भीमसेनयुद्धविषयक एक सौ सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३७ ॥

अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेन और कर्णका भयंकर युद्ध

धृतराष्ट्र उवाच

महानपनयः सूत ममैवात्र विशेषतः।
स इदानीमनुप्राप्तो मन्ये संजय शोचतः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—सूत संजय ! इसमें विशेषतः मेरा ही अन्याय है—यह मैं स्वीकार करता हूँ। इस समय शोकमें डूबे हुए मुझको मेरे उसी अन्यायका फल प्राप्त हुआ है ॥

यद् गतं तद् गतमिति ममासीन्मनसि स्थितम्।
इदानीमत्र किं कार्यं प्रकरिष्यामि संजय ॥ २ ॥

संजय ! अबतक मेरे मनमें यह बात थी कि जो बीत गया, सो बीत गया। उसके लिये चिन्ता करना व्यर्थ है। परंतु अब यहाँ इस समय मेरा क्या कर्तव्य है, उसे बताओ। मैं उसका पालन अवश्य करूँगा ॥ २ ॥

यथा ह्येष क्षयो वृत्तो ममापनयसम्भवः।
वीराणां तन्ममाचक्ष्व स्थिरीभूतोऽस्मि संजय ॥ ३ ॥

सूत ! मेरे अन्यायसे वीरोंका जो यह विनाश हुआ है, वह सब कह सुनाओ। मैं धैर्य धारण करके बैठा हूँ ॥ ३ ॥

संजय उवाच

कर्णभीमौ महाराज पराक्रान्तौ महाबलौ।
बाणवर्षाण्यसृजतां वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ ॥ ४ ॥

संजयने कहा—महाराज ! जलकी वर्षा करनेवाले दो बादलोंके समान महाबली, महापराक्रमी कर्ण और भीमसेन परस्पर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४ ॥

भीमनामाङ्किता बाणाः स्वर्णपुङ्खाः शिलाशिताः।
विविशुः कर्णमासाद्य छिन्दन्त इव जीवितम् ॥ ५ ॥

जिनपर भीमसेनके नाम खुदे हुए थे, वे शिलापर तेज किये हुए स्वर्णमय पंखयुक्त बाण कर्णके पास पहुँचकर उसके जीवनका उच्छेद करते हुए-से उसके शरीरमें घुस गये।

तथैव कर्णनिर्मुक्ताः शरा बर्हिणवाससः।
छादयाञ्चक्रिरे वीरं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६ ॥

इसी प्रकार कर्णके छोड़े हुए मयूरपंखवाले सैकड़ों और हजारों बाणोंने वीर भीमसेनको आच्छादित कर दिया ॥

तयोः शरैर्महाराज सम्पतद्भिः समन्ततः।
बभूव तत्र सैन्यानां संक्षोभः सागरोत्तरः ॥ ७ ॥

महाराज ! चारों ओर गिरते हुए उन दोनोंके बाणोंसे वहाँकी सेनाओंमें समुद्रसे भी बढ़कर महान् क्षोभ होने लगा ॥ ७ ॥

भीमचापच्युतैर्बाणैस्तव सैन्यमरिंदम ।
अवध्यत चमूमध्ये घोरैराशीविषोपमैः ॥ ८ ॥

शत्रुदमन ! भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए विषधर सर्पोंके समान भयंकर बाणोंद्वारा सेनाके मध्यभागमें आपके सैनिकोंका वध हो रहा था ॥ ८ ॥

वारणैः पतितै राजन् वाजिभिश्च नरैः सह ।
अदृश्यत मही कीर्णा वातभग्नैरिव द्रुमैः ॥ ९ ॥

राजन् ! वहाँ गिरे हुए हाथियों, घोड़ों और पैदल मनुष्योंद्वारा ढकी हुई वह रणभूमि आँधीके उखाड़े हुए वृक्षोंसे आच्छादित-सी दिखायी देती थी ॥ ९ ॥

ते वध्यमानाः समरे भीमचापच्युतैः शरैः ।
प्राद्रवंस्तावका योधाः किमेतदिति चाब्रुवन् ॥ १० ॥

भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा समराङ्गणमें मारे जाते हुए आपके सैनिक भाग चले और आपसमें कहने लगे, अरे ! यह क्या हुआ ॥ १० ॥

ततो व्युदस्तं तत् सैन्यं सिन्धुसौवीरकौरवम् ।
प्रोत्सारितं महावेगैः कर्णपाण्डवयोः शरैः ॥ ११ ॥

इस प्रकार कर्ण और भीमसेनके महान् वेगशाली बाणोंद्वारा सिन्धु, सौवीर और कौरवदलकी वह सेना उखड़ गयी और वहाँसे भाग खड़ी हुई ॥ ११ ॥

ते शूरा हतभूयिष्ठा हताश्वरथवारणाः ।
उत्सृज्य भीमकर्णौ च सर्वतो व्यद्रवन् दिशः ॥ १२ ॥

वे शूरवीर सैनिक जिनमें बहुत-से लोग मारे गये थे तथा जिनके हाथी, घोड़े और रथ नष्ट हो चुके थे, भीमसेन और कर्णको छोड़कर सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये ॥ १२ ॥

नूनं पार्थार्थमेवास्मान् मोहयन्ति दिवौकसः ।
यत् कर्णभीमप्रभवैर्वध्यते नो बलं शरैः ॥ १३ ॥

'अवश्य ही कुन्तीकुमारोंके हितके लिये ही देवता हमें मोहमें डाल रहे हैं; क्योंकि कर्ण और भीमसेनके बाणोंसे वे हमारी सेनाका वध कर रहे हैं' ॥ १३ ॥

एवं ब्रुवाणा योधास्ते तावका भयपीडिताः ।
शरपातं समुत्सृज्य स्थिता युद्धदिदृक्षवः ॥ १४ ॥

ऐसा कहते हुए आपके योद्धा भयसे पीड़ित हो बाण मारनेका कार्य छोड़कर युद्धके दर्शक बनकर खड़े हो गये ॥ १४ ॥

ततः प्रावर्तत नदी घोररूपा रणाजिरे ।
शूराणां हर्षजननी भीरूणां भयवर्धिनी ॥ १५ ॥

तदनन्तर रणभूमिमें रक्तकी भयंकर नदी बह चली, जो शूरवीरोंको हर्ष देनेवाली और भीरु पुरुषोंका भय बढ़ानेवाली थी ॥ १५ ॥

वारणाश्वमनुष्याणां रुधिरौघसमुद्भवा ।
संवृता गतसत्त्वैश्च मनुष्यगजवाजिभिः ॥ १६ ॥

हाथी, घोड़े और मनुष्योंके रुधिरसमूहसे उस नदीका प्राकट्य हुआ था । वह प्राणशून्य मनुष्यों, हाथियों और घोड़ोंसे घिरी हुई थी ॥ १६ ॥

सानुकर्षपताकैश्च द्विपाश्वरथभूषणैः ।
स्यन्दनैरपविद्धैश्च भग्नचक्राक्षकूबरैः ॥ १७ ॥
जातरूपपरिष्कारैर्धनुर्भिः सुमहास्वनैः ।
सुवर्णपुङ्खैरिषुभिर्नाराचैश्च सहस्रशः ॥ १८ ॥
कर्णपाण्डवनिर्मुक्तैर्निर्मुक्तैरिव पन्नगैः ।
प्रासतोमरसंघातैः खड्गैश्च सपरश्वधैः ॥ १९ ॥
सुवर्णविकृतैश्चापि गदामुसलपट्टिशैः ।
ध्वजैश्च विविधाकारैः शक्तिभिः परिघैरपि ॥ २० ॥
शतघ्नीभिश्च चित्राभिर्बभौ भारत मेदिनी ।

भारत ! उस समय अनुकर्ष, पताका, हाथी, घोड़े, रथ, आभूषण, टूटकर बिखरे पड़े हुए स्यन्दन (रथ), टूक-टूक हुए पहिये, धुरी और कूबर, सुवर्णभूषित एवं महान् टङ्कार शब्द करनेवाले धनुष, सोनेके पंखवाले बाण, केंचुल छोड़कर निकले हुए सर्पोंके समान कर्ण और भीमसेनके छोड़े हुए सहस्रों नाराच, प्रास, तोमर, खड्ग, फरसे, सोनेकी गदा, मुसल, पट्टिश, भाँति-भाँतिके ध्वज, शक्ति, परिघ और विचित्र शतघ्नी आदिसे उस रणभूमिकी अद्भुत शोभा हो रही थी ॥ १७–२०½ ॥

कनकाङ्गदहारैश्च कुण्डलैर्मुकुटैस्तथा ॥ २१ ॥
वलयैरपविद्धैश्च तथैवाङ्गुलिवेष्टकैः ।
चूडामणिभिरुष्णीषैः स्वर्णसूत्रैश्च मारिष ॥ २२ ॥
तनुत्रैः सतलत्रैश्च हारैर्निष्कैश्च भारत ।
वस्त्रैश्छत्रैश्च विध्वस्तैश्चामरव्यजनैरपि ॥ २३ ॥
गजाश्वमनुजैर्भिन्नैः शोणिताक्तैश्च पत्रिभिः ।
तैस्तैश्च विविधैर्भिन्नैस्तत्र तत्र वसुंधरा ॥ २४ ॥
पतितैरपविद्धैश्च विबभौ द्यौरिव ग्रहैः ।

माननीय भरतनन्दन ! इधर-उधर पड़े हुए सोनेके अङ्गद, हार, कुण्डल, मुकुट, वलय, अंगूठी, चूड़ामणि, उष्णीष, सुवर्णमय सूत्र, कवच, दस्ताने, हार, निष्क, वस्त्र, छत्र, टूटे हुए चँवर, व्यजन, विदीर्ण हुए हाथी, घोड़े, मनुष्य, खूनसे लथपथ हुए पंखयुक्त बाण आदि नाना प्रकारकी छिन्न-भिन्न, पतित और फेंकी हुई वस्तुओंसे वहाँकी भूमि ग्रहोंसे आकाशकी भाँति सुशोभित हो रही थी ॥ २१–२४½ ॥

अचिन्त्यमद्भुतं चैव तयोः कर्मातिमानुषम् ॥ २५ ॥
दृष्ट्वा चारणसिद्धानां विस्मयः समजायत ।

उन दोनोंके उस अचिन्त्य, अलौकिक और अद्भुत कर्मको देखकर चारणों और सिद्धोंके मनमें भी महान् विस्मय हो गया ॥ २५½ ॥

अग्नेर्वायुसहायस्य गतिः कक्ष इवाहवे ॥ २६ ॥
आसीद् भीमसहायस्य रौद्रमाधिरथेर्गतम् ।

जैसे वायुकी सहायता पाकर सूखे वनमें तथा घास-फूँस-में अग्निकी गति बढ़ जाती है, उसी प्रकार उस महायुद्धमें भीमसेनके साथ सूतपुत्र कर्णकी भयंकर गति बढ़ गयी थी ॥ २६½ ॥

निपातितध्वजरथं हतवाजिनरद्विपम् ॥ २७ ॥
गजाभ्यां सम्प्रयुक्ताभ्यामासीन्नलवनं यथा ।
मेघजालनिभं सैन्यमासीत् तव नराधिप ॥ २८ ॥
विमर्दः कर्णभीमाभ्यामासीच्च परमो रणे ।

नरेश्वर! जैसे दो हाथी किसीसे प्रेरित होकर नरकुलके वनको रौंद डालते हैं, उसी प्रकार मेघोंकी घटाके समान आपकी सेना बड़ी दुरवस्थामें पड़ गयी थी। उसके रथ और ध्वज गिराये जा चुके थे। हाथी, घोड़े और मनुष्य मारे गये थे। कर्ण और भीमसेनने उस युद्धस्थलमें महान् संहार मचा रक्खा था ॥ २७–२८½ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमकर्णयुद्धे अष्टात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भीम और कर्णका युद्धविषयक एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३८ ॥

एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेन और कर्णका भयंकर युद्ध, पहले भीमकी और पीछे कर्णकी विजय, उसके बाद अर्जुनके बाणोंसे व्यथित होकर कर्ण और अश्वत्थामाका पलायन

संजय उवाच

ततः कर्णो महाराज भीमं विद्ध्वा त्रिभिः शरैः ।
मुमोच शरवर्षाणि विचित्राणि बहूनि च ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! तदनन्तर कर्णने तीन बाणोंसे भीमसेनको घायल करके उनपर बहुत-से विचित्र बाण बरसाये ॥ १ ॥

बध्यमानो महाबाहुः सूतपुत्रेण पाण्डवः ।
न विव्यथे भीमसेनो भिद्यमान इवाचलः ॥ २ ॥

सूतपुत्रके द्वारा बेधे जानेपर भी महाबाहु पाण्डुपुत्र भीमसेनको विद्ध होनेवाले पर्वतके समान तनिक भी व्यथा नहीं हुई ॥ २ ॥

स कर्णं कर्णिना कर्णे पीतेन निशितेन च ।
विव्याध सुभृशं संख्ये तैलधौतेन मारिष ॥ ३ ॥

माननीय नरेश! फिर उन्होंने भी युद्धस्थलमें तेलके धोये हुए पानीदार एवं तीखे 'कर्णी' नामक बाणसे कर्णके कानमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३ ॥

स कुण्डलं महच्चारु कर्णस्यापातयद् भुवि ।
तपनीयं महाराज दीप्तं ज्योतिरिवाम्बरात् ॥ ४ ॥

महाराज! भीमने कर्णके सोनेके बने हुए विशाल एवं सुन्दर कुण्डलको आकाशसे चमकते हुए तारेके समान पृथ्वीपर काट गिराया ॥ ४ ॥

अथापरेण भल्लेन सूतपुत्रं स्तनान्तरे ।
आजघान भृशं क्रुद्धो हसन्निव वृकोदरः ॥ ५ ॥

तदनन्तर भीमसेनने अत्यन्त कुपित हो हँसते हुए-से दूसरे भल्लसे सूतपुत्रकी छातीमें बड़े जोरसे आघात किया ॥

पुनरस्य त्वरन् भीमो नाराचान् दश भारत ।
रणे प्रैषीन्महाबाहुर्निर्मुक्ताशीविषोपमान् ॥ ६ ॥

भरतनन्दन! फिर महाबाहु भीमने बड़ी उतावलीके साथ केंचुलसे छूटे हुए विषधर सर्पोंके समान दस नाराच उस रणक्षेत्रमें कर्णपर चलाये ॥ ६ ॥

ते ललाटं विनिर्भिद्य सूतपुत्रस्य भारत ।
विविशुश्चोदितास्तेन वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ ७ ॥

भारत! उनके चलाये हुए वे नाराच सूतपुत्रका ललाट छेद करके बाँबीमें सर्पोंके समान उसके भीतर घुस गये ॥

ललाटस्थैस्ततो बाणैः सूतपुत्रो व्यरोचत ।
नीलोत्पलमयीं मालां धारयन् वै यथा पुरा ॥ ८ ॥

ललाटमें स्थित हुए उन बाणोंद्वारा सूतपुत्रकी उसी प्रकार शोभा हुई, जैसे वह पहले मस्तकपर नील कमलकी माला धारण करके सुशोभित होता था ॥ ८ ॥

सोऽतिविद्धो भृशं कर्णः पाण्डवेन तरस्विना ।
रथकूबरमालम्ब्य न्यमीलयत लोचने ॥ ९ ॥

वेगवान् पाण्डुपुत्र भीमके द्वारा अत्यन्त घायल कर दिये जानेपर कर्णने रथके कूबरका सहारा लेकर आँखें बंद कर लीं।

स मुहूर्तात् पुनः संज्ञां लेभे कर्णः परंतपः ।
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गः क्रोधमाहारयत् परम् ॥ १० ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले कर्णको पुनः दो ही घड़ीके बाद चेत हो गया। उस समय उसका सारा शरीर रक्तसे भीग गया था। उस दशामें उसे बड़ा क्रोध हुआ ॥ १० ॥

ततः क्रुद्धो रणे कर्णः पीडितो दृढधन्वना ।
वेगं चक्रे महावेगो भीमसेनरथं प्रति ॥ ११ ॥

सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले भीमसेनसे पीड़ित हुए महान् वेगशाली कर्णने रणभूमिमें कुपित हो भीमसेनके रथकी ओर बड़े वेगसे आक्रमण किया ॥ ११ ॥

तस्मै कर्णः शतं राजन्निषूणां गार्ध्रवाससाम् ।
अमर्षी बलवान् क्रुद्धः प्रेषयामास भारत ॥ १२ ॥

राजन् ! भरतनन्दन ! अमर्षशील एवं क्रोधमें भरे हुए बलवान् कर्णने भीमसेनपर गीधके पंखवाले सौ बाण चलाये॥

ततः प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः ।
समरे तमनादृत्य तस्य वीर्यमचिन्तयन् ॥ १३ ॥

तब समरभूमिमें कर्णके पराक्रमको कुछ न समझते हुए उसकी अवहेलना करके पाण्डुनन्दन भीमसेनने उसके ऊपर भयंकर बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ १३ ॥

कर्णस्ततो महाराज पाण्डवं नवभिः शरैः ।
आजघानोरसि क्रुद्धः क्रुद्धरूपं परंतप ॥ १४ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले महाराज ! तब कर्णने कुपित हो क्रोधमें भरे हुए पाण्डुपुत्र भीमसेनकी छातीमें नौ बाण मारे ॥ १४ ॥

तावुभौ नरशार्दूलौ शार्दूलाविव दंष्ट्रिणौ ।
जीमूताविव चान्योन्यं प्रववर्षतुराहवे ॥ १५ ॥

वे दोनों पुरुषसिंह दाढ़ोंवाले दो सिंहोंके समान परस्पर जूझ रहे थे और आकाशमें दो मेघोंके समान युद्धस्थलमें वे दोनों एक दूसरेपर बाणोंकी वर्षा कर रहे थे ॥ १५ ॥

तलशब्दरवैश्चैव त्रासयेतां परस्परम् ।
शरजालैश्च विविधैस्त्रासयामासतुर्मृधे ॥ १६ ॥
अन्योन्यं समरे क्रुद्धौ कृतप्रतिकृतैषिणौ ।

वे अपनी हथेलियोंके शब्दसे एक दूसरेको डराते हुए युद्धस्थलमें विविध बाणसमूहोंद्वारा परस्पर त्रास पहुँचा रहे थे । वे दोनों वीर समरमें कुपित हो एक दूसरेके किये हुए प्रहारका प्रतीकार करनेकी अभिलाषा रखते थे ॥ १६½ ॥

ततो भीमो महाबाहुः सूतपुत्रस्य भारत ॥ १७ ॥
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा ननाद परवीरहा ।

भरतनन्दन ! तब शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले महाबाहु भीमसेनने क्षुरप्रके द्वारा सूतपुत्रके धनुषको काटकर बड़े जोरसे गर्जना की ॥ १७½ ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं सूतपुत्रो महारथः ॥ १८ ॥
अन्यत् कार्मुकमादत्त भारघ्नं वेगवत्तरम् ।

तब महारथी सूतपुत्र कर्णने उस कटे हुए धनुषको फेंककर भार निवारण करनेमें समर्थ और अत्यन्त वेगशाली दूसरा धनुष हाथमें लिया ॥ १८½ ॥

तदप्यस्य निमेषार्धाच्चिच्छेदास्य वृकोदरः ॥ १९ ॥
तृतीयं च चतुर्थं च पञ्चमं षष्ठमेव हि ।
सप्तमं चाष्टमं चैव नवमं दशमं तथा ॥ २० ॥
एकादशं द्वादशं च त्रयोदशमथापि च ।
चतुर्दशं पञ्चदशं षोडशं च वृकोदरः ॥ २१ ॥

परंतु भीमसेनने आधे निमेषमें ही उसे भी काट दिया । इसी प्रकार तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठे, सातवें, आठवें, नवें, दसवें, ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें, चौदहवें, पंद्रहवें और सोलहवें धनुषको भी भीमसेनने काट डाला ॥ १९–२१ ॥

तथा सप्तदशं वेगादष्टादशमथापि वा ।
बहूनि भीमश्चिच्छेद कर्णस्यैवं धनूंषि हि ॥ २२ ॥

इतना ही नहीं, भीमने सत्रहवें, अठारहवें तथा और भी बहुत-से कर्णके धनुषोंको वेगपूर्वक काट दिया ॥ २२ ॥

निमेषार्धात् ततः कर्णो धनुर्हस्तो व्यतिष्ठत ।
दृष्ट्वा स कुरुसौवीरसिन्धुवीरबलक्षयम् ॥ २३ ॥
सवर्मध्वजशस्त्रैश्च पतितैः संवृतां महीम् ।
हस्त्यश्वरथदेहांश्च गतासून् प्रेक्ष्य सर्वशः ॥ २४ ॥
सूतपुत्रस्य संरम्भाद् दीप्तं वपुरजायत ।

इतनेपर भी कर्ण आधे ही निमेषमें दूसरा धनुष हाथमें लेकर खड़ा हो गया । कुरु, सौवीर तथा सिंधुदेशके वीरोंकी सेनाका विनाश, सब ओर गिरे हुए कवच, ध्वज तथा अस्त्र-शस्त्रोंसे आच्छादित हुई भूमि और प्राणशून्य हाथी, घोड़े एवं रथियोंके शरीरोंको सब ओर देखकर सूतपुत्र कर्णका शरीर क्रोधसे उद्दीप्त हो उठा ॥ २३–२४½ ॥

स विस्फार्य महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम् ॥ २५ ॥
भीमं प्रैक्षत राधेयो घोरं घोरेण चक्षुषा ।

उस समय राधानन्दन कर्णने कुपित हो अपने सुवर्ण-भूषित विशाल धनुषकी टंकार करते हुए भयानक भीमसेनको घोर दृष्टिसे देखा ॥ २५½ ॥

ततः क्रुद्धः शरानस्यन् सूतपुत्रो व्यरोचत ॥ २६ ॥
मध्यंदिनगतोऽर्चिष्मान्शरदीव दिवाकरः ।

तत्पश्चात् सूतपुत्र कुपित हो बाणोंकी वर्षा करता हुआ शरत्कालके दोपहरके तेजस्वी सूर्यकी भाँति शोभा पाने लगा ॥ २६½ ॥

मरीचिविकचस्येव राजन् भानुमतो वपुः ॥ २७ ॥
आसीदाधिरथेर्घोरं वपुः शरशताचितम् ।

राजन् ! अधिरथपुत्र कर्णका भयंकर शरीर सैकड़ों बाणोंसे व्याप्त था । वह किरणोंसे प्रकाशित होनेवाले सूर्यके समान जान पड़ता था ॥ २७½ ॥

कराभ्यामाददानस्य संदधानस्य चाशुगान् ॥ २८ ॥
कर्षतो मुञ्चतो बाणान् नान्तरं ददृशे रणे ।

उस रणभूमिमें दोनों हाथोंसे बाणोंको लेते, धनुषपर रखते, खींचते और छोड़ते हुए कर्णके इन कार्योंमें कोई अन्तर नहीं दिखायी देता था ॥ २८½ ॥

अग्निचक्रोपमं घोरं मण्डलीकृतमायुधम् ॥ २९ ॥
कर्णस्यासीन्महीपाल सव्यदक्षिणमस्यतः ।

भूपाल ! दायें-बायें बाण चलाते हुए कर्णका मण्डलाकार धनुष अग्निचक्रके समान भयंकर प्रतीत होता था ॥ २९½ ॥

स्वर्णपुङ्खाः सुनिशिताः कर्णचापच्युताः शराः ॥ ३० ॥
प्राच्छादयन्महाराज दिशः सूर्यस्य च प्रभाः ।

महाराज ! कर्णके धनुषसे छूटे हुए सुवर्णमय पंखवाले अत्यन्त तीखे बाणोंने सम्पूर्ण दिशाओं तथा सूर्यकी प्रभाको भी ढक दिया ॥ ३०½ ॥

ततः कनकपुङ्खानां शराणां नतपर्वणाम् ॥ ३१ ॥
धनुश्च्युतानां वियति ददृशे बहुधा व्रजः ।

तदनन्तर धनुषसे छूटे हुए झुकी हुई गाँठ तथा सुवर्णमय पंखवाले बहुत-से बाणोंके समूह आकाशमें दृष्टिगोचर होने लगे ॥ ३१½ ॥

बाणासनादाधिरथेः प्रभवन्ति स्म सायकाः ॥ ३२ ॥
श्रेणीकृता व्यरोचन्त राजन् क्रौञ्चा इवाम्बरे ।

राजन् ! अधिरथपुत्रके धनुषसे जो बाण छूटते थे, वे श्रेणीबद्ध होकर आकाशमें क्रौञ्च पक्षियोंके समान सुशोभित होते थे ॥ ३२½ ॥

गार्ध्रपत्राञ्छिलाधौतान् कार्तस्वरविभूषितान् ॥ ३३ ॥
महावेगान् प्रदीप्ताग्रान् मुमोचाधिरथिः शरान् ।

सूतपुत्रने गीधके पाँखवाले, शिलापर तेज किये, सुवर्णभूषित, महान् वेगशाली और प्रज्वलित अग्र भागवाले बहुत-से बाण छोड़े ॥ ३३½ ॥

ते तु चापबलोद्धूताः शातकुम्भविभूषिताः ॥ ३४ ॥
अजस्रमपतन् बाणा भीमसेनरथं प्रति ।

धनुषके बलसे उठे हुए वे सुवर्णभूषित बाण भीमसेनके रथपर लगातार गिर रहे थे ॥ ३४½ ॥

ते व्योम्नि रुक्मविकृता व्यकाशन्त सहस्रशः ॥ ३५ ॥
शलभानामिव व्राताः शराः कर्णसमीरिताः ।

कर्णके चलाये हुए सहस्रों सुवर्णमय बाण आकाशमें टिड्डी-दलोंके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ ३५½ ॥

चापादाधिरथेर्बाणाः प्रपतन्तश्चकाशिरे ॥ ३६ ॥
एको दीर्घ इवात्यर्थमाकाशे संस्थितः शरः ।

सूतपुत्रके धनुषसे गिरते हुए बाण ऐसी शोभा पा रहे थे, मानो एक ही अत्यन्त विशाल-सा बाण आकाशमें खड़ा हो ३६½

पर्वतं वारिधाराभिश्छादयन्निव तोयदः ॥ ३७ ॥
कर्णः प्राच्छादयत् क्रुद्धो भीमं सायकवृष्टिभिः ।

क्रोधमें भरे हुए कर्णने अपने बाणोंकी वर्षासे भीमसेनको उसी प्रकार आच्छादित कर दिया, जैसे बादल जलकी धाराओंसे पर्वतको ढक देता है ॥ ३७½ ॥

तत्र भारत भीमस्य बलं वीर्यं पराक्रमम् ॥ ३८ ॥
व्यवसायं च पुत्रास्ते ददृशुः सहसैनिकाः ।

भारत ! वहाँ सैनिकोंसहित आपके पुत्रोंने भीमसेनके बल, वीर्य, पराक्रम और उद्योगको देखा ॥ ३८½ ॥

तां समुद्रमिवोद्धूतां शरवृष्टिं समुत्थिताम् ॥ ३९ ॥
अचिन्तयित्वा भीमस्तु क्रुद्धः कर्णमुपाद्रवत् ।

क्रोधमें भरे हुए भीमसेनने समुद्रकी भाँति उठी हुई उस बाण-वर्षाकी तनिक भी परवा न करके कर्णपर धावा बोल दिया ॥ ३९½ ॥

रुक्मपृष्ठं महच्चापं भीमस्यासीद् विशाम्पते ॥ ४० ॥
आकर्षान्मण्डलीभूतं शक्रचापमिवापरम् ।
तस्माच्छराः प्रादुरासन् पूरयन्त इवाम्बरम् ॥ ४१ ॥

प्रजानाथ ! सुवर्णमय पृष्ठवाला भीमसेनका विशाल धनुष प्रत्यञ्चा खींचनेसे मण्डलाकार हो दूसरे इन्द्र-धनुषके समान प्रतीत हो रहा था । उससे जो बाण प्रकट होते थे, वे मानो आकाशको भर रहे थे ॥ ४०-४१ ॥

सुवर्णपुङ्खैर्भीमेन सायकैर्नतपर्वभिः ।
गगने रचिता माला काञ्चनीव व्यरोचत ॥ ४२ ॥

भीमसेनने झुकी हुई गाँठ और सुवर्णमय पंखवाले बाणोंसे आकाशमें सोनेकी माला-सी रच डाली थी, जो बड़ी शोभा पा रही थी ॥ ४२ ॥

ततो व्योम्नि विषक्तानि शरजालानि भागशः ।
आहतानि व्यशीर्यन्त भीमसेनस्य पत्रिभिः ॥ ४३ ॥

उस समय भीमसेनके बाणोंसे आहत होकर आकाशमें फैले हुए बाणोंके जाल टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर गये ॥ ४३ ॥

कर्णस्य शरजालौघैर्भीमसेनस्य चोभयोः ।
अग्निस्फुलिङ्गसंस्पर्शैरञ्जोगतिभिराहवे ॥ ४४ ॥
तैस्तैः कनकपुङ्खानां द्यौरासीत् संवृता व्रजैः ।

कर्ण और भीमसेन दोनोंके बाण-समूह स्पर्श करनेपर आगकी चिनगारियोंके समान प्रतीत होते थे । अनायास ही उनकी युद्धमें सर्वत्र गति थी । सुवर्णमय पंखवाले उन बाणोंके समूहसे सारा आकाश छा गया था ॥ ४४½ ॥

न स्म सूर्यस्तदा भाति न स्म वाति समीरणः ॥ ४५ ॥
शरजालावृते व्योम्नि न प्राज्ञायत किंचन ।

उस समय न तो सूर्यका पता चलता था और न वायु ही चल पाती थी । बाणोंके समूहसे आच्छादित हुए आकाशमें कुछ भी जान नहीं पड़ता था ॥ ४५½ ॥

स भीमं छादयन् बाणैः सूतपुत्रः पृथग्विधैः ॥ ४६ ॥
उपारोहदनादृत्य तस्य वीर्यं महात्मनः ।

सूतपुत्र कर्ण नाना प्रकारके बाणोंद्वारा भीमसेनको आच्छादित करता हुआ उन महामनस्वी वीरके पराक्रमका तिरस्कार करके उनपर चढ़ आया ॥ ४६½ ॥

तयोर्विसृजतोस्तत्र शरजालानि मारिष ॥ ४७ ॥
वायुभूतान्यदृश्यन्त संसक्तानीतरेतरम् ।

माननीय नरेश ! उन दोनोंके छोड़े हुए बाण-समूह

वहाँ परस्पर सटकर अत्यन्त वेगके कारण वायुस्वरूप दिखायी देते थे ॥ ४७½ ॥

अन्योन्यशरसंस्पर्शात् तयोर्मनुजसिंहयोः ॥ ४८ ॥
आकाशे भरतश्रेष्ठ पावकः समजायत ।

भरतश्रेष्ठ ! उन दोनों पुरुषसिंहोंके बाणोंके परस्पर टकरानेसे आकाशमें आग प्रकट हो जाती थी ॥ ४८½ ॥

तथा कर्णः शितान् बाणान् कर्मारपरिमार्जितान् ॥ ४९ ॥
सुवर्णविकृतान् क्रुद्धः प्राहिणोद् वधकाङ्क्षया ।

कर्णने कुपित होकर भीमसेनके वधकी इच्छासे सुनारके माँजे हुए सुवर्णभूषित तीखे बाणोंका प्रहार किया ॥ ४९½ ॥

तानन्तरिक्षे विशिखैस्त्रिधैकैकमशातयत् ॥ ५० ॥
विशेषयन् सूतपुत्रं भीमस्तिष्ठेति चाब्रवीत् ।

परंतु भीमसेनने अपनेको सूतपुत्रसे विशिष्ट सिद्ध करते हुए बाणोंद्वारा आकाशमें उन बाणोंमेंसे प्रत्येकके तीन-तीन टुकड़े कर डाले और कर्णसे कहा—'अरे ! खड़ा रह' ॥ ५०½ ॥

पुनश्चासृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः ॥ ५१ ॥
अमर्षी बलवान् क्रुद्धो दिधक्षन्निव पावकः ।

फिर क्रोध एवं अमर्षमें भरे हुए बलवान् भीमसेनने जलानेकी इच्छावाले अग्निदेवके समान भयंकर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ५१½ ॥

ततश्चटचटाशब्दो गोधाघातादभूत् तयोः ॥ ५२ ॥
तलशब्दश्च सुमहान् सिंहनादश्च भैरवः ।
रथनेमिनिनादश्च ज्याशब्दश्चैव दारुणः ॥ ५३ ॥

उस समय उन दोनोंके गोहचर्मके बने हुए दस्तानोंके आघातसे चटाचटकी आवाज होने लगी । साथ ही हथेलीका शब्द और महाभयंकर सिंहनाद भी होने लगा । रथके पहियोंकी घरघराहट और प्रत्यञ्चाकी भयंकर टंकार भी कानोंमें पड़ने लगी ॥ ५२-५३ ॥

योधा व्युपारमन् युद्धाद् दिदृक्षन्तः पराक्रमम् ।
कर्णपाण्डवयो राजन् परस्परवधैषिणोः ॥ ५४ ॥

राजन् ! परस्पर वधकी इच्छा रखनेवाले कर्ण और भीमसेनके पराक्रमको देखनेकी अभिलाषासे समस्त योद्धा युद्धसे उपरत हो गये ॥ ५४ ॥

देवर्षिसिद्धगन्धर्वाः साधु साध्वित्यपूजयन् ।
मुमुचुः पुष्पवर्षं च विद्याधरगणास्तथा ॥ ५५ ॥

देवता, ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व और विद्याधरगण 'साधु-साधु' कहकर उन दोनोंकी प्रशंसा और फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ५५ ॥

ततो भीमो महाबाहुः संरम्भी दृढविक्रमः ।
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य शरैर्विव्याध सूतजम् ॥ ५६ ॥

तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए सुदृढ़ पराक्रमी महाबाहु भीमसेनने अपने अस्त्रोंद्वारा कर्णके अस्त्रोंका निवारण करके उसे बाणोंसे बींध डाला ॥ ५६ ॥

कर्णोऽपि भीमसेनस्य निवार्येषून् महाबलः ।
प्राहिणोन्नव नाराचानाशीविषसमान् रणे ॥ ५७ ॥

महाबली कर्णने भी रणक्षेत्रमें भीमसेनके बाणोंका निवारण करके उनके ऊपर विषैले सर्पोंके समान नौ नाराच चलाये ॥ ५७ ॥

तावद्भिरथ तान् भीमो व्योम्नि चिच्छेद पत्रिभिः ।
नाराचान् सूतपुत्रस्य तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ५८ ॥

भीमसेनने उतने ही बाणोंसे आकाशमें सूतपुत्रके सारे नाराच काट डाले और उससे कहा 'खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ ५८ ॥

ततो भीमो महाबाहुः शरं क्रुद्धान्तकोपमम् ।
मुमोचाधिरथेर्वीरो यमदण्डमिवापरम् ॥ ५९ ॥

तत्पश्चात् महाबाहु वीर भीमसेनने कर्णके ऊपर ऐसा बाण चलाया, जो क्रुद्ध यमराजके समान तथा दूसरे यमदण्डके सदृश भयंकर था ॥ ५९ ॥

तमापतन्तं चिच्छेद राधेयः प्रहसन्निव ।
त्रिभिः शरैः शरं राजन् पाण्डवस्य प्रतापवान् ॥ ६० ॥

राजन् ! अपने ऊपर आते हुए भीमसेनके उस बाणको प्रतापी राधानन्दन कर्णने तीन बाणोंद्वारा हँसते हुए-से काट डाला ॥ ६० ॥

पुनश्चासृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः ।
तस्य तान्याददे कर्णः सर्वाण्यस्त्राण्यभीतवत् ॥ ६१ ॥

तब पाण्डुनन्दन भीमने पुनः भयानक बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी; परंतु कर्णने उन सब अस्त्रोंको निर्भयतापूर्वक आत्मसात् कर लिया ॥ ६१ ॥

युध्यमानस्य भीमस्य सूतपुत्रोऽस्त्रमायया ।
तस्येषुधी धनुर्ज्यां च बाणैः संनतपर्वभिः ॥ ६२ ॥
रश्मीन् योक्त्राणि चाश्वानां क्रुद्धः कर्णोऽच्छिनन्मृधे ।
तस्याश्वांश्च पुनर्हत्वा सूतं विव्याध पञ्चभिः ॥ ६३ ॥

क्रोधमें भरे हुए सूतपुत्र कर्णने अपने अस्त्रोंकी मायासे तथा झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा युद्धपरायण भीमसेनके दो तरकसों, धनुषकी प्रत्यञ्चा, बागडोर तथा घोड़े जोतनेकी रस्सियोंको भी युद्धस्थलमें काट डाला । फिर घोड़ोंको भी मारकर सारथिको पाँच बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ६२-६३ ॥

सोऽपसृत्य द्रुतं सूतो युधामन्यो रथं ययौ ।
विहसन्निव भीमस्य क्रुद्धः कालानलद्युतिः ॥ ६४ ॥
ध्वजं चिच्छेद राधेयः पताकां च व्यपातयत् ।

सारथि वहाँसे भागकर तुरंत ही युधामन्युके रथपर चढ़ गया । इधर क्रोधमें भरे हुए कालाग्निके समान तेजस्वी

राधापुत्र कर्णने भीमसेनका उपहास-सा करते हुए उनकी ध्वजा और पताकाको भी काट गिराया ॥ ६४½ ॥

स विधन्वा महाबाहुरथ शक्तिं परामृशत् ॥ ६५ ॥
तां व्यवासृजदाविध्य क्रुद्धः कर्णरथं प्रति ।

धनुष कट जानेपर कुपित हुए महाबाहु भीमसेनने शक्ति हाथमें ली और उसे घुमाकर कर्णके रथपर दे मारा ॥६५½॥

तामाधिरथिरायस्तः शक्तिं काञ्चनभूषणाम् ॥ ६६ ॥
आपतन्तीं महोल्काभां चिच्छेद दशभिः शरैः ।

कर्ण कुछ थक-सा गया था, तो भी उसने बहुत बड़ी उल्काके समान अपनी ओर आती हुई उस सुवर्णभूषित शक्तिको दस बाणोंसे काट दिया ॥ ६६½ ॥

सापतद् दशधा छिन्ना कर्णस्य निशितैः शरैः॥ ६७ ॥
अस्यतः सूतपुत्रस्य मित्रार्थे चित्रयोधिनः ।

मित्रके हितके लिये विचित्र युद्ध करनेवाले तथा बाण-प्रहारमें तत्पर सूतपुत्र कर्णके तीखे बाणोंसे दस टुकड़ोंमें कटकर वह शक्ति धरतीपर गिर पड़ी ॥६७½ ॥

स चर्मादत्त कौन्तेयो जातरूपपरिष्कृतम् ॥ ६८ ॥
खड्गं चान्यतरप्रेप्सुर्मृत्योरग्रे जयस्य वा ।

तब कुन्तीकुमार भीमसेनने युद्धमें सम्मुख मृत्यु अथवा विजय इन दोमेंसे एकका निश्चित रूपसे वरण करनेकी इच्छा रखकर ढाल और सुवर्णभूषित तलवार हाथमें ले ली ॥ ६८½ ॥

तदस्य तरसा क्रुद्धो व्यधमच्चर्म सुप्रभम् ॥ ६९ ॥
शरैर्बहुभिरत्युग्रैः प्रहसन्निव भारत ।

भारत ! उस समय क्रोधमें भरे हुए कर्णने हँसते हुए-से वेगपूर्वक बहुत-से अत्यन्त भयंकर बाण मारकर भीमसेनकी चमकीली ढाल नष्ट कर दी ॥ ६९½ ॥

स विचर्मा महाराज विरथः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ७० ॥
असिं प्रासृजदाविध्य त्वरन् कर्णरथं प्रति ।

महाराज ! ढाल और रथसे रहित हुए भीमसेनने क्रोधसे आतुर हो बड़ी उतावलीके साथ कर्णके रथपर तलवार घुमाकर चला दी ॥ ७०½ ॥

स धनुः सूतपुत्रस्य सज्यं छित्त्वा महानसिः ॥ ७१ ॥
पपात भुवि राजेन्द्र क्रुद्धः सर्प इवाम्बरात् ।

राजेन्द्र ! वह बड़ी तलवार आकाशसे कुपित सर्पकी भाँति आकर सूतपूत्र कर्णके प्रत्यञ्चासहित धनुषको काटती हुई पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ७१½ ॥

ततः प्रहस्याधिरथिरन्यदादाय कार्मुकम् ॥ ७२ ॥
शत्रुघ्नं समरे क्रुद्धो दृढज्यं वेगवत्तरम् ।
व्यायच्छत् स शरान् कर्णः कुन्तीपुत्रजिघांसया॥७३॥
सहस्रशो महाराज रुक्मपुङ्खान् सुतेजनान् ।

यह देख अधिरथ-पुत्र कर्ण ठठाकर हँस पड़ा और समराङ्गणमें कुपित हो उसने शत्रुविनाशकारी सुदृढ़ प्रत्यञ्चावाला अत्यन्त वेगशाली दूसरा धनुष हाथमें लेकर उसपर कुन्तीपुत्रके वधकी इच्छासे सुवर्णमय पंखवाले सहस्रों अत्यन्त तीखे बाणोंका संधान किया ॥ ७२-७३½ ॥

स वध्यमानो बलवान् कर्णचापच्युतैः शरैः ॥ ७४ ॥
वैहायसं प्राक्रमद् वै कर्णस्य व्यथयन्मनः ।

कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा घायल किये जाते हुए बलवान् भीमसेन कर्णके मनमें व्यथा उत्पन्न करते हुए उसे पकड़नेके लिये आकाशमें उछले ॥ ७४½ ॥

स तस्य चरितं दृष्ट्वा संग्रामे विजयैषिणः ॥ ७५ ॥
लयमास्थाय राधेयो भीमसेनमवञ्चयत् ।

संग्राममें विजय चाहनेवाले भीमसेनका वह चरित्र देख राधापुत्र कर्णने अपना अङ्ग सिकोड़कर भीमसेनके आक्रमणको विफल कर दिया ॥ ७५½ ॥



तं च दृष्ट्वा रथोपस्थे निलीनं व्यथितेन्द्रियम् ॥ ७६ ॥
ध्वजमस्य समासाद्य तस्थौ भीमो महीतले ।

कर्णकी सारी इन्द्रियाँ व्यथित हो गयी थीं । वह रथके पिछले भागमें दुबक गया था । उसे उस अवस्थामें देखकर भीमसेन उसके ध्वजका सहारा लेकर पृथ्वीपर खड़े हो गये ।७६½।

तदस्य कुरवः सर्वे चारणाश्चाभ्यपूजयन् ॥ ७७ ॥
यदियेष रथात् कर्णं हर्तुं तार्क्ष्य इवोरगम् ।

जैसे गरुड़ सर्पको दबोच लेते हैं, उसी प्रकार भीमसेनने कर्णको उसके रथसे पकड़ ले जानेकी जो इच्छा की थी,





भीमसेनका कर्णके रथपर हाथीकी लाश फेंकना

उनके इस कर्मकी समस्त कौरवों तथा चारणोंने भी प्रशंसा की ॥ ७७½ ॥

स छिन्नधन्वा विरथः स्वधर्ममनुपालयन् ॥ ७८ ॥
स्वरथं पृष्ठतः कृत्वा युद्धायैव व्यवस्थितः ।

धनुष कट जाने तथा रथहीन होनेपर भी स्वधर्मका पालन करते हुए भीमसेन अपने रथको पीछे करके युद्धके लिये ही खड़े रहे ॥ ७८½ ॥

तद् विहत्यास्य राधेयस्तत एनं समभ्ययात् ॥ ७९ ॥
संरम्भात् पाण्डवं संख्ये युद्धाय समुपस्थितम् ।

उनके रथ आदि साधनोंको नष्ट करके राधानन्दन कर्णने फिर क्रोधपूर्वक रणक्षेत्रमें युद्धके लिये उपस्थित हुए इन पाण्डुपुत्र भीमसेनपर आक्रमण किया ॥ ७९½ ॥

तौ समेतौ महाराज स्पर्धमानौ महाबलौ ॥ ८० ॥
जीमूताविव घर्मान्ते गर्जमानौ नरर्षभौ ।

महाराज ! एक दूसरेसे स्पर्धा रखनेवाले वे दोनों नरश्रेष्ठ महाबली वीर परस्पर भिड़कर वर्षा ऋतुमें गर्जना करनेवाले दो मेघोंके समान गरज रहे थे ॥८०½ ॥

तयोरासीत् सम्प्रहारः क्रुद्धयोर्नरसिंहयोः ॥ ८१ ॥
अमृष्यमाणयोः संख्ये देवदानवयोरिव ।

युद्धस्थलमें अमर्ष और क्रोधसे भरे हुए उन दोनों पुरुषसिंहोंका संग्राम देव-दानव-युद्धके समान भयंकर हो रहा था ॥ ८१½ ॥

क्षीणशस्त्रस्तु कौन्तेयः कर्णेन समभिद्रुतः ॥ ८२ ॥
दृष्ट्वार्जुनहतान् नागान् पतितान् पर्वतोपमान् ।
रथमार्गविघातार्थं व्यायुधः प्रविवेश ह ॥ ८३ ॥

जब कुन्तीकुमार भीमसेनके सारे अस्त्र-शस्त्र नष्ट हो गये, उनके पास एक भी आयुध शेष नहीं रह गया और कर्णके द्वारा उनपर पूर्ववत् आक्रमण होता रहा, तब वे रथके मार्गको बंद कर देनेके लिये अर्जुनके मारे हुए पर्वताकार हाथियोंको वहाँ गिरा देख उनके भीतर प्रवेश कर गये ॥ ८२-८३ ॥

हस्तिनां व्रजमासाद्य रथदुर्गं प्रविश्य च ।
पाण्डवो जीविताकाङ्क्षी राधेयं नाभ्यहारयत् ॥ ८४ ॥

हाथियोंके समूहमें पहुँचकर मानो वे रथके आक्रमणसे बचनेके लिये दुर्गके भीतर प्रविष्ट हो गये हों, ऐसा अनुभव करते हुए पाण्डुपुत्र भीम केवल अपने प्राण बचानेकी इच्छा करने लगे, उन्होंने राधापुत्र कर्णपर प्रहार नहीं किया ॥ ८४ ॥

व्यवस्थानमथाकाङ्क्षन् धनंजयशरैर्हतम् ।
उद्यम्य कुञ्जरं पार्थस्तस्थौ परपुरंजयः ॥ ८५ ॥
महौषधिसमायुक्तं हनूमानिव पर्वतम् ।

शत्रुओंकी नगरीपर विजय पानेवाले कुन्तीकुमार भीमसेन यह चाहते थे कि कर्णके बाणोंसे बचनेके लिये कोई व्यवधान (आड़) मिल जाय; इसीलिये वे अर्जुनके बाणोंसे मारे गये एक हाथीकी लाशको उठाकर चुपचाप खड़े हो गये । उस समय वे संजीवन नामक महान् ओषधिसे युक्त पर्वत उठाये हुए हनुमान्‌जीके समान जान पड़ते थे ॥ ८५½ ॥

तमस्य विशिखैः कर्णो व्यधमत् कुञ्जरं पुनः ॥ ८६ ॥
हस्त्यङ्गान्यथ कर्णाय प्राहिणोत् पाण्डुनन्दनः ।
चक्राण्यश्वांस्तथा चान्यद् यद् यत् पश्यति भूतले ॥ ८७ ॥
तत् तदादाय चिक्षेप क्रुद्धः कर्णाय पाण्डवः ।
तदस्य सर्वं चिच्छेद क्षिप्तं क्षिप्तं शितैः शरैः ॥ ८८ ॥

कर्णने अपने बाणोंद्वारा उस हाथीके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये । तब पाण्डुनन्दन भीमने हाथीके कटे हुए अंगोंको ही कर्णपर फेंकना शुरू किया । रथोंके पहिये, घोड़ोंकी लाशें तथा और भी जो-जो वस्तुएँ वे धरतीपर पड़ी देखते, उन्हें उठाकर क्रोधपूर्वक कर्णपर फेंकते थे; परंतु वे जो-जो वस्तु फेंकते, उन सबको कर्ण अपने तीखे बाणोंसे काट डालता था ॥ ८६—८८ ॥

भीमोऽपि मुष्टिमुद्यम्य वज्रगर्भां सुदारुणाम् ।
हन्तुमैच्छत् सूतपुत्रं संस्मरन्नर्जुनं क्षणात् ॥ ८९ ॥
शक्तोऽपि नावधीत् कर्णं समर्थः पाण्डुनन्दनः ।
रक्षमाणः प्रतिज्ञां तां या कृता सव्यसाचिना ॥ ९० ॥

अब भीमसेनने अपने अंगूठेको मुट्ठीके भीतर करके वज्रतुल्य अत्यन्त भयंकर घूँसा तानकर सूतपुत्र कर्णको मार डालनेकी इच्छा की । तबतक क्षणभरमें उन्हें अर्जुनकी याद आ गयी । अतः सव्यसाची अर्जुनने पहले जो प्रतिज्ञा की थी, उसकी रक्षा करते हुए पाण्डुनन्दन भीमने समर्थ एवं शक्तिशाली होनेपर भी उस समय कर्णका वध नहीं किया ॥ ८९-९० ॥

तमेवं व्याकुलं भीमं भूयो भूयः शितैः शरैः ।
मूर्च्छयाभिपरीताङ्गमकरोत् सूतनन्दनः ॥ ९१ ॥

इस प्रकार वहाँ बाणोंके आघातसे व्याकुल हुए भीमसेनको सूतपुत्र कर्णने बारंबार अपने पैने बाणोंकी मारसे मूर्छित-सा कर दिया ॥ ९१ ॥

व्यायुधं नावधीच्चैनं कर्णः कुन्त्या वचः स्मरन् ।
धनुषोऽग्रेण तं कर्ण सोऽभिद्रुत्य परामृशत् ॥ ९२ ॥

परंतु कुन्तीके वचनका स्मरण करके उसने शस्त्रहीन भीमसेनका वध नहीं किया । कर्णने उनके पास जाकर अपने धनुषकी नोकसे उनका स्पर्श किया ॥ ९२ ॥

धनुषा स्पृष्टमात्रेण क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ।
आच्छिद्य स धनुस्तस्य कर्णं मूर्ध्न्यताडयत् ॥ ९३ ॥

धनुषका स्पर्श होते ही वे क्रोधमें भरे हुए सर्पके समान फुफकार उठे और उन्होंने कर्णके हाथसे वह धनुष छीनकर उसे उसीके मस्तकपर दे मारा ॥ ९३ ॥

ताडितो भीमसेनेन क्रोधादारक्तलोचनः।
विहसन्निव राधेयो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ९४ ॥

भीमसेनकी मार खाकर राधापुत्र कर्णकी आँखें लाल हो गयीं। उसने हँसते हुए-से यह बात कही—॥ ९४ ॥

पुनः पुनस्तूबरक मूढ औदरिकेति च।
अकृतास्त्रक मा योत्सीर्बाल संग्रामकातर ॥ ९५ ॥

'ओ बिना दाढ़ी-मूछके नपुंसक! ओ मूर्ख! अरे पेटू! तू तो अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञानसे सर्वथा शून्य है। युद्धभीरु कायर! छोकरे! अब फिर कभी युद्ध न करना ॥ ९५ ॥

यत्र भोज्यं बहुविधं भक्ष्यं पेयं च पाण्डव।
तत्र त्वं दुर्मते योग्यो न युद्धेषु कदाचन ॥ ९६ ॥

'दुर्बुद्धि पाण्डव! जहाँ अनेक प्रकारकी खाने-पीनेकी वस्तुएँ रक्खी हों, तू वहीं रहनेके योग्य है! युद्धोंमें तुझे कभी नहीं आना चाहिये ॥ ९६ ॥

मूलपुष्पफलाहारो व्रतेषु नियमेषु च।
उचितस्त्वं वने भीम न त्वं युद्धविशारदः ॥ ९७ ॥

'भीम! वनमें रहकर तू फल-मूल और फूल खाकर व्रत एवं नियम आदि पालन करनेके योग्य है। युद्धकौशल तुझमें नाममात्रको भी नहीं है ॥ ९७ ॥

क युद्धं क मुनित्वं च वनं गच्छ वृकोदर।
न त्वं युद्धोचितस्तात वनवासरतिर्भवान् ॥ ९८ ॥

'वृकोदर! कहाँ युद्ध और कहाँ मुनिवृत्ति। जा, जा, वनमें चला जा। तात! तुझमें युद्धकी योग्यता नहीं है। तू तो वनवासका ही प्रेमी है ॥ ९८ ॥

(सूदं त्वामहमाजाने मात्स्ये प्रेष्यककारकम्।)
सूदान् भृत्यजनान् दासांस्त्वं गृहे त्वरयन् भृशम्।
योग्यस्ताडयितुं क्रोधाद् भोजनार्थं वृकोदर ॥ ९९ ॥

'मैं तुझे अच्छी तरह जानता हूँ। तू मत्स्यराज विराट-का नौकर एक रसोइया रहा है। वृकोदर! तू तो घरमें रसोइयों, भृत्यजनों तथा दासोंको बहुत जल्दी भोजन तैयार करनेके लिये प्रेरणा देते हुए क्रोधसे उन्हें डाँटने और मारने-पीटनेकी योग्यता रखता है ॥ ९९ ॥

मुनिर्भूत्वाथवा भीम फलान्यादत्स्व दुर्मते।
वनाय व्रज कौन्तेय न त्वं युद्धविशारदः ॥ १०० ॥

'दुर्मति कुन्तीकुमार भीम! अथवा तू मुनि होकर वनमें चला जा। वहाँ इधर-उधरसे फल ले आ और खा। तू युद्धमें निपुण नहीं है ॥ १०० ॥

फलमूलाशने शक्तस्त्वं तथातिथिपूजने।
न त्वां शस्त्रसमुद्योगे योग्यं मन्ये वृकोदर ॥ १०१ ॥

'वृकोदर! तू फल-मूल खाने और अतिथिसत्कार करने-में समर्थ है। मैं तुझे हथियार उठानेके योग्य नहीं मानता' ॥ १०१ ॥

कौमारे यानि वृत्तानि विप्रियाणि विशाम्पते।
तानि सर्वाणि चाप्येव रूक्षाण्यश्रावयद् भृशम् ॥ १०२ ॥

प्रजापालक नरेश! कर्णने बाल्यावस्थामें जो अप्रिय वृत्तान्त घटित हुए थे, उन सबका उल्लेख करते हुए बहुत-सी रूखी बातें सुनायीं ॥ १०२ ॥

अथैनं तत्र संलीनमस्पृशद् धनुषा पुनः।
प्रहसंश्च पुनर्वाक्यं भीममाह वृषस्तदा ॥ १०३ ॥

तत्पश्चात् वहाँ छिपे हुए भीमसेनका कर्णने पुनः धनुष-से स्पर्श किया और उस समय उनका उपहास करते हुए फिर कहा—॥ १०३ ॥

योद्धव्यं मारिषान्यत्र न योद्धव्यं च मादृशैः।
मादृशैर्युध्यमानानामेतच्चान्यच्च विद्यते ॥ १०४ ॥

'आर्य! तुझे और लोगोंके साथ युद्ध करना चाहिये। मेरे-जैसे वीरोंके साथ नहीं। मेरे-जैसे योद्धाओंसे जूझनेवालों-की ऐसी ही अथवा इससे भी बुरी दशा होती है ॥ १०४ ॥

गच्छ वा यत्र तौ कृष्णौ तौ त्वां रक्षिष्यतो रणे।
गृहं वा गच्छ कौन्तेय किं ते युद्धेन बालक ॥ १०५ ॥

'अथवा जहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं, वहीं चला जा। वे रणभूमिमें तेरी रक्षा करेंगे। अथवा कुन्तीकुमार! तू घर चला जा। बच्चे! तुझे युद्धसे क्या लाभ है?' ॥ १०५ ॥

कर्णस्य वचनं श्रुत्वा भीमसेनोऽतिदारुणम्।
उवाच कर्णं प्रहसन् सर्वेषां शृण्वतां वचः ॥ १०६ ॥

कर्णके ये अत्यन्त कठोर वचन सुनकर भीमसेन ठठा-कर हँस पड़े और सबके सुनते हुए उससे इस प्रकार बोले—॥ १०६ ॥

जितस्त्वमसकृद् दुष्ट कत्थसे किं वृथाऽऽत्मना।
जयाजयौ महेन्द्रस्य लोके दृष्टौ पुरातनैः ॥ १०७ ॥

'अरे दुष्ट! मैंने तुझे एक बार नहीं, बारंबार हराया है; फिर क्यों व्यर्थ अपने ही मुँहसे अपनी बड़ाई कर रहा है। संसारमें पूर्वपुरुषोंने देवराज इन्द्रकी भी कभी जय और कभी पराजय होती देखी है ॥ १०७ ॥

मल्लयुद्धं मया सार्धं कुरु दुष्कुलसम्भव।
महाबलो महाभोगी कीचको निहतो यथा ॥ १०८ ॥
तथा त्वां घातयिष्यामि पश्यत्सु सर्वराजसु।

'नीच कुलमें पैदा हुए कर्ण! आ, मेरे साथ मल्ल-युद्ध कर ले। जैसे मैंने महान् बलशाली महाभोगी कीचकको पीस डाला था, उसी प्रकार इन समस्त राजाओंके देखते-देखते मैं तुझे अभी मौतके हवाले कर दूँगा' ॥ १०८½ ॥

भीमस्य मतमाज्ञाय कर्णो बुद्धिमतां वरः ॥ १०९ ॥
विरराम रणात् तस्मात् पश्यतां सर्वधन्विनाम्।

भीमसेनका यह अभिप्राय जानकर बुद्धिमानोंमें श्रे

कर्ण समस्त धनुर्धरोंके सामने ही उस युद्धसे हट गया ॥ १०९½ ॥

एवं तं विरथं कृत्वा कर्णो राजन् व्यकत्थयत् ॥११०॥
प्रमुखे वृष्णिसिंहस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
ततो राजञ्शिलाधौताञ्शरांश्शाखामृगध्वजः ॥१११॥
प्राहिणोत् सूतपुत्राय केशवेन प्रचोदितः ।

राजन्! इस प्रकार कर्णने भीमसेनको रथहीन करके जब वृष्णिवंशके सिंह भगवान् श्रीकृष्ण और महामना अर्जुनके सामने ही अपनी इतनी प्रशंसा की, तब श्रीकृष्णकी प्रेरणासे कपिध्वज अर्जुनने शिलापर स्वच्छ किये हुए बहुत-से बाणोंको सूतपुत्र कर्णपर चलाया॥ ११०-१११½ ॥

ततः पार्थभुजोत्सृष्टाः शराः कनकभूषणाः ॥११२॥
गाण्डीवप्रभवाः कर्णं हंसाः क्रौञ्चमिवाविशन् ।

तत्पश्चात् अर्जुनकी भुजाओंसे छोड़े गये तथा गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए वे सुवर्णभूषित बाण कर्णके शरीरमें उसी प्रकार घुस गये, जैसे हंस क्रौञ्च पर्वतकी गुफाओंमें समा जाते हैं ॥ ११२½ ॥

स भुजङ्गैरिवाविष्टैर्गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ॥११३॥
भीमसेनादपासेधत् सूतपुत्रं धनंजयः ।

इस प्रकार धनंजयने गाण्डीव धनुषसे छोड़े गये रोषभरे सर्पोंके समान बाणोंद्वारा सूतपुत्र कर्णको भीमसेनसे दूर हटा दिया ॥ ११३½ ॥

स च्छिन्नधन्वा भीमेन धनंजयशराहतः ॥११४॥
कर्णो भीमादपायासीद् रथेन महता द्रुतम् ।

भीमसेनने कर्णके धनुषको तो पहले से ही तोड़ दिया था। इसीलिये वह धनंजयके बाणोंसे घायल हो भीमसेनको छोड़कर अपने विशाल रथके द्वारा तुरंत ही वहाँसे दूर हट गया ॥ ११४½ ॥

भीमोऽपि सात्यकेर्वाहं समारुह्य नरर्षभः ॥११५॥
अन्वयाद् भ्रातरं संख्ये पाण्डवं सव्यसाचिनम् ।

इधर नरश्रेष्ठ भीमसेन भी सात्यकिके रथपर आरूढ़ हो युद्धस्थलमें सव्यसाची पाण्डुपुत्र भाई अर्जुनके पास जा पहुँचे ॥ ११५½ ॥

ततः कर्णं समुद्दिश्य त्वरमाणो धनंजयः ॥११६॥
नाराचं क्रोधताम्राक्षः प्रैषीन्मृत्युमिवान्तकः ।

तत्पश्चात् क्रोधसे लाल आँखें किये अर्जुनने बड़ी उतावलीके साथ कर्णको लक्ष्य करके एक नाराच चलाया, मानो यमराजने किसीके लिये मौत भेज दी हो ॥ ११६½ ॥

स गरुत्मानिवाकाशे प्रार्थयन् भुजगोत्तमम् ॥११७॥
नाराचोऽभ्यपतत् कर्णं तूर्णं गाण्डीवचोदितः ।

गाण्डीव धनुषसे छूटा हुआ वह नाराच आकाशमार्गसे तुरंत ही कर्णकी ओर चला, मानो गरुड़ किसी उत्तम सर्पको पकड़नेके लिये जा रहे हों ॥ ११७½ ॥

तमन्तरिक्षे नाराचं द्रौणिश्चिच्छेद पत्रिणा ॥११८॥
धनंजयभयात् कर्णमुज्जिहीर्षन् महारथः ।

उस समय अर्जुनके भयसे कर्णका उद्धार करनेकी इच्छा रखकर महारथी अश्वत्थामाने अपने बाणसे उस नाराचको आकाशमें ही काट दिया ॥ ११८½ ॥

ततो द्रौणिं चतुःषष्ट्या विव्याध कुपितोऽर्जुनः ॥११९॥
शिलीमुखैर्महाराज मा गास्तिष्ठेति चाब्रवीत् ।

महाराज! तब क्रोधमें भरे हुए अर्जुनने अश्वत्थामाको चौसठ बाण मारे और कहा—'खड़े रहो, भागना मत' ॥ ११९½ ॥

स तु मत्तगजाकीर्णमनीकं रथसंकुलम् ॥१२०॥
तूर्णमभ्याविशद् द्रौणिर्धनंजयशरार्दितः ।

परंतु अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित हो अश्वत्थामा तुरंत ही रथसे व्याप्त एवं मतवाले हाथियोंसे भरे हुए व्यूहके भीतर घुस गया ॥ १२०½ ॥

ततः सुवर्णपृष्ठानां चापानां कूजतां रणे ॥१२१॥
शब्दं गाण्डीवघोषेण कौन्तेयोऽभ्यभवद् बली ।

तब बलवान् कुन्तीकुमार अर्जुनने रणक्षेत्रमें टंकार करते हुए सुवर्णमय पृष्ठभागवाले समस्त धनुषोंके सम्मिलित शब्दोंको अपने गाण्डीव धनुषके गम्भीर घोषसे दबा दिया १२१½

धनंजयस्तथा यान्तं पृष्ठतो द्रौणिमभ्यगात् ॥१२२॥
नातिदीर्घमिवाध्वानं शरैः संत्रासयन् बलम् ।

अर्जुन भागते हुए अश्वत्थामाके पीछे-पीछे अपने बाणोंद्वारा कौरवसेनाको संत्रस्त करते हुए कुछ दूरतक गये ॥ १२२½ ॥

विदार्य देहान् नाराचैर्नरवारणवाजिनाम् ॥१२३॥
कङ्कबर्हिणवासोभिर्बलं व्यधमदर्जुनः ।

उस समय उन्होंने कंक और मोरकी पाँखोंसे युक्त नाराचोंद्वारा घोड़ों, हाथियों और मनुष्योंके शरीरोंको विदीर्ण करके सारी सेनाको तहस-नहस कर दिया ॥१२३½॥

तद् बलं भरतश्रेष्ठ सवाजिद्विपमानवम् ॥१२४॥
पाकशासनिरायत्तः पार्थः स निजघान ह ॥१२५॥

भरतश्रेष्ठ! उस समय सावधान हुए इन्द्रकुमार, कुन्तीपुत्र अर्जुनने हाथी, घोड़ों और मनुष्योंसे भरी हुई उस सेनाका संहार कर डाला ॥ १२४-१२५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमकर्णयुद्धे एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भीमसेन और कर्णका युद्धविषयक एक सौ उन्तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ १३९॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल १२५ ½ श्लोक हैं)

चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिद्वारा राजा अलम्बुषका और दुःशासनके घोड़ोंका वध

धृतराष्ट्र उवाच

अहन्यहनि मे दीप्तं यशः पतति संजय।
हता मे बहवो योधा मन्ये कालस्य पर्ययम्॥ १॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय! प्रतिदिन मेरा उज्ज्वल यश घटता या मन्द पड़ता जा रहा है, मेरे बहुत-से योद्धा मारे गये, इसे मैं समयका ही फेर समझता हूँ॥ १॥

धनंजयः सुसंक्रुद्धः प्रविष्टो मामकं बलम्।
रक्षितं द्रौणिकर्णाभ्यामप्रवेश्यं सुरैरपि॥ २॥

अश्वत्थामा और कर्णके द्वारा सुरक्षित मेरी सेनामें, जहाँ देवताओंका भी प्रवेश असम्भव था, क्रोधमें भरे हुए अर्जुन प्रविष्ट हो गये॥ २॥

ताभ्यामूर्जितवीर्याभ्यामाप्यायितपराक्रमः।
सहितः कृष्णभीमाभ्यां शिनीनामृषभेण च॥ ३॥

महान् पराक्रमी श्रीकृष्ण और भीमसेन तथा शिनिप्रवर सात्यकिका साथ होनेसे अर्जुनका बल तथा पराक्रम और भी बढ़ गया है॥ ३॥

तदाप्रभृति मां शोको दहत्यग्निरिवाशयम्।
ग्रस्तानिव प्रपश्यामि भूमिपालान् ससैन्धवान्॥ ४॥

जबसे यह बात मुझे मालूम हुई है, तबसे शोक मुझे उसी प्रकार दग्ध कर रहा है, जैसे काष्ठसे पैदा होनेवाली आग अपने आधारभूत काष्ठको ही जला देती है। मैं सिंधुराज जयद्रथसहित समस्त राजाओंको कालके गालमें गया हुआ ही समझता हूँ॥ ४॥

अप्रियं सुमहत् कृत्वा सिन्धुराजः किरीटिनः।
चक्षुर्विषयमापन्नः कथं जीवितमाप्नुयात्॥ ५॥

सिंधुराज जयद्रथ किरीटधारी अर्जुनका महान् अप्रिय करके जब उनकी आँखोंके सामने आ गया है, तब कैसे जीवित रह सकता है?॥ ५॥

अनुमानाच्च पश्यामि नास्ति संजय सैन्धवः।
युद्धं तु तद् यथावृत्तं तन्ममाचक्ष्व तत्त्वतः॥ ६॥

संजय! मैं अनुमानसे यह देख रहा हूँ कि सिंधुराज जयद्रथ अब जीवित नहीं है। अब वह युद्ध जिस प्रकार हुआ था, वह सब यथार्थरूपसे बताओ॥ ६॥

यश्च विक्षोभ्य महतीं सेनामालोड्य चासकृत्।
एकः प्रविष्टः संक्रुद्धो नलिनीमिव कुञ्जरः॥ ७॥
तस्य मे वृष्णिवीरस्य ब्रूहि युद्धं यथातथम्।
धनंजयार्थे यत्तस्य कुशलो ह्यसि संजय॥ ८॥

संजय! जैसे हाथी किसी पोखरेमें प्रवेश करता है, उसी प्रकार जिन्होंने अकेले ही कुपित होकर मेरी विशाल सेनाको क्षुब्ध करके बारंबार उसे मथकर उसके भीतर प्रवेश किया था, उन वृष्णिवंशी वीर सात्यकिने अर्जुनके लिये प्रयत्नपूर्वक जैसा युद्ध किया था, उसका वर्णन करो; क्योंकि तुम कथा कहनेमें कुशल हो॥ ७-८॥

संजय उवाच

तथा तु वैकर्तनपीडितं तं
भीमं प्रयान्तं पुरुषप्रवीरम्।
समीक्ष्य राजन् नरवीरमध्ये
शिनिप्रवीरोऽनुययौ रथेन॥ ९॥

संजयने कहा—राजन्! पुरुषोंमें प्रमुख वीर भीमसेन अर्जुनके पास जाते समय जब पूर्वोक्त प्रकारसे कर्णद्वारा पीड़ित होने लगे, तब उन्हें उस अवस्थामें देखकर शिनिवंशके प्रधान वीर सात्यकिने उन नरवीरोंके समूहमें रथके द्वारा भीमसेनकी सहायताके लिये उनका अनुसरण किया॥ ९॥

नदन् यथा वज्रधरस्तपान्ते
ज्वलन् यथा जलदान्ते च सूर्यः।
निघ्नन्नमित्रान् धनुषा दृढेन
स कम्पयंस्तव पुत्रस्य सेनाम्॥ १०॥

जैसे वज्रधारी इन्द्र वर्षाकालमें मेघरूपसे गर्जना करते हैं और जैसे सूर्य शरत्कालमें प्रज्वलित होते हैं, उसी प्रकार गरजते और तेजसे प्रज्वलित होते हुए सात्यकि अपने सुदृढ़ धनुषद्वारा आपके पुत्रकी सेनाको कँपाते हुए शत्रुओंका संहार करने लगे॥ १०॥

तं यान्तमश्वै रजतप्रकाशै-
रायोधने वीरवरं नदन्तम्।
नाशक्नुवन् वारयितुं त्वदीयाः
सर्वे रथा भारत माधवाग्र्यम्॥ ११॥

भारत! उस युद्धस्थलमें रजतवर्णके अश्वोंद्वारा आगे बढ़ते और गरजना करते हुए मधुवंशशिरोमणि वीरवर सात्यकिको आपके सारे रथी मिलकर भी रोक न सके॥ ११॥

अमर्षपूर्णस्त्वनिवृत्तयोधी
शरासनी काञ्चनवर्मधारी।
अलम्बुषः सात्यकिं माधवाग्र्य-
मवारयद् राजवरोऽभिपत्य॥ १२॥

उस समय सोनेका कवच और धनुष धारण किये, युद्धसे कभी पीठ न दिखानेवाले, राजाओंमें श्रेष्ठ अलम्बुषने अमर्षमें भरकर मधुकुलके महान् वीर सात्यकिको सहसा सामने आकर रोका॥ १२॥

तयोरभूद् भारत सम्प्रहारो
यथाविधो नैव बभूव कश्चित् ।
प्रेक्षन्त एवाहवशोभिनौ तौ
योधास्त्वदीयाश्च परे च सर्वे ॥ १३ ॥

भरतनन्दन ! उन दोनोंका जैसा संग्राम हुआ, वैसा दूसरा कोई युद्ध नहीं हुआ था । आपके और शत्रुपक्ष-के समस्त योद्धा संग्राममें शोभा पानेवाले उन दोनों वीरोंको देखते ही रह गये थे ॥ १३ ॥

आविध्यदेनं दशभिः पृषत्कै-
रलम्बुषो राजवरः प्रसह्य ।
अनागतानेव तु तान् पृषत्कां-
श्चिच्छेद बाणैः शिनिपुङ्गवोऽपि ॥ १४ ॥

राजाओंमें श्रेष्ठ अलम्बुषने सात्यकिको बलपूर्वक दस बाण मारे । शिनिप्रवर सात्यकिने भी बाणोंद्वारा अपने पास आने-से पहले ही उन समस्त बाणोंको काट गिराया ॥ १४ ॥

पुनः स बाणैस्त्रिभिरग्निकल्पै-
राकर्णपूर्णैर्निशितैः सपुङ्खैः ।
विव्याध देहावरणं विदार्य
ते सात्यकेराविविशुः शरीरम् ॥ १५ ॥

तब अलम्बुषने धनुषको कानतक खींचकर अग्निके समान प्रज्वलित, सुन्दर पंखवाले तीन तीखे बाणोंद्वारा पुनः सात्यकिपर प्रहार किया । वे बाण सात्यकिके कवचको विदीर्ण करके उनके शरीरमें घुस गये ॥ १५ ॥

तैः कायमस्याग्न्यनिलप्रभावै-
र्विदार्य बाणैर्निशितैर्ज्वलद्भिः ।
आजघ्निवांस्तान् रजतप्रकाशा-
नश्वांश्चतुर्भिश्चतुरः प्रसह्य ॥ १६ ॥

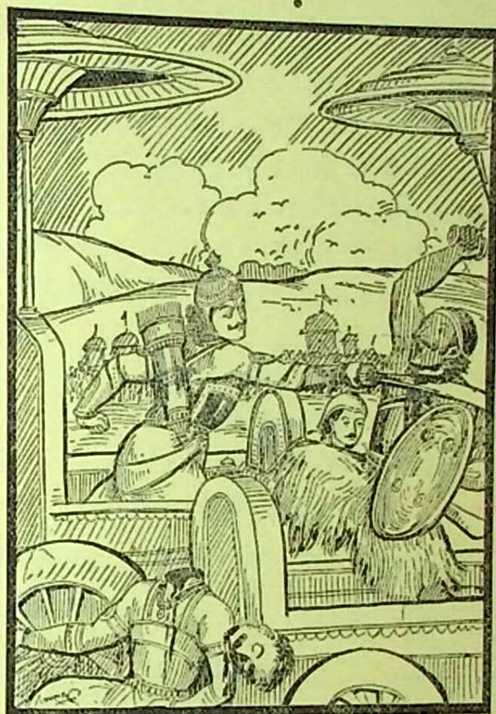
अग्नि और वायुके समान प्रभावशाली उन प्रज्वलित तीखे बाणोंद्वारा सात्यकिका शरीर विदीर्ण करके अलम्बुषने चाँदीके समान चमकनेवाले उनके उन चारों घोड़ोंको भी चार बाणोंसे हठात् घायल कर दिया ॥ १६ ॥

तथा तु तेनाभिहतस्तरस्वी
नप्ता शिनेश्चक्रधरप्रभावः ।
अलम्बुषस्योत्तमवेगवद्भि-
रश्वांश्चतुर्भिर्निजघान बाणैः ॥ १७ ॥

इस प्रकार अलम्बुषके द्वारा घायल होकर चक्रधारी विष्णुके समान प्रभावशाली और वेगवान् वीर शिनिपौत्र सात्यकिने अपने उत्तम वेगवाले चार बाणोंद्वारा राजा अलम्बुषके चारों घोड़ोंको मार डाला ॥ १७ ॥

अथास्य सूतस्य शिरो निकृत्य
भल्लेन कालानलसंनिभेन ।
सकुण्डलं पूर्णशशिप्रकाशं
भ्राजिष्णु वक्त्रं निचकर्त देहात् ॥ १८ ॥

तत्पश्चात् उनके सारथिका भी मस्तक काटकर कालाग्नि-के समान तेजस्वी भल्लद्वारा पूर्ण चन्द्रमाके समान कान्तिसे



प्रकाशित होनेवाले उनके कुण्डलमण्डित मुखमण्डलको भी धड़से काट गिराया ॥ १८ ॥

निहत्य तं पार्थिवपुत्रपौत्रं
संख्ये यदूनामृषभः प्रमाथी ।
ततोऽन्वयादर्जुनमेव वीरः
सैन्यानि राजंस्तव संनिवार्य ॥ १९ ॥

राजन् ! शत्रुओंको मथ डालनेवाले यदुकुलतिलक वीर सात्यकिने इस प्रकार युद्धस्थलमें राजाके पुत्र और पौत्र अलम्बुषको मारकर आपकी सेनाको स्तब्ध करके फिर अर्जुन-का ही अनुसरण किया ॥ १९ ॥

अन्वागतं वृष्णिवीरं समीक्ष्य
तथारिमध्ये परिवर्तमानम् ।
घ्नन्तं कुरूणामिषुभिर्बलानि
पुनः पुनर्वायुमिवाभ्रपूगान् ॥ २० ॥

ततोऽवहन् सैन्धवाः साधुदान्ता
गोक्षीरकुन्देन्दुहिमप्रकाशाः ।
सुवर्णजालावतताः सदश्वा
यतो यतः कामयते नृसिंहः ॥ २१ ॥

अथात्मजास्ते सहिताभिपेतु-
रन्ये च योधास्त्वरितास्त्वदीयाः ।

कृत्वा मुखं भारत योधमुख्यं
दुःशासनं त्वत्सुतमाजमीढ ॥ २२ ॥

उस समय गोदुग्ध, कुन्दकुसुम, चन्द्रमा तथा हिमके समान कान्तिवाले सिंधुदेशीय सुशिक्षित सुन्दर घोड़े, जो सोनेकी जालीसे आवृत थे, पुरुषसिंह सात्यकि जहाँ-जहाँ जाना चाहते, वहाँ-वहाँ उन्हें ले जाते थे। अजमीढवंशी भरतनन्दन! इस प्रकार जैसे वायु मेघोंकी घटाको छिन्न-भिन्न करती रहती है, वैसे ही बारंबार बाणोंद्वारा कौरवसेनाओंका संहार करते और शत्रुओंके बीचमें विचरते हुए वृष्णिवीर सात्यकिको वहाँ आया हुआ देख योद्धाओंमें प्रधान आपके पुत्र दुःशासनको अगुआ बनाकर आपके बहुत-से पुत्र तथा आपके पक्षके अन्य योद्धा भी शीघ्रतापूर्वक एक साथ ही उनपर टूट पड़े ॥ २०-२२ ॥

ते सर्वतः सम्परिवार्य संख्ये
शैनेयमाजघ्नुरनीकसाहाः ।
स चापि तान् प्रवरः सात्वतानां
न्यवारयद् बाणजालेन वीरः ॥ २३ ॥

वे सभी बड़ी-बड़ी सेनाओंका आक्रमण सहनेमें समर्थ थे। उन सबने युद्धस्थलमें सात्यकिको चारों ओरसे घेरकर उनपर प्रहार आरम्भ कर दिया। सात्वतशिरोमणि वीर सात्यकिने भी अपने बाणोंके समूहसे उन सबको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ २३ ॥

निवार्य तांस्तूर्णममित्रघाती
नप्ता शिनेः पत्रिभिरग्निकल्पैः ।
दुःशासनस्याभिजघान वाहा-
नुद्यम्य दाणासनमाजमीढ ॥ २४ ॥

अजमीढनन्दन! उन सबको रोककर शत्रुघाती शिनि-पौत्र सात्यकिने तुरंत ही धनुष उठाकर अग्निके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा दुःशासनके घोड़ोंको मार डाला ॥ २४ ॥

ततोऽर्जुनो हर्षमवाप संख्ये
कृष्णश्च दृष्ट्वा पुरुषप्रवीरम् ॥ २५ ॥

उस समय श्रीकृष्ण और अर्जुन पुरुषोंमें प्रधान वीर सात्यकिको उस युद्धभूमिमें उपस्थित देख बड़े प्रसन्न हुए।

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अलम्बुषवधे चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें अलम्बुषवधविषयक एक सौ चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१४०॥

एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिका अद्भुत पराक्रम, श्रीकृष्णका अर्जुनको सात्यकिके आगमनकी सूचना देना और अर्जुनकी चिन्ता

संजय उवाच

तमुद्यतं महाबाहुं दुःशासनरथं प्रति ।
त्वरितं त्वरणीयेषु धनंजयजयैषिणम् ॥ १ ॥
त्रिगर्तानां महेष्वासाः सुवर्णविकृतध्वजाः ।
सेनासमुद्रमाविष्टमनन्तं पर्यवारयन् ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! महाबाहु सात्यकि जल्दी करने योग्य कार्योंमें बड़ी फुर्ती दिखाते थे। वे अर्जुनकी विजय चाहते थे। उन्हें अनन्त सैन्य-सागरमें प्रविष्ट होकर दुःशासनके रथपर आक्रमण करनेके लिये उद्यत देख सोनेकी ध्वजा धारण करनेवाले त्रिगर्तदेशीय महाधनुर्धर योद्धाओंने सब ओरसे घेर लिया ॥ १-२ ॥

अथैनं रथवंशेन सर्वतः संनिवार्य ते ।
अवाकिरञ्छरव्रातैः क्रुद्धाः परमधन्विनः ॥ ३ ॥

रथसमूहद्वारा सब ओरसे सात्यकिको अवरुद्ध करके उन परम धनुर्धर योद्धाओंने उनपर क्रोधपूर्वक बाण-समूहोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ३ ॥

अजयद् राजपुत्रांस्तान् भ्राजमानान् महारणे ।
एकः पञ्चाशतं शत्रून् सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ ४ ॥

परंतु उस महासमरमें शोभा पानेवाले अपने शत्रुरूप उन पचास राजकुमारोंको सत्यपराक्रमी सात्यकिने अकेले ही परास्त कर दिया ॥ ४ ॥

सम्प्राप्य भारतीमध्यं तलघोषसमाकुलम् ।
असिशक्तिगदापूर्णमप्लवं सलिलं यथा ॥ ५ ॥
तत्राद्भुतमपश्याम शैनेयचरितं रणे ।

कौरवसेनाका वह मध्यभाग हथेलियोंके चट-चट शब्दसे गूँज उठा था। खड्ग, शक्ति तथा गदा आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे व्याप्त था और नौकारहित अगाध जलके समान दुस्तर प्रतीत होता था। वहाँ पहुँचकर हमलोगोंने रणभूमिमें सात्यकिका अद्भुत चरित्र देखा ॥ ५½ ॥

प्रतीच्यां दिशि तं दृष्ट्वा प्राच्यां पश्यामि लाघवात् ॥ ६ ॥
उदीचीं दक्षिणां प्राचीं प्रतीचीं विदिशस्तथा ।
नृत्यन्निवाचरच्छूरो यथा रथशतं तथा ॥ ७ ॥

वे इतनी फुर्तीसे इधर-उधर जाते थे कि मैं उन्हें पश्चिम दिशामें देखकर तुरंत ही पूर्व दिशामें भी उपस्थित देखता था, सैकड़ों रथियोंके समान वे शूरवीर सात्यकि उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम तथा कोणवर्ती दिशाओंमें नाचते हुए-से विचर रहे थे ॥ ६-७ ॥

तद् दृष्ट्वा चरितं तस्य सिंहविक्रान्तगामिनः ।
त्रिगर्ताः संन्यवर्तन्त संतप्ताः स्वजनं प्रति ॥ ८ ॥

सिंहके समान पराक्रमसूचक गतिसे चलनेवाले सात्यकिके उस चरित्रको देखकर त्रिगर्तदेशीय योद्धा अपने स्वजनोंके लिये शोक-संताप करते हुए पीछे लौट गये ॥ ८ ॥

तमन्ये शूरसेनानां शूराः संख्ये न्यवारयन्।
नियच्छन्तः शरव्रातैर्मत्तं द्विपमिवाङ्कुशैः ॥ ९ ॥

तदनन्तर युद्धस्थलमें दूसरे शूरसेनदेशीय शूरवीर सैनिकोंने अपने शरसमूहोंद्वारा उनपर नियन्त्रण करते हुए उन्हें उसी प्रकार रोका, जैसे महावत मतवाले हाथीको अंकुशोंद्वारा रोकते हैं ॥ ९ ॥

तैर्व्यवाहरदार्यात्मा मुहूर्तादेव सात्यकिः।
ततः कलिङ्गैर्युयुधे सोऽचिन्त्यबलविक्रमः ॥ १० ॥

तब अचिन्त्य बल और पराक्रमसे सम्पन्न महामना सात्यकिने उनके साथ युद्ध करके दो ही घड़ीमें उन्हें हरा दिया और फिर वे कलिङ्गदेशीय सैनिकोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ १० ॥

तां च सेनामतिक्रम्य कलिङ्गानां दुरत्ययाम्।
अथ पार्थं महाबाहुर्धनंजयमुपासदत् ॥ ११ ॥

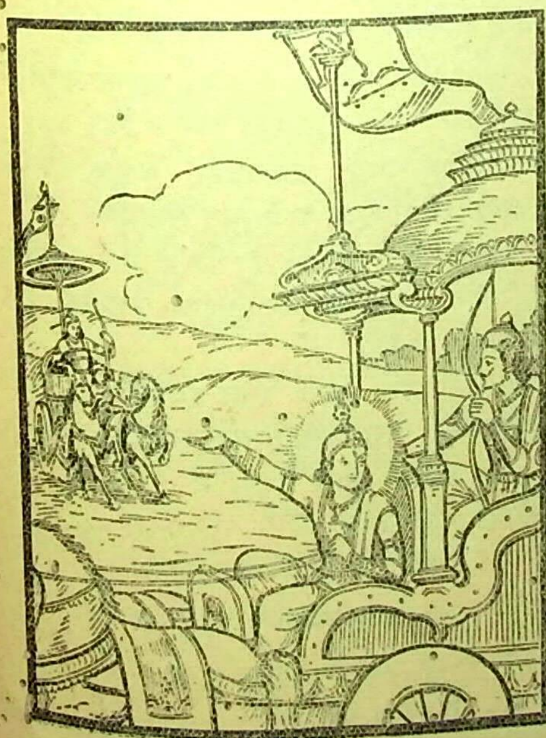
कलिङ्गोंकी उस दुर्जय सेनाको लाँघकर महाबाहु सात्यकि कुन्तीकुमार अर्जुनके निकट जा पहुँचे ॥ ११ ॥

तरन्निव जले श्रान्तो यथा स्थलमुपेयिवान्।
तं दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रं युयुधानः समाश्वसत् ॥ १२ ॥

जैसे जलमें तैरते-तैरते थका हुआ मनुष्य स्थलमें पहुँच जाय, उसी प्रकार पुरुषसिंह अर्जुनको देखकर युयुधानको बड़ा आश्वासन मिला ॥ १२ ॥

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य केशवः पार्थमब्रवीत्।
असावायाति शैनेयस्तव पार्थ पदानुगः ॥ १३ ॥

सात्यकिको आते देख भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे



कहा—'पार्थ ! देखो, यह तुम्हारे चरणोंका अनुगामी शिनिपौत्र सात्यकि आ रहा है' ॥ १३ ॥

एष शिष्यः सखा चैव तव सत्यपराक्रमः।
सर्वान् योधांस्तृणीकृत्य विजिग्ये पुरुषर्षभः ॥ १४ ॥

'यह सत्यपराक्रमी वीर तुम्हारा शिष्य और सखा भी है। इस पुरुषसिंहने समस्त योद्धाओंको तिनकोंके समान समझकर परास्त कर दिया है ॥ १४ ॥

एष कौरवयोधानां कृत्वा घोरमुपद्रवम्।
तव प्राणैः प्रियतमः किरीटिन्नेति सात्यकिः ॥ १५ ॥

'किरीटधारी अर्जुन ! जो तुम्हें प्राणोंके समान अत्यन्त प्रिय है, वही यह सात्यकि कौरव योद्धाओंमें घोर उपद्रव मचाकर आ रहा है ॥ १५ ॥

एष द्रोणं तथा भोजं कृतवर्माणमेव च।
कदर्थीकृत्य विशिखैः फाल्गुनाभ्येति सात्यकिः ॥ १६ ॥

'फाल्गुन ! यह सात्यकि अपने बाणोंद्वारा द्रोणाचार्य तथा भोजवंशी कृतवर्माका भी तिरस्कार करके तुम्हारे पास आ रहा है ॥ १६ ॥

धर्मराजप्रियान्वेषी हत्वा योधान् वरान् वरान्।
शूरश्चैव कृतास्त्रश्च फाल्गुनाभ्येति सात्यकिः ॥ १७ ॥

'फाल्गुन ! यह शूरवीर एवं उत्तम अस्त्रोंका ज्ञाता सात्यकि धर्मराजके प्रिय तुम्हारे समाचार लेनेके लिये बड़े-बड़े योद्धाओंको मारकर यहाँ आ रहा है ॥ १७ ॥

कृत्वा सुदुष्करं कर्म सैन्यमध्ये महाबलः।
तव दर्शनमन्विच्छन् पाण्डवाभ्येति सात्यकिः ॥ १८ ॥

'पाण्डुनन्दन ! महाबली सात्यकि कौरवसेनाके भीतर अत्यन्त दुष्कर पराक्रम करके तुम्हें देखनेकी इच्छासे यहाँ आ रहा है ॥ १८ ॥

बहूनेकरथेनाजौ योधयित्वा महारथान्।
आचार्यप्रमुखान् पार्थ प्रयात्येष स सात्यकिः ॥ १९ ॥

'पार्थ ! युद्धस्थलमें द्रोणाचार्य आदि बहुत-से महारथियोंके साथ एकमात्र रथकी सहायतासे युद्ध करके यह सात्यकि इधर आ रहा है ॥ १९ ॥

स्वबाहुबलमाश्रित्य विदार्य च वरूथिनीम्।
प्रेषितो धर्मराजेन पार्थैषोऽभ्येति सात्यकिः ॥ २० ॥

'कुन्तीकुमार ! अपने बाहुबलका आश्रय ले कौरवसेनाको विदीर्ण करके धर्मराजका भेजा हुआ यह सात्यकि यहाँ आ रहा है ॥ २० ॥

यस्य नास्ति समो योधः कौरवेषु कथंचन।
सोऽयमायाति कौन्तेय सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ॥ २१ ॥

'कुन्तीनन्दन ! कौरवसेनामें किसी प्रकार भी जिसकी समता करनेवाला एक भी योद्धा नहीं है, वही यह रणदुर्मद सात्यकि यहाँ आ रहा है ॥ २१ ॥

कुरुसैन्याद् विमुक्तो वै सिंहो मध्याद् गवामिव।
निहत्य बहुलाः सेनाः पार्थैषोऽभ्येति सात्यकिः॥ २२ ॥

'पार्थ ! जैसे सिंह गायोंके बीचसे अनायास ही निकल जाता है, उसी प्रकार कौरव-सेनाके घेरेसे छूटकर निकला हुआ यह सात्यकि बहुत-सी-शत्रु-सेनाओंका संहार करके इधर आ रहा है ॥ २२ ॥

एष राजसहस्राणां वक्त्रैः पङ्कजसंनिभैः।
आस्तीर्य वसुधां पार्थ क्षिप्रमायाति सात्यकिः॥ २३ ॥

'कुन्तीनन्दन ! यह सात्यकि सहस्रों राजाओंके कमल-सदृश मस्तकोंद्वारा इस रणभूमिको पाटकर शीघ्रतापूर्वक इधर आ रहा है ॥ २३ ॥

एष दुर्योधनं जित्वा भ्रातृभिः सहितं रणे।
निहत्य जलसंधं च क्षिप्रमायाति सात्यकिः॥ २४ ॥

'यह सात्यकि रणभूमिमें भाइयोंसहित दुर्योधनको जीतकर और जलसंधका वध करके शीघ्र यहाँ आ रहा है ॥ २४ ॥

रुधिरौघवतीं कृत्वा नदीं शोणितकर्दमाम्।
तृणवद् व्यस्य कौरव्यानेष ह्यायाति सात्यकिः॥ २५ ॥

'शोणित और मांसरूपी कीचड़से युक्त खूनकी नदी बहाकर और कौरव-सैनिकोंको तिनकोंके समान उड़ाकर यह सात्यकि इधर आ रहा है' ॥ २५ ॥

ततः प्रहृष्टः कौन्तेयः केशवं वाक्यमब्रवीत्।
न मे प्रियं महाबाहो यन्मामभ्येति सात्यकिः॥ २६ ॥

तब हर्षमें भरे हुए कुन्तीकुमार अर्जुनने केशवसे कहा—'महाबाहो ! सात्यकि जो मेरे पास आ रहे हैं, यह मुझे प्रिय नहीं है ॥ २६ ॥

न हि जानामि वृत्तान्तं धर्मराजस्य केशव।
सात्वतेन विहीनः स यदि जीवति वा न वा ॥ २७ ॥

'केशव ! पता नहीं, धर्मराजका क्या हाल है ? सात्यकिसे रहित होकर वे जीवित हैं या नहीं ? ॥ २७ ॥

एतेन हि महाबाहो रक्षितव्यः स पार्थिवः।
तमेष कथमुत्सृज्य मम कृष्ण पदानुगः॥ २८ ॥

'महाबाहो ! सात्यकिको तो उन्हींकी रक्षा करनी चाहिये थी। श्रीकृष्ण ! उन्हें छोड़कर ये मेरे पीछे कैसे चले आये ? ॥ २८ ॥

राजा द्रोणाय चोत्सृष्टः सैन्धवश्चानिपातितः।
प्रत्युद्याति च शैनेयमेष भूरिश्रवा रणे ॥ २९ ॥

'इन्होंने राजा युधिष्ठिरको द्रोणाचार्यके लिये छोड़ दिया और सिन्धुराज जयद्रथ भी अभी मारा नहीं गया। इसके सिवा ये भूरिश्रवा रणमें शिनिपौत्र सात्यकिकी ओर अग्रसर हो रहे हैं ॥ २९ ॥

सोऽयं गुरुतरो भारः सैन्धवार्थे समाहितः।
ज्ञातव्यश्च हि मे राजा रक्षितव्यश्च सात्यकिः॥ ३० ॥

'इस समय सिन्धुराज जयद्रथके कारण यह मुझपर बहुत बड़ा भार आ गया। एक तो मुझे राजाका कुशल-समाचार जानना है, दूसरे सात्यकिकी भी रक्षा करनी है ॥ ३० ॥

जयद्रथश्च हन्तव्यो लम्बते च दिवाकरः।
श्रान्तश्चैष महाबाहुरल्पप्राणश्च साम्प्रतम्॥ ३१ ॥
परिश्रान्ता हयाश्चास्य हययन्ता च माधव।
न च भूरिश्रवाः श्रान्तः ससहायश्च केशव ॥ ३२ ॥

'इसके सिवा जयद्रथका भी वध करना है। इधर सूर्यदेव अस्ताचलपर जा रहे हैं। माधव ! ये महाबाहु सात्यकि इस समय थककर अल्पप्राण हो रहे हैं। इनके घोड़े और सारथि भी थक गये हैं। किंतु केशव ! भूरिश्रवा और उनके सहायक थके नहीं हैं ॥ ३१-३२ ॥

अपीदानीं भवेदस्य क्षेममस्मिन् समागमे।
कच्चिन्न सागरं तीर्त्वा सात्यकिः सत्यविक्रमः॥ ३३ ॥
गोष्पदं प्राप्य सीदेत महौजाः शिनिपुङ्गवः।

'क्या इन दोनोंके इस संघर्षमें इस समय सात्यकि सकुशल विजयी हो सकेंगे ? कहीं ऐसा तो नहीं होगा कि सत्यपराक्रमी शिनिप्रवर महाबली सात्यकि समुद्रको पार करके गायकी खुरीके बराबर जलमें डूबने लगें ॥ ३३½ ॥

अपि कौरवमुख्येन कृतास्त्रेण महात्मना ॥ ३४ ॥
समेत्य भूरिश्रवसा स्वस्तिमान् सात्यकिर्भवेत्।

'कौरवकुलके मुख्य वीर अस्त्रवेत्ता महामना भूरिश्रवासे भिड़कर क्या सात्यकि सकुशल रह सकेंगे ॥ ३४½ ॥

व्यतिक्रममिमं मन्ये धर्मराजस्य केशव ॥ ३५ ॥
आचार्याद् भयमुत्सृज्य यः प्रैषयत् सात्यकिम्।

'केशव ! मैं तो धर्मराजके इस कार्यको विपरीत समझता हूँ, जिन्होंने द्रोणाचार्यका भय छोड़कर सात्यकिको इधर भेज दिया ॥ ३५½ ॥

ग्रहणं धर्मराजस्य खगः श्येन इवामिषम् ॥ ३६ ॥
नित्यमाशंसते द्रोणः कच्चित् स्यात् कुशली नृपः॥ ३७ ॥

'जैसे बाजपक्षी मांसपर झपट्टा मारता है, उसी प्रकार द्रोणाचार्य प्रतिदिन धर्मराजको बंदी बनाना चाहते हैं। क्या राजा युधिष्ठिर सकुशल होंगे ?' ॥ ३६-३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यक्यर्जुनदर्शने एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकि और अर्जुनका परस्पर साक्षात्कारविषयक एक सौ इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४१ ॥

द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भूरिश्रवा और सात्यकिका रोषपूर्वक सम्भाषण और युद्ध तथा सात्यकिका सिर काटनेके लिये उद्यत हुए भूरिश्रवाकी भुजाका अर्जुनद्वारा उच्छेद

संजय उवाच

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य सात्वतं युद्धदुर्मदम्।
क्रोधाद् भूरिश्रवा राजन् सहसा समुपाद्रवत्॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! रणदुर्मद सात्यकिको आते देख भूरिश्रवाने क्रोधपूर्वक सहसा उनपर आक्रमण किया ॥ १ ॥

तमब्रवीन्महाराज कौरव्यः शिनिपुङ्गवम्।
अद्य प्राप्तोऽसि दिष्ट्या मे चक्षुर्विषयमित्युत ॥ २ ॥
चिराभिलषितं काममहं प्राप्स्यामि संयुगे।
न हि मे मोक्ष्यसे जीवन् यदि नोत्सृजसे रणम् ॥ ३ ॥

महाराज! कुरुनन्दन भूरिश्रवाने उस समय शिनिप्रवर सात्यकिसे इस प्रकार कहा—'युयुधान! बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज तुम मेरी आँखोंके सामने आ गये। आज युद्धमें मैं अपनी बहुत दिनोंकी इच्छा पूर्ण करूँगा। यदि तुम मैदान छोड़कर भाग नहीं गये तो आज मेरे हाथसे जीवित नहीं बचोगे ॥ २-३ ॥

अद्य त्वां समरे हत्वा नित्यं शूराभिमानिनम्।
नन्दयिष्यामि दाशार्ह कुरुराजं सुयोधनम् ॥ ४ ॥

'दाशार्ह! तुम सदा अपनेको बड़ा शूरवीर मानते हो। आज मैं समरभूमिमें तुम्हारा वध करके कुरुराज दुर्योधनको आनन्दित करूँगा ॥ ४ ॥

अद्य मद्बाणनिर्दग्धं पतितं धरणीतले।
द्रक्ष्यतस्त्वां रणे वीरौ सहितौ केशवार्जुनौ ॥ ५ ॥

'आज युद्धमें वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों एक साथ तुम्हें मेरे बाणोंसे दग्ध होकर पृथ्वीपर पड़ा हुआ देखेंगे ॥५॥

अद्य धर्मसुतो राजा श्रुत्वा त्वां निहतं मया।
सव्रीडो भविता सद्यो येनासीह प्रवेशितः ॥ ६ ॥

'आज जिन्होंने इस सेनाके भीतर तुम्हारा प्रवेश कराया है, वे धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर मेरे द्वारा तुम्हारे मारे जानेका समाचार सुनकर तत्काल लज्जित हो जायँगे ॥ ६ ॥

अद्य मे विक्रमं पार्थो विज्ञास्यति धनंजयः।
त्वयि भूमौ विनिहते शयाने रुधिरोक्षिते ॥ ७ ॥

'आज जब तुम मारे जाकर खूनसे लथपथ हो धरतीपर सो जाओगे, उस समय कुन्तीपुत्र अर्जुन मेरे पराक्रमको अच्छी तरह जान लेंगे ॥ ७ ॥

चिराभिलषितो ह्येष त्वया सह समागमः।
पुरा देवासुरे युद्धे शक्रस्य बलिना यथा ॥ ८ ॥

'जैसे पूर्वकालमें देवासुर-संग्राममें इन्द्रका राजा बलिके साथ युद्ध हुआ था, उसी प्रकार तुम्हारे साथ मेरा युद्ध हो, यह मेरी बहुत दिनोंकी अभिलाषा थी ॥ ८ ॥

अद्य युद्धं महाघोरं तव दास्यामि सात्वत।
ततो ज्ञास्यसि तत्त्वेन मद्वीर्यबलपौरुषम् ॥ ९ ॥

'सात्वत! आज मैं तुम्हें अत्यन्त घोर संग्रामका अवसर दूँगा। इससे तुम मेरे बल, वीर्य और पुरुषार्थका यथार्थ परिचय प्राप्त करोगे ॥ ९ ॥

अद्य संयमनीं याता मया त्वं निहतो रणे।
यथा रामानुजेनाजौ रावणिर्लक्ष्मणेन ह ॥ १० ॥

'जैसे पूर्वकालमें श्रीरामचन्द्रजीके भाई लक्ष्मणके द्वारा युद्धमें रावणकुमार इन्द्रजित् मारा गया था, उसी प्रकार इस रणभूमिमें मेरे द्वारा मारे जाकर तुम आज ही यमराजकी संयमनीपुरीकी ओर प्रस्थान करोगे ॥ १० ॥

अद्य कृष्णश्च पार्थश्च धर्मराजश्च माधव।
हते त्वयि निरुत्साहा रणं त्यक्ष्यन्त्यसंशयम् ॥ ११ ॥

'माधव! आज तुम्हारे मारे जानेपर श्रीकृष्ण, अर्जुन और धर्मराज युधिष्ठिर उत्साहशून्य हो युद्ध बंद कर देंगे, इसमें संशय नहीं है ॥ ११ ॥

अद्य तेऽपचितिं कृत्वा शितैर्माधव सायकैः।
तत्स्त्रियो नन्दयिष्यामि ये त्वया निहता रणे ॥ १२ ॥

'मधुकुलनन्दन! आज तीखे बाणोंसे तुम्हारी पूजा करके मैं उन वीरोंकी स्त्रियोंको आनन्दित करूँगा, जिन्हें रणभूमिमें तुमने मार डाला है ॥ १२ ॥

मच्चक्षुर्विषयं प्राप्तो न त्वं माधव मोक्ष्यसे।
सिंहस्य विषयं प्राप्तो यथा क्षुद्रमृगस्तथा ॥ १३ ॥

'माधव! जैसे कोई क्षुद्र मृग सिंहकी दृष्टिमें पड़कर जीवित नहीं रह सकता, उसी प्रकार मेरी आँखोंके सामने आकर अब तुम जीवित नहीं छूट सकोगे' ॥ १३ ॥

युयुधानस्तु तं राजन् प्रत्युवाच हसन्निव।
कौरवेय न संत्रासो विद्यते मम संयुगे ॥ १४ ॥

राजन्! युयुधानने भूरिश्रवाकी यह बात सुनकर हँसते हुए-से यह उत्तर दिया—'कुरुनन्दन! युद्धमें मुझे कभी किसीसे भय नहीं होता है ॥ १४ ॥

नाहं भीषयितुं शक्यो वाङ्मात्रेण तु केवलम्।
स मां निहन्यात् संग्रामे यो मां कुर्यान्निरायुधम्॥१५॥

'मुझे केवल बातें बनाकर नहीं डराया जा सकता। संग्राममें जो मुझे शस्त्रहीन कर दे, वही मेरा वध कर सकता है ॥ १५ ॥

समास्तु शाश्वतीर्हन्याद् यो मां हन्याद्धि संयुगे।
किं वृथोक्तेन बहुना कर्मणा तत् समाचर ॥ १६ ॥

'जो युद्धमें मुझे मार सकता है, वह सदा सर्वत्र अपने शत्रुओंका वध कर सकता है। अस्तु, व्यर्थ ही बहुत-सी बातें बनानेसे क्या लाभ? तुमने जो कुछ कहा है, उसे करके दिखाओ ॥ १६ ॥

शारदस्येव मेघस्य गर्जितं निष्फलं हि ते।
श्रुत्वा त्वद्गर्जितं वीर हास्यं हि मम जायते ॥ १७ ॥

'शरत्कालके मेघके समान तुम्हारे इस गर्जन-तर्जनका कुछ फल नहीं है। वीर! तुम्हारी यह गर्जना सुनकर मुझे हँसी आती है ॥ १७ ॥

चिरकालेप्सितं लोके युद्धमद्यास्तु कौरव।
त्वरते मे मतिस्तात तव युद्धाभिकाङ्क्षिणी ॥ १८ ॥
नाहत्वाहं निवर्तिष्ये त्वामद्य पुरुषाधम।

'कौरव! इस लोकमें मेरी भी तुम्हारे साथ युद्ध करनेकी बहुत दिनोंसे अभिलाषा थी। वह आज पूरी हो जाय। तात! तुमसे युद्धकी अभिलाषा रखनेवाली मेरी बुद्धि मुझे जल्दी करनेके लिये प्रेरणा दे रही है। पुरुषाधम! आज तुम्हारा वध किये बिना मैं पीछे नहीं हटूँगा' ॥ १८½ ॥

अन्योन्यं तौ तथा वाग्भिस्तक्षन्तौ नरपुङ्गवौ ॥ १९ ॥
जिघांसू परमक्रुद्धावभिजघ्नतुराहवे।

इस प्रकार एक दूसरेको मार डालनेकी इच्छावाले वे दोनों नरश्रेष्ठ वीर परस्पर वाग्बाणोंका प्रहार करते हुए उस युद्धस्थलमें अत्यन्त कुपित हो बाणोंद्वारा आघात करने लगे ॥ १९½ ॥

समेतौ तौ महेष्वासौ शुष्मिणौ स्पर्धिनौ रणे ॥ २० ॥
द्विरदाविव संक्रुद्धौ वासितार्थे मदोत्कटौ।

वे दोनों महाधनुर्धर और पराक्रमी वीर उस रणक्षेत्रमें एक दूसरेसे स्पर्धा रखते हुए हथिनीके लिये अत्यन्त कुपित होकर परस्पर युद्ध करनेवाले दो मदोन्मत्त हाथियोंकी तरह एक दूसरेसे भिड़ गये ॥ २०½ ॥

भूरिश्रवाः सात्यकिश्च ववर्षतुररिंदमौ ॥ २१ ॥
शरवर्षाणि घोराणि मेघाविव परस्परम्।

भूरिश्रवा और सात्यकि दोनों शत्रुदमन वीरोंने दो मेघोंकी भाँति परस्पर भयंकर बाण-वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ २१½ ॥

सौमदत्तिस्तु शैनेयं प्रच्छाद्येषुभिराशुगैः ॥ २२ ॥
जिघांसुर्भरतश्रेष्ठ विव्याध निशितैः शरैः।

भरतश्रेष्ठ! सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवाने शिनिप्रवर सात्यकिको मार डालनेकी इच्छासे शीघ्रगामी बाणोंद्वारा आच्छादित करके तीखे बाणोंसे घायल कर दिया ॥ २२½ ॥

दशभिः सात्यकिं विद्ध्वा सौमदत्तिरथापरान् ॥ २३ ॥
मुमोच निशितान् बाणान् जिघांसुः शिनिपुङ्गवम्।

शिनिवंशके प्रधान वीर सात्यकिके वधकी इच्छासे भूरिश्रवाने उन्हें दस बाणोंसे घायल करके उनपर और भी बहुत-से पैने बाण छोड़े ॥ २३½ ॥

तानस्य विशिखांस्तीक्ष्णानन्तरिक्षे विशाम्पते ॥ २४ ॥
अप्राप्तानस्त्रमायाभिरग्रसत् सात्यकिः प्रभो।

प्रजानाथ! प्रभो! सात्यकिने भूरिश्रवाके उन तीखे बाणोंको अपने पास आनेके पूर्व ही अपने अस्त्र-बलसे आकाशमें ही नष्ट कर दिये ॥ २४½ ॥

तौ पृथक् शस्त्रवर्षाभ्यामवर्षेतां परस्परम् ॥ २५ ॥
उत्तमाभिजनौ वीरौ कुरुवृष्णियशस्करौ।

वे दोनों वीर उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए थे। एक कुरुकुलकी कीर्तिका विस्तार कर रहा था तो दूसरा वृष्णिवंशका यश बढ़ा रहा था। उन दोनोंने एक दूसरेपर पृथक्-पृथक् अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा की ॥ २५½ ॥

तौ नखैरिव शार्दूलौ दन्तैरिव महाद्विपौ ॥ २६ ॥
रथशक्तिभिरन्योन्यं विशिखैश्चाप्यकृन्तताम्।

जैसे दो सिंह नखोंसे और दो बड़े-बड़े गजराज दाँतोंसे परस्पर प्रहार करते हैं, उसी प्रकार वे दोनों वीर रथ-शक्तियों तथा बाणोंद्वारा एक दूसरेको क्षत-विक्षत करने लगे ॥ २६½ ॥

निर्भिन्दन्तौ हि गात्राणि विक्षरन्तौ च शोणितम् ॥ २७ ॥
व्यष्टम्भयेतामन्योन्यं प्राणद्यूताभिदेविनौ।

प्राणोंकी बाजी लगाकर युद्धका जूआ खेलनेवाले वे दोनों वीर एक दूसरेके अङ्गोंको विदीर्ण करते और खून बहाते हुए एक दूसरेको रोकने लगे ॥ २७½ ॥

एवमुत्तमकर्माणौ कुरुवृष्णियशस्करौ ॥ २८ ॥
परस्परमयुध्येतां वारणाविव यूथपौ।

कुरुकुल तथा वृष्णिवंशके यशका विस्तार करनेवाले उत्तमकर्मा भूरिश्रवा और सात्यकि इस प्रकार दो यूथपति गजराजोंके समान परस्पर युद्ध करने लगे ॥ २८½ ॥

तावदीर्घेण कालेन ब्रह्मलोकपुरस्कृतौ ॥ २९ ॥
यियासन्तौ परं स्थानमन्योन्यं संजगर्जतुः।

ब्रह्मलोकको सामने रखकर परमपद प्राप्त करनेकी इच्छावाले वे दोनों वीर कुछ कालतक एक दूसरेकी ओर देखकर गर्जन-तर्जन करते रहे ॥ २९½ ॥

सात्यकिः सौमदत्तिश्च शरवृष्ट्या परस्परम् ॥ ३० ॥
हृष्टवद् धार्तराष्ट्राणां पश्यतामभ्यवर्षताम्।

सात्यकि और भूरिश्रवा दोनों परस्पर बाणोंकी बौछार कर रहे थे और धृतराष्ट्रके सभी पुत्र हर्षमें भरकर उनके युद्धका दृश्य देख रहे थे ॥ ३०½ ॥

सम्प्रैक्षन्त जनास्तौ तु युध्यमानौ युधाम्पती ॥ ३१ ॥
यूथपौ वासिताहेतोः प्रयुद्धाविव कुञ्जरौ।

जैसे हथिनीके लिये दो यूथपति गजराज परस्पर घोर युद्ध करते हैं, उसी प्रकार आपसमें लड़नेवाले उन योद्धाओंके अधिपतियोंको सब लोग दर्शक बनकर देखने लगे ॥ ३१½ ॥

अन्योन्यस्य हयान् हत्वा धनुषी विनिकृत्य च ॥ ३२ ॥
विरथावसियुद्धाय समेयातां महारणे ।

दोनोंने दोनोंके घोड़े मारकर धनुष काट दिये तथा उस महासमरमें दोनों ही रथहीन होकर खड्ग-युद्धके लिये एक दूसरेके सामने आ गये ॥ ३२½ ॥

आर्षभे चर्मणी चित्रे प्रगृह्य विपुले शुभे ॥ ३३ ॥
विकोशौ चाप्यसी कृत्वा समरे तौ विचेरतुः ।

बैलके चमड़ेसे बनी हुई दो विचित्र, सुन्दर एवं विशाल ढालें लेकर और तलवारोंको म्यानसे बाहर निकालकर वे दोनों समराङ्गणमें विचरने लगे ॥ ३३½ ॥

चरन्तौ विविधान् मार्गान् मण्डलानि च भागशः ॥ ३४ ॥
मुहुराजघ्नतुः क्रुद्धावन्योन्यमरिमर्दनौ ।
सखड्गौ चित्रवर्माणौ सनिष्काङ्गदभूषणौ ॥ ३५ ॥

क्रोधमें भरे हुए वे दोनों शत्रुमर्दन वीर पृथक्-पृथक् नाना प्रकारके मार्ग और मण्डल (पैंतरे और दाँव-पेंच) दिखाते हुए एक दूसरेपर बारंबार चोट करने लगे। उनके हाथोंमें तलवारें चमक रही थीं। उन दोनोंके ही कवच विचित्र थे तथा वे निष्क और अङ्गद आदि आभूषणोंसे विभूषित थे ॥ ३४–३५ ॥

भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं विप्लुतं सृतम् ।
सम्पातं समुदीर्णं च दर्शयन्तौ यशस्विनौ ॥ ३६ ॥
असिभ्यां सम्प्रजह्राते परस्परमरिंदमौ ।

शत्रुओंका दमन करनेवाले वे दोनों यशस्वी वीर भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, आप्लुत, विप्लुत, सृत, सम्पात और समुदीर्ण आदि गति और पैंतरे दिखाते हुए परस्पर तलवारोंका वार करने लगे ॥ ३६½ ॥

उभौ छिद्रैषिणौ वीरावुभौ चित्रं ववल्गतुः ॥ ३७ ॥
दर्शयन्तावुभौ शिक्षां लाघवं सौष्ठवं तथा ।
रणे रणकृतां श्रेष्ठावन्योन्यं पर्यकर्षताम् ॥ ३८ ॥

दोनों ही वीर एक दूसरेके छिद्र (प्रहार करनेके अवसर) पानेकी इच्छा रखते हुए विचित्र रीतिसे उछलते-कूदते थे। दोनों ही अपनी शिक्षा, फुर्ती तथा युद्ध-कौशल दिखाते हुए रणभूमिमें एक दूसरेको खींच रहे थे। वे दोनों ही योद्धाओंमें श्रेष्ठ थे ॥ ३७–३८ ॥

मुहूर्तमिव राजेन्द्र समाहत्य परस्परम् ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां वीरावाश्वसतां पुनः ॥ ३९ ॥
असिभ्यां चर्मणी चित्रे शतचन्द्रे नराधिप ।
निकृत्य पुरुषव्याघ्रौ बाहुयुद्धं प्रचक्रतुः ॥ ४० ॥

राजेन्द्र ! उस समय विश्राम करती हुई सम्पूर्ण सेनाओंके देखते देखते लगभग दो घड़ीतक एक दूसरेपर तलवारोंसे चोट करके दोनोंने दोनोंकी सौ चन्द्राकार चिह्नोंसे सुशोभित विचित्र ढालें काट डालीं। नरेश्वर ! फिर वे दोनों पुरुषसिंह भुजाओंद्वारा मल्ल-युद्ध करने लगे ॥

व्यूढोरस्कौ दीर्घभुजौ नियुद्धकुशलावुभौ ।
बाहुभिः समसज्जेतामायसैः परिघैरिव ॥ ४१ ॥

दोनोंके वक्षःस्थल चौड़े और भुजाएँ बड़ी-बड़ी थीं। दोनों ही मल्ल-युद्धमें कुशल थे और लोहेके परिघोंके समान सुदृढ़ भुजाओंद्वारा एक दूसरेसे गुथ गये थे ॥ ४१ ॥

तयो राजन् भुजाघातनिग्रहप्रग्रहास्तथा ।
शिक्षाबलसमुद्भूताः सर्वयोधप्रहर्षणाः ॥ ४२ ॥

राजन् ! उन दोनोंके भुजाओंद्वारा आघात, निग्रह (हाथ पकड़ना) और प्रग्रह (गलेमें हाथ लगाना) आदि दाव उनकी शिक्षा और बलके अनुरूप प्रकट होकर समस्त योद्धाओंका हर्ष बढ़ा रहे थे ॥ ४२ ॥

तयोर्नृवरयो राजन् समरे युध्यमानयोः ।
भीमोऽभवन्महाशब्दो वज्रपर्वतयोरिव ॥ ४३ ॥

राजन् ! समरभूमिमें जूझते हुए उन दोनों नरश्रेष्ठोंके पारस्परिक आघातसे प्रकट होनेवाला महान् शब्द वज्र और पर्वतके टकरानेके समान भयंकर जान पड़ता था ॥ ४३ ॥

द्विपाविव विषाणाग्रैः शृङ्गैरिव महर्षभौ ।
भुजयोक्त्राववन्धैश्च शिरोभ्यां चावघातनैः ॥ ४४ ॥
पादावकर्षसंधानैस्तोमराङ्कुशलासनैः ।
पादोदरविबन्धैश्च भूमावुद्भ्रमणैस्तथा ॥ ४५ ॥
गतप्रत्यागताक्षेपैः पातनोत्थानसम्प्लुतैः ।
युयुधाते महात्मानौ कुरुसात्वतपुङ्गवौ ॥ ४६ ॥

जैसे दो हाथी दाँतोंके अग्रभागसे तथा दो साँड़ सींगोंसे लड़ते हैं, उसी प्रकार वे दोनों वीर कभी भुजपाशोंसे बाँधकर, कभी सिरोंकी टक्कर लगाकर, कभी पैरोंसे खींचकर, कभी पैरमें पैर लपेट कर, कभी तोमर-प्रहारके समान ताल ठोंककर, कभी अङ्कुश गड़ानेके समान एक दूसरेको नोचकर, कभी पादबन्ध, उदरबन्ध, उद्भ्रमण[1], गत[2], प्रत्यागत[3], आक्षेप[4], पातन[5], उत्थान[6] और सम्प्लुत[7] आदि दावोंका प्रदर्शन करते हुए वे दोनों महामनस्वी कुरु और सात्वतवंशके प्रमुख वीर परस्पर युद्ध कर रहे थे ॥ ४४-४६ ॥

द्वात्रिंशत्करणानि स्युर्यानि युद्धानि भारत ।
तान्यदर्शयतां तत्र युध्यमानौ महाबलौ ॥ ४७ ॥

१. पृथ्वीपर घुमाना। २. प्रतिद्वन्द्वीकी ओर बढ़ना। ३. पीछे लौटना। ४. पछाड़ना ५. पृथ्वीपर पटकना। ६. उछलकर खड़ा होना। ७. पीठ लगाना।

भारत ! इस प्रकार वे दोनों महाबली वीर परस्पर जूझते हुए मल्ल-युद्धकी जो बत्तीस कलाएँ हैं, उनका प्रदर्शन करने लगे ॥ ४७ ॥

क्षीणायुधे सात्वते युध्यमाने ततोऽब्रवीदर्जुनं वासुदेवः ।
पश्यस्वैनं विरथं युध्यमानं रणे वरं सर्वधनुर्धराणाम् ॥ ४८ ॥

तदनन्तर जब अस्त्र-शस्त्र नष्ट हो जानेपर सात्यकि युद्ध कर रहे थे, उस समय भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'पार्थ ! रणमें समस्त धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ इस सात्यकिकी ओर देखो। यह रथहीन होकर युद्ध कर रहा है ॥ ४८ ॥

(सीदन्तं सात्यकिं पश्य पार्थैनं परिरक्ष च ॥)
प्रविष्टो भारतीं भित्त्वा तव पाण्डव पृष्ठतः ।
योधितश्च महावीर्यैः सर्वैर्भारत भारतैः ॥ ४९ ॥

'कुन्तीनन्दन ! देखो, सात्यकि शिथिल हो गया है। इसकी रक्षा करो। भारत ! पाण्डुनन्दन ! तुम्हारे पीछे-पीछे यह कौरव-सेनाका व्यूह भेदकर भीतर घुस आया है और भरतवंशके प्रायः सभी महापराक्रमी योद्धाओंके साथ युद्ध कर चुका है ॥ ४९ ॥

(धार्तराष्ट्राश्च ये मुख्या ये च मुख्या महारथाः ।
निहता वृष्णिवीरेण शतशोऽथ सहस्रशः ॥)

'दुर्योधनकी सेनामें जो मुख्य योद्धा और प्रधान महारथी थे, वे सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें इस वृष्णिवंशी वीरके हाथसे मारे गये हैं ॥

परिश्रान्तं युधां श्रेष्ठं सम्प्राप्तो भूरिदक्षिणः ।
युद्धाकाङ्क्षी समायान्तं नैतत् सममिवार्जुन ॥ ५० ॥

'अर्जुन ! यहाँ आता हुआ योद्धाओंमें श्रेष्ठ सात्यकि बहुत थक गया है, तो भी उसके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे यज्ञोंमें पर्याप्त दक्षिणा देनेवाले भूरिश्रवा आये हैं। यह युद्ध समान योग्यताका नहीं है' ॥ ५० ॥

ततो भूरिश्रवाः क्रुद्धः सात्यकिं युद्धदुर्मदः ।
उद्यम्याभ्याहनद् राजन् मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ५१ ॥

राजन् ! इसी समय क्रोधमें भरे हुए रणदुर्मद भूरिश्रवाने उद्योग करके सात्यकिपर उसी प्रकार आघात किया, जैसे एक मतवाला हाथी दूसरे मदोन्मत्त हाथीपर चोट करता है ॥ ५१ ॥

रथस्थयोर्द्वयोर्युद्धे क्रुद्धयोर्योधमुख्ययोः ।
केशवार्जुनयो राजन् समरे प्रेक्षमाणयोः ॥ ५२ ॥

नरेश्वर ! समराङ्गणमें रथपर बैठे हुए क्रोधभरे योद्धाओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुन वह युद्ध देख रहे थे ॥ ५२ ॥

अथ कृष्णो महाबाहुरर्जुनं प्रत्यभाषत ।
पश्य वृष्ण्यन्धकव्याघ्रं सौमदत्तिवशं गतम् ॥ ५३ ॥

तब महाबाहु श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'पार्थ ! देखो, वृष्णि और अंधकवंशका वह श्रेष्ठ वीर भूरिश्रवाके वशमें हो गया है ॥ ५३ ॥

परिश्रान्तं गतं भूमौ कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ।
तवान्तेवासिनं वीरं पालयार्जुन सात्यकिम् ॥ ५४ ॥

'वह अत्यन्त दुष्कर कर्म करके परिश्रमसे चूर-चूर हो पृथ्वीपर गिर गया है। अर्जुन ! वीर सात्यकि तुम्हारा ही शिष्य है। उसकी रक्षा करो ॥ ५४ ॥

न वशं यज्ञशीलस्य गच्छेदेष वरोऽर्जुन ।
त्वत्कृते पुरुषव्याघ्र तदाशु क्रियतां विभो ॥ ५५ ॥

'पुरुषसिंह अर्जुन ! प्रभो ! यह श्रेष्ठ वीर तुम्हारे लिये यज्ञशील भूरिश्रवाके अधीन न हो जाय, ऐसा शीघ्र प्रयत्न करो' ॥

अथाब्रवीद्धृष्टमना वासुदेवं धनंजयः ।
पश्य वृष्णिप्रवीरेण क्रीडन्तं कुरुपुङ्गवम् ॥ ५६ ॥
महाद्विपेनेव वने मत्तेन हरियूथपम् ।

तब अर्जुनने प्रसन्नचित्त होकर भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'भगवन् ! देखिये, जैसे कोई सिंहोंका यूथपति वनमें मतवाले महान् गजके साथ क्रीडा करे, उसी प्रकार कुरुकुल-शिरोमणि भूरिश्रवा वृष्णिवंशके प्रमुख वीर सात्यकिके साथ रणक्रीडा कर रहे हैं' ॥ ५६½ ॥

संजय उवाच

इत्येवं भाषमाणे तु पाण्डवे वै धनंजये ॥ ५७ ॥
हाहाकारो महानासीत् सैन्यानां भरतर्षभ ।
तदुद्यम्य महाबाहुः सात्यकिं न्यहनद् भुवि ॥ ५८ ॥

संजय कहते हैं—भरतश्रेष्ठ ! पाण्डुनन्दन अर्जुन इस प्रकार कह ही रहे थे कि सैनिकोंमें महान् हाहाकार मच गया। महाबाहु भूरिश्रवाने सात्यकिको उठाकर धरतीपर पटक दिया ॥ ५७-५८ ॥

स सिंह इव मातङ्गं विकर्षन् भूरिदक्षिणः ।
व्यरोचत कुरुश्रेष्ठः सात्वतप्रवरं युधि ॥ ५९ ॥

जैसे सिंह किसी मतवाले हाथीको खींचता है, उसी प्रकार प्रचुर दक्षिणा देनेवाले कुरुश्रेष्ठ भूरिश्रवा युद्धस्थलमें सात्वतवंशके प्रमुख वीर सात्यकिको घसीटते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे ॥ ५९ ॥

अथ कोशाद् विनिष्कृष्य खड्गं भूरिश्रवा रणे ।
मूर्धजेषु निजग्राह पदा चोरस्यताडयत् ॥ ६० ॥

तदनन्तर भूरिश्रवाने रणभूमिमें तलवारको म्यानसे बाहर निकालकर सात्यकिकी चुटिया पकड़ ली और उनकी छातीमें लात मारी ॥ ६० ॥

ततोऽस्य छेत्तुमारब्धः शिरः कायात् सकुण्डलम् ।
तावत्क्षणात् सात्वतोऽपि शिरः सम्भ्रमयंस्त्वरन् ॥ ६१ ॥

फिर उसने उनके कुण्डलमण्डित मस्तकको धड़से अलग कर देनेका उद्योग आरम्भ किया। उस समय सात्यकि भी बड़ी शीघ्रताके साथ अपने मस्तकको घुमाने लगे ॥ ६१ ॥

यथा चक्रं तु कौलालो दण्डविद्धं तु भारत।
सहैव भूरिश्रवसो बाहुना केशधारिणा ॥ ६२ ॥

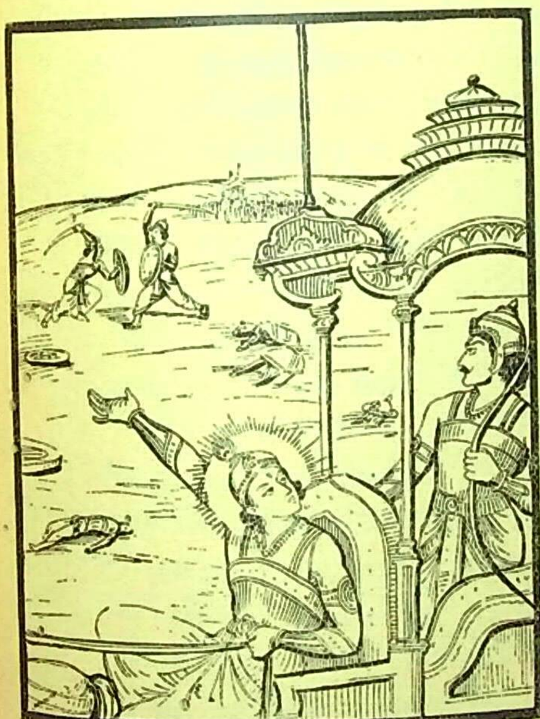
भारत! जैसे कुम्हार छेदमें डंडा डालकर अपनी चाकको घुमाता है, उसी प्रकार केश पकड़े हुए भूरिश्रवाके बाँहके साथ ही सात्यकि अपने सिरको घुमाने लगे ॥ ६२ ॥

तं तथा परिकृष्यन्तं दृष्ट्वा सात्वतमाहवे।
वासुदेवस्ततो राजन् भूयोऽर्जुनमभाषत ॥ ६३ ॥

राजन्! इस प्रकार युद्धभूमिमें केश खींचे जानेके कारण सात्यकिको कष्ट पाते देख भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे पुनः इस प्रकार बोले—॥ ६३ ॥

पश्य वृष्ण्यन्धकव्याघ्रं सौमदत्तिवशं गतम्।
तव शिष्यं महाबाहो धनुष्यनवरं त्वया ॥ ६४ ॥

'महाबाहो! देखो, वृष्णि और अन्धकवंशका वह सिंह



भूरिश्रवाके वशमें पड़ गया है। यह तुम्हारा शिष्य है और धनुर्विद्यामें तुमसे कम नहीं है ॥ ६४ ॥

असत्यो विक्रमः पार्थ यत्र भूरिश्रवा रणे।
विशेषयति वार्ष्णेयं सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥ ६५ ॥

'पार्थ! पराक्रम मिथ्या है, जिसका आश्रय लेनेपर भी वृष्णिवंशी सत्यपराक्रमी सात्यकिसे रणभूमिमें भूरिश्रवा बढ़ गये हैं' ॥ ६५ ॥

एवमुक्तो महाबाहुर्वासुदेवेन पाण्डवः।
मनसा पूजयामास भूरिश्रवसमाहवे ॥ ६६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर पाण्डुपुत्र महाबाहु अर्जुनने मन-ही-मन युद्धस्थलमें भूरिश्रवाकी प्रशंसा की ॥

विकर्षन् सात्वतश्रेष्ठं क्रीडमान इवाहवे।
संहर्षयति मां भूयः कुरूणां कीर्तिवर्धनः ॥ ६७ ॥

कुरुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले भूरिश्रवा इस युद्धस्थलमें सात्वतकुलके श्रेष्ठ वीर सात्यकिको घसीटते हुए खेल-सा कर रहे हैं और बारंबार मेरा हर्ष बढ़ा रहे हैं ॥ ६७ ॥

प्रवरं वृष्णिवीराणां यन्न हन्याद्धि सात्यकिम्।
महाद्विपमिवारण्ये मृगेन्द्र इव कर्षति ॥ ६८ ॥

जैसे सिंह वनमें किसी महान् गजराजको खींचता है, उसी प्रकार ये भूरिश्रवा वृष्णिवंशके प्रमुख वीर सात्यकिको खींच रहे हैं, उसे मार नहीं रहे हैं ॥ ६८ ॥

एवं तु मनसा राजन् पार्थः सम्पूज्य कौरवम्।
वासुदेवं महाबाहुरर्जुनः प्रत्यभाषत ॥ ६९ ॥

राजन्! इस प्रकार मन-ही-मन उस कुरुवंशी वीरकी प्रशंसा करके महाबाहु कुन्तीकुमार अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—॥ ६९ ॥

सैन्धवे सक्तदृष्टित्वान्नैनं पश्यामि माधवम्।
एतत् त्वसुकरं कर्म यादवार्थे करोम्यहम् ॥ ७० ॥

'प्रभो! मेरी दृष्टि सिन्धुराज जयद्रथपर लगी हुई थी। इसलिये मैं सात्यकिको नहीं देख रहा था; परंतु अब मैं इस यदुवंशी वीरकी रक्षाके लिये यह दुष्कर कर्म करता हूँ'॥

इत्युक्त्वा वचनं कुर्वन् वासुदेवस्य पाण्डवः।
ततः क्षुरप्रं निशितं गाण्डीवे समयोजयत् ॥ ७१ ॥

ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञाका पालन करते हुए पाण्डुनन्दन अर्जुनने गाण्डीव धनुषपर एक तीखा क्षुरप्र रक्खा ॥ ७१ ॥

पार्थबाहुविसृष्टः स महोल्केव नभश्च्युता।
सखड्गं यज्ञशीलस्य साङ्गदं बाहुमच्छिनत् ॥ ७२ ॥

अर्जुनकी भुजाओंसे छोड़े गये उस क्षुरप्रने आकाशसे गिरी हुई बहुत बड़ी उल्काके समान उन यज्ञशील भूरिश्रवाके बाजूबंदविभूषित (दाहिनी) भुजाको खड्गसहित काट गिराया ॥ ७२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भूरिश्रवोबाहुच्छेदे द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भूरिश्रवाकी भुजाका उच्छेदविषयक एक सौ बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४२ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १½ श्लोक मिलाकर कुल ७३½ श्लोक हैं)

त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भूरिश्रवाका अर्जुनको उपालम्भ देना, अर्जुनका उत्तर और आमरण अनशनके लिये बैठे हुए भूरिश्रवाका सात्यकिके द्वारा वध

संजय उवाच

स बाहुर्न्यपतद् भूमौ सखड्गः सशुभाङ्गदः ।
आदधज्जीवलोकस्य दुःखमद्भुतमुत्तमः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! भूरिश्रवाकी सुन्दर बाजूबंदसे विभूषित वह उत्तम बाँह समस्त प्राणियोंके मनमें अद्भुत दुःखका संचार करती हुई खड्गसहित कटकर पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ १ ॥

प्रहरिष्यन् हृतो बाहुरदृश्येन किरीटिना ।
वेगेन न्यपतद् भूमौ पञ्चास्य इव पन्नगः ॥ २ ॥

प्रहार करनेके लिये उद्यत हुई वह भुजा अलक्ष्य अर्जुनके बाणसे कटकर पाँच मुखवाले सर्पकी भाँति बड़े वेगसे पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ २ ॥

स मोघं कृतमात्मानं दृष्ट्वा पार्थेन कौरवः ।
उत्सृज्य सात्यकिं क्रोधाद् गर्हयामास पाण्डवम् ॥ ३ ॥

कुन्तीकुमार अर्जुनके द्वारा अपनेको असफल किया हुआ देख कुरुवंशी भूरिश्रवाने कुपित हो सात्यकिको छोड़कर पाण्डुनन्दन अर्जुनकी निन्दा करते हुए कहा ॥ ३ ॥

(स विबाहुर्महाराज एकपक्ष इवाण्डजः ।
एकचक्रो रथो यद्वद् धरणीमास्थितो नृपः ।
उवाच पाण्डवं चैव सर्वक्षत्रस्य शृण्वतः ॥)

महाराज ! वे राजा भूरिश्रवा एक बाँहसे रहित हो एक पाँखके पक्षी और एक पहियेके रथकी भाँति पृथ्वीपर खड़े हो सम्पूर्ण क्षत्रियोंके सुनते हुए पाण्डुपुत्र अर्जुनसे बोले ॥

भूरिश्रवा उवाच

नृशंसं बत कौन्तेय कर्मेदं कृतवानसि ।
अपश्यतो विषक्तस्य यन्मे बाहुमचिच्छिदः ॥ ४ ॥

भूरिश्रवा बोले—कुन्तीकुमार ! तुमने यह बड़ा कठोर कर्म किया है; क्योंकि मैं तुम्हें देख नहीं रहा था और दूसरेसे युद्ध करनेमें लगा हुआ था; उस दशामें तुमने मेरी बाँह काट दी है ॥ ४ ॥

किं नु वक्ष्यसि राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
किं कुर्वाणो मया संख्ये हतो भूरिश्रवा रणे ॥ ५ ॥

तुम धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरसे क्या कहोगे ? यही न कि 'भूरिश्रवा किसी और कार्यमें लगे थे और मैंने उसी दशामें उन्हें युद्धमें मार डाला है' ॥ ५ ॥

इदमिन्द्रेण ते साक्षादुपदिष्टं महात्मना ।
अस्त्रं रुद्रेण वा पार्थ द्रोणेनाथ कृपेण वा ॥ ६ ॥

पार्थ ! इस अस्त्र-विद्याका उपदेश तुम्हें साक्षात् महात्मा इन्द्रने दिया है, या रुद्र, द्रोण अथवा कृपाचार्यने ? ॥ ६ ॥

ननु नामास्त्रधर्मज्ञस्त्वं लोकेऽभ्यधिकः परैः ।
सोऽयुध्यमानस्य कथं रणे प्रहृतवानसि ॥ ७ ॥

तुम तो इस लोकमें दूसरोंसे अधिक अस्त्र-धर्मके ज्ञाता हो, फिर जो तुम्हारे साथ युद्ध नहीं कर रहा था, उसपर संग्राममें तुमने कैसे प्रहार किया ? ॥ ७ ॥

न प्रमत्ताय भीताय विरथाय प्रयाचते ।
व्यसने वर्तमानाय प्रहरन्ति मनस्विनः ॥ ८ ॥

मनस्वी पुरुष असावधान, डरे हुए, रथहीन, प्राणोंकी भिक्षा माँगनेवाले तथा संकटमें पड़े हुए मनुष्यपर प्रहार नहीं करते हैं ॥ ८ ॥

इदं तु नीचाचरितमसत्पुरुषसेवितम् ।
कथमाचरितं पार्थ पापकर्म सुदुष्करम् ॥ ९ ॥

पार्थ ! यह नीच पुरुषोंद्वारा आचरित और दुष्ट पुरुषोंद्वारा सेवित अत्यन्त दुष्कर पापकर्म तुमने कैसे किया ? ॥ ९ ॥

आर्येण सुकरं त्वाहुरार्यकर्म धनंजय ।
अनार्यकर्म त्वार्येण सुदुष्करतमं भुवि ॥ १० ॥

धनंजय ! श्रेष्ठ पुरुषके लिये श्रेष्ठ कर्म ही सुकर बताया गया है । नीच कर्मका आचरण तो इस पृथ्वीपर उसके लिये अत्यन्त दुष्कर माना गया है ॥ १० ॥

येषु येषु नरव्याघ्र यत्र यत्र च वर्तते ।
आशु तच्छीलतामेति तदिदं त्वयि दृश्यते ॥ ११ ॥

नरव्याघ्र ! मनुष्य जहाँ-जहाँ जिन-जिन लोगोंके समीप रहता है, उसमें शीघ्र ही उन लोगोंका शील-स्वभाव आ जाता है; यही बात तुममें भी देखी जाती है ॥ ११ ॥

कथं हि राजवंश्यस्त्वं कौरवेयो विशेषतः ।
क्षत्रधर्मादपक्रान्तः सुवृत्तश्चरितव्रतः ॥ १२ ॥

अन्यथा राजाके वंशज और विशेषतः कुरुकुलमें उत्पन्न होकर भी तुम क्षत्रिय-धर्मसे कैसे गिर जाते ? तुम्हारा शील-स्वभाव तो बहुत उत्तम था और तुमने श्रेष्ठ व्रतोंका पालन भी किया था ॥ १२ ॥

इदं तु यदतिक्षुद्रं वार्ष्णेयार्थे कृतं त्वया ।
वासुदेवमतं नूनं नैतत् त्वय्युपपद्यते ॥ १३ ॥

तुमने सात्यकिको बचानेके लिये जो यह अत्यन्त नीच कर्म किया है, यह निश्चय ही वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णका मत है, तुममें यह नीच विचार सम्भव नहीं है ॥ १३ ॥

को हि नाम प्रमत्ताय परेण सह युध्यते ।
ईदृशं व्यसनं दद्याद् यो न कृष्णसखो भवेत् ॥ १४ ॥

कौन ऐसा मनुष्य है, जो दूसरेके साथ युद्ध करनेवाले असावधान योद्धाको ऐसा संकट प्रदान कर सकता है। जो श्रीकृष्णका मित्र न हो, उससे ऐसा कर्म नहीं बन सकता ॥१४॥

व्रात्याः संक्लिष्टकर्माणः प्रकृत्यैव च गर्हिताः ।
वृष्ण्यन्धकाः कथं पार्थ प्रमाणं भवता कृताः ॥ १५ ॥

कुन्तीनन्दन ! वृष्णि और अन्धकवंशके लोग तो संस्कार-भ्रष्ट हिंसा-प्रधान कर्म करनेवाले और स्वभावसे ही निन्दित हैं। फिर उनको तुमने प्रमाण कैसे मान लिया ? ॥ १५ ॥

एवमुक्तो रणे पार्थो भूरिश्रवसमब्रवीत् ।

रणभूमिमें भूरिश्रवाके ऐसा कहनेपर अर्जुनने उससे कहा ॥ १५½ ॥

अर्जुन उवाच

व्यक्तं हि जीर्यमाणोऽपि बुद्धिं जरयते नरः ॥ १६ ॥
अनर्थकमिदं सर्वं यत् त्वया व्याहृतं प्रभो ।
जानन्नेव हृषीकेशं गर्हसे मां च पाण्डवम् ॥ १७ ॥

अर्जुन बोले—प्रभो ! यह स्पष्ट है कि मनुष्यके बूढ़े होनेके साथ-साथ उसकी बुद्धि भी बूढ़ी हो जाती है। तुमने इस समय जो कुछ कहा है, वह सब व्यर्थ है । तुम सम्पूर्ण इन्द्रियोंके नियन्ता भगवान् श्रीकृष्णको और मुझ पाण्डुपुत्र अर्जुनको भी जानते हो, तो भी हमारी निन्दा करते हो ॥१६-१७॥

संग्रामाणां हि धर्मज्ञः सर्वशास्त्रार्थपारगः ।
न चाधर्ममहं कुर्यां जानंश्चैव हि मुह्यसे ॥ १८ ॥

मैं संग्रामके धर्मोंको जानता हूँ और सम्पूर्ण वेद-शास्त्रोंके अर्थज्ञानमें पारंगत हूँ। मैं किसी प्रकार अधर्म नहीं कर सकता; यह जानते हुए भी तुम मेरे विषयमें मोहित हो रहे हो ॥ १८ ॥

युध्यन्ति क्षत्रियाः शत्रून् स्वैः स्वैः परिवृता नराः ।
भ्रातृभिः पितृभिः पुत्रैस्तथा सम्बन्धिबान्धवैः ॥१९॥
वयस्यैरथ मित्रैश्च ते च बाहुं समाश्रिताः ।

क्षत्रियलोग अपने-अपने भाई, पिता, पुत्र, सम्बन्धी, बन्धु-बान्धवों, समान अवस्थावाले साथी और मित्रोंसे घिरकर शत्रुओंके साथ युद्ध करते हैं। वे सब लोग उस प्रधान योद्धाके बाहुबलके आश्रित होते हैं ॥ १९½ ॥

स कथं सात्यकिं शिष्यं सुखसम्बन्धमेव च ॥ २० ॥
अस्मदर्थे च युध्यन्तं त्यक्त्वा प्राणान् सुदुस्त्यजान् ।
मम बाहुं रणे राजन् दक्षिणं युद्धदुर्मदम् ॥ २१ ॥
(निकृष्यमाणं तं दृष्ट्वा कथं शत्रुवशं गतम् ।
त्वया विकृष्यमाणं च दृष्टवानस्मि निष्क्रियम् ॥)

सात्यकि मेरा शिष्य और सुखप्रद सम्बन्धी है। वह मेरे ही लिये अपने दुस्त्यज प्राणोंका मोह छोड़कर युद्ध कर रहा है। राजन् ! रणदुर्मद सात्यकि युद्धस्थलमें मेरी दाहिनी भुजाके समान है। उसे तुम्हारे द्वारा कष्ट पाते देख मैं कैसे उसकी उपेक्षा कर सकता था । मैंने देखा है तुम उसे घसीट रहे थे और वह शत्रुके अधीन होकर निश्चेष्ट हो गया था ॥ २०-२१ ॥

न चात्मा रक्षितव्यो वै राजन् रणगतेन हि ।
यो यस्य युज्यतेऽर्थेषु स वै रक्ष्यो नराधिप ॥ २२ ॥

राजन् ! रणभूमिमें गये हुए वीरके लिये केवल अपनी ही रक्षा करना उचित नहीं है। नरेश्वर ! जो जिसके कार्योंमें संलग्न होता है, वह अवश्य ही उसके द्वारा रक्षणीय हुआ करता है ॥ २२ ॥

तै रक्ष्यमाणैः स नृपो रक्षितव्यो महामृधे ।
यद्यहं सात्यकिं पश्ये वध्यमानं महारणे ॥ २३ ॥
ततस्तस्य वियोगेन पापं मेऽनर्थतो भवेत् ।
रक्षितश्च मया यस्मात् तस्मात् कुध्यसि किं मयि ॥ २४ ॥

इसी प्रकार उन सुरक्षित होनेवाले सुहृदोंका भी कर्तव्य है कि वे महासमरमें अपने राजाकी रक्षा करें। यदि मैं इस महायुद्धमें सात्यकिको अपने सामने मरते देखता तो उसके वियोगसे मुझे अनर्थकारी पाप लगता। इसीलिये मैंने उसकी रक्षा की है । अतः तुम मुझपर क्यों क्रोध करते हो ? ॥ २३-२४ ॥

यच्च मे गर्हसे राजन्नन्येन सह संगतम् ।
अहं त्वया विनिकृतस्तत्र मे बुद्धिविभ्रमः ॥ २५ ॥

राजन् ! आप जो यह कहकर मेरी निन्दा कर रहे हैं कि 'अर्जुन ! मैं दूसरेके साथ युद्धमें लगा हुआ था, उस दशामें तुमने मेरे साथ छल किया' आपकी इस बातसे मेरी बुद्धिमें भ्रम पैदा हो गया है ॥ २५ ॥

कवचं धुन्वतस्तुभ्यं रथं चारोहतः स्वयम् ।
धनुर्ज्यां कर्षतश्चैव युध्यतः सह शत्रुभिः ॥ २६ ॥
एवं रथगजाकीर्णे हयपत्तिसमाकुले ।
सिंहनादोद्धतरवे गम्भीरे सैन्यसागरे ॥ २७ ॥
स्वैः परैश्च समेतेभ्यः सात्वतेन च संगमे ।
एकस्यैकेन हि कथं संग्रामः सम्भविष्यति ॥ २८ ॥

तुम स्वयं कवच हिलाते हुए रथपर चढ़े थे, धनुषकी प्रत्यञ्चा खींचते थे और अपने बहुसंख्यक शत्रुओंके साथ युद्ध कर रहे थे। इस प्रकार रथ, हाथी, घुड़सवार और पैदलोंसे भरे हुए सिंहनादकी भैरव गर्जनासे व्याप्त गम्भीर सैन्य-समुद्रमें जहाँ अपने और शत्रुपक्षके एकत्र हुए लोगोंका परस्पर युद्ध चल रहा था, तुम्हारी सात्यकिके साथ मुठभेड़ हुई थी। ऐसे तुमुल युद्धमें किसी भी एक

योद्धाका एक ही योद्धाके साथ संग्राम कैसे माना जा सकता है ? ॥ २६-२८ ॥

बहुभिः सह संगम्य निर्जित्य च महारथान् ।
श्रान्तश्च श्रान्तवाहश्च विमनाः शस्त्रपीडितः ॥ २९ ॥

सात्यकि बहुतसे योद्धाओंके साथ युद्ध करके कितने ही महारथियोंको पराजित करनेके बाद थक गया था । उसके घोड़े भी परिश्रमसे चूर-चूर हो रहे थे और वह अस्त्र-शस्त्रोंसे पीड़ित हो खिन्नचित्त हो गया था ॥ २९ ॥

ईदृशं सात्यकिं संख्ये निर्जित्य च महारथम् ।
अधिकत्वं विजानीषे स्ववीर्यवशमागतम् ॥ ३० ॥

ऐसी अवस्थामें महारथी सात्यकिको युद्धमें जीतकर तुम यह समझने लगे कि मैं सात्यकिसे बड़ा वीर हूँ और वह मेरे पराक्रमसे वशमें आ गया है ॥ ३० ॥

यदिच्छसि शिरश्चास्य असिना हन्तुमाहवे ।
तथा कृच्छ्रगतं चैव सात्यकिं कः क्षमिष्यति ॥ ३१ ॥

इसीलिये तुम युद्धस्थलमें तलवारसे उसका सिर काट लेना चाहते थे । सात्यकिको वैसे संकटमें देखकर मेरे पक्षका कौन वीर सहन करेगा ? ॥ ३१ ॥

त्वं वै विगर्हयात्मानमात्मानं यो न रक्षसि ।
कथं करिष्यसे वीर यो वा त्वां संश्रयेज्जनः ॥ ३२ ॥

तुम अपनी ही निन्दा करो, जो कि अपनी भी रक्षातक नहीं कर सकते । वीरवर ! फिर जो तुम्हारे आश्रयमें होगा, उसकी रक्षा कैसे कर सकोगे ? ॥ ३२ ॥

संजय उवाच

एवमुक्तो महाबाहुर्यूपकेतुर्महायशाः ।
युयुधानं समुत्सृज्य रणे प्रायमुपाविशत् ॥ ३३ ॥

संजय कहते हैं--राजन् ! अर्जुनके ऐसा कहनेपर यूपके चिह्नसे युक्त ध्वजावाले महायशस्वी महाबाहु भूरिश्रवा सात्यकिको छोड़कर रणभूमिमें आमरण अनशनका नियम लेकर बैठ गये ॥ ३३ ॥

शरानास्तीर्य सव्येन पाणिना पुण्यलक्षणः ।
यियासुर्ब्रह्मलोकाय प्राणान् प्राणेष्वथाजुहोत् ॥ ३४ ॥

पवित्र लक्षणोंवाले भूरिश्रवाने बायें हाथसे बाण बिछाकर ब्रह्मलोकमें जानेकी इच्छासे प्राणायामके द्वारा प्राणोंको प्राणोंमें ही होम दिया ॥ ३४ ॥

सूर्ये चक्षुः समाधाय प्रसन्नं सलिले मनः ।
ध्यायन् महोपनिषदं योगयुक्तोऽभवन्मुनिः ॥ ३५ ॥

वे नेत्रोंको सूर्यमें और प्रसन्न मनको जलमें समाहित करके महोपनिषत्प्रतिपादित परब्रह्मका चिन्तन करते हुए योगयुक्त मुनि हो गये ॥ ३५ ॥

ततः स सर्वसेनायां जनः कृष्णधनंजयौ ।
गर्हयामास तं चापि शशंस पुरुषर्षभम् ॥ ३६ ॥

तदनन्तर सारी कौरव-सेनाके लोग श्रीकृष्ण और अर्जुनकी निन्दा तथा नरश्रेष्ठ भूरिश्रवाकी प्रशंसा करने लगे ॥ ३६ ॥

निन्द्यमानौ तथा कृष्णौ नोचतुः किंचिदप्रियम् ।
ततः प्रशस्यमानश्च नाहृष्यद् यूपकेतनः ॥ ३७ ॥

उनके द्वारा निन्दित होनेपर भी श्रीकृष्ण और अर्जुनने कोई अप्रिय बात नहीं कही तथा प्रशंसित होनेपर भी यूपकेतु भूरिश्रवाने हर्ष नहीं प्रकट किया ॥ ३७ ॥

तांस्तथावादिनो राजन् पुत्रांस्तव धनंजयः ।
अमृष्यमाणो मनसा तेषां तस्य च भाषितम् ॥ ३८ ॥

राजन् ! आपके पुत्र जब भूरिश्रवाकी ही भाँति निन्दाकी बातें कहने लगे, तब अर्जुन उनके तथा भूरिश्रवाके उस कथनको मन-ही-मन सहन न कर सके ॥ ३८ ॥

असंक्रुद्धमना वाचः स्मारयन्निव भारत ।
उवाच पाण्डुतनयः साक्षेपमिव फाल्गुनः ॥ ३९ ॥

भरतनन्दन ! पाण्डुपुत्र अर्जुनके मनमें तनिक भी क्रोध नहीं हुआ । उन्होंने मानो पुरानी बातें याद दिलाते हुए, कौरवोंपर आक्षेप करते हुए-से कहा-- ॥ ३९ ॥

मम सर्वेऽपि राजानो जानन्त्येव महाव्रतम् ।
न शक्यो मामको हन्तुं यो मे स्याद् बाणगोचरे ॥ ४० ॥

'सब राजा मेरे इस महान् व्रतको जानते ही हैं कि जो कोई मेरा आत्मीयजन मेरे बाणोंकी पहुँचके भीतर होगा, वह किसी शत्रुके द्वारा मारा नहीं जा सकता ॥ ४० ॥

यूपकेतो निरीक्ष्यैतन्न मामर्हसि गर्हितुम् ।
न हि धर्ममविज्ञाय युक्तं गर्हयितुं परम् ॥ ४१ ॥

'यूपध्वज भूरिश्रवाजी ! इस बातपर ध्यान देकर आपको मेरी निन्दा नहीं करनी चाहिये । धर्मके स्वरूपको जाने बिना दूसरे किसीकी निन्दा करनी उचित नहीं है ॥ ४१ ॥

आत्तशस्त्रस्य हि रणे वृष्णिवीरं जिघांसतः ।
यदहं बाहुमच्छैत्सं न स धर्मो विगर्हितः ॥ ४२ ॥

'आप तलवार हाथमें लेकर रणभूमिमें वृष्णिवीर सात्यकिका वध करना चाहते थे । उस दशामें मैंने जो आपकी बाँह काट डाली है, वह आश्रित-रक्षारूप धर्म निन्दित नहीं है ॥ ४२ ॥

न्यस्तशस्त्रस्य बालस्य विरथस्य विवर्मणः ।
अभिमन्योर्वधं तात धार्मिकः को नु पूजयेत् ॥ ४३ ॥

तात ! बालक अभिमन्यु शस्त्र, कवच और रथसे हीन हो चुका था, उस दशामें जो उसका वध किया गया, उसकी कौन धार्मिक पुरुष प्रशंसा कर सकता है ॥ ४३ ॥

(दुर्योधनस्य क्षुद्रस्य न प्रमाणेऽवतिष्ठतः ।
सौमदत्तेर्वधः साधुः स वै साहाय्यकारिणः ॥

'जो शास्त्रीय मर्यादामें स्थित नहीं रहता, उस नीच दुर्योधनकी सहायता करनेवाले सोमदत्तकुमार भूरिश्रवाका जो इस प्रकार वध हुआ है, वह ठीक ही है ॥

अस्मदीया मया रक्ष्याः प्राणबाध उपस्थिते ।
ये मे प्रत्यक्षतो वीरा हन्येरन्निति मे मतिः ॥

'मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि मुझे प्राण-संकट उपस्थित होनेपर आत्मीय जनोंकी रक्षा करनी चाहिये; विशेषतः उन वीरोंकी जो मेरी आँखोंके सामने मारे जा रहे हों ॥

सात्यकिश्च वशं नीतः कौरवेण महात्मना ।
ततो मयैतच्चरितं प्रतिज्ञारक्षणं प्रति ॥

'कुरुवंशी महामना भूरिश्रवाने सात्यकिको अपने वशमें कर लिया था । इसीसे अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये मैंने यह कार्य किया है' ॥

संजय उवाच

पुनश्च कृपयाऽऽविष्टो बहु तत्तद् विचिन्तयन् ।
उवाच चैनं कौरव्यमर्जुनः शोकपीडितः ॥

संजय कहते हैं—राजन्! फिर बहुत-सी भिन्न-भिन्न बातें सोचकर अर्जुन दयासे द्रवित और शोकसे पीड़ित हो उठे तथा कुरुवंशी भूरिश्रवासे इस प्रकार बोले ॥

अर्जुन उवाच

धिगस्तु क्षत्रधर्मं तु यत्र त्वं पुरुषेश्वरः ।
अवस्थामीदृशीं प्राप्तः शरण्यः शरणप्रदः ॥

अर्जुनने कहा—उस क्षत्रिय-धर्मको धिक्कार है, जहाँ दूसरोंको शरण देनेवाले आप-जैसे शरणागतवत्सल नरेश ऐसी अवस्थाको जा पहुँचे हैं ॥

को हि नाम पुमाँल्लोके मादृशः पुरुषोत्तमः ।
प्रहरेत् त्वद्विधं त्वद्य प्रतिज्ञा यदि नो भवेत् ॥)

यदि पहलेसे प्रतिज्ञा न की गयी होती तो संसारमें मेरे-जैसा कौन श्रेष्ठ पुरुष आप-जैसे गुरुजनपर आज ऐसा प्रहार कर सकता था ?॥

एवमुक्तः स पार्थेन शिरसा भूमिमस्पृशत् ।
पाणिना चैव सव्येन प्राहिणोदस्य दक्षिणम् ॥ ४४ ॥

कुन्तीकुमार अर्जुनके ऐसा कहनेपर भूरिश्रवाने अपने मस्तकसे भूमिका स्पर्श किया । बायें हाथसे अपना दाहिना हाथ उठाकर अर्जुनके पास फेंक दिया ॥ ४४ ॥

एतत् पार्थस्य तु वचस्ततः श्रुत्वा महाद्युतिः ।
यूपकेतुर्महाराज तूष्णीमासीदवाङ्मुखः ॥ ४५ ॥

महाराज! पार्थकी उपर्युक्त बात सुनकर यूपचिह्नित ध्वजा-वाले महातेजस्वी भूरिश्रवा नीचे मुँह किये मौन रह गये ॥४५॥

अर्जुन उवाच

या प्रीतिर्धर्मराजे मे भीमे च बलिनां वरे ।
नकुले सहदेवे च सा मे त्वयि शलाग्रज ॥ ४६ ॥

उस समय अर्जुनने कहा—शलके बड़े भाई भूरिश्रवाजी! मेरा जो प्रेम धर्मराज युधिष्ठिर, बलवानोंमें श्रेष्ठ भीमसेन, नकुल और सहदेवमें है, वही आपमें भी है ॥४६॥

मया त्वं समनुज्ञातः कृष्णेन च महात्मना ।
गच्छ पुण्यकृताँल्लोकाञ्छिबिरौशीनरो यथा ॥ ४७ ॥

मैं और महात्मा भगवान् श्रीकृष्ण आपको यह आज्ञा देते हैं कि आप उशीनर-पुत्र शिबिके समान पुण्यात्मा पुरुषोंके लोकोंमें जायँ ॥ ४७ ॥

वासुदेव उवाच

ये लोका मम विमलाः सकृद् विभाता
ब्रह्माद्यैः सुरवृषभैरपीष्यमाणाः ।
तान् क्षिप्रं व्रज सततागिनहोत्रयाजिन्
मत्तुल्यो भव गरुडोत्तमाङ्गयानः ॥ ४८ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—निरन्तर अग्निहोत्रद्वारा यजन करनेवाले भूरिश्रवाजी! मेरे जो निरन्तर प्रकाशित होनेवाले निर्मल लोक हैं और ब्रह्मा आदि देवेश्वर भी जहाँ जानेकी सदैव अभिलाषा रखते हैं, उन्हीं लोकोंमें आप शीघ्र पधारिये और मेरे ही समान गरुड़की पीठपर बैठकर विचरनेवाले होइये ॥ ४८ ॥

संजय उवाच

उत्थितः स तु शैनेयो विमुक्तः सौमदत्तिना ।
खड्गमादाय चिच्छित्सुः शिरस्तस्य महात्मनः ॥ ४९ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! सोमदत्तकुमार भूरिश्रवाके छोड़ देनेपर शिनि-पौत्र सात्यकि उठकर खड़े हो गये । फिर उन्होंने तलवार लेकर महामना भूरिश्रवाका सिर काट लेनेका निश्चय किया ॥ ४९ ॥

निहतं पाण्डुपुत्रेण प्रसक्तं भूरिदक्षिणम् ।
इयेष सात्यकिर्हन्तुं शलाग्रजमकल्मषम् ॥ ५० ॥
निकृत्तभुजमासीनं छिन्नहस्तमिव द्विपम् ।

शलके बड़े भाई प्रचुर दक्षिणा देनेवाले भूरिश्रवा सर्वथा निष्पाप थे । पाण्डुपुत्र अर्जुनने उनकी बाँह काटकर उनका वध-सा ही कर दिया था और इसीलिये वे आमरण अनशनका निश्चय लेकर ध्यान आदि अन्य कार्योंमें आसक्त हो गये थे । उस अवस्थामें सात्यकिने बाँह कट जानेसे सूँड़ कटे हाथीके समान बैठे हुए भूरिश्रवाको मार डालनेकी इच्छा की ॥ ५०½ ॥

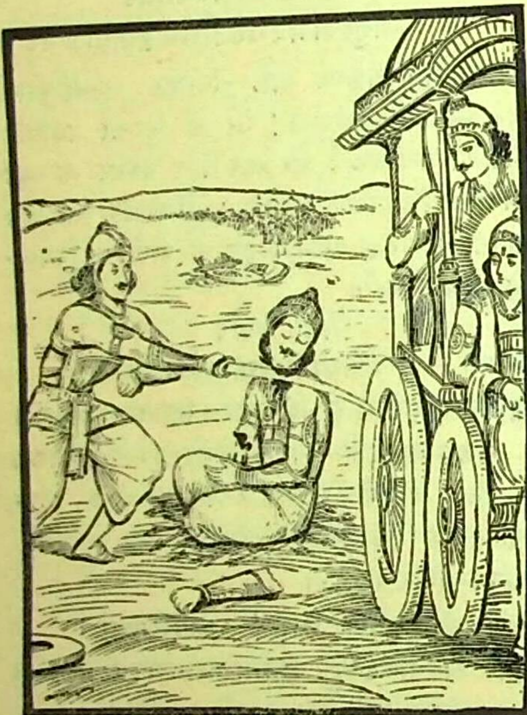
क्रोशतां सर्वसैन्यानां निन्द्यमानः सुदुर्मनाः ॥ ५१ ॥
वार्यमाणः स कृष्णेन पार्थेन च महात्मना ।
भीमेन चक्ररक्षाभ्यामश्वत्थाम्ना कृपेण च ॥ ५२ ॥
कर्णेन वृषसेनेन सैन्धवेन तथैव च ।
विक्रोशतां च सैन्यानामवधीत् तं धृतव्रतम् ॥ ५३ ॥

उस समय समस्त सेनाके लोग चिल्ला-चिल्लाकर

सात्यकिकी निन्दा कर रहे थे। परंतु सात्यकिकी मनोदशा बहुत बुरी थी। भगवान् श्रीकृष्ण तथा महात्मा अर्जुन भी उन्हें रोक रहे थे। भीमसेन, चक्ररक्षक युधामन्यु और उत्तमौजा, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, वृषसेन तथा सिंधुराज जयद्रथ भी उन्हें मना करते रहे, किंतु समस्त सैनिकोंके चीखने-चिल्लानेपर भी सात्यकिने उस व्रतधारी भूरिश्रवाका वध कर ही डाला ॥ ५१–५३ ॥

प्रायोपविष्टाय रणे पार्थेन छिन्नबाहवे ।
सात्यकिः कौरवेयाय खड्गेनापाहरच्छिरः ॥ ५४ ॥

रणभूमिमें अर्जुनने जिनकी भुजा काट डाली थी तथा जो आमरण उपवासका व्रत लेकर बैठे थे, उन भूरिश्रवापर सात्यकिने खड्गका प्रहार किया और उनका सिर काट लिया ॥



नाभ्यनन्दन्त सैन्यानि सात्यकिं तेन कर्मणा ।
अर्जुनेन हतं पूर्वं यज्जघान कुरूद्वहम् ॥ ५५ ॥

अर्जुनने पहले जिन्हें मार डाला था, उन कुरुश्रेष्ठ भूरिश्रवाका सात्यकिने जो वध किया, उनके उस कर्मसे सैनिकोंने उनका अभिनन्दन नहीं किया ॥ ५५ ॥

सहस्राक्षसमं चैव सिद्धचारणमानवाः ।
भूरिश्रवसमालोक्य युद्धे प्रायगतं हतम् ॥ ५६ ॥
अपूजयन्त तं देवा विस्मितास्तेऽस्य कर्मभिः ।

युद्धमें प्रायोपवेशन करनेवाले, इन्द्रके समान पराक्रमी भूरिश्रवाको मारा गया देख सिद्ध, चारण, मनुष्य और देवताओंने उनका गुणगान किया; क्योंकि वे भूरिश्रवाके कर्मोंसे आश्चर्यचकित हो रहे थे ॥ ५६½ ॥

पक्षवादांश्च सुबहून् प्रावदंस्तव सैनिकाः ॥ ५७ ॥
न वार्ष्णेयस्यापराधो भवितव्यं हि तत् तथा ।
तस्मान्मन्युर्न वः कार्यः क्रोधो दुःखतरो नृणाम् ॥ ५८ ॥

आपके सैनिकोंने सात्यकिके पक्ष और विपक्षमें बहुत-सी बातें कहीं। अन्तमें वे इस प्रकार बोले—'इसमें सात्यकिका कोई अपराध नहीं है। होनहार ही ऐसी थी। इसलिये आपलोगोंको अपने मनमें क्रोध नहीं करना चाहिये; क्योंकि क्रोध ही मनुष्योंके लिये अधिक दुःखदायी होता है ५७-५८

हन्तव्यश्चैव वीरेण नात्र कार्या विचारणा ।
विहितो ह्यस्य धात्रैव मृत्युः सात्यकिराहवे ॥ ५९ ॥

'वीर सात्यकिके द्वारा ही भूरिश्रवा मारे जानेवाले थे। विधाताने युद्धस्थलमें ही सात्यकिको उनकी मृत्यु निश्चित कर दिया था; इसलिये इसमें विचार नहीं करना चाहिये ।५९।

सात्यकिरुवाच

न हन्तव्यो न हन्तव्य इति यन्मां प्रभाषत ।
धर्मवादैरधर्मिष्ठा धर्मकञ्चुकमास्थिताः ॥ ६० ॥

सात्यकि बोले—धर्मका चोला पहनकर खड़े हुए अधर्मपरायण पापात्माओ ! इस समय धर्मकी बातें बनाते हुए तुमलोग जो मुझसे बारंबार कह रहे हो कि 'न मारो, न मारो' उसका उत्तर मुझसे सुन लो ॥ ६० ॥

यदा बालः सुभद्रायाः सुतः शस्त्रविना कृतः ।
युष्माभिर्निहतो युद्धे तदा धर्मः क्व वो गतः ॥ ६१ ॥

जब तुमलोगोंने सुभद्राके बालक पुत्र अभिमन्युको युद्धमें शस्त्रहीन करके मार डाला था, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था ? ॥ ६१ ॥

मया त्वेतत् प्रतिज्ञातं क्षेपे कस्मिंश्चिदेव हि ।
यो मां निष्पिष्य संग्रामे जीवन् हन्यात् पदा रुषा ॥ ६२ ॥
स मे वध्यो भवेच्छत्रुर्यद्यपि स्यान्मुनिव्रतः ।

मैंने तो पहलेसे ही यह प्रतिज्ञा कर रक्खी है कि जिसके द्वारा कभी भी मेरा तिरस्कार हो जायगा अथवा जो संग्रामभूमिमें मुझे पटककर जीते-जी रोषपूर्वक मुझे लात मारेगा, वह शत्रु मुनियोंके समान मौनव्रत लेकर ही क्यों न बैठा हो, अवश्य मेरा वध्य होगा ॥ ६२½ ॥

चेष्टमानं प्रतीघाते सभुजं मां सचक्षुषः ॥ ६३ ॥
मन्यध्वं मृत इत्येवमेतद् वो बुद्धिलाघवम् ।
युक्तो ह्यस्य प्रतीघातः कृतो मे कुरुपुङ्गवाः ॥ ६४ ॥

मेरी बाँहें मौजूद हैं और मैं अपने ऊपर किये गये आघातका बदला लेनेकी निरन्तर चेष्टा करता आया हूँ तो भी तुमलोग आँख रहते हुए भी यदि मुझे मरा हुआ मानते हो, तो यह तुम्हारी बुद्धिकी मन्दताका परिचायक है। कुरुवीरो ! मैंने तो भूरिश्रवाका वध करके बदला चुकाया है जो सर्वथा उचित है ॥ ६३-६४ ॥

यत् तु पार्थेन मां दृष्ट्वा प्रतिज्ञामभिरक्षता।
सखड्गोऽस्य हृतो बाहुरेतेनैवास्मि वञ्चितः ॥ ६५ ॥

कुन्तीकुमार अर्जुनने अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षा करते हुए जो मुझे संकटमें देखकर भूरिश्रवाकी तलवारसहित बाँह काट डाली, इसीसे मैं भूरिश्रवाको मारनेके यशसे वञ्चित रह गया ॥ ६५ ॥

भवितव्यं हि यद् भावि दैवं चेष्टयतीव च।
सोऽयं हतो विमर्देऽस्मिन् किमत्राधर्मचेष्टितम् ॥ ६६ ॥

जो होनहार होती है, उसके अनुकूल ही दैव चेष्टा कराता है। इसीके अनुसार इस संग्राममें भूरिश्रवा मारे गये हैं। इसमें अधर्मपूर्ण चेष्टा क्या है? ॥ ६६ ॥

अपि चायं पुरा गीतः श्लोको वाल्मीकिना भुवि।
न हन्तव्याः स्त्रिय इति यद् ब्रवीषि प्लवङ्गम ॥ ६७ ॥
सर्वकालं मनुष्येण व्यवसायवता सदा।
पीडाकरममित्राणां यत् स्यात् कर्तव्यमेव तत् ॥ ६८ ॥

महर्षि वाल्मीकिने पूर्वकालमें ही इस भूतलपर एक श्लोकका गान किया है। जिसका भावार्थ इस प्रकार है—'वानर! तुम जो यह कहते हो कि स्त्रियोंका वध नहीं करना चाहिये, उसके उत्तरमें मेरा यह कहना है कि उद्योगी मनुष्यके लिये सदा सब समय वह कार्य करने ही योग्य माना गया है, जो शत्रुओंको पीड़ा देनेवाला हो' ॥ ६७-६८ ॥

संजय उवाच

एवमुक्ते महाराज सर्वे कौरवपुङ्गवाः।
न स्म किंचिदभाषन्त मनसा समपूजयन् ॥ ६९ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! सात्यकिके ऐसा कहनेपर समस्त श्रेष्ठ कौरवोंने उसके उत्तरमें कुछ नहीं कहा। वे मन-ही-मन उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ६९ ॥

मन्त्राभिपूतस्य महाध्वरेषु
यशस्विनो भूरिसहस्रदस्य च।
मुनेरिवारण्यगतस्य तस्य
न तत्र कश्चिद् वधमभ्यनन्दत ॥ ७० ॥

बड़े-बड़े यज्ञोंमें मन्त्रयुक्त अभिषेकसे जो पवित्र हो चुके थे, यज्ञोंमें कई हजार स्वर्णमुद्राओंकी दक्षिणा देते थे, जिनका यश सर्वत्र फैला हुआ था और जो वनवासी मुनिके समान वहाँ बैठे हुए थे, उन भूरिश्रवाके वधका किसीने भी अभिनन्दन नहीं किया ॥ ७० ॥

सुनीलकेशं वरदस्य तस्य
शूरस्य पारावतलोहिताक्षम्।
अश्वस्य मेध्यस्य शिरो निकृत्तं
न्यस्तं हविर्धानमिवान्तरेण ॥ ७१ ॥

वर देनेवाले भूरिश्रवाका नीले केशोंसे अलंकृत तथा कबूतरके समान लाल नेत्रोंवाला वह कटा हुआ सिर ऐसा जान पड़ता था, मानो अश्वमेधके मेध्य अश्वका कटा हुआ मस्तक अग्निकुण्डके भीतर रक्खा गया हो ॥ ७१ ॥

स तेजसा शस्त्रकृतेन पूतो
महाहवे देहवरं विसृज्य।
आक्रामदूर्ध्वं वरदो वरार्हो
व्यावृत्य धर्मेण परेण रोदसी ॥ ७२ ॥

वरदायक तथा वर पानेके योग्य भूरिश्रवाने उस महायुद्धमें शस्त्रके तेजसे पवित्र हो अपने उत्तम शरीरका परित्याग करके उत्कृष्ट धर्मके द्वारा पृथ्वी और आकाशको लाँघकर ऊर्ध्वलोकमें गमन किया ॥ ७२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भूरिश्रवोवधे त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भूरिश्रवाका वधविषयक एक सौ तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ८½ श्लोक मिलाकर कुल ८०½ श्लोक हैं)

चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिके भूरिश्रवाद्वारा अपमानित होनेका कारण तथा वृष्णिवंशी वीरोंकी प्रशंसा

धृतराष्ट्र उवाच

अजितो द्रोणराधेयविकर्णकृतवर्मभिः।
तीर्णः सैन्यार्णवं वीरः प्रतिश्रुत्य युधिष्ठिरे ॥ १ ॥
स कथं कौरवेयेण समरेष्वनिवारितः।
निगृह्य भूरिश्रवसा बलाद् भुवि निपातितः ॥ २ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! जो वीर सात्यकि द्रोण, कर्ण, विकर्ण और कृतवर्मासे भी परास्त न हुए और युधिष्ठिरसे की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार कौरव-सेनारूपी समुद्रसे पार हो गये, जिन्हें समराङ्गणमें कोई भी रोक न सका, उन्हींको कुरुवंशी भूरिश्रवाने बलपूर्वक पकड़कर कैसे पृथ्वीपर गिरा दिया? ॥ १-२ ॥

संजय उवाच

शृणु राजन्निहोत्पत्तिं शैनेयस्य यथा पुरा।
यथा च भूरिश्रवसो यत्र ते संशयो नृप ॥ ३ ॥

संजयने कहा—राजन्! जिस विषयमें आपको संशय है, उसे स्पष्ट समझनेके लिये यहाँ पूर्वकालमें सात्यकि और भूरिश्रवाकी उत्पत्ति जिस प्रकार हुई थी, वह प्रसंग सुनिये ॥ ३ ॥

अत्रेः पुत्रोऽभवत् सोमः सोमस्य तु बुधः स्मृतः।
बुधस्यैको महेन्द्राभः पुत्र आसीत् पुरूरवाः ॥ ४ ॥

महर्षि अत्रिके पुत्र सोम हुए। सोमके पुत्र बुध माने

गये हैं। बुधके एक ही पुत्र हुआ पुरूरवा, जो देवराज इन्द्रके समान तेजस्वी था ॥ ४ ॥

पुरूरवस आयुस्तु आयुषो नहुषः सुतः।
नहुषस्य ययातिस्तु राजा देवर्षिसम्मतः ॥ ५ ॥

पुरूरवाके पुत्र आयु और आयुके पुत्र नहुष हुए। नहुषके राजा ययाति हुए, जिनका देवताओं तथा ऋषियोंमें भी बड़ा आदर था ॥ ५ ॥

ययातेर्देवयान्यां तु यदुर्ज्येष्ठोऽभवत् सुतः।
यदोरभूदन्ववाये देवमीढ इति स्मृतः ॥ ६ ॥
यादवस्तस्य तु सुतः शूरस्त्रैलोक्यसम्मतः।
शूरस्य शौरिर्नृवरो वसुदेवो महायशाः ॥ ७ ॥

ययातिसे देवयानीके गर्भसे जो ज्येष्ठ पुत्र हुआ, उसका नाम यदु था। इन्हीं यदुके वंशमें देवमीढ़ नामसे विख्यात एक यादव हो गये हैं। उनके पुत्रका नाम था शूर, जो तीनों लोकोंमें सम्मानित थे। शूरके पुत्र नरश्रेष्ठ शौरि हुए, जो महायशस्वी वसुदेवके नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ६-७ ॥

धनुष्यनवरः शूरः कार्तवीर्यसमो युधि।
तद्वीर्यश्चापि तत्रैव कुले शिनिरभून्नृप ॥ ८ ॥

शूर धनुर्विद्यामें सबसे श्रेष्ठ थे। वे युद्धमें कार्तवीर्य अर्जुनके समान पराक्रमी थे। नरेश्वर! जिस कुलमें शूरका जन्म हुआ था, उसीमें उन्हींके समान बलशाली शिनि हुए ॥

एतस्मिन्नेव काले तु देवकस्य महात्मनः।
दुहितुः स्वयंवरे राजन् सर्वक्षत्रसमागमे ॥ ९ ॥

राजन्! इसी समय महात्मा देवककी पुत्री देवकीके स्वयंवरमें सम्पूर्ण क्षत्रिय एकत्र हुए थे ॥ ९ ॥

तत्र वै देवकीं देवीं वसुदेवार्थमाशु वै।
निर्जित्य पार्थिवान् सर्वान् रथमारोपयच्छिनिः ॥ १० ॥

उस स्वयंवरमें शिनिने शीघ्र ही समस्त राजाओंको जीतकर वसुदेवके लिये देवकी देवीको रथपर बैठा लिया ॥ १० ॥

तां दृष्ट्वा देवकीं शूरो रथस्थां पुरुषर्षभ।
नामृष्यत महातेजाः सोमदत्तः शिनेर्नृप ॥ ११ ॥

नरश्रेष्ठ! नरेश्वर! उस समय महातेजस्वी शूरवीर सोमदत्तने देवकी देवीको रथपर बैठे हुए देख शिनिके पराक्रमको सहन नहीं किया ॥ ११ ॥

तयोर्युद्धमभूद् राजन् दिनार्धं चित्रमद्भुतम्।
बाहुयुद्धं सुबलिनोः प्रसक्तं पुरुषर्षभ ॥ १२ ॥

पुरुषप्रवर महाराज! उन दोनों महाबली शिनि और सोमदत्तमें आधे दिनतक विचित्र एवं अद्भुत बाहुयुद्ध हुआ ॥

शिनिना सोमदत्तस्तु प्रसह्य भुवि पातितः।
असिमुद्यम्य केशेषु प्रगृह्य च पदा हतः ॥ १३ ॥

उसमें शिनिने सोमदत्तको बलपूर्वक पृथ्वीपर पटक दिया और तलवार उठाकर उनकी चुटिया पकड़ ली एवं उन्हें लात मारी ॥ १३ ॥

मध्ये राजसहस्राणां प्रेक्षकाणां समन्ततः।
कृपया च पुनस्तेन स जीवेति विसर्जितः ॥ १४ ॥

चारों ओरसे सहस्रों नरेश दर्शक बनकर यह युद्ध देख रहे थे। उनके बीचमें पुनः कृपा करके 'जाओ, जीवित रहो' ऐसा कहकर शिनिने सोमदत्तको छोड़ दिया ॥ १४ ॥

तदवस्थः कृतस्तेन सोमदत्तोऽथ मारिष।
प्रासादयन्महादेवममर्षवशमास्थितः ॥ १५ ॥

माननीय नरेश! जब शिनिने सोमदत्तकी ऐसी दुरवस्था कर दी, तब उन्होंने अमर्षके वशीभूत हो आराधनाद्वारा महादेवजीको प्रसन्न किया ॥ १५ ॥

तस्य तुष्टो महादेवो वराणां वरदः प्रभुः।
वरेण च्छन्दयामास स तु वव्रे वरं नृपः ॥ १६ ॥

श्रेष्ठ देवताओंमें भी सर्वश्रेष्ठ वरदायक तथा सामर्थ्यशाली महादेवजीने संतुष्ट होकर उन्हें इच्छानुसार वर माँगनेके लिये कहा। तब राजा सोमदत्तने इस प्रकार वर माँगा— ॥ १६ ॥

पुत्रमिच्छामि भगवन् यो निपात्य शिनेः सुतम्।
मध्ये राजसहस्राणां पदा हन्याच्च संयुगे ॥ १७ ॥

'भगवन्! मैं ऐसा पुत्र पाना चाहता हूँ, जो शिनिके पुत्रको सहस्रों राजाओंके बीच युद्धमें पृथ्वीपर गिराकर उसे पैरसे मारे' ॥ १७ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा सोमदत्तस्य पार्थिव।
(सशिरःकम्पमाहेदं नैतदेवं भवेन्नृप।
स पूर्वमेव तपसा मामाराध्य जगत्त्रये ॥
कस्याप्यवध्यतां मत्तः प्राप्तवान् वरमुत्तमम्।
तवाप्ययं प्रयासस्तु निष्फलो न भविष्यति ॥
तस्य पौत्रं तु समरे त्वत्पुत्रो मोहयिष्यति।
न तु मारयितुं शक्यः कृष्णसंरक्षितो ह्यसौ ॥
अहमेव तु कृष्णोऽस्मि नावयोरन्तरं क्वचित्।)
एवमस्त्विति तत्रोक्त्वा स देवोऽन्तरधीयत ॥ १८ ॥

राजन्! सोमदत्तका यह कथन सुनकर महादेवजीने सिर हिलाकर कहा—'नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। नरेश्वर! शिनिके पुत्रने तो पहले ही तपस्याद्वारा मेरी आराधना करके तीनों लोकोंमें किसीसे भी न मारे जानेका उत्तम वर मुझसे प्राप्त कर लिया है; परंतु तुम्हारा भी यह प्रयास निष्फल नहीं होगा। तुम्हारा पुत्र समरभूमिमें शिनिके पौत्रको तुम्हारी इच्छाके अनुसार मूर्छित कर देगा, परंतु उसके हाथसे वह मारा नहीं जा सकेगा; क्योंकि श्रीकृष्णसे वह सुरक्षित होगा। मैं ही श्रीकृष्ण हूँ। हम दोनोंमें कहीं कोई अन्तर नहीं है। जाओ, ऐसा ही होगा।' ऐसा कहकर महादेवजी वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ १८ ॥

स तेन वरदानेन लब्धवान् भूरिदक्षिणम्।
अपातयच्च समरे सौमदत्तिः शिनेः सुतम् ॥ १९ ॥

उसी वरदानके प्रभावसे सोमदत्तने प्रचुर दक्षिणा देनेवाले भूरिश्रवाको पुत्ररूपमें प्राप्त किया और उसने समराङ्गणमें शिनिवंशज सात्यकिको गिरा दिया ॥ १९ ॥

पश्यतां सर्वसैन्यानां पदा चैनमताडयत्।
एतत् ते कथितं राजन् यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ २० ॥

इतना ही नहीं, उसने सारी सेनाओंके देखते-देखते सात्यकिको लात भी मारी। राजन्! आप मुझसे जो पूछ रहे थे, उसके उत्तरमें यह प्रसंग सुनाया है ॥ २० ॥

न हि शक्यो रणे जेतुं सात्वतो मनुजर्षभैः।
लब्धलक्ष्याश्च संग्रामे बहुशश्चित्रयोधिनः ॥ २१ ॥

सात्यकिको रणभूमिमें श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ मनुष्य भी नहीं जीत सकते। वृष्णिवंशी योद्धा अपने निशानेको सफलतापूर्वक वेध लेते हैं। वे संग्रामभूमिमें अनेक प्रकारसे विचित्र युद्ध करनेवाले होते हैं ॥ २१ ॥

देवदानवगन्धर्वान् विजेतारो ह्यविस्मिताः।
स्ववीर्यविजये युक्ता नैते परपरिग्रहाः ॥ २२ ॥

देवताओं, दानवों तथा गन्धर्वोंपर भी वे विजयी होते हैं। फिर भी इसके लिये उनके मनमें गर्व या विस्मय नहीं होता। वे अपने ही बलसे विजय पानेका उद्योग करते हैं। ये वृष्णिवंशी कभी पराधीन नहीं होते हैं ॥ २२ ॥

न तुल्यं वृष्णिभिरिह दृश्यते किंचन प्रभो।
भूतं भव्यं भविष्यच्च बलेन भरतर्षभ ॥ २३ ॥

शक्तिशाली भरतश्रेष्ठ! भूत, वर्तमान और भविष्य कोई भी जगत् बलमें वृष्णिवंशियोंके समान नहीं दिखायी देता ॥ २३ ॥

न ज्ञातिमवमन्यन्ते वृद्धानां शासने रताः।
न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ॥ २४ ॥
जेतारो वृष्णिवीराणां किं पुनर्मानवा रणे।

ये अपने कुटुम्बीजनोंकी अवहेलना नहीं करते हैं। सदा बड़े-बूढ़ोंकी आज्ञामें तत्पर रहते हैं। देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, नाग और राक्षस भी युद्धमें वृष्णिवीरोंपर विजय नहीं पा सकते; फिर मनुष्य किस गिनतीमें हैं? ॥ २४½ ॥

ब्रह्मद्रव्ये गुरुद्रव्ये ज्ञातिस्वे चाप्यहिंसकाः ॥ २५ ॥
एतेषां रक्षितारश्च ये स्युः कस्यांचिदापदि।
अर्थवन्तो न चोत्सिक्ता ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः ॥ २६ ॥

ये ब्राह्मण, गुरु तथा कुटुम्बीजनोंके धन लेनेके लिये कभी हिंसा नहीं करते हैं। इन ब्राह्मण-गुरु आदिमें जो कोई भी किसी आपत्तिमें पड़े हों, उनकी ये वृष्णिवंशी रक्षा करते हैं। ये सब-के-सब धनवान्, अभिमानशून्य, ब्राह्मणभक्त और सत्यवादी होते हैं ॥ २५-२६ ॥

समर्थान् नावमन्यन्ते दीनानभ्युद्धरन्ति च।
नित्यं देवपरा दान्तास्त्रातारश्चाविकत्थनाः ॥ २७ ॥

ये सामर्थ्यशाली पुरुषोंकी अवहेलना नहीं करते और दीन-दुखियोंका उद्धार करते हैं। सदा देवभक्त, जितेन्द्रिय, दूसरोंके संरक्षक तथा आत्मप्रशंसासे दूर रहनेवाले हैं ॥

तेन वृष्णिप्रवीराणां चक्रं न प्रतिहन्यते।
अपि मेरुं वहेत् कश्चित् तरेद् वा मकरालयम्।
न तु वृष्णिप्रवीराणां समेत्यान्तं व्रजेन्नृप ॥ २८ ॥

इसीसे वृष्णिवीरोंका यह समूह किसीके द्वारा प्रतिहत नहीं होता है। नरेश्वर! कोई मेरुपर्वतको सिरपर उठा ले अथवा समुद्रको हाथोंसे तैर जाय; परंतु वृष्णिवीरोंके समूहका अन्त नहीं पा सकता ॥ २८ ॥

एतत् ते सर्वमाख्यातं यत्र ते संशयः प्रभो।
कुरुराज नरश्रेष्ठ तव ह्यपनयो महान् ॥ २९ ॥

प्रभो! जहाँ आपको संदेह था, वह सब मैंने अच्छी तरह बता दिया है। कुरुराज नरश्रेष्ठ! इस युद्धको चालू करनेमें आपका महान् अन्याय ही कारण है ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रशंसायां चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिकी प्रशंसाविषयक एक सौ चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४४ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३½ श्लोक मिलाकर कुल ३२½ श्लोक हैं)

पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अर्जुनका जयद्रथपर आक्रमण, कर्ण और दुर्योधनकी बातचीत, कर्णके साथ अर्जुनका युद्ध और कर्णकी पराजय तथा सब योद्धाओंके साथ अर्जुनका घोर युद्ध

धृतराष्ट्र उवाच

तदवस्थे हते तस्मिन् भूरिश्रवसि कौरवे।
यथा भूयोऽभवद् युद्धं तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! उस अवस्थामें कुरुवंशी भूरिश्रवाके मारे जानेपर पुनः जिस प्रकार युद्ध हुआ, वह मुझे बताओ ॥ १ ॥

संजय उवाच

भूरिश्रवसि संक्रान्ते परलोकाय भारत।

वासुदेवं महाबाहुरर्जुनः समचूचुदत् ॥ २ ॥

संजयने कहा—भारत ! भूरिश्रवाके परलोकगामी हो जानेपर महाबाहु अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णको प्रेरित करते हुए कहा—॥ २ ॥

चोदयाश्वान् भृशं कृष्ण यतो राजा जयद्रथः।
श्रूयते पुण्डरीकाक्ष त्रिषु धर्मेषु वर्तते ॥ ३ ॥
प्रतिज्ञां सफलां चापि कर्तुमर्हसि मेऽनघ।
अस्तमेति महाबाहो त्वरमाणो दिवाकरः ॥ ४ ॥

'श्रीकृष्ण ! जिस ओर राजा जयद्रथ खड़ा है, उसी ओर अब इन घोड़ोंको शीघ्रतापूर्वक हाँकिये। कमलनयन ! सुना जाता है कि वह इस समय तीन धर्मोंमें विद्यमान है। निष्पाप केशव ! मेरी प्रतिज्ञा आप सफल करें । महाबाहो ! सूर्यदेव तीव्रगतिसे अस्ताचलकी ओर जा रहे हैं ॥ ३-४ ॥

एतद्धि पुरुषव्याघ्र महदभ्युद्यतं मया।
कार्यं संरक्ष्यते चैष कुरुसेनामहारथैः ॥ ५ ॥

'पुरुषसिंह ! मैंने यह बहुत बड़े कार्यके लिये उद्योग आरम्भ किया है। कौरवसेनाके महारथी इस जयद्रथकी रक्षा कर रहे हैं ॥ ५ ॥

तथा नाभ्येति सूर्योऽस्तं यथा सत्यं भवेद् वचः।
चोदयाश्वांस्तथा कृष्ण यथा हन्यां जयद्रथम् ॥ ६ ॥

'श्रीकृष्ण! जबतक सूर्य अस्ताचलको न चले जायँ, तभी-तक जैसे भी मेरी प्रतिज्ञा सच्ची हो जाय और जैसे भी मैं जयद्रथको मार सकूँ, उसी प्रकार शीघ्रतापूर्वक इन घोड़ोंको हाँकिये' ॥ ६ ॥

ततः कृष्णो महाबाहू रजतप्रतिमान् हयान्।
हयज्ञश्चोदयामास जयद्रथवधं प्रति ॥ ७ ॥

तब अश्वविद्याके ज्ञाता महाबाहु श्रीकृष्णने जयद्रथको मारनेके उद्देश्यसे उसकी ओर चाँदीके समान श्वेत घोड़ोंको हाँका ॥ ७ ॥

तं प्रयान्तममोघेषुमुत्पतद्भिरिवाशुगैः।
त्वरमाणा महाराज सेनामुख्याः समाद्रवन् ॥ ८ ॥

महाराज ! जिनके बाण कभी व्यर्थ नहीं जाते, उन अर्जुनको धनुषसे छूटे हुए बाणोंके समान उड़ते हुए-से अश्वोंद्वारा जयद्रथकी ओर जाते देख कौरवसेनाके प्रधान-प्रधान वीर बड़े वेगसे दौड़े ॥ ८ ॥

दुर्योधनश्च कर्णश्च वृषसेनोऽथ मद्रराट्।
अश्वत्थामा कृपश्चैव स्वयमेव च सैन्धवः ॥ ९ ॥

दुर्योधन, कर्ण, वृषसेन, मद्रराज शल्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और स्वयं सिंधुराज जयद्रथ—ये सभी युद्धके लिये डट गये ॥ ९ ॥

समासाद्य च बीभत्सुः सैन्धवं समुपस्थितम्।
नेत्राभ्यां क्रोधदीप्ताभ्यां सम्प्रैक्षन्निर्दहन्निव ॥ १० ॥

वहाँ उपस्थित हुए सिंधुराजको सामने पाकर अर्जुनने क्रोधसे उद्दीप्त नेत्रोंद्वारा उसे इस प्रकार देखा, मानो जला-कर भस्म कर देंगे ॥ १० ॥

ततो दुर्योधनो राजा राधेयं त्वरितोऽब्रवीत्।
अर्जुनं प्रेक्ष्य संयातं जयद्रथवधं प्रति ॥ ११ ॥

तब राजा दुर्योधनने अर्जुनको जयद्रथको मारनेके लिये उसकी ओर जाते देख तुरंत ही राधापुत्र कर्णसे कहा—॥ ११ ॥

अयं स वैकर्तन युद्धकालो
विदर्शयस्वात्मबलं महात्मन्।
यथा न वध्येत रणेऽर्जुनेन
जयद्रथः कर्ण तथा कुरुष्व ॥ १२ ॥

'सूर्यपुत्र ! यही वह युद्धका समय आया है। महात्मन्! तुम इस समय अपना बल दिखाओ । कर्ण ! रणभूमिमें अर्जुनके द्वारा जैसे भी जयद्रथका वध न होने पावे, वैसा प्रयत्न करो॥

अल्पावशेषो, दिवसो नृवीर
विघातयस्वाद्य रिपुं शरौघैः।
दिनक्षयं प्राप्य नरप्रवीर
ध्रुवो हि नः कर्ण जयो भविष्यति ॥ १३ ॥

'नरवीर ! अब दिनका थोड़ा-सा ही भाग शेष है। तुम अपने बाणसमूहोंद्वारा इस समय शत्रुको घायल करके उसके कार्यमें बाधा डालो । मनुष्यलोकके प्रमुख वीर कर्ण! दिन समाप्त होनेपर तो निश्चय ही हमारी विजय हो जायगी॥

सैन्धवे रक्ष्यमाणे तु सूर्यस्यास्तमनं प्रति।
मिथ्याप्रतिज्ञः कौन्तेयः प्रवेक्ष्यति हुताशनम् ॥ १४ ॥

'सूर्यास्त होनेतक यदि सिंधुराज सुरक्षित रहे तो प्रतिज्ञा झूठी होनेके कारण अर्जुन अग्निमें प्रवेश कर जायँगे॥ १४ ॥

अनर्जुनायां च भुवि मुहूर्तमपि मानद।
जीवितुं नोत्सहेरन् वै भ्रातरोऽस्य सहानुगाः ॥ १५ ॥

'मानद ! फिर अर्जुनरहित भूतलपर उनके भाई और अनुगामी सेवक दो घड़ी भी जीवित नहीं रह सकते ॥ १५ ॥

विनष्टैः पाण्डवेयैश्च सशैलवनकाननाम्।
वसुंधरामिमां कर्ण भोक्ष्यामो हतकण्टकाम् ॥ १६ ॥

'कर्ण ! पाण्डवोंके नष्ट हो जानेपर हमलोग पर्वत, वन और काननोंसहित इस निष्कण्टक वसुधाका राज्य भोगेंगे ॥

दैवेनोपहतः पार्थो विपरीतश्च मानद।
कार्याकार्यमजानानः प्रतिज्ञां कृतवान् रणे ॥ १७ ॥

'मानद ! दैवके मारे हुए अर्जुनकी बुद्धि विपरीत हो गयी थी । इसीलिये कर्तव्य और अकर्तव्यका विचार न करके उन्होंने रणभूमिमें जयद्रथको मारनेकी प्रतिज्ञा कर ली॥ १७ ॥

नूनमात्मविनाशाय पाण्डवेन किरीटिना।
प्रतिज्ञेयं कृता कर्ण जयद्रथवधं प्रति ॥ १८ ॥

'कर्ण ! निश्चय ही किरीटधारी पाण्डव अर्जुनने अपने ही विनाशके लिये जयद्रथ-वधकी यह प्रतिज्ञा कर डाली है॥

कथं जीवति दुर्धर्षे त्वयि राधेय फाल्गुनः।
अनस्तंगत आदित्ये हन्यात् सैन्धवकं नृपम्॥ १९॥

'राधानन्दन ! तुम-जैसे दुर्धर्ष वीरके जीते-जी अर्जुन सिंधुराजको सूर्यास्त होनेसे पहले ही कैसे मार सकेंगे ?॥ १९॥

रक्षितं मद्रराजेन कृपेण च महात्मना।
जयद्रथं रणमुखे कथं हन्याद् धनंजयः॥ २०॥

'मद्रराज शल्य और महामना कृपाचार्यसे सुरक्षित हुए जयद्रथको अर्जुन युद्धके मुहानेपर कैसे मार सकेंगे ? ॥ २०॥

द्रौणिना रक्ष्यमाणं च मया दुःशासनेन च।
कथं प्राप्स्यति बीभत्सुः सैन्धवं कालचोदितः॥ २१॥

'मैं, दुःशासन तथा अश्वत्थामा जिनकी रक्षा कर रहे हैं, उन सिंधुराज जयद्रथको अर्जुन कैसे प्राप्त कर सकेंगे ? जान पड़ता है कि वे कालसे प्रेरित हो रहे हैं॥ २१॥

युध्यन्ते बहवः शूरा लम्बते च दिवाकरः।
शङ्के जयद्रथं पार्थो नैव प्राप्स्यति मानद॥ २२॥

'मानद ! बहुत-से शूरवीर युद्ध कर रहे हैं, उधर सूर्य भी अस्ताचलपर जा रहे हैं। अतः मुझे संदेह यह होता है कि अर्जुन जयद्रथतक नहीं पहुँच पायेंगे॥ २२॥

स त्वं कर्ण मया सार्धं शूरैश्चान्यैर्महारथैः।
द्रौणिना त्वं हि सहितो मद्रेशेन कृपेण च॥ २३॥
युध्यस्व यत्नमास्थाय परं पार्थेन संयुगे।

'कर्ण ! तुम मेरे, अश्वत्थामाके, मद्रराज शल्यके, कृपाचार्यके तथा अन्य शूरवीर महारथियोंके साथ पूरा प्रयत्न करके रणक्षेत्रमें अर्जुनके साथ युद्ध करो'॥ २३½॥

एवमुक्तस्तु राधेयस्तव पुत्रेण मारिष॥ २४॥
दुर्योधनमिदं वाक्यं प्रत्युवाच कुरूत्तमम्।

आर्य ! आपके पुत्रके ऐसा कहनेपर राधानन्दन कर्णने कुरुश्रेष्ठ दुर्योधनसे इस प्रकार कहा—॥ २४½॥

दृढलक्ष्येण वीरेण भीमसेनेन धन्विना॥ २५॥
भृशं भिन्नतनुः संख्ये शरजालैरनेकशः।
स्थातव्यमिति तिष्ठामि रणे सम्प्रति मानद॥ २६॥

'मानद ! सुदृढ़ लक्ष्यवाले वीर धनुर्धर भीमसेनने संग्राममें अपने बाणसमूहोंद्वारा अनेक बार मेरे शरीरको अत्यन्त क्षत-विक्षत कर दिया है। मुझे खड़ा रहना चाहिये (भागना नहीं चाहिये), यह सोचकर ही इस समय मैं रणभूमिमें ठहरा हुआ हूँ॥ २५-२६॥

नाङ्गमिङ्गति किंचिन्मे संतप्तस्य महेषुभिः।
योत्स्यामि तु यथाशक्त्या त्वदर्थं जीवितं मम॥ २७॥

'इस समय मेरा कोई भी अङ्ग किसी प्रकारकी चेष्टा नहीं कर रहा है। मैं बड़े-बड़े बाणोंकी आगसे संतप्त हूँ, तथापि यथाशक्ति युद्ध करूँगा; क्योंकि यह मेरा जीवन तुम्हारे लिये ही है॥ २७॥

यथा पाण्डवमुख्योऽसौ न हनिष्यति सैन्धवम्।
न हि मे युध्यमानस्य सायकानस्यतः शितान्॥ २८॥
सैन्धवं प्राप्स्यते वीरः सव्यसाची धनंजयः।

'पाण्डवोंके प्रधान वीर अर्जुन जैसे भी किसी तरह सिंधुराजको नहीं मार सकेंगे, वैसा प्रयत्न करूँगा। जबतक मैं युद्धमें तत्पर होकर पैने बाण छोड़ता रहूँगा, तबतक सव्यसाची वीर धनंजय सिंधुराजको नहीं पा सकेंगे॥ २८½॥

यत्तु भक्तिमता कार्यं सततं हितकाङ्क्षिणा॥ २९॥
तत् करिष्यामि कौरव्य जयो दैवे प्रतिष्ठितः।

'कुरुनन्दन ! सदा मित्रका हित चाहनेवाले भक्तिमान् पुरुषको जो कार्य करना चाहिये, वह मैं करूँगा। विजयकी प्राप्ति तो दैवके अधीन है॥ २९½॥

सैन्धवार्थे परं यत्नं करिष्याम्यद्य संयुगे॥ ३०॥
त्वत्प्रियार्थं महाराज जयो दैवे प्रतिष्ठितः।

'महाराज ! आज युद्धस्थलमें आपका प्रिय करनेके लिये मैं सिंधुराजकी रक्षाके निमित्त पूरा प्रयत्न करूँगा। विजय तो दैवके अधीन है॥ ३०½॥

अद्य योत्स्येऽर्जुनमहं पौरुषं स्वं व्यपाश्रितः॥ ३१॥
त्वदर्थे पुरुषव्याघ्र जयो दैवे प्रतिष्ठितः।

'पुरुषसिंह ! आज मैं अपने पुरुषार्थका भरोसा करके तुम्हारे हितके लिये अर्जुनके साथ युद्ध करूँगा। विजयकी प्राप्ति तो दैवके अधीन है॥ ३१½॥

अद्य युद्धं कुरुश्रेष्ठ मम पार्थस्य चोभयोः॥ ३२॥
पश्यन्तु सर्वसैन्यानि दारुणं लोमहर्षणम्।

'कुरुश्रेष्ठ ! आज सारी सेनाएँ मेरे और अर्जुन दोनोंके भयंकर एवं रोमाञ्चकारी युद्धको देखें'॥ ३२½॥

कर्णकौरवयोरेवं रणे सम्भाषमाणयोः॥ ३३॥
अर्जुनो निशितैर्बाणैर्जघान तव वाहिनीम्।

जब रणक्षेत्रमें कर्ण और दुर्योधन इस तरह वार्तालाप कर रहे थे, उस समय अर्जुनने अपने पैने बाणोंद्वारा आपकी सेनाका संहार आरम्भ किया॥ ३३½॥

चिच्छेद निशितैर्बाणैः शूराणामनिवर्तिनाम्॥ ३४॥
भुजान् परिघसंकाशान् हस्तिहस्तोपमान् रणे।

उन्होंने तीखे बाणोंसे रणभूमिमें कभी पीठ न दिखानेवाले शूरवीरोंकी परिघके समान सुदृढ़ तथा हाथीकी सूँड़के समान मोटी भुजाओंको काट डाला॥ ३४½॥

शिरांसि च महाबाहुश्चिच्छेद निशितैः शरैः॥ ३५॥
हस्तिहस्तान् हयग्रीवान् रथाक्षांश्च समन्ततः।

महाबाहु अर्जुनने सब ओर अपने तीखे बाणोंसे शत्रुओंके मस्तक, हाथियोंके शुण्डदण्डों, घोड़ोंकी गर्दनों तथा रथके धुरोंको भी खण्डित कर दिया ॥ ३५½ ॥

शोणिताक्तान् हयारोहान् गृहीतप्रासतोमरान् ॥ ३६ ॥
क्षुरैश्चिच्छेद बीभत्सुर्द्विधैकैकं त्रिधैव च ।

अर्जुनने हाथोंमें प्रास और तोमर लिये खूनसे रँगे हुए घुड़सवारोंमेंसे प्रत्येकके अपने छुरोंद्वारा दो-दो और तीन-तीन टुकड़े कर डाले ॥ ३६½ ॥

हया वारणमुख्याश्च प्रापतन्त समन्ततः ॥ ३७ ॥
ध्वजाश्छत्राणि चापानि चामराणि शिरांसि च ।

बड़े-बड़े हाथी और घोड़े सब ओर धराशायी होने लगे । ध्वज, छत्र, धनुष, चँवर तथा योद्धाओंके मस्तक कट-कट-कर गिरने लगे ॥ ३७½ ॥

कक्षमग्निरिवोद्धूतः प्रदहंस्तव वाहिनीम् ॥ ३८ ॥
अचिरेण महीं पार्थश्चकार रुधिरोत्तराम् ।

जैसे प्रचण्ड अग्नि घास-फूसके जंगलको जला डालती है, उसी प्रकार अर्जुनने आपकी सेनाको दग्ध करते हुए थोड़ी ही देरमें वहाँकी भूमिको रक्तसे आप्लावित कर दिया ॥ ३८½ ॥

हतभूयिष्ठयोधं तत् कृत्वा तव बलं बली ॥ ३९ ॥
आससाद दुराधर्षः सैन्धवं सत्यविक्रमः ।

सत्यपराक्रमी, बलवान् एवं दुर्धर्ष वीर अर्जुनने आपकी सेनाके अधिकांश योद्धाओंको मारकर सिंधुराजपर आक्रमण किया ॥ ३९½ ॥

बीभत्सुर्भीमसेनेन सात्वतेन च रक्षितः ॥ ४० ॥
प्रबभौ भरतश्रेष्ठ ज्वलन्निव हुताशनः ।

भरतश्रेष्ठ ! भीमसेन और सात्यकिसे सुरक्षित अर्जुन उस समय प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे ।४०½।

तं तथावस्थितं दृष्ट्वा त्वदीया वीर्यसम्पदा ॥ ४१ ॥
नामृष्यन्त महेष्वासाः पाण्डवं पुरुषर्षभाः ।

अर्जुनको इस प्रकार बल-पराक्रमकी सम्पत्तिसे युक्त होकर युद्धके लिये डटा हुआ देख आपकी सेनाके श्रेष्ठ पुरुष एवं महाधनुर्धर वीर सहन न कर सके ॥ ४१½ ॥

दुर्योधनश्च कर्णश्च वृषसेनोऽथ मद्रराट् ॥ ४२ ॥
अश्वत्थामा कृपश्चैव स्वयमेव च सैन्धवः ।
संनद्धाः सैन्धवस्यार्थे समावृण्वन् किरीटिनम् ॥ ४३ ॥

दुर्योधन, कर्ण, वृषसेन, मद्रराज शल्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य तथा स्वयं सिंधुराज जयद्रथ—इन सबने जयद्रथकी रक्षाके लिये संनद्ध होकर किरीटधारी अर्जुनको सब ओरसे घेर लिया ॥ ४२-४३ ॥

नृत्यन्तं रथमार्गेषु धनुर्ज्यातलनिःस्वनैः ।
संग्रामकोविदं पार्थं सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ४४ ॥
अभीताः पर्यवर्तन्त व्यादितास्यमिवान्तकम् ।

उस समय युद्धकुशल कुन्तीकुमार धनुषकी टङ्कार करते हुए रथके मार्गोंपर नाच रहे थे और मुँह बाये हुए यमराजके समान भयंकर जान पड़ते थे । उन्हें युद्धविशारद समस्त कौरव-महारथियोंने निर्भय हो चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४४½ ॥

सैन्धवं पृष्ठतः कृत्वा जिघांसन्तोऽच्युतार्जुनौ ॥ ४५ ॥
सूर्यास्तमनमिच्छन्तो लोहितायति भास्करे ।

वे श्रीकृष्ण और अर्जुनको मार डालनेकी इच्छासे सिंधुराज जयद्रथको पीछे करके सूर्यास्त होनेकी इच्छा और प्रतीक्षा करने लगे । उस समय सूर्य लाल-से हो चले थे ।४५½।

ते भुजैर्भोगिभोगाभैर्धनूंष्यानम्य सायकान् ॥ ४६ ॥
मुमुचुः सूर्यरश्म्याभाञ्छतशः फाल्गुनं प्रति ।

उन कौरव-सैनिकोंने सर्पके शरीरके समान प्रतीत होनेवाली अपनी भुजाओंद्वारा धनुषोंको नवाकर अर्जुनपर सूर्यकी किरणोंके समान चमकीले सैकड़ों बाण छोड़े ॥४६½॥

ततस्तानस्यमानांश्च किरीटी युद्धदुर्मदः ॥ ४७ ॥
द्विधा त्रिधाष्टधैकैकं छित्त्वा विव्याध तान् रथान् ।

तदनन्तर रणदुर्मद किरीटधारी अर्जुनने उन छोड़े गये बाणोंमेंसे प्रत्येकके दो-दो, तीन-तीन और आठ-आठ टुकड़े करके उन रथियोंको भी घायल कर दिया ॥ ४७½ ॥

सिंहलाङ्गूलकेतुस्तु दर्शयन् वीर्यमात्मनः ॥ ४८ ॥
शारद्वतीसुतो राजन्नर्जुनं प्रत्यवारयत् ।

राजन् ! जिनकी ध्वजामें सिंहकी पूँछका चिह्न था, उन शारद्वतीपुत्र कृपाचार्यने अपना बल-पराक्रम दिखाते हुए अर्जुनको रोका ॥ ४८½ ॥

स विद्ध्वा दशभिः पार्थं वासुदेवं च सप्तभिः ॥ ४९ ॥
अतिष्ठद् रथमार्गेषु सैन्धवं प्रतिपालयन् ।

वे दस बाणोंसे अर्जुनको और सातसे श्रीकृष्णको घायल करके रथके मार्गोंपर जयद्रथकी रक्षा करते हुए खड़े थे ।४९½।

अथैनं कौरवश्रेष्ठाः सर्व एव महारथाः ॥ ५० ॥
महता रथवंशेन सर्वतः प्रत्यवारयन् ।

तत्पश्चात् कौरवसेनाके सभी श्रेष्ठ महारथियोंने विशाल रथसमूहके द्वारा कृपाचार्यको सब ओरसे घेर लिया ।५०½।

विस्फारयन्तश्चापानि विसृजन्तश्च सायकान् ॥ ५१ ॥
सैन्धवं पर्यरक्षन्त शासनात् तनयस्य ते ।

वे आपके पुत्रकी आज्ञासे धनुष खींचते और बाण छोड़ते हुए वहाँ जयद्रथकी सब ओरसे रक्षा करने लगे ॥५१½॥

ततः पार्थस्य शूरस्य बाह्वोर्बलमदृश्यत ॥ ५२ ॥
इषूणामक्षयत्वं च धनुषो गाण्डिवस्य च ।

तत्पश्चात् वहाँ शूरवीर कुन्तीकुमारकी भुजाओंका बल देखा गया। उनके गाण्डीव धनुष तथा बाणोंकी अक्षयताका परिचय मिला ॥ ५२½ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्रौणेः शारद्वतस्य च ॥ ५३ ॥
एकैकं दशभिर्बाणैः सर्वानेव समार्पयत्।

उन्होंने अश्वत्थामा तथा कृपाचार्यके अस्त्रोंका अपने अस्त्रोंद्वारा निवारण करके बारी-बारीसे उन सबको दस-दस बाण मारे ॥ ५३½ ॥

तं द्रौणिः पञ्चविंशत्या वृषसेनश्च सप्तभिः ॥ ५४ ॥
दुर्योधनस्तु विंशत्या कर्णशल्यौ त्रिभिस्त्रिभिः।

अश्वत्थामाने पचीस, वृषसेनने सात, दुर्योधनने बीस तथा कर्ण और शल्यने तीन-तीन बाणोंसे अर्जुनको घायल कर दिया ॥ ५४½ ॥

त एनमभिगर्जन्तो विध्यन्तश्च पुनः पुनः ॥ ५५ ॥
विधुन्वतश्च चापानि सर्वतः प्रत्यवारयन्।

वे अर्जुनको लक्ष्य करके बार-बार गरजते, उन्हें बारंबार बाणोंसे बींधते और धनुषको हिलाते हुए सब ओरसे उन्हें आगे बढ़नेसे रोकने लगे ॥ ५५½ ॥

श्लिष्टं च सर्वतश्चक्रू रथमण्डलमाशु ते ॥ ५६ ॥
सूर्यास्तमनमिच्छन्तस्त्वरमाणा महारथाः।

उन महारथियोंने सूर्यास्तकी इच्छा रखते हुए बड़ी उतावलीके साथ अपने रथसमूहको परस्पर सटाकर सब ओरसे खड़ा कर दिया ॥ ५६½ ॥

त एनमभिनर्दन्तो विधुन्वाना धनूंषि च ॥ ५७ ॥
सिषिचुर्मार्गणैस्तीक्ष्णैर्गिरिं मेघा इवाम्बुभिः।

जैसे बादल पर्वतशिखरपर अपने जलकी बूँदोंसे आघात करते हैं, उसी प्रकार वे कौरव-महारथी धनुष हिलाते तथा अर्जुनके सामने गर्जना करते हुए उनपर तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ५७½ ॥

ते महास्त्राणि दिव्यानि तत्र राजन् व्यदर्शयन् ॥ ५८ ॥
धनंजयस्य गात्रे तु शूराः परिघबाहवः।

राजन्! परिघके समान सुदृढ़ भुजाओंवाले उन शूरवीरोंने अर्जुनके शरीरपर वहाँ बड़े-बड़े दिव्यास्त्रोंका प्रदर्शन किया॥

हतभूयिष्ठयोधं तत् कृत्वा तव बलं बली ॥ ५९ ॥
आससाद दुराधर्षः सैन्धवं सत्यविक्रमः।

तथापि सत्यपराक्रमी बलवान् एवं दुर्धर्ष वीर अर्जुनने आपकी सेनाके अधिकांश योद्धाओंका संहार करके सिन्धुराजपर आक्रमण किया ॥ ५९½ ॥

तं कर्णः संयुगे राजन् प्रत्यवारयदाशुगैः ॥ ६० ॥
मिषतो भीमसेनस्य सात्वतस्य च भारत।

राजन्! भरतनन्दन! उस युद्धस्थलमें कर्णने भीमसेन और सात्यकिके देखते-देखते अपने शीघ्रगामी बाणोंद्वारा अर्जुनको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ६०½ ॥

तं पार्थो दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यद् रणाजिरे ॥ ६१ ॥
सूतपुत्रं महाबाहुः सर्वसैन्यस्य पश्यतः।

तब महाबाहु अर्जुनने समराङ्गणमें सारी सेनाके देखते-देखते सूतपुत्र कर्णको दस बाणोंसे घायल कर दिया॥ ६१½॥

सात्वतश्च त्रिभिर्बाणैः कर्णं विव्याध मारिष ॥ ६२ ॥
भीमसेनस्त्रिभिश्चैव पुनः पार्थश्च सप्तभिः।

माननीय नरेश! तदनन्तर सात्यकिने तीन बाणोंसे कर्णको वेध दिया, फिर भीमसेनने भी उसे तीन बाण मारे और अर्जुनने पुनः सात बाणोंसे कर्णको घायल कर दिया ॥ ६२½ ॥

तान् कर्णः प्रतिविव्याध षष्ट्या षष्ट्या महारथः ॥ ६३ ॥
तद् युद्धमभवद् राजन् कर्णस्य बहुभिः सह।

तब महारथी कर्णने उन तीनोंको साठ-साठ बाण मारकर बदला चुकाया। राजन्! कर्णका वह युद्ध अनेक वीरोंके साथ हो रहा था ॥ ६३½ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम सूतपुत्रस्य मारिष ॥ ६४ ॥
यदेकः समरे क्रुद्धस्त्रीन् रथान् पर्यवारयत्।

आर्य! वहाँ हमने सूतपुत्रका अद्भुत पराक्रम देखा कि समरभूमिमें कुपित होकर उसने अकेले ही तीन-तीन महारथियोंको रोक दिया था ॥ ६४½ ॥

फाल्गुनस्तु महाबाहुः कर्णं वैकर्तनं रणे ॥ ६५ ॥
सायकानां शतेनैव सर्वमर्मस्वताडयत्।

उस समय महाबाहु अर्जुनने रणभूमिमें सौ बाणोंद्वारा सूर्यपुत्र कर्णको उसके सम्पूर्ण मर्मस्थानोंमें चोट पहुँचायी ॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गः सूतपुत्रः प्रतापवान् ॥ ६६ ॥
शरैः पञ्चाशता वीरः फाल्गुनं प्रत्यविध्यत।
तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा नामृष्यत रणेऽर्जुनः ॥ ६७ ॥

प्रतापी सूतपुत्र कर्णके सारे अंग खूनसे लथपथ हो गये, तथापि उस वीरने पचास बाणोंसे अर्जुनको भी घायल कर दिया। रणक्षेत्रमें उसकी यह फुर्ती देखकर अर्जुन सहन न कर सके ॥ ६६-६७ ॥

ततः पार्थो धनुश्छित्त्वा विव्याधैनं स्तनान्तरे।
सायकैर्नवभिर्वीरस्त्वरमाणो धनंजयः ॥ ६८ ॥

तदनन्तर कुन्तीकुमार वीर धनंजयने कर्णका धनुष काटकर बड़ी उतावलीके साथ उसकी छातीमें नौ बाणोंका प्रहार किया ॥ ६८ ॥

अथान्यद् धनुरादाय सूतपुत्रः प्रतापवान्।
सायकैरष्टसाहस्रैश्छादयामास पाण्डवम् ॥ ६९ ॥

तब प्रतापी सूतपुत्रने दूसरा धनुष हाथमें लेकर आठ

हजार बाणोंसे पाण्डुपुत्र अर्जुनको ढक दिया ॥ ६९ ॥

तां बाणवृष्टिमतुलां कर्णचापसमुत्थिताम्।
व्यधमत् सायकैः पार्थः शलभानिव मारुतः ॥ ७० ॥

कर्णके धनुषसे प्रकट हुई उस अनुपम बाण-वर्षाको अर्जुनने बाणोंद्वारा उसी प्रकार नष्ट कर दिया, जैसे वायु टिड्डियोंके दलको उड़ा देती है ॥ ७० ॥

छादयामास च तदा सायकैरर्जुनो रणे।
पश्यतां सर्वयोधानां दर्शयन् पाणिलाघवम् ॥ ७१ ॥

तत्पश्चात् अर्जुनने रणभूमिमें दर्शक बने हुए समस्त योद्धाओंको अपने हाथोंकी फुर्ती दिखाते हुए उस समय कर्णको भी आच्छादित कर दिया ॥ ७१ ॥

वधार्थं चास्य समरे सायकं सूर्यवर्चसम्।
चिक्षेप त्वरया युक्तस्त्वराकाले धनंजयः ॥ ७२ ॥

साथ ही शीघ्रताके अवसरपर शीघ्रता करनेवाले अर्जुनने समरभूमिमें सूतपुत्रका वध करनेके लिये उसके ऊपर सूर्यके समान तेजस्वी बाण चलाया ॥ ७२ ॥

तमापतन्तं वेगेन द्रौणिश्चिच्छेद सायकम्।
अर्धचन्द्रेण तीक्ष्णेन स च्छिन्नः प्रापतद् भुवि ॥ ७३ ॥

उस बाणको वेगपूर्वक आते देख अश्वत्थामाने तीखे अर्धचन्द्रसे बीचमें ही काट दिया। कटकर वह पृथ्वीपर गिर पड़ा॥

कर्णोऽपि द्विषतां हन्ता छादयामास फाल्गुनम्।
सायकैर्बहुसाहस्रैः कृतप्रतिकृतेप्सया ॥ ७४ ॥

तब शत्रुहन्ता कर्णने भी उनके किये हुए प्रहारका बदला चुकानेकी इच्छासे अनेक सहस्र बाणोंद्वारा पुनः अर्जुनको आच्छादित कर दिया ॥ ७४ ॥

तौ वृषाविव नर्दन्तौ नरसिंहौ महारथौ।
सायकैस्तु प्रतिच्छन्नं चक्रतुः खमजिह्मगैः ॥ ७५ ॥

वे दोनों पुरुषसिंह महारथी दो साँड़ोंके समान हँकड़ते हुए अपने सीधे जानेवाले बाणोंद्वारा आकाशको आच्छादित करने लगे ॥ ७५ ॥

अदृश्यौ च शरौघैस्तौ निघ्नन्ताविवतरेतरम्।
कर्ण पार्थोऽस्मि तिष्ठ त्वं कर्णोऽहं तिष्ठ फाल्गुन ॥ ७६ ॥

वे दोनों एक दूसरेपर चोट करते हुए स्वयं बाण-समूहोंसे ढककर अदृश्य हो गये थे और एक दूसरेको पुकारकर इस प्रकार कहते थे—'कर्ण! तू खड़ा रह, मैं अर्जुन हूँ;' 'अर्जुन! खड़ा रह, मैं कर्ण हूँ' ॥ ७६ ॥

इत्येवं तर्जयन्तौ तौ वाक्शल्यैस्तुदतां तदा।
युध्येतां समरे वीरौ चित्रं लघु च सुष्ठु च ॥ ७७ ॥

इस प्रकार एक दूसरेको ललकारते और डाँटते हुए वे दोनों वीर वाक्‌रूपी बाणोंद्वारा परस्पर चोट करते हुए समराङ्गणमें शीघ्रतापूर्वक और सुन्दर ढंगसे विचित्र युद्ध कर रहे थे ॥ ७७ ॥

प्रेक्षणीयौ चाभवतां सर्वयोधसमागमे।
प्रशस्यमानौ समरे सिद्धचारणपन्नगैः ॥ ७८ ॥
अयुध्येतां महाराज परस्परवधैषिणौ।

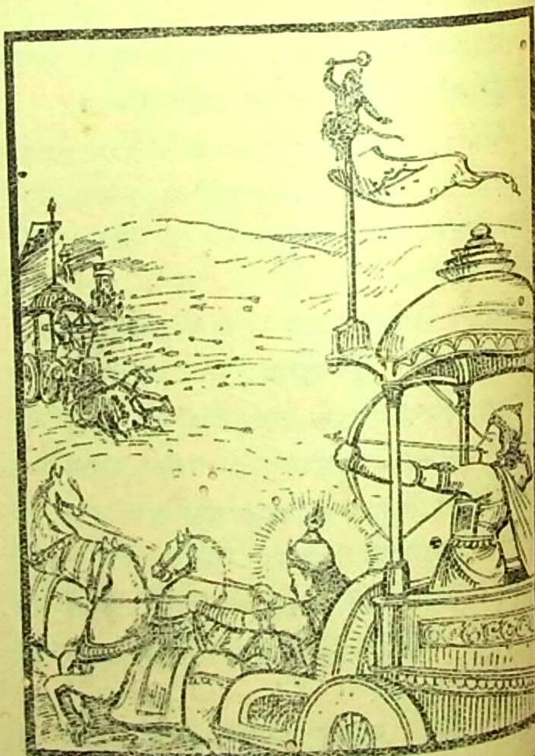
सम्पूर्ण योद्धाओंके उस सम्मेलनमें वे दोनों दर्शनीय हो रहे थे। महाराज! समरभूमिमें सिद्ध, चारण और नागोंद्वारा प्रशंसित होते हुए कर्ण और अर्जुन एक दूसरेके वधकी इच्छासे युद्ध कर रहे थे ॥ ७८½ ॥

ततो दुर्योधनो राजंस्तावकानभ्यभाषत ॥ ७९ ॥
यत्नाद् रक्षत राधेयं नाहत्वा समरेऽर्जुनम्।
निवर्तिष्यति राधेय इति मामुक्तवान् नृपः ॥ ८० ॥

राजन्! तदनन्तर दुर्योधनने आपके सैनिकोंसे कहा-'वीरो! तुम यत्नपूर्वक राधापुत्र कर्णकी रक्षा करो। वह युद्धस्थलमें अर्जुनका वध किये बिना नहीं लौटेगा; क्योंकि उसने मुझसे यही बात कही है' ॥ ७९-८० ॥

एतस्मिन्नन्तरे राजन् दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम्।
आकर्णमुक्तैरिषुभिः कर्णस्य चतुरो हयान् ॥ ८१ ॥
अनयत् प्रेतलोकाय चतुर्भिः श्वेतवाहनः।
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ८२ ॥

राजन्! इसी समय कर्णका वह पराक्रम देखकर श्वेतवाहन अर्जुनने कानतक खींचकर छोड़े हुए चार बाणोंद्वारा कर्णके चारों घोड़ोंको प्रेतलोक पहुँचा दिया और एक भल्ल मारकर उसके सारथिको रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया ॥ ८१-८२ ॥



छादयामास स शरैस्तव पुत्रस्य पश्यतः।
संछाद्यमानः समरे हताश्वो हतसारथिः ॥ ८३ ॥

मोहितः शरजालेन कर्तव्यं नाभ्यपद्यत।

इतना ही नहीं, आपके पुत्रके देखते-देखते उन्होंने कर्णको बाणोंसे ढक दिया। घोड़े और सारथिके मारे जानेपर समराङ्गणमें बाणोंसे ढका हुआ कर्ण बाण-जालसे मोहित हो यह भी नहीं सोच सका कि अब क्या करना चाहिये ॥ ८३½ ॥

तं तथा विरथं दृष्ट्वा रथमारोप्य तं तदा ॥ ८४ ॥
अश्वत्थामा महाराज भूयोऽर्जुनमयोधयत्।

महाराज! कर्णको इस प्रकार रथहीन हुआ देख अश्वत्थामाने उस समय उसे रथपर बैठा लिया और वह पुनः अर्जुनके साथ युद्ध करने लगा ॥ ८४½ ॥

मद्रराजश्च कौन्तेयमविध्यत् त्रिंशता शरैः ॥ ८५ ॥
शारद्वतस्तु विंशत्या वासुदेवं समार्पयत्।
धनंजयं द्वादशभिराजघान शिलीमुखैः ॥ ८६ ॥

मद्रराज शल्यने कुन्तीकुमार अर्जुनको तीस बाणोंसे घायल कर दिया। कृपाचार्यने भगवान् श्रीकृष्णको बीस बाण मारे और अर्जुनपर बारह बाणोंका प्रहार किया ॥ ८५-८६ ॥

चतुर्भिः सिन्धुराजश्च वृषसेनश्च सप्तभिः।
पृथक् पृथङ्महाराज विव्यधुः कृष्णपाण्डवौ ॥ ८७ ॥

महाराज! फिर सिन्धुराजने चार और वृषसेनने सात बाणोंद्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुनको पृथक्-पृथक् घायल कर दिया ॥ ८७ ॥

तथैव तान् प्रत्यविध्यत् कुन्तीपुत्रो धनंजयः।
द्रोणपुत्रं चतुःषष्ट्या मद्रराजं शतेन च ॥ ८८ ॥
सैन्धवं दशभिर्बाणैर्वृषसेनं त्रिभिः शरैः।
शारद्वतं च विंशत्या विद्ध्वा पार्थो ननाद ह ॥ ८९ ॥

इसी प्रकार कुन्तीपुत्र अर्जुनने भी उन्हें बाणोंसे बींधकर बदला चुकाया। अर्जुनने द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको चौसठ, मद्रराज शल्यको सौ, सिन्धुराज जयद्रथको दस, वृषसेनको तीन और कृपाचार्यको बीस बाणोंसे घायल करके सिंहनाद किया ॥ ८८-८९ ॥

ते प्रतिज्ञाप्रतीघातमिच्छन्तः सव्यसाचिनः।
सहितास्तावकास्तूर्णमभिपेतुर्धनंजयम् ॥ ९० ॥

यह देख सव्यसाची अर्जुनकी प्रतिज्ञाको भंग करनेकी अभिलाषासे आपके वे सभी सैनिक एक साथ संगठित हो तुरंत उनपर टूट पड़े ॥ ९० ॥

अथार्जुनः सर्वतो वारुणास्त्रं
प्रादुश्चक्रे त्रासयन् धार्तराष्ट्रान्।
तं प्रत्युदीयुः कुरवः पाण्डुपुत्रं
रथैर्महार्हैः शरवर्षाण्यवर्षन् ॥ ९१ ॥

तदनन्तर अर्जुनने धृतराष्ट्रके पुत्रोंको भयभीत करते हुए सब ओर वारुणास्त्र प्रकट किया। कौरव-सैनिक अपने बहुमूल्य रथोंद्वारा पाण्डुपुत्र अर्जुनकी ओर बढ़े और उनपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ९१ ॥

ततस्तु तस्मिंस्तुमुले समुत्थिते
सुदारुणे भारत मोहनीये।
नोऽमुह्यत प्राप्य स राजपुत्रः
किरीटमाली व्यसृजच्छरौघान् ॥ ९२ ॥

भारत! सबको मोहमें डालनेवाले उस अत्यन्त भयंकर तुमुल युद्धके उपस्थित होनेपर भी किरीटधारी राजकुमार अर्जुन तनिक भी मोहित नहीं हुए। वे बाणसमूहोंकी वर्षा करते ही रहे ॥ ९२ ॥

राज्यप्रेप्सुः सव्यसाची कुरूणां
स्मरन् क्लेशान् द्वादशवर्षवृत्तान्।
गाण्डीवमुक्तैरिषुभिर्महात्मा
सर्वा दिशो व्यावृणोदप्रमेयः ॥ ९३ ॥

अप्रमेय शक्तिशाली महामनस्वी सव्यसाची अर्जुन अपना राज्य प्राप्त करना चाहते थे। उन्होंने कौरवोंके दिये हुए क्लेशों और बारह वर्षोंतक भोगे हुए वनवासके कष्टोंको स्मरण करते हुए गाण्डीव धनुषसे छूटनेवाले बाणोंद्वारा सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित कर दिया ॥ ९३ ॥

प्रदीप्तोल्कमभवच्चान्तरिक्षं
मृतेषु देहेष्वपतन् वयांसि।
यत् पिङ्गलज्येन किरीटमाली
क्रुद्धो रिपूनाजगवेन हन्ति ॥ ९४ ॥

आकाशमें कितनी ही उल्काएँ प्रज्वलित हो उठीं और योद्धाओंके मृत शरीरोंपर मांसभक्षी पक्षी गिरने लगे; क्योंकि उस समय क्रोधमें भरे हुए किरीटधारी अर्जुन पीली प्रत्यञ्चावाले गाण्डीव धनुषके द्वारा शत्रुओंका संहार कर रहे थे ॥ ९४ ॥

ततः किरीटी महता महायशाः
शरासनेनास्य शराननीकजित्।
हयप्रवेकोत्तमनागधूर्गतान्
कुरुप्रवीरानिषुभिर्व्यपातयत् ॥ ९५ ॥

तत्पश्चात् शत्रुसेनाको जीतनेवाले महायशस्वी किरीटधारी अर्जुनने विशाल धनुषके द्वारा बाणोंका प्रहार करके उत्तम घोड़ों और श्रेष्ठ हाथियोंकी पीठपर बैठे हुए प्रमुख कौरव-वीरोंको मार गिराया ॥ ९५ ॥

गदाश्च गुर्वीः परिघानयस्मया-
नसींश्च शक्तींश्च रणे नराधिपाः।
महान्ति शस्त्राणि च भीमदर्शना-
न्प्रगृह्य पार्थं सहसाभिदुद्रुवुः ॥ ९६ ॥

उस रणक्षेत्रमें भयंकर दिखायी देनेवाले कितने ही नरेश

भारी गदाओं, लोहेके परिघों, तलवारों, शक्तियों और बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्रोंको हाथमें लेकर 'कुन्तीनन्दन अर्जुनपर सहसा टूट पड़े ॥ ९६ ॥

ततो युगान्ताभ्रसमस्वनं मह-
न्महेन्द्रचापप्रतिमं च गाण्डिवम्।
चकर्ष दोर्भ्यां विहसन् भृशं ययौ
दहंस्त्वदीयान् यमराष्ट्रवर्धनः ॥ ९७ ॥

तब यमराजके राज्यकी वृद्धि करनेवाले अर्जुनने प्रलयकालके मेघोंके समान गम्भीर ध्वनि करनेवाले तथा इन्द्रधनुषके समान प्रतीत होनेवाले विशाल गाण्डीव धनुषको हँसते हुए दोनों हाथोंसे खींचा और आपके सैनिकोंको दग्ध करते हुए वे बड़े वेगसे आगे बढ़े ॥ ९७ ॥

स तानुदीर्णान् सरथान् सवारणान्
पदातिसङ्घांश्च महाधनुर्धरः।
विपन्नसर्वायुधजीवितान् रणे
चकार वीरो यमराष्ट्रवर्धनान् ॥ ९८ ॥

महाधनुर्धर वीर अर्जुनने रथ, हाथी और पैदलसमूहों सहित उन कौरव सैनिकोंको प्रचण्ड गतिसे आगे बढ़ते देख उनके सम्पूर्ण आयुधों और जीवनको भी नष्ट करके उन्हें यमराजके राज्यकी वृद्धि करनेवाला बना दिया ॥ ९८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुलयुद्धे पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें संकुलयुद्धविषयक एक सौ पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४५ ॥

षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अर्जुनका अद्भुत पराक्रम और सिन्धुराज जयद्रथका वध

संजय उवाच

श्रुत्वा निनादं धनुषश्च तस्य
विस्पष्टमुत्कुष्टमिवान्तकस्य।
शक्राशनिस्फोटसमं सुघोरं
विकृष्यमाणस्य धनंजयेन ॥ १ ॥
त्रासोद्विग्नं तथोद्भ्रान्तं त्वदीयं तद् बलं नृप।
युगान्तवातसंक्षुब्धं चलद्वीचितरङ्गितम् ॥ २ ॥
प्रलीनमीनमकरं सागराम्भ इवाभवत्।

संजय कहते हैं—राजन्! उस समय अर्जुनके द्वारा खींचे जानेवाले गाण्डीव धनुषकी अत्यन्त भयंकर टंकार यमराजकी सुस्पष्ट गर्जना तथा इन्द्रके वज्रकी गड़गड़ाहटके समान जान पड़ती थी। उसे सुनकर आपकी सेना भयसे उद्विग्न हो बड़ी घबराहटमें पड़ गयी। उस समय उसकी दशा प्रलयकालकी आँधीसे क्षोभको प्राप्त एवं उत्ताल तरंगोंसे परिपूर्ण हुए उस महासागरके जलकी-सी हो गयी, जिसमें मछली और मगर आदि जलजन्तु छिप जाते हैं ॥ १-२½ ॥

स रणे व्यचरत् पार्थः प्रेक्षमाणो धनंजयः ॥ ३ ॥
युगपद् दिक्षु सर्वासु सर्वाण्यस्त्राणि दर्शयन्।

उस रणक्षेत्रमें कुन्तीकुमार अर्जुन एक साथ सम्पूर्ण दिशाओंमें देखते और सब प्रकारके अस्त्रोंका कौशल दिखाते हुए विचर रहे थे ॥ ३½ ॥

आददानं महाराज संदधानं च पाण्डवम् ॥ ४ ॥
उत्कर्षन्तं सृजन्तं च न स्म पश्याम लाघवात्।

महाराज! उस समय अर्जुनकी अद्भुत फुर्तीके कारण हमलोग यह नहीं देख पाते थे कि वे कब बाण निकालते हैं, कब उसे धनुषपर रखते हैं, कब धनुषको खींचते हैं और कब बाण छोड़ते हैं ॥ ४½ ॥

ततः क्रुद्धो महाबाहुरैन्द्रमस्त्रं दुरासदम् ॥ ५ ॥
प्रादुश्चक्रे महाराज त्रासयन् सर्वभारतान्।

नरेश्वर! तदनन्तर महाबाहु अर्जुनने कुपित हो कौरव-सेनाके समस्त सैनिकोंको भयभीत करते हुए दुर्धर्ष इन्द्रास्त्रको प्रकट किया ॥ ५½ ॥

ततः शराः प्रादुरासन् दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रिताः ॥ ६ ॥
प्रदीप्ताश्च शिखिमुखाः शतशोऽथ सहस्रशः।

इससे दिव्यास्त्रसम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा अभिमन्त्रित सैकड़ों तथा सहस्रों प्रज्वलित अग्निमुख बाण प्रकट होने लगे ॥ ६½ ॥

आकर्णपूर्णनिर्मुक्तैरग्न्यर्कांशुनिभैः शरैः ॥ ७ ॥
नभोऽभवत् तद् दुष्प्रेक्ष्यमुल्काभिरिव संवृतम्।

धनुषको कानतक खींचकर छोड़े गये अग्निशिखा तथा सूर्यकिरणोंके समान तेजस्वी बाणोंसे भरा हुआ आकाश उल्काओंसे व्याप्त-सा जान पड़ता था। उसकी ओर देखना कठिन हो रहा था ॥ ७½ ॥

ततः शस्त्रान्धकारं तत् कौरवैः समुदीरितम् ॥ ८ ॥
अशक्यं मनसाप्यन्यैः पाण्डवः सम्भ्रमन्निव।
नाशयामास विक्रम्य शरैर्दिव्यास्त्रमन्त्रितैः ॥ ९ ॥
नैशं तमोंऽशुभिः क्षिप्रं दिनादाविव भास्करः।

तदनन्तर कौरवोंने अस्त्र-शस्त्रोंकी इतनी वर्षा की कि वहाँ अँधेरा छा गया। दूसरे कोई योद्धा उस अन्धकारको नष्ट करनेका विचार भी मनमें नहीं ला सकते थे; परंतु पाण्डुपुत्र अर्जुनने बड़ी शीघ्रता-सी करते हुए दिव्यास्त्रसम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा अभिमन्त्रित बाणोंसे पराक्रमपूर्वक उसे नष्ट कर दिया। ठीक उसी तरह, जैसे प्रातःकालमें सूर्य अपनी

किरणोंद्वारा रात्रिके अन्धकारको शीघ्र नष्ट कर देते हैं ॥ ८-९½ ॥

ततस्तु तावकं सैन्यं दीप्तैः शरगभस्तिभिः ॥ १० ॥
आक्षिपत् पल्वलाम्बूनि निदाघार्क इव प्रभुः ।

तत्पश्चात् जैसे ग्रीष्मऋतुके शक्तिशाली सूर्य छोटे-छोटे गड्ढोंके पानीको शीघ्र ही सुखा देते हैं, उसी प्रकार सामर्थ्यशाली अर्जुनरूपी सूर्यने अपनी बाणमयी प्रज्वलित किरणोंद्वारा आपकी सेनारूपी जलको शीघ्र ही सोख लिया ॥ १०½ ॥

ततो दिव्यास्त्रविदुषा प्रहिताः सायकांशवः ॥ ११ ॥
समाप्लवन् द्विषत्सैन्यं लोकं भानोरिवांशवः ।

इसके बाद दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता अर्जुनरूपी सूर्यकी छिटकायी हुई बाणरूपी किरणोंने शत्रुओंकी सेनाको उसी प्रकार आप्लावित कर दिया, जैसे सूर्यकी रश्मियाँ सारे जगत्को व्याप्त कर लेती हैं ॥ ११½ ॥

अथापरे समुत्सृष्टा विशिखास्तिग्मतेजसः ॥ १२ ॥
हृदयान्याशु वीराणां विविशुः प्रियबन्धुवत् ।

तदनन्तर अर्जुनके छोड़े हुए दूसरे प्रचण्ड तेजस्वी बाण वीर योद्धाओंके हृदयमें प्रिय बन्धुकी भाँति शीघ्र ही प्रवेश करने लगे ॥ १२½ ॥

य एनमीयुः समरे त्वद्योधाः शूरमानिनः ॥ १३ ॥
शलभा इव ते दीप्तमग्निं प्राप्य ययुः क्षयम् ।

समराङ्गणमें अपनेको शूरवीर माननेवाले आपके जो-जो योद्धा अर्जुनके सामने गये, वे जलती आगमें पड़े हुए पतंगोंके समान नष्ट हो गये ॥ १३½ ॥

एवं स मृद्नञ्शत्रूणां जीवितानि यशांसि च ॥ १४ ॥
पार्थश्चचार संग्रामे मृत्युर्विग्रहवानिव ।

इस प्रकार कुन्तीकुमार अर्जुन शत्रुओंके जीवन और यशको धूलमें मिलाते हुए मूर्तिमान् मृत्युके समान संग्रामभूमिमें विचरण करने लगे ॥ १४½ ॥

सकिरीटानि वक्त्राणि साङ्गदान् विपुलान् भुजान् ॥
सकुण्डलयुगान् कर्णान् केषांचिदहरच्छरैः ।

वे अपने बाणोंसे किन्हीं शत्रुओंके मुकुटमण्डित मस्तकों, किन्हींके बाजूबंदविभूषित विशाल भुजाओं तथा किन्हींके दो कुण्डलोंसे अलंकृत दोनों कानोंको काट गिराते थे ॥ १५½ ॥

सतोमरान् गजस्थानां सप्रासान् हयसादिनाम् ॥ १६ ॥
सचर्मणः पदातीनां रथिनां च सधन्वनः ।
सप्रतोदान् नियन्तॄणां बाहूंश्चिच्छेद पाण्डवः ॥ १७ ॥

पाण्डुकुमार अर्जुनने हाथीसवारोंकी तोमरयुक्त, घुड़सवारोंकी प्रासयुक्त, पैदल सिपाहियोंकी ढालयुक्त, रथियोंकी धनुषयुक्त और सारथियोंकी चाबुकसहित भुजाओंको काट डाला ॥ १६-१७ ॥

प्रदीप्तोग्रशरार्चिष्मान् बभौ तत्र धनंजयः ।
सविस्फुलिङ्गाग्रशिखो ज्वलन्निव हुताशनः ॥ १८ ॥

उद्दीप्त एवं उग्र बाणरूपी शिखाओंसे युक्त तेजस्वी अर्जुन वहाँ चिनगारियों और लपटोंसे युक्त प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ १८ ॥

तं देवराजप्रतिमं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
युगपद् दिक्षु सर्वासु रथस्थं पुरुषर्षभम् ॥ १९ ॥
निक्षिपन्तं महास्त्राणि प्रेक्षणीयं धनंजयम् ।
नृत्यन्तं रथमार्गेषु धनुर्ज्यातलनादिनम् ॥ २० ॥
निरीक्षितुं न शेकुस्ते यत्नवन्तोऽपि पार्थिवाः ।
मध्यंदिनगतं सूर्यं प्रतपन्तमिवाम्बरे ॥ २१ ॥

देवराज इन्द्रके समान रथपर बैठे हुए सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ नरश्रेष्ठ अर्जुन एक ही साथ सम्पूर्ण दिशाओंमें महान् अस्त्रोंका प्रहार करते हुए सबके लिये दर्शनीय हो रहे थे। वे अपने धनुषकी टंकार करते हुए रथके मार्गोंपर नृत्य-सा कर रहे थे। जैसे आकाशमें तपते हुए दोपहरके सूर्यकी ओर देखना कठिन होता है, उसी प्रकार उनकी ओर राजालोग यत्न करनेपर भी देख नहीं पाते थे ॥ १९-२१ ॥

दीप्तोग्रसम्भृतशरः किरीटी विरराज ह ।
वर्षास्विवोदीर्णजलः सेन्द्रधन्वाम्बुदो महान् ॥ २२ ॥

प्रज्वलित एवं भयंकर बाण लिये किरीटधारी अर्जुन वर्षाऋतुमें अधिक जलसे भरे हुए इन्द्रधनुषसहित महामेघके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ २२ ॥

महास्त्रसम्प्लवे तस्मिञ्जिष्णुना सम्प्रवर्तिते ।
सुदुस्तरे महाघोरे ममज्जुर्योधपुङ्गवाः ॥ २३ ॥

उस युद्धस्थलमें अर्जुनने बड़े-बड़े अस्त्रोंकी ऐसी बाढ़ ला दी थी, जो परम दुस्तर और अत्यन्त भयंकर थी। उसमें कौरवदलके बहुसंख्यक श्रेष्ठ योद्धा डूब गये ॥ २३ ॥

उत्कृत्तवदनैर्देहैः शरीरैः कृत्तबाहुभिः ।
भुजैश्च पाणिनिर्मुक्तैः पाणिभिर्व्यङ्गुलीकृतैः ॥ २४ ॥
कृत्ताग्रहस्तैः करिभिः कृत्तदन्तैर्मदोत्कटैः ।
हयैश्च विधुरग्रीवै रथैश्च शकलीकृतैः ॥ २५ ॥
निकृत्तान्त्रैः कृत्तपादैस्तथान्यैः कृत्तसंधिभिः ।
निश्चेष्टैर्विस्फुरद्भिश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २६ ॥
मृत्योराघातललितं तत्पार्थायोधनं महत् ।
अपश्याम महीपाल भीरूणां भयवर्धनम् ॥ २७ ॥
आक्रीडमिव रुद्रस्य पुराभ्यर्दयतः पशून् ।

भूपाल! अर्जुनका वह महान् युद्ध मृत्युका क्रीडास्थल बना हुआ था, जो शस्त्रोंके आघातसे ही सुन्दर लगता था। वहाँ बहुत-सी ऐसी लाशें पड़ी थीं, जिनके मस्तक कट गये थे और भुजाएँ काट दी गयी थीं। बहुत-सी ऐसी भुजाएँ दृष्टिगोचर होती थीं, जिनके हाथ नष्ट हो गये थे

और बहुत-से हाथ भी अंगुलियोंसे शून्य थे । कितने ही मदोन्मत्त हाथी धराशायी हो गये थे, जिनकी सूँड़के अग्र-भाग और दाँत काट डाले गये थे । बहुतेरे घोड़ोंकी गर्दनें उड़ा दी गयी थीं और रथोंके टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये थे। किन्हींकी आँतें कट गयी थीं, किन्हींके पाँव काट डाले गये थे तथा कुछ दूसरे लोगोंकी संधियाँ (अंगोंके जोड़) खण्डित हो गयी थीं। कुछ लोग निश्चेष्ट हो गये थे और कुछ पड़े-पड़े छटपटा रहे थे । इनकी संख्या सैकड़ों तथा सहस्रों थी । हमने देखा कि वह युद्धस्थल कायरोंके लिये भयवर्धक हो रहा है । मानो पूर्व (प्रलय) कालमें पशुओं (जीवों) को पीड़ा देनेवाले रुद्रदेवका क्रीडास्थल हो ॥ २४-२७½ ॥

गजानां क्षुरनिर्मुक्तैः करैः सभुजगेव भूः ॥ २८ ॥
क्वचिद् बभौ स्रग्विणीव वक्त्रपद्मैः समाचिता ।

क्षुरसे कटे हुए हाथियोंके शुण्डदण्डोंसे यह पृथ्वी सर्प-युक्त-सी जान पड़ती थी । कहीं-कहीं योद्धाओंके मुखकमलों-से व्याप्त होनेके कारण रणभूमि कमलपुष्पोंकी मालाओं-से अलंकृत-सी प्रतीत होती थी ॥ २८½ ॥

विचित्रोष्णीषमुकुटैः केयूराङ्गदकुण्डलैः ॥ २९ ॥
स्वर्णचित्रतनुत्रैश्च भाण्डैश्च गजवाजिनाम् ।
किरीटशतसंकीर्णा तत्र तत्र समाचिता ॥ ३० ॥
विरराज भृशं चित्रा मही नववधूरिव ।

विचित्र पगड़ी, मुकुट, केयूर, अंगद, कुण्डल, स्वर्ण-जटित कवच, हाथी-घोड़ोंके आभूषण तथा सैकड़ों किरीटों-से यत्र-तत्र आच्छादित हुई वह युद्धभूमि नववधूके समान अत्यन्त अद्भुत शोभासे सुशोभित हो रही थी ॥ २९-३०½ ॥

मज्जामेदःकर्दमिनीं शोणितौघतरङ्गिणीम् ॥ ३१ ॥
मर्मास्थिभिरगाधां च केशशैवलशाद्वलाम् ।
शिरोबाहूपलतटां रुग्णक्रोडास्थिसंकटाम् ॥ ३२ ॥
चित्रध्वजपताकाढ्यां छत्रचापोर्मिमालिनीम् ।
विगतासुमहाकायां गजदेहाभिसंकुलाम् ॥ ३३ ॥
रथोडुपशताकीर्णां हयसंघातरोधसम् ।
रथचक्रयुगेषाक्षकूबरैरतिदुर्गमाम् ॥ ३४ ॥
प्रासासिशक्तिपरशुविशिखाहिदुरासदाम् ।
बलकङ्कमहानक्रां गोमायुमकरोत्कटाम् ॥ ३५ ॥
गृध्रोदग्रमहाग्राहां शिवाविरुतभैरवाम् ।
नृत्यत्प्रेतपिशाचाद्यैर्भूताकीर्णां सहस्रशः ॥ ३६ ॥
गतासुयोधनिश्चेष्टशरीरशतवाहिनीम् ।
महाप्रतिभयां रौद्रां घोरां वैतरणीमिव ॥ ३७ ॥
नदीं प्रवर्तयामास भीरूणां भयवर्धिनीम् ।

अर्जुनने कायरोंका भय बढ़ानेवाली वैतरणीके समान एक अत्यन्त भयंकर रौद्र और घोर रक्तकी नदी बहा दी, जो प्राणशून्य योद्धाओंके सैकड़ों निश्चेष्ट शरीरोंको बहाये लिये जाती थी। मज्जा और मेद ही उसकी कीचड़ थे। उसमें रक्तका ही प्रवाह था और रक्तकी ही तरंगें उठती थीं । वीरोंके मर्मस्थान एवं हड्डियोंसे व्याप्त हुई वह नदी अगाध जान पड़ती थी । केश ही उस नदीके सेवार और घास थे । योद्धाओंके कटे हुए मस्तक और भुजाएँ ही किनारेके छोटे-छोटे प्रस्तर-खण्डोंका काम देती थीं, टूटी हुई छातीकी हड्डियोंसे वह दुर्गम हो रही थी, विचित्र ध्वज और पताकाएँ उसके भीतर पड़ी हुई थीं। छत्र और धनुषरूपी तरंगमालाओंसे वह अलंकृत थी। प्राणशून्य प्राणी ही उसके विशाल शरीरके अवयव थे, हाथियोंकी लाशोंसे वह भरी हुई थी, रथरूपी सैकड़ों नौकाएँ उसपर तैर रही थीं, घोड़ोंके समूह उसके तट थे, रथके पहिये, जूए, ईषादण्ड, धुरी और कूबर आदिके कारण वह नदी अत्यन्त दुर्गम जान पड़ती थी। प्रास, खड्ग, शक्ति, फरसे और बाणरूपी सर्पोंसे युक्त होनेके कारण उसके भीतर प्रवेश करना कठिन था। कौए और कंक आदि जन्तु उसके भीतर निवास करने-वाले बड़े-बड़े नक्र (घड़ियाल) थे । गीदड़रूपी मगरोंके निवाससे उसकी उग्रता और बढ़ गयी थी। गीध ही उसमें प्रचण्ड एवं बड़े-बड़े ग्राह थे । गीदड़ियों-के चीत्कारसे वह नदी बड़ी भयानक प्रतीत होती थी। नाचते हुए प्रेत-पिशाचादि सहस्रों भूतोंसे वह व्याप्त थी ॥ ३१—३७½ ॥

तं दृष्ट्वा तस्य विक्रान्तमन्तकस्येव रूपिणः ॥ ३८ ॥
अभूतपूर्वं कुरुषु भयमागाद् रणाजिरे ।

समराङ्गणमें मूर्तिमान् यमराजके समान अर्जुनके उस अभूतपूर्व पराक्रमको देखकर कौरवोंपर भय छा गया ॥ ३८½ ॥

तत आदाय वीराणामस्त्रैरस्त्राणि पाण्डवः ॥ ३९ ॥
आत्मानं रौद्रमाचष्ट रौद्रकर्मण्यधिष्ठितः ।

तदनन्तर पाण्डुकुमार अर्जुन अपने अस्त्रोंद्वारा विपक्षी वीरोंके अस्त्र लेकर रौद्रकर्ममें तत्पर हो अपनेको रौद्र सूचित करने लगे ॥ ३९½ ॥

ततो रथवरान् राजन्नत्यतिक्रामदर्जुनः ॥ ४० ॥
मध्यंदिनगतं सूर्यं प्रतपन्तमिवाम्बरे ।
न शेकुः सर्वभूतानि पाण्डवं प्रतिवीक्षितुम् ॥ ४१ ॥

राजन् ! तत्पश्चात् अर्जुन बड़े-बड़े रथियोंको लाँघकर आगे बढ़ गये । उस समय आकाशमें तपते हुए दोपहरके सूर्यके समान पाण्डुपुत्र अर्जुनकी ओर सम्पूर्ण प्राणी देख नहीं पाते थे ॥ ४०-४१ ॥

प्रसृतांस्तस्य गाण्डीवाच्छरव्रातान् महात्मनः ।
संग्रामे सम्प्रपश्यामो हंसपङ्क्तिमिवाम्बरे ॥ ४२ ॥

उन महात्माके गाण्डीव धनुषसे छूटकर संग्राममें दूर

हुए बाण-समूहोंको हम आकाशमें हंसोंकी पंक्तिके समान देखते थे ॥ ४२ ॥

विनिवार्य स वीराणामस्त्रैरस्त्राणि सर्वतः।
दर्शयन् रौद्रमात्मानमुग्रे कर्मणि धिष्ठितः ॥ ४३ ॥

वीरोंके अस्त्र-शस्त्रोंको अस्त्रोंद्वारा सब ओरसे रोककर अपने रौद्रभावका दर्शन कराते हुए वे उग्र कर्ममें संलग्न हो गये ॥ ४३ ॥

स तान् रथवरान् राजन्नत्याक्रामत् तदार्जुनः।
मोहयन्निव नाराचैर्जयद्रथवधेप्सया।
विसृजन् दिक्षु सर्वासु शरानसितसारथिः ॥ ४४ ॥
सरथो व्यचरत् तूर्णं प्रेक्षणीयो धनंजयः।

राजन्! उस समय जयद्रथ-वधकी इच्छासे अर्जुन नाराचोंद्वारा उन महारथियोंको मोहित करते हुए-से लाँघ गये। श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं, वे धनंजय सम्पूर्ण दिशाओंमें बाणोंकी वृष्टि करते हुए रथसहित तुरंत वहाँ विचरने लगे। उस समय उनकी शोभा देखने ही योग्य थी ॥ ४४½ ॥

भ्रमन्त इव शूरस्य शरव्राता महात्मनः ॥ ४५ ॥
अदृश्यन्तान्तरिक्षस्थाः शतशोऽथ सहस्रशः।

शूरवीर महात्मा अर्जुनके चलाये हुए सैकड़ों और हजारों बाणसमूह आकाशमें घूमते हुए-से दिखायी देते थे ॥ ४५½ ॥

आददानं महेष्वासं संदधानं च सायकम् ॥ ४६ ॥
विसृजन्तं च कौन्तेयं नानुपश्याम वै तदा।

उस समय हम कुन्तीकुमार महाधनुर्धर अर्जुनको बाण लेते, चढ़ाते और छोड़ते समय देख नहीं पाते थे ॥ ४६½ ॥

तथा सर्वा दिशो राजन् सर्वांश्च रथिनो रणे ॥ ४७ ॥
कदम्बीकृत्य कौन्तेयो जयद्रथमुपाद्रवत्।

राजन्! इस प्रकार अर्जुनने रणक्षेत्रमें सम्पूर्ण दिशाओं और समस्त रथियोंको कदम्बके फूलके समान रोमाञ्चित करके जयद्रथपर धावा किया ॥ ४७½ ॥

विव्याध च चतुःषष्ट्या शराणां नतपर्वणाम् ॥ ४८ ॥
सैन्धवाभिमुखं यान्तं योधाः सम्प्रेक्ष्य पाण्डवम्।
न्यवर्तन्त रणाद् वीरा निराशास्तस्य जीविते ॥ ४९ ॥

साथ ही उसे झुकी हुई गाँठवाले चौंसठ बाणोंसे क्षत-विक्षत कर दिया। पाण्डुपुत्र अर्जुनको सिंधुराजके सम्मुख जाते देख हमारे पक्षके वीर योद्धा उसके जीवनसे निराश होकर युद्धसे निवृत्त हो गये ॥ ४८-४९ ॥

यो योऽभ्यधावदाक्रन्दे तावकः पाण्डवं रणे।
तस्य तस्यान्तगा बाणाः शरीरे न्यपतन् प्रभो ॥ ५० ॥

प्रभो! उस घोर संग्राममें आपके पक्षका जो-जो योद्धा पाण्डुपुत्र अर्जुनकी ओर बढ़ा, उस-उसके शरीरपर प्राणान्तकारी बाण पड़ने लगे ॥ ५० ॥

कबन्धसंकुलं चक्रे तव सैन्यं महारथः।
अर्जुनो जयतां श्रेष्ठः शरैरग्न्यंशुसंनिभैः ॥ ५१ ॥

विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ महारथी अर्जुनने अग्निकी ज्वालाके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा आपकी सेनाको कबन्धोंसे भर दिया ॥

एवं तत् तव राजेन्द्र चतुरङ्गबलं तदा।
व्याकुलीकृत्य कौन्तेयो जयद्रथमुपाद्रवत् ॥ ५२ ॥

राजेन्द्र! उस समय इस प्रकार आपकी उस चतुरङ्गिणी सेनाको व्याकुल करके कुन्तीकुमार अर्जुन जयद्रथकी ओर बढ़े ॥ ५२ ॥

द्रौणिं पञ्चाशताविध्यद् वृषसेनं त्रिभिः शरैः।
कृपायमाणः कौन्तेयः कृपं नवभिरार्दयत् ॥ ५३ ॥

उन्होंने अश्वत्थामाको पचास और वृषसेनको तीन बाणोंसे बींध डाला। कृपाचार्यको कृपापूर्वक केवल नौ बाण मारे ॥ ५३ ॥

शल्यं षोडशभिर्बाणैः कर्णं द्वात्रिंशता शरैः।
सैन्धवं तु चतुःषष्ट्या विद्ध्वा सिंह इवानदत् ॥ ५४ ॥

शल्यको सोलह, कर्णको बत्तीस और सिंधुराजको चौंसठ बाणोंसे घायल करके अर्जुनने सिंहके समान गर्जना की ॥ ५४ ॥

सैन्धवस्तु तथा विद्धः शरैर्गाण्डीवधन्वना।
न चक्षमे सुसंक्रुद्धस्तोत्रार्दित इव द्विपः ॥ ५५ ॥

गाण्डीवधारी अर्जुनके चलाये हुए बाणोंसे उस प्रकार घायल होनेपर सिंधुराज सहन न कर सका। वह अंकुशकी मार खाये हुए हाथीके समान अत्यन्त कुपित हो उठा ॥ ५५ ॥

स वराहध्वजस्तूर्णं गार्ध्रपत्रानजिह्मगान्।
क्रुद्धाशीविषसंकाशान् कर्मारपरिमार्जितान् ॥ ५६ ॥
आकर्णपूर्णाञ्चिक्षेप फाल्गुनस्य रथं प्रति।

उसकी ध्वजापर वाराहका चिह्न था। उसने गीधकी पाँखोंसे युक्त, सीधे जानेवाले, सोनारके माँजे हुए तथा कुपित विषधरके समान बहुत-से बाण धनुषको कानतक खींचकर शीघ्रतापूर्वक अर्जुनके रथकी ओर चलाये ॥ ५६½ ॥

त्रिभिस्तु विद्ध्वा गोविन्दं नाराचैः षड्भिरर्जुनम् ॥ ५७ ॥
अष्टभिर्वाजिनोऽविध्यद् ध्वजं चैकेन पत्रिणा।

तीन बाणोंसे श्रीकृष्णको, छः नाराचोंसे अर्जुनको तथा आठ बाणोंसे घोड़ोंको घायल करके जयद्रथने एक बाणसे अर्जुनकी ध्वजाको भी बींध डाला ॥ ५७½ ॥

स विक्षिप्यार्जुनस्तूर्णं सैन्धवप्रहिताञ्शरान् ॥ ५८ ॥
युगपत् तस्य चिच्छेद शराभ्यां सैन्धवस्य ह।
सारथेश्च शिरः कायाद् ध्वजं च समलंकृतम् ॥ ५९ ॥

परंतु अर्जुनने तुरंत ही जयद्रथके चलाये हुए बाणोंको काट गिराया और एक ही साथ दो बाणोंसे सिंधुराजके सारथिका सिर तथा अलङ्कारोंसे सुशोभित उसका ध्वज भी काट डाला ॥ ५८-५९ ॥

स छिन्नयष्टिः सुमहान् धनंजयशराहतः।

वराहः सिन्धुराजस्य पपाताग्निशिखोपमः ॥ ६० ॥

धनंजयके बाणोंसे आहत हो अग्निशिखाके समान तेजस्वी वह सिंधुराजका महान् वाराह-ध्वज दण्ड कट जानेसे पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ६० ॥

एतस्मिन्नेव काले तु द्रुतं गच्छति भास्करे।
अब्रवीत् पाण्डवं राजंस्त्वरमाणो जनार्दनः ॥ ६१ ॥

राजन् ! इसी समय जब कि सूर्यदेव तीव्रगतिसे अस्ताचलकी ओर जा रहे थे, उतावले हुए भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डुपुत्र अर्जुनसे कहा—॥ ६१ ॥

एष मध्ये कृतः षड्भिः पार्थ वीरैर्महारथैः।
जीवितेप्सुर्महाबाहो भीतस्तिष्ठति सैन्धवः ॥ ६२ ॥

'महाबाहु पार्थ ! यह सिंधुराज जयद्रथ प्राण बचानेकी इच्छासे भयभीत होकर खड़ा है और उसे छः वीर महारथियोंने अपने बीचमें कर रक्खा है ॥ ६२ ॥

एतानजित्य रणे षड् रथान् पुरुषर्षभ।
न शक्यः सैन्धवो हन्तुं यतो निर्व्याजमर्जुन ॥ ६३ ॥

'नरश्रेष्ठ अर्जुन ! रणभूमिमें इन छः महारथियोंको परास्त किये बिना सिंधुराजको बिना मायाके जीता नहीं जा सकता है ॥ ६३ ॥

योगमत्र विधास्यामि सूर्यस्यावरणं प्रति।
अस्तंगत इति व्यक्तं द्रक्ष्यत्येकः स सिन्धुराट् ॥ ६४॥

'अतः मैं यहाँ सूर्यदेवको ढकनेके लिये कोई युक्ति करूँगा, जिससे अकेला सिंधुराज ही सूर्यको स्पष्टरूपसे अस्त हुआ देखेगा ॥ ६४ ॥

हर्षेण जीविताकाङ्क्षी विनाशार्थं तव प्रभो।
न गोप्स्यति दुराचारः स आत्मानं कथंचन ॥ ६५ ॥

'प्रभो ! वह दुराचारी हर्षपूर्वक अपने जीवनकी अभिलाषा रखते हुए तुम्हारे विनाशके लिये उतावला होकर किसी प्रकार भी अपने आपको गुप्त नहीं रख सकेगा ॥६५॥

तत्र छिद्रे प्रहर्तव्यं त्वयास्य कुरुसत्तम।
व्यपेक्षा नैव कर्तव्या गतोऽस्तमिति भास्करः ॥ ६६ ॥

'कुरुश्रेष्ठ ! वैसा अवसर आनेपर तुम्हें अवश्य उसके ऊपर प्रहार करना चाहिये। इस बातपर ध्यान नहीं देना चाहिये कि सूर्यदेव अस्त हो गये' ॥ ६६ ॥

एवमस्त्विति बीभत्सुः केशवं प्रत्यभाषत।
ततोऽसृजत् तमः कृष्णः सूर्यस्यावरणं प्रति ॥ ६७ ॥
योगी योगेन संयुक्तो योगिनामीश्वरो हरिः।

यह सुनकर अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'प्रभो! ऐसा ही हो।' तब योगी, योगयुक्त और योगीश्वर भगवान् श्रीकृष्णने सूर्यको छिपानेके लिये अन्धकारकी सृष्टि की।६७½।

सृष्टे तमसि कृष्णेन गतोऽस्तमिति भास्करः ॥ ६८ ॥
त्वदीया जहृषुर्योधाः पार्थनाशान्नराधिप।

नरेश्वर ! श्रीकृष्णद्वारा अन्धकारकी सृष्टि होनेपर सूर्यदेव अस्त हो गये, ऐसा मानते हुए आपके योद्धा अर्जुनका विनाश निकट देख हर्षमग्न हो गये ॥ ६८½ ॥

ते प्रहृष्टा रणे राजन् नापश्यन् सैनिका रविम् ॥६९॥
उन्नाम्य वक्त्राणि तदा स च राजा जयद्रथः।

राजन् ! उस रणक्षेत्रमें हर्षमग्न हुए आपके सैनिकोंने सूर्यकी ओर देखातक नहीं। केवल राजा जयद्रथ उस समय बारंबार मुँह ऊँचा करके सूर्यकी ओर देख रहा था ६९½

वीक्षमाणे ततस्तस्मिन् सिन्धुराजे दिवाकरम् ॥ ७० ॥
पुनरेवाब्रवीत् कृष्णो धनंजयमिदं वचः।

जब इस प्रकार सिंधुराज दिवाकरकी ओर देखने लगा, तब भगवान् श्रीकृष्ण पुनः अर्जुनसे इस प्रकार बोले—।७०½।

पश्य सिन्धुपतिं वीरं प्रेक्षमाणं दिवाकरम् ॥ ७१ ॥
भयं हि विप्रमुच्यैतत् त्वत्तो भरतसत्तम।

'भरतश्रेष्ठ ! देखो, यह वीर सिंधुराज अब तुम्हारा भय छोड़कर सूर्यदेवकी ओर दृष्टिपात कर रहा है ॥ ७१½ ॥

अयं कालो महाबाहो वधायास्य दुरात्मनः ॥ ७२ ॥
छिन्धि मूर्धानमस्याशु कुरु साफल्यमात्मनः।

'महाबाहो ! इस दुरात्माके वधका यही अवसर है। तुम शीघ्र इसका मस्तक काट डालो और अपनी प्रतिज्ञा सफल करो' ॥ ७२½ ॥

इत्येवं केशवेनोक्तः पाण्डुपुत्रः प्रतापवान् ॥ ७३ ॥
न्यवधीत् तावकं सैन्यं शरैरर्काग्निसंनिभैः।

श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर प्रतापी पाण्डुपुत्र अर्जुनने सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा आपकी सेनाका वध आरम्भ किया ॥ ७३½ ॥

कृपं विव्याध विंशत्या कर्णं पञ्चाशता शरैः ॥ ७४ ॥
शल्यं दुर्योधनं चैव षड्भिः षड्भिरताडयत्।
वृषसेनं तथाष्टाभिः षष्ट्या सैन्धवमेव च ॥ ७५ ॥

उन्होंने कृपाचार्यको बीस, कर्णको पचास तथा शल्य और दुर्योधनको छः-छः बाण मारे। साथ ही वृषसेनको आठ और सिंधुराज जयद्रथको साठ बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ७४-७५ ॥

तथैव च महाबाहुस्त्वदीयान् पाण्डुनन्दनः।
गाढं विद्ध्वा शरै राजन् जयद्रथमुपाद्रवत् ॥ ७६ ॥

राजन् ! इसी प्रकार महाबाहु पाण्डुनन्दन अर्जुनने आपके अन्य सैनिकोंको भी बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचाकर जयद्रथपर धावा किया ॥ ७६ ॥

तं समीपस्थितं दृष्ट्वा लेलिहानमिवानलम्।
जयद्रथस्य गोप्तारः संशयं परमं गताः ॥ ७७ ॥

अपनी लपटोंसे सबको चाट जानेवाली आगके समान अर्जुनको निकट खड़ा देख जयद्रथके रक्षक भारी संशयमें पड़ गये ॥ ७७ ॥

ततः सर्वे महाराज तव योधा जयैषिणः।
सिषिचुः शरधाराभिः पाकशासनिमाहवे ॥ ७८ ॥

महाराज! उस समय विजयकी अभिलाषा रखनेवाले आपके समस्त योद्धा युद्धस्थलमें इन्द्रकुमार अर्जुनका बाणोंकी धाराओंसे अभिषेक करने लगे ॥ ७८ ॥

संछाद्यमानः कौन्तेयः शरजालैरनेकशः।
अक्रुध्यत् स महाबाहुरजितः कुरुनन्दनः ॥ ७९ ॥

इस प्रकार बारंबार बाणसमूहोंसे आच्छादित किये जानेपर कुरुकुलको आनन्दित करनेवाले अपराजित वीर कुन्तीकुमार महाबाहु अर्जुन अत्यन्त कुपित हो उठे ॥ ७९ ॥

ततः शरमयं जालं तुमुलं पाकशासनिः।
व्यसृजत् पुरुषव्याघ्रस्तव सैन्यजिघांसया ॥ ८० ॥

फिर उन पुरुषसिंह इन्द्रकुमारने आपकी सेनाके संहारकी इच्छासे बाणोंका भयंकर जाल बिछाना आरम्भ किया ॥ ८० ॥

ते हन्यमाना वीरेण योधा राजन् रणे तव।
प्रजहुः सैन्धवं भीता द्वौ समं नाप्यधावताम् ॥ ८१ ॥

राजन्! उस समय रणभूमिमें वीर अर्जुनकी मार खानेवाले योद्धा भयभीत हो सिंधुराजको छोड़ भाग चले। वे इतने डर गये थे कि दो सैनिक भी एक साथ नहीं भागते थे ॥ ८१ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम कुन्तीपुत्रस्य विक्रमम्।
यादृङ् न भावी भूतो वा यच्चकार महायशाः ॥ ८२ ॥

वहाँ हमलोगोंने कुन्तीकुमारका अद्भुत पराक्रम देखा। उन महायशस्वी वीरने उस समय जो पुरुषार्थ प्रकट किया था, वैसा न तो पहले कभी प्रकट हुआ था और न आगे कभी होगा ही ॥ ८२ ॥

द्विपान् द्विपगतांश्चैव हयान् हयगतानपि।
तथा स रथिनश्चैव न्यहन् रुद्रः पशूनिव ॥ ८३ ॥

जैसे संहारकारी रुद्र समस्त प्राणियोंका विनाश कर डालते हैं, उसी प्रकार उन्होंने हाथियों और हाथीसवारोंको, घोड़ों और घुड़सवारोंको तथा रथों एवं रथियोंको भी नष्ट कर दिया ॥ ८३ ॥

न तत्र समरे कश्चिन्मया दृष्टो नराधिप।
गजो वाजी नरो वापि यो न पार्थशराहतः ॥ ८४ ॥

नरेश्वर! उस समरभूमिमें मैंने कोई भी ऐसा हाथी, घोड़ा या मनुष्य नहीं देखा, जो अर्जुनके बाणोंसे क्षत-विक्षत न हो गया हो ॥ ८४ ॥

रजसा तमसा चैव योधाः संछन्नचक्षुषः।
कश्मलं प्राविशन् घोरं नान्वजानन् परस्परम् ॥ ८५ ॥

उस समय धूल और अन्धकारसे सारे योद्धाओंके नेत्र आच्छादित हो गये थे। वे भयंकर मोहमें पड़ गये। उनके लिये एक दूसरेको पहचानना भी असम्भव हो गया ॥ ८५ ॥

ते शरैर्भिन्नमर्माणः सैनिकाः पार्थचोदितैः।
बभ्रमुश्चस्खलुः पेतुः सेदुर्म्लुश्च भारत ॥ ८६ ॥

भारत! अर्जुनके चलाये हुए बाणोंसे जिनके मर्मस्थल विदीर्ण हो गये थे, वे सैनिक चक्कर काटते, लड़खड़ाते, गिरते, व्यथित होते और प्राणशून्य होकर मलिन हो जाते थे ॥ ८६ ॥

तस्मिन् महाभीषणके प्रजानामिव संक्षये।
रणे महति दुष्पारे वर्तमाने सुदारुणे ॥ ८७ ॥
शोणितस्य प्रसेकेन शीघ्रत्वादनिलस्य च।
अशाम्यत् तद् रजो भौममसृक्सिक्ते धरातले ॥ ८८ ॥
आनाभि निरमज्जंश्च रथचक्राणि शोणिते।

समस्त प्राणियोंके प्रलयकालके समान जब वह महाभीषण अत्यन्त दारुण महान् एवं दुर्लङ्घ्य संग्राम चल रहा था, उस समय रक्तकी वर्षासे और वायुके वेगपूर्वक चलनेसे रुधिरसे भीगे हुए धरातलकी धूल शान्त हो गयी। रथके पहिये नाभितक खूनमें डूबे हुए थे ॥ ८७-८८½ ॥

मत्ता वेगवतो राजंस्तावकानां रणाजिरे ॥ ८९ ॥
हस्तिनश्च हतारोहा दारिताङ्गाः सहस्रशः।
स्वान्यनीकानि मृद्नन्त आर्तनादाः प्रदुद्रुवुः ॥ ९० ॥

राजन्! जिनके सवार मार डाले गये थे और समस्त अंग बाणोंसे विदीर्ण हो रहे थे, वे आपके योद्धाओंके वेगवान् और मदमत्त सहस्रों हाथी समरभूमिमें अपनी ही सेनाओंको रौंदते और आर्तनाद करते हुए जोर-जोरसे भागने लगे ॥ ८९-९० ॥

हयाश्च पतितारोहाः पत्तयश्च नराधिप।
प्रदुद्रुवुर्भयाद् राजन् धनंजयशराहताः ॥ ९१ ॥

नरेश्वर! राजन्! घुड़सवार गिर गये थे और घोड़े एवं पैदल सैनिक धनंजयके बाणोंसे अत्यन्त घायल हो भयके मारे भागे जा रहे थे ॥ ९१ ॥

मुक्तकेशा विकवचाः क्षरन्तः क्षतजं क्षतैः।
प्रापलायन्त संत्रस्तास्त्यक्त्वा रणशिरो जनाः ॥ ९२ ॥

लोगोंके बाल खुले हुए थे, कवच कटकर गिर गये थे और वे अत्यन्त भयभीत हो युद्धका मुहाना छोड़कर अपने घावोंसे रक्तकी धारा बहाते हुए जान बचानेके लिये भाग रहे थे ॥ ९२ ॥

ऊरुग्राहगृहीताश्च केचित् तत्राभवन् भुवि।
हतानां चापरे मध्ये द्विरदानां निलिल्यिरे ॥ ९३ ॥

कुछ लोग बिना हिले-डुले इस प्रकार भूमिपर खड़े थे, मानो उनकी जाँघें अकड़ गयी हों। दूसरे बहुत-से सैनिक वहाँ मारे गये हाथियोंके बीचमें जा छिपे थे ॥ ९३ ॥

एवं तव बलं राजन् द्रावयित्वा धनंजयः ।
न्यवधीत् सायकैर्घोरैः सिन्धुराजस्य रक्षिणः ॥ ९४ ॥

राजन् ! इस प्रकार अर्जुनने आपकी सेनाको भगाकर भयंकर बाणोंद्वारा सिंधुराजके रक्षकोंको मारना आरम्भ किया ॥

द्रौणिं कृपं कर्णशल्यौ वृषसेनं सुयोधनम् ।
छादयामास तीव्रेण शरजालेन पाण्डवः ॥ ९५ ॥

पाण्डुकुमार अर्जुनने अपने तीखे बाणसमूहसे अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, शल्य, वृषसेन तथा दुर्योधनको आच्छादित कर दिया ॥ ९५ ॥

न गृह्णन् न क्षिपन् राजन् मुञ्चन्नापि च संदधत् ।
अदृश्यतार्जुनः संख्ये शीघ्रास्त्रत्वात् कथंचन ॥ ९६ ॥

राजन् ! उस समय युद्धस्थलमें अर्जुन इतनी फुर्तीसे बाण चलाते थे कि कोई किसी प्रकार भी यह न देख सका कि वे कब बाण लेते हैं, कब उसे धनुषपर रखते हैं, कब प्रत्यञ्चा खींचते हैं और कब वह बाण छोड़ते हैं ॥ ९६ ॥

धनुर्मण्डलमेवास्य दृश्यते स्मास्यतः सदा ।
सायकाश्च व्यदृश्यन्त निश्चरन्तः समन्ततः ॥ ९७ ॥

निरन्तर बाण छोड़ते हुए अर्जुनका केवल मण्डलाकार धनुष ही लोगोंकी दृष्टिमें आता था एवं चारों ओर फैलते हुए उनके बाण भी दृष्टिगोचर होते थे ॥ ९७ ॥

कर्णस्य तु धनुश्छित्त्वा वृषसेनस्य चैव ह ।
शल्यस्य सूतं भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ९८ ॥

अर्जुनने कर्ण और वृषसेनके धनुष काटकर एक भल्लके द्वारा शल्यके सारथिको रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया ॥

गाढविद्धावुभौ कृत्वा शरैः स्वस्रीयमातुलौ ।
अर्जुनो जयतां श्रेष्ठो द्रौणिशारद्वतौ रणे ॥ ९९ ॥

विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने रणभूमिमें मामा-भानजे कृपाचार्य और अश्वत्थामा दोनोंको बाणोंद्वारा बींधकर गहरी चोट पहुँचायी ॥ ९९ ॥

एवं तान् व्याकुलीकृत्य त्वदीयानां महारथान् ।
उज्जहार शरं घोरं पाण्डवोऽनलसंनिभम् ॥ १०० ॥

इस प्रकार आपके उन महारथियोंको व्याकुल करके पाण्डुकुमार अर्जुनने एक अग्निके समान तेजस्वी एवं भयंकर बाण निकाला ॥ १०० ॥

इन्द्राशनिसमप्रख्यं दिव्यमस्त्राभिमन्त्रितम् ।
सर्वभारसहं शश्वद् गन्धमाल्यार्चितं महत् ॥ १०१ ॥

वह दिव्य बाण दिव्यास्त्रोंसे अभिमन्त्रित होकर इन्द्रके वज्रके समान प्रकाशित हो रहा था। वह सब प्रकारका भार सहन करनेमें समर्थ और महान् था। उसकी गन्ध और मालाओंद्वारा सदा पूजा की जाती थी ॥ १०१ ॥

वज्रेणास्त्रेण संयोज्य विधिवत् कुरुनन्दनः ।
समादधन्महाबाहुर्गाण्डीवे क्षिप्रमर्जुनः ॥ १०२ ॥

कुरुनन्दन महाबाहु अर्जुनने उस बाणको विधिपूर्वक वज्रास्त्रसे संयोजित करके शीघ्र ही गाण्डीव धनुषपर रक्खा ॥

तस्मिन् संधीयमाने तु शरे ज्वलनतेजसि ।
अन्तरिक्षे महानादो भूतानामभवन्नृप ॥ १०३ ॥

नरेश्वर ! जब अर्जुन अग्निके समान तेजस्वी उस बाणका संधान करने लगे, उस समय आकाशचारी प्राणियोंमें महान् कोलाहल होने लगा ॥ १०३ ॥

अब्रवीच्च पुनस्तत्र त्वरमाणो जनार्दनः ।
धनंजय शिरश्छिन्धि सैन्धवस्य दुरात्मनः ॥ १०४ ॥

उस समय वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण पुनः उतावले होकर बोल उठे—'धनंजय ! तुम दुरात्मा सिंधुराजका मस्तक शीघ्र काट लो ॥ १०४ ॥

अस्तं महीधरश्रेष्ठं यियासति दिवाकरः ।
शृणुष्वैतच्च वाक्यं मे जयद्रथवधं प्रति ॥ १०५ ॥

'क्योंकि सूर्य अब पर्वतश्रेष्ठ अस्ताचलपर जाना ही चाहते हैं । जयद्रथ-वधके विषयमें तुम मेरी यह बात ध्यानसे सुन लो ॥ १०५ ॥

वृद्धक्षत्रः सैन्धवस्य पिता जगति विश्रुतः ।
स कालेनेह महता सैन्धवं प्राप्तवान् सुतम् ॥ १०६ ॥

सिंधुराजके पिता वृद्धक्षत्र इस जगत्में विख्यात हैं। उन्होंने दीर्घकालके पश्चात् इस सिंधुराज जयद्रथको अपने पुत्रके रूपमें प्राप्त किया ॥ १०६ ॥

जयद्रथममित्रघ्नं वागुवाचाशरीरिणी ।
नृपमन्तर्हिता वाणी मेघदुन्दुभिनिःस्वना ॥ १०७ ॥

'इसके जन्मकालमें मेघके समान गम्भीर स्वरवाली अदृश्य आकाशवाणीने शत्रुसूदन जयद्रथके विषयमें राजाको सम्बोधित करके इस प्रकार कहा—॥ १०७ ॥

तवात्मजो मनुष्येन्द्र कुलशीलदमादिभिः ।
गुणैर्भविष्यति विभो सदृशो वंशयोर्द्वयोः ॥ १०८ ॥

'शक्तिशाली नरेन्द्र ! तुम्हारा यह पुत्र कुल, शील और संयम आदि सद्गुणोंके द्वारा दोनों वंशोंके अनुरूप होगा ॥

क्षत्रियप्रवरो लोके नित्यं शूराभिसत्कृतः ।
किं त्वस्य युध्यमानस्य संग्रामे क्षत्रियर्षभः ॥ १०९ ॥
शिरश्छेत्स्यति संक्रुद्धः शत्रुरालक्षितो भुवि ।

'इस जगत्के क्षत्रियोंमें यह श्रेष्ठ माना जायगा। शूरवीर सदा इसका सत्कार करेंगे; परंतु अन्त समयमें संग्रामभूमिमें युद्ध करते समय कोई क्षत्रियशिरोमणि वीर इसका शत्रु होकर इसके सामने खड़ा हो क्रोधपूर्वक इसका मस्तक काट डालेगा ॥

एतच्छ्रुत्वा सिन्धुराजो ध्यात्वा चिरमरिंदमः ॥ ११० ॥
ज्ञातीन् सर्वाननुवाचेदं पुत्रस्नेहाभिचोदितः ।

'यह सुनकर शत्रुओंका दमन करनेवाले सिंधुराज

क्षत्र देरतक कुछ सोचते रहे, फिर पुत्रस्नेहसे प्रेरित हो वे समस्त जाति-भाइयोंसे इस प्रकार बोले—॥ ११०½ ॥

संग्रामे युध्यमानस्य वहतो महतीं धुरम् ॥१११॥
धरण्यां मम पुत्रस्य पातयिष्यति यः शिरः ।
तस्यापि शतधा मूर्धा फलिष्यति न संशयः ॥११२॥

'संग्राममें युद्धतत्पर हो भारी भार वहन करते हुए मेरे इस पुत्रके मस्तकको जो पृथ्वीपर गिरा देगा, उसके सिरके भी सैकड़ों टुकड़े हो जायँगे, इसमें संशय नहीं है' ॥

एवमुक्त्वा ततो राज्ये स्थापयित्वा जयद्रथम् ।
वृद्धक्षत्रो वनं यातस्तपश्चोग्रं समास्थितः ॥११३॥

'ऐसा कहकर समय आनेपर वृद्धक्षत्रने जयद्रथको राज्य-सिंहासनपर स्थापित कर दिया और स्वयं वनमें जाकर वे उग्र तपस्यामें संलग्न हो गये ॥ ११३ ॥

सोऽयं तप्यति तेजस्वी तपो घोरं दुरासदम् ।
समन्तपञ्चकादस्माद् बहिर्वानरकेतन ॥११४॥

'कपिध्वज अर्जुन ! वे तेजस्वी राजा वृद्धक्षत्र इस समय इस समन्तपञ्चक-क्षेत्रसे बाहर घोर एवं दुर्धर्ष तपस्या कर रहे हैं ॥ ११४ ॥

तस्माज्जयद्रथस्य त्वं शिरश्छित्त्वा महामृधे ।
दिव्येनास्त्रेण रिपुहन् घोरेणाद्भुतकर्मणा ॥११५॥
सकुण्डलं सिन्धुपतेः प्रभञ्जनसुतानुज ।
उत्सङ्गे पातयस्वास्य वृद्धक्षत्रस्य भारत ॥११६॥

'अतः शत्रुसूदन ! तुम अद्भुत कर्म करनेवाले किसी भयंकर दिव्यास्त्रके द्वारा इस महासमरमें सिंधुराज जयद्रथका कुण्डलसहित मस्तक काटकर उसे इस वृद्धक्षत्रकी गोदमें गिरा दो । भारत ! तुम भीमसेनके छोटे भाई हो (अतः सब कुछ कर सकते हो) ॥ ११५-११६ ॥

अथ त्वमस्य मूर्धानं पातयिष्यसि भूतले ।
तवापि शतधा मूर्धा फलिष्यति न संशयः ॥११७॥

'यदि तुम इसके मस्तकको पृथ्वीपर गिराओगे तो तुम्हारे मस्तकके भी सौ टुकड़े हो जायँगे । इसमें संशय नहीं है ॥

यथा चेदं न जानीयात् स राजा तपसि स्थितः ।
तथा कुरु कुरुश्रेष्ठ दिव्यमस्त्रमुपाश्रितः ॥११८॥

'कुरुश्रेष्ठ ! राजा वृद्धक्षत्र तपस्यामें संलग्न हैं । तुम दिव्यास्त्रका आश्रय लेकर ऐसा प्रयत्न करो, जिससे उसे इस बातका पता न चले' ॥ ११८ ॥

न ह्यसाध्यमकार्यं वा विद्यते तव किंचन ।
समस्तेष्वपि लोकेषु त्रिषु वासवनन्दन ॥११९॥

'इन्द्रकुमार ! सम्पूर्ण त्रिलोकीमें कोई ऐसा कार्य नहीं है, जो तुम्हारे लिये असाध्य हो अथवा जिसे तुम कर न सको' ॥ ११९ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं सृक्किणी परिसंलिहन् ।
इन्द्राशनिसमस्पर्शं दिव्यमन्त्राभिमन्त्रितम् ॥१२०॥
सर्वभारसहं शश्वद् गन्धमाल्यार्चितं शरम् ।
विससर्जार्जुनस्तूर्णं सैन्धवस्य वधे धृतम् ॥१२१॥

श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर अपने दोनों गलफर चाटते हुए अर्जुनने सिंधुराजके वधके लिये धनुषपर रक्खे हुए उस बाणको तुरंत ही छोड़ दिया, जिसका स्पर्श इन्द्रके वज्रके समान कठोर था, जिसे दिव्य मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित किया था, जो सारे भारोंको सहनेमें समर्थ था और जिसकी प्रतिदिन चन्दन और पुष्पमालाद्वारा पूजा की जाती थी ॥

स तु गाण्डीवनिर्मुक्तः शरः श्येन इवाशुगः ।
छित्त्वा शिरः सिन्धुपतेरुत्पपात विहायसम् ॥१२२॥

गाण्डीव धनुषसे छूटा हुआ वह शीघ्रगामी बाण सिंधुराजका सिर काटकर बाज पक्षीके समान उसे आकाशमें ले उड़ा ॥

तच्छिरः सिन्धुराजस्य शरैरूर्ध्वमवाहयत् ।
दुर्हृदामप्रहर्षाय सुहृदां हर्षणाय च ॥१२३॥

सिंधुराज जयद्रथके उस मस्तकको उन्होंने बाणोंद्वारा ऊपर-ही-ऊपर ढोना आरम्भ किया । इससे अर्जुनके शत्रुओं-को बड़ा दुःख और मित्रोंको महान् हर्ष हुआ ॥ १२३ ॥

शरैः कदम्बकीकृत्य काले तस्मिंश्च पाण्डवः ।
योधयामास तांश्चैव पाण्डवः षण्महारथान् ॥१२४॥

उस समय पाण्डुपुत्र अर्जुनने एकके बाद एक करके अनेक बाण मारकर उस मस्तकको कदम्बके फूल-सा बना दिया । साथ ही वे पूर्वोक्त छः महारथियोंसे युद्ध भी करते रहे ॥ १२४ ॥

ततः सुमहदाश्चर्यं तत्रापश्याम भारत ।
समन्तपञ्चकाद् बाह्यं शिरो यद् व्यहरत् ततः ॥१२५॥

भारत ! उस समय हमने समन्तपञ्चकसे बाहर जहाँ वह बाण उस मस्तकको ले गया था, वहाँ बड़े भारी आश्चर्यकी घटना देखी ॥ १२५ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु वृद्धक्षत्रो महीपतिः ।
संध्यामुपास्ते तेजस्वी सम्बन्धी तव मारिष ॥१२६॥

आर्य ! इसी समय आपके तेजस्वी सम्बन्धी राजा वृद्ध-क्षत्र संध्योपासना कर रहे थे ॥ १२६ ॥

उपासीनस्य तस्याथ कृष्णकेशं सकुण्डलम् ।
सिन्धुराजस्य मूर्धानमुत्सङ्गे समपातयत् ॥१२७॥

संध्योपासनामें बैठे हुए वृद्धक्षत्रके अङ्कमें उस बाणने सिंधुराज जयद्रथका वह काले केशोंवाला कुण्डलमण्डित मस्तक डाल दिया ॥ १२७ ॥

तस्योत्सङ्गे निपतितं शिरस्तच्चारुकुण्डलम् ।
वृद्धक्षत्रस्य नृपतेरलक्षितमरिंदम ॥१२८॥

शत्रुदमन नरेश ! जयद्रथका वह सुन्दर कुण्डलोंसे सुशोभित सिर राजा वृद्धक्षत्रकी गोदमें उनके बिना देखे ही गिर गया ॥ १२८ ॥

कृतजप्यस्य तस्याथ वृद्धक्षत्रस्य भारत ।
प्रोत्तिष्ठतस्तत् सहसा शिरोऽगच्छद् धरातलम् ॥ १२९ ॥

भरतनन्दन ! जप समाप्त करके जब वृद्धक्षत्र सहसा उठने लगे, तब उनकी गोदसे वह मस्तक पृथ्वीपर जा गिरा ॥

ततस्तस्य नरेन्द्रस्य पुत्रमूर्धनि भूतले ।
गते तस्यापि शतधा मूर्धागच्छदरिंदम ॥ १३० ॥

शत्रुदमन महाराज ! पुत्रका मस्तक पृथ्वीपर गिरते ही राजा वृद्धक्षत्रके मस्तकके भी सौ टुकड़े हो गये ॥ १३० ॥

ततः सर्वाणि सैन्यानि विस्मयं जग्मुरुत्तमम् ।
वासुदेवं च बीभत्सुं प्रशशंसुर्महारथम् ॥ १३१ ॥

तदनन्तर सारी सेनाएँ भारी आश्चर्यमें पड़ गयीं और सब लोग श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा करने लगे ॥ १३१ ॥

ततो विनिहते राजन् सिन्धुराजे किरीटिना ।
तमस्तद् वासुदेवेन संहृतं भरतर्षभ ॥ १३२ ॥

राजन् ! भरतश्रेष्ठ ! किरीटधारी अर्जुनके द्वारा सिंधुराज जयद्रथके मारे जानेपर भगवान् श्रीकृष्णने अपने रचे हुए अन्धकारको समेट लिया ॥ १३२ ॥

पश्चाज्ज्ञातं महीपाल तव पुत्रैः सहानुगैः ।
वासुदेवप्रयुक्तेयं मायेति नृपसत्तम ॥ १३३ ॥

नृपश्रेष्ठ ! महीपाल ! पीछे सेवकोंसहित आपके पुत्रोंको यह ज्ञात हुआ कि इस अन्धकारके रूपमें भगवान् श्रीकृष्ण-द्वारा फैलायी हुई माया थी ॥ १३३ ॥

एवं स निहतो राजन् पार्थेनामिततेजसा ।
अक्षौहिणीरष्ट हत्वा जामाता तव सैन्धवः ॥ १३४ ॥

राजन् ! इस प्रकार अमित तेजस्वी अर्जुनने आपकी आठ अक्षौहिणी सेनाओंके संहारकी पूर्ति करके आपके दामाद सिंधुराज जयद्रथको मार डाला ॥ १३४ ॥

हतं जयद्रथं दृष्ट्वा तव पुत्रा नराधिप ।
दुःखादश्रूणि मुमुचुर्निराशाश्चाभवञ्जये ॥ १३५ ॥

नरेश्वर ! जयद्रथको मारा गया देख आपके पुत्र दुःखसे आँसू बहाने लगे और अपनी विजयसे निराश हो गये ॥

ततो जयद्रथे राजन् हते पार्थेन केशवः ।
दध्मौ शङ्खं महाबाहुरर्जुनश्च परंतपः ॥ १३६ ॥

राजन् ! कुन्तीकुमारद्वारा जयद्रथके मारे जानेपर भगवान् श्रीकृष्ण तथा शत्रुतापन महाबाहु अर्जुनने अपना-अपना शङ्ख बजाया ॥ १३६ ॥

भीमश्च वृष्णिसिंहश्च युधामन्युश्च भारत ।
उत्तमौजाश्च विक्रान्तः शङ्खान् दध्मुः पृथक् पृथक् ॥ १३७ ॥

भारत ! तत्पश्चात् भीमसेन, वृष्णिवंशके सिंह, युधामन्यु और पराक्रमी उत्तमौजाने पृथक्-पृथक् शङ्ख बजाये ॥ १३७ ॥

श्रुत्वा महान्तं तं शब्दं धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
सैन्धवं निहतं मेने फाल्गुनेन महात्मना ॥ १३८ ॥

उस महान् शङ्खनादको सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने यह निश्चय हो गया कि महात्मा अर्जुनने सिंधुराज जयद्रथको मार डाला ॥ १३८ ॥

ततो वादित्रघोषेण स्वान् योधान् पर्यहर्षयत् ।
अभ्यवर्तत संग्रामे भारद्वाजं युयुत्सया ॥ १३९ ॥

तदनन्तर युधिष्ठिर भी विजयके बाजे बजवाकर अपने योद्धाओंका हर्ष बढ़ाने लगे । वे युद्धकी इच्छासे संग्रामभूमिमें द्रोणाचार्यके सामने डटे रहे ॥ १३९ ॥

ततः प्रववृते राजन्नस्तंगच्छति भास्करे ।
द्रोणस्य सोमकैः सार्धं संग्रामो लोमहर्षणः ॥ १४० ॥

राजन् ! तदनन्तर सूर्यास्त होते समय द्रोणाचार्यका सोमकोंके साथ रोमाञ्चकारी संग्राम छिड़ गया ॥ १४० ॥

ते तु सर्वे प्रयत्नेन भारद्वाजं जिघांसवः ।
सैन्धवे निहते राजन्नयुध्यन्त महारथाः ॥ १४१ ॥

नरेश्वर ! सिंधुराजके मारे जानेपर समस्त सोमक महारथी द्रोणाचार्यके वधकी इच्छासे प्रयत्नपूर्वक युद्ध करने लगे ॥

पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा सैन्धवं विनिहत्य च ।
अयोधयंस्तु ते द्रोणं जयोन्मत्तास्ततस्ततः ॥ १४२ ॥

पाण्डव सिंधुराजको मारकर विजय पा चुके थे । अतः वे विजयोल्लाससे उन्मत्त हो जहाँ-तहाँसे आकर द्रोणाचार्यके साथ युद्ध करने लगे ॥ १४२ ॥

अर्जुनोऽपि ततो योधांस्तावकान् रथसत्तमान् ।
अयोधयन्महाबाहुर्हत्वा सैन्धवकं नृपम् ॥ १४३ ॥

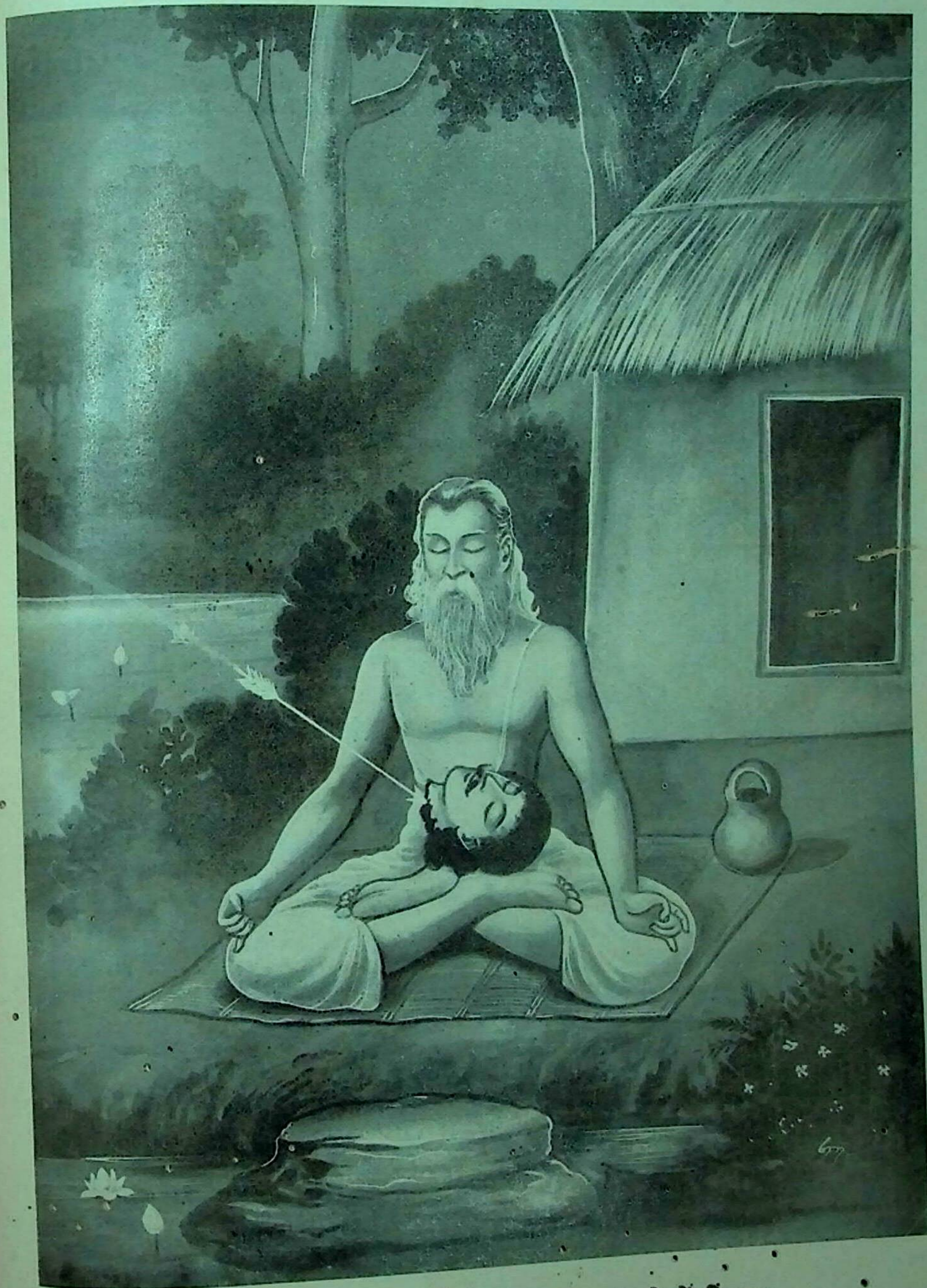
महाबाहु अर्जुनने भी सिंधुराजको मारकर आपके श्रेष्ठ रथी योद्धाओंके साथ युद्ध छेड़ दिया ॥ १४३ ॥

स देवशत्रूनिव देवराजः
किरीटमाली व्यधमत् समन्तात् ।
यथा तमांस्यभ्युदितस्तमोघ्नः
पूर्वप्रतिज्ञां समवाप्य वीरः ॥ १४४ ॥

जैसे देवराज इन्द्र देवशत्रुओंका संहार करते हैं तथा जैसे तिमिरारि सूर्य उदित होकर अन्धकारका विनाश कर डालते हैं, उसी प्रकार किरीटधारी वीर अर्जुनने अपनी पहली प्रतिज्ञा पूरी करके सब ओरसे आपकी सेनाका संहार आरम्भ कर दिया ॥ १४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि जयद्रथवधे षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें जयद्रथवधविषयक एक सौ छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४६ ॥



जयद्रथके कटे हुए मस्तकका उसके पिताकी गोदमें गिरना

सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अर्जुनके बाणोंसे कृपाचार्यका मूर्छित होना, अर्जुनका खेद तथा कर्ण और सात्यकिका युद्ध एवं कर्णकी पराजय

धृतराष्ट्र उवाच

तस्मिन् विनिहते वीरे सैन्धवे सव्यसाचिना।
मामका यदकुर्वन्त तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! सव्यसाची अर्जुनके द्वारा वीर सिंधुराजके मारे जानेपर मेरे पुत्रोंने क्या किया? यह मुझे बताओ ॥ १ ॥

संजय उवाच

सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा रणे पार्थेन भारत।
अमर्षवशमापन्नः कृपः शारद्वतस्ततः ॥ २ ॥
महता शरवर्षेण पाण्डवं समवाकिरत्।
द्रौणिश्चाभ्यद्रवद् राजन् रथमास्थाय फाल्गुनम् ॥ ३ ॥

संजयने कहा—भरतनन्दन! सिंधुराजको अर्जुनके द्वारा रणभूमिमें मारा गया देख शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य अमर्षके वशीभूत हो बाणकी भारी वर्षा करके पाण्डुपुत्र अर्जुनको आच्छादित करने लगे। राजन्! द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने भी रथपर बैठकर अर्जुनपर धावा किया ॥ २-३ ॥

तावेतौ रथिनां श्रेष्ठौ रथाभ्यां रथसत्तमौ।
उभावुभयतस्तीक्ष्णैर्विशिखैरभ्यवर्षताम् ॥ ४ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ वे दोनों महारथी दो दिशाओंसे आकर अर्जुनपर पैने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४ ॥

स तथा शरवर्षाभ्यां सुमहद्भ्यां महाभुजः।
पीड्यमानः परामार्तिमगमद् रथिनां वरः ॥ ५ ॥

इस प्रकार दो दिशाओंसे होनेवाली उस भारी बाण-वर्षासे पीड़ित हो रथियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु अर्जुन अत्यन्त व्यथित हो उठे ॥ ५ ॥

सोऽजिघांसुर्गुरुं संख्ये गुरोस्तनयमेव च।
चकाराचार्यकं तत्र कुन्तीपुत्रो धनंजयः ॥ ६ ॥

वे युद्धस्थलमें गुरु तथा गुरुपुत्रका वध करना नहीं चाहते थे। अतः कुन्तीपुत्र धनंजयने वहाँ अपने आचार्यका सम्मान किया ॥ ६ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्रौणेः शारद्वतस्य च।
मन्दवेगानिषूंस्ताभ्यामजिघांसुरवासृजत ॥ ७ ॥

उन्होंने अपने अस्त्रोंद्वारा अश्वत्थामा तथा कृपाचार्यके अस्त्रोंका निवारण करके उनका वध करनेकी इच्छा न रखते हुए उनके ऊपर मन्द वेगवाले बाण चलाये ॥ ७ ॥

ते चापि भृशमभ्यघ्नन् विशिखाः पार्थचोदिताः।
बहुत्वात् तु परामार्तिं शराणां तावगच्छताम् ॥ ८ ॥

अर्जुनके चलाये हुए उन बाणोंकी संख्या अधिक होनेके कारण उनके द्वारा उन दोनोंको भारी चोट पहुँची। वे बड़ी वेदनाका अनुभव करने लगे ॥ ८ ॥

अथ शारद्वतो राजन् कौन्तेयशरपीडितः।
अवासीदद् रथोपस्थे मूर्च्छामभिजगाम ह ॥ ९ ॥

राजन्! कृपाचार्य अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित हो मूर्छित हो गये और रथके पिछले भागमें जा बैठे ॥ ९ ॥

विह्वलं तमभिज्ञाय भर्तारं शरपीडितम्।
हतोऽयमिति च ज्ञात्वा सारथिस्तमपावहत् ॥ १० ॥

अपने स्वामीको बाणोंसे पीड़ित एवं विह्वल जानकर और उन्हें मरा हुआ समझकर सारथि रणभूमिसे दूर हटा ले गया ॥ १० ॥

तस्मिन् भग्ने महाराज कृपे शारद्वते युधि।
अश्वत्थामाप्यपायासीत् पाण्डवेयाद् रथान्तरम् ॥ ११ ॥

महाराज! युद्धस्थलमें शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्यके अचेत होकर वहाँसे हट जानेपर अश्वत्थामा भी अर्जुनको छोड़कर दूसरे किसी रथीका सामना करनेके लिये चला गया ॥ ११ ॥

दृष्ट्वा शारद्वतं पार्थो मूर्च्छितं शरपीडितम्।
रथ एव महेष्वासः सकृपं पर्यदेवयत् ॥ १२ ॥
अश्रुपूर्णमुखो दीनो वचनं चेदमब्रवीत्।

कृपाचार्यको बाणोंसे पीड़ित एवं मूर्छित देखकर महाधनुर्धर कुन्तीकुमार अर्जुन दयावश रथपर बैठे-बैठे ही विलाप करने लगे। उनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी। वे दीनभावसे इस प्रकार कहने लगे— ॥ १२½ ॥

पश्यन्निदं महाप्राज्ञः क्षत्ता राजानमुक्तवान् ॥ १३ ॥
कुलान्तकरणे पापे जातमात्रे सुयोधने।
नीयतां परलोकाय साध्वयं कुलपांसनः ॥ १४ ॥
अस्माद्धि कुरुमुख्यानां महदुत्पत्स्यते भयम्।

'जिस समय कुलान्तकारी पापी दुर्योधनका जन्म हुआ था, उस समय महाज्ञानी विदुरजीने यही सब विनाशकारी परिणाम देखकर राजा धृतराष्ट्रसे कहा था कि 'इस कुलाङ्गार बालकको परलोक भेज दिया जाय, यही अच्छा होगा; क्योंकि इससे प्रधान-प्रधान कुरुवंशियोंको महान् भय उत्पन्न होगा' ॥ १३-१४½ ॥

तदिदं समनुप्राप्तं वचनं सत्यवादिनः ॥ १५ ॥
तत्कृते ह्यद्य पश्यामि शरतल्पगतं गुरुम्।
धिगस्तु क्षात्रमाचारं धिगस्तु बलपौरुषम् ॥ १६ ॥

'सत्यवादी विदुरजीका वह कथन आज सत्य हो रहा

है। दुर्योधनके ही कारण आज मैं अपने गुरुको शर-शय्यापर पड़ा देखता हूँ। क्षत्रियके आचार, बल और पुरुषार्थको धिक्कार है! धिक्कार है!! १५-१६ ॥

को हि ब्राह्मणमाचार्यमभिद्रुह्येत मादृशः।
ऋषिपुत्रो ममाचार्यो द्रोणस्य परमः सखा ॥ १७ ॥
एष शेते रथोपस्थे कृपो मद्बाणपीडितः।

'मेरे-जैसा कौन पुरुष ब्राह्मण एवं आचार्यसे द्रोह करेगा? ये ऋषिकुमार, मेरे आचार्य तथा गुरुवर द्रोणाचार्यके परम सखा कृप मेरे बाणोंसे पीड़ित हो रथकी बैठकमें पड़े हैं ॥ १७½ ॥

अकामयानेन मया विशिखैरर्दितो भृशम् ॥ १८ ॥
अवसीदन् रथोपस्थे प्राणान् पीडयतीव मे।

'मैंने इच्छा न रहते हुए भी उन्हें बाणोंद्वारा अधिक चोट पहुँचायी है। वे रथकी बैठकमें पड़े-पड़े कष्ट पा रहे हैं और मुझे अत्यन्त पीड़ित-सा कर रहे हैं ॥ १८½ ॥

पुत्रशोकाभितप्तेन शरैरभ्यर्दितेन च ॥ १९ ॥
अभ्यस्तो बहुभिर्बाणैर्दशधर्मगतेन वै।

'मैंने पुत्रशोकसे संतप्त, बाणोंद्वारा पीड़ित तथा भारी दुरवस्थाको प्राप्त होकर बहुसंख्यक बाणोंद्वारा उन्हें अनेक बार चोट पहुँचायी है ॥ १९½ ॥

शोचयत्येष नियतं भूयः पुत्रवधाद्धि माम् ॥ २० ॥
कृपणं स्वरथे सन्नं पश्य कृष्ण यथागतम्।

'निश्चय ही ये कृपाचार्य आहत होकर मुझे पुत्रवधकी अपेक्षा भी अधिक शोकमें डाल रहे हैं। श्रीकृष्ण! देखिये, वे अपने रथपर कैसे खिन्न और दीन होकर पड़े हैं ॥ २०½ ॥

उपाकृत्य तु वै विद्यामाचार्येभ्यो नरर्षभाः ॥ २१ ॥
प्रयच्छन्तीह ये कामान् देवत्वमुपयान्ति ते।

'आचार्योंसे विद्या ग्रहण करके जो श्रेष्ठ पुरुष उन्हें उनकी अभीष्ट वस्तुएँ देते हैं, वे देवत्वको प्राप्त होते हैं। २१½

ये च विद्यामुपादाय गुरुभ्यः पुरुषाधमाः ॥ २२ ॥
घ्नन्ति तानेव दुर्वृत्तास्ते वै निरयगामिनः।

'गुरुसे विद्या ग्रहण करके जो नराधम उनपर ही चोट करते हैं, वे दुराचारी मानव निश्चय ही नरकगामी होते हैं!! २२½ ॥

तदिदं नरकायाद्य कृतं कर्म मया ध्रुवम् ॥ २३ ॥
आचार्यं शरवर्षेण रथे सादयता कृपम्।

'मैंने आचार्य कृपको अपने बाणोंकी वर्षाद्वारा रथपर सुला दिया है। निश्चय ही यह कर्म मैंने आज नरकमें जानेके लिये ही किया है॥ २३½ ॥

यत् तत् पूर्वमुपाकुर्वन्नस्त्रं मामब्रवीत् कृपः ॥ २४ ॥
न कथंचन कौरव्य प्रहर्तव्यं गुराविति।

'पूर्वकालमें मुझे अस्त्र-विद्याकी शिक्षा देकर कृपाचार्यने जो मुझसे यह कहा था कि 'कुरुनन्दन! तुम्हें गुरुके ऊपर किसी प्रकार भी प्रहार नहीं करना चाहिये' ॥२४½॥

तदिदं वचनं साधोराचार्यस्य महात्मनः ॥ २५ ॥
नानुष्ठितं तमेवाजौ विशिखैरभिवर्षता।

'उन श्रेष्ठ महात्मा आचार्यका यह वचन युद्धस्थलमें उन्हींपर बाणोंकी वर्षा करके मैंने नहीं माना है ॥ २५½ ॥

नमस्तस्मै सुपूज्याय गौतमायापलायिने ॥ २६ ॥
धिगस्तु मम वार्ष्णेय यदस्मै प्रहराम्यहम्।

'वार्ष्णेय! युद्धसे कभी पीठ न दिखानेवाले उन परम पूजनीय गौतमवंशी कृपाचार्यको मेरा नमस्कार है। मैं जो उनपर प्रहार करता हूँ, इसके लिये मुझे धिक्कार है'।२६½

तथा विलपमाने तु सव्यसाचिनि तं प्रति ॥ २७ ॥
सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा राधेयः समुपाद्रवत्।

सव्यसाची अर्जुन कृपाचार्यके लिये विलाप कर ही रहे थे कि सिंधुराजको मारा गया देख राधानन्दन कर्णने उनपर धावा कर दिया ॥ २७½ ॥

तमापतन्तं राधेयमर्जुनस्य रथं प्रति ॥ २८ ॥
पाञ्चाल्यौ सात्यकिश्चैव सहसा समुपाद्रवन्।

राधापुत्र कर्णको अर्जुनके रथकी ओर आते देख दोनों भाई पाञ्चालराजकुमार (युधामन्यु और उत्तमौजा) तथा सात्वतवंशी सात्यकि सहसा उसकी ओर दौड़े ॥ २८½ ॥

उपायान्तं तु राधेयं दृष्ट्वा पार्थो महारथः ॥ २९ ॥
प्रहसन् देवकीपुत्रमिदं वचनमब्रवीत्।

राधापुत्रको अपने समीप आते देख महारथी कुन्तीकुमार अर्जुनने देवकीनन्दन श्रीकृष्णसे हँसते हुए कहा—॥ २९½ ॥

एष प्रयात्याधिरथिः सात्यकेः स्यन्दनं प्रति ॥ ३० ॥
न मृष्यति हतं नूनं भूरिश्रवसमाहवे।

'यह अधिरथपुत्र कर्ण सात्यकिके रथकी ओर जा रहा है। अवश्य ही युद्धस्थलमें भूरिश्रवाका मारा जाना इसके लिये असह्य हो उठा है ॥ ३०½ ॥

यत्र यात्येष तत्र त्वं चोदयाश्वान् जनार्दन ॥ ३१ ॥
न सौमदत्तिपदवीं गमयेत् सात्यकिं वृषः।

'जनार्दन! यह जहाँ जाता है, वहीं आप भी अपने घोड़ोंको हाँकिये। कहीं ऐसा न हो कि कर्ण सात्यकिको भूरिश्रवाके पथपर पहुँचा दे' ॥ ३१½ ॥

एवमुक्तो महाबाहुः केशवः सव्यसाचिना ॥ ३२ ॥
प्रत्युवाच महातेजाः कालयुक्तमिदं वचः।

सव्यसाची अर्जुनके ऐसा कहनेपर महातेजस्वी महाबाहु केशवने उनसे यह समयोचित वचन कहा—॥ ३२½ ॥

अलमेष महाबाहुः कर्णायैकोऽपि पाण्डव ॥ ३३ ॥

किं पुनर्द्रौपदेयाभ्यां सहितः सात्वतर्षभः ।

'पाण्डुनन्दन ! यह महाबाहु सात्वतशिरोमणि सात्यकि अकेला भी कर्णके लिये पर्याप्त है। फिर इस समय जब द्रुपदके दोनों पुत्र इसके साथ हैं, तब तो कहना ही क्या है ॥ ३३½ ॥

न च तावत् क्षमः पार्थ तव कर्णेन सङ्गरः ॥ ३४ ॥
प्रज्वलन्ती महोल्केव तिष्ठत्यस्य हि वासवी ।

'कुन्तीकुमार ! इस समय कर्णके साथ तुम्हारा युद्ध होना ठीक नहीं है; क्योंकि उसके पास बड़ी भारी उल्का-के समान प्रज्वलित होनेवाली इन्द्रकी दी हुई शक्ति है ३४½

त्वदर्थं पूज्यमानैषा रक्ष्यते परवीरहन् ॥ ३५ ॥
अतः कर्णः प्रयात्वत्र सात्वतस्य यथातथा ।

'शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले अर्जुन ! तुम्हारे लिये कर्ण उसकी प्रतिदिन पूजा करते हुए उसे सदा सुरक्षित रखता है; अतः कर्ण सात्यकिके पास जैसे-तैसे जाय और युद्ध करे ॥ ३५½ ॥

अहं ज्ञास्यामि कौन्तेय कालमस्य दुरात्मनः ।
यत्रैनं विशिखैस्तीक्ष्णैः पातयिष्यसि भूतले ॥ ३६ ॥

'कुन्तीकुमार ! मैं उस दुरात्माका अन्तकाल जानता हूँ, जब कि तुम अपने तीखे बाणोंद्वारा उसे पृथ्वीपर मार गिराओगे' ॥ ३६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

योऽसौ कर्णेन वीरस्य वार्ष्णेयस्य समागमः ।
हते तु भूरिश्रवसि सैन्धवे च निपातिते ॥ ३७ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! भूरिश्रवाके मारे जाने और सिंधुराजके धराशायी किये जानेपर कर्णके साथ वीरवर सात्यकिका जो संग्राम हुआ, वह कैसा था ? ॥ ३७ ॥

सात्यकिश्चापि विरथः कं समारूढवान् रथम् ।
चक्ररक्षौ च पाञ्चाल्यौ तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ३८ ॥

संजय ! सात्यकि भी तो रथहीन हो चुके थे। वे किस रथपर आरूढ़ हुए तथा चक्ररक्षक युधामन्यु और उत्तमौजा इन दोनों पाञ्चाल वीरोंने किसके साथ युद्ध किया ? यह सब मुझे बताओ ॥ ३८ ॥

संजय उवाच

हन्त ते वर्तयिष्यामि यथा वृत्तं महारणे ।
शुश्रूषस्व स्थिरो भूत्वा दुराचरितमात्मनः ॥ ३९ ॥

संजयने कहा—राजन् ! मैं बड़े खेदके साथ उस महासमरमें घटित हुई घटनाओंका आपके समक्ष वर्णन करूँगा । आप स्थिर होकर अपने दुराचारका परिणाम सुनें ॥

पूर्वमेव हि कृष्णस्य मनोगतमिदं प्रभो ।
विजेतव्यो यथा वीरः सात्यकिः सौमदत्तिना ॥ ४० ॥

प्रभो ! भगवान् श्रीकृष्णके मनमें पहले ही यह बात आ गयी थी कि आज वीर सात्यकिको सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवा परास्त कर देगा ॥ ४० ॥

अतीतानागते राजन् स हि वेत्ति जनार्दनः ।
ततः सूतं समाहूय दारुकं संदिदेश ह ॥ ४१ ॥
रथो मे युज्यतां कल्यमिति राजन् महाबलः ।
न हि देवा न गन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ॥ ४२ ॥
मानवा वापि जेतारः कृष्णयोः सन्ति केचन ।

राजन् ! वे जनार्दन भूत और भविष्य दोनों कालों-को जानते हैं । इसीलिये उन्होंने अपने सारथि दारुक-को बुलाकर पहले ही दिन यह आज्ञा दे दी थी कि कल सबेरेसे ही मेरा रथ जोतकर तैयार रखना । महा-राज ! श्रीकृष्णका बल महान् है । श्रीकृष्ण और अर्जुन-को परास्त करनेवाले न तो कोई देवता हैं, न गन्धर्व हैं, न यक्ष, नाग तथा राक्षस हैं और न मनुष्य ही हैं ॥ ४१-४२½ ॥

पितामहपुरोगाश्च देवाः सिद्धाश्च तं विदुः ॥ ४३ ॥
तयोः प्रभावमतुलं शृणु युद्धं तु तत् तथा ।

उन्हें ब्रह्मा आदि देवता और सिद्ध पुरुष ही यथार्थ रूपसे जान पाते हैं । उन दोनोंके प्रभावकी कहीं तुलना नहीं है । अच्छा, अब युद्धका वृत्तान्त सुनिये ॥ ४३½ ॥

सात्यकिं विरथं दृष्ट्वा कर्णं चाभ्युद्यतं रणे ॥ ४४ ॥
दध्मौ शङ्खं महानादमार्षभेणाथ माधवः ।

सात्यकिको रथहीन और कर्णको युद्धके लिये उद्यत देख भगवान् श्रीकृष्णने बड़े जोरकी ध्वनि करनेवाले शङ्खको ऋषभस्वरसे बजाया ॥ ४४½ ॥

दारुकोऽवेत्य संदेशं श्रुत्वा शङ्खस्य च स्वनम् ॥ ४५ ॥
रथमन्वानयत् तस्मै सुपर्णोच्छ्रितकेतनम् ।

दारुकने उस शङ्खध्वनिको सुनकर भगवान्‌के संदेशको स्मरण करके तुरंत ही उनके लिये अपना रथ ला दिया, जिसपर गरुड़चिह्नसे युक्त ऊँची ध्वजा फहरा रही थी ४५½

स केशवस्यानुमते रथं दारुकसंयुतम् ॥ ४६ ॥
आरुरोह शिनेः पौत्रो ज्वलनादित्यसंनिभम् ।

भगवान् श्रीकृष्णकी अनुमति पाकर शिनिपौत्र सात्यकि दारुकद्वारा जोते हुए अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी उस रथपर आरूढ़ हुए ॥ ४६½ ॥

कामगैः शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकैः ॥ ४७ ॥
हयोदग्रैर्महावेगैर्हेमभाण्डविभूषितैः ।
युक्तं समारुह्य च तं विमानप्रतिमं रथम् ॥ ४८ ॥
अभ्यद्रवत राधेयं प्रवपन् सायकान् बहून् ।

उसमें इच्छानुसार चलनेवाले महान् वेगशाली और सुवर्णमय अलङ्कारोंसे विभूषित शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प

और बलाहक नामवाले श्रेष्ठ 'अश्व जुते हुए थे। वह रथ विमानके समान जान पड़ता था। उसपर आरूढ़ होकर बहुत से बाणोंकी वर्षा करते हुए सात्यकिने राधा-पुत्र कर्णपर धावा किया ॥ ४७-४८½ ॥

चक्ररक्षावपि तदा युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ ४९ ॥
धनंजयरथं हित्वा राधेयं प्रत्युदीयतुः ।

उस समय चक्ररक्षक युधामन्यु और उत्तमौजाने भी धनंजयका रथ छोड़कर कर्णपर ही आक्रमण किया ४९½

राधेयोऽपि महाराज शरवर्षं समुत्सृजन् ॥ ५० ॥
अभ्यद्रवत् सुसंक्रुद्धो रणे शैनेयमच्युतम् ।

महाराज ! अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए कर्णने भी उस युद्धस्थलमें अपनी मर्यादासे च्युत न होनेवाले सात्यकिपर बाणोंकी वर्षा करते हुए धावा किया ॥ ५०½ ॥

नैव दैवं न गान्धर्वं नासुरं न च राक्षसम् ॥ ५१ ॥
तादृशं भुवि नो युद्धं दिवि वा श्रुतमित्युत ।

राजन् ! मैंने इस पृथ्वीपर या स्वर्गमें देवताओं, गन्धर्वों, असुरों तथा राक्षसोंका भी वैसा युद्ध नहीं सुना था ५१½

उपारमत तत् सैन्यं सरथाश्वनरद्विपम् ॥ ५२ ॥
तयोर्दृष्ट्वा महाराज कर्म सम्मूढचेतसः ।
सर्वे च समपश्यन्त तद् युद्धमतिमानुषम् ॥ ५३ ॥
तयोर्नृवरयो राजन् सारथ्यं दारुकस्य च ।

महाराज ! उन दोनोंका वह संग्राम देखकर सबके चित्तमें मोह छा गया । राजन् ! सभी दर्शकके समान उन दोनों नरश्रेष्ठ वीरोंके उस अतिमानव युद्धको और दारुकके सारथ्य कर्मको देखने लगे । हाथी, घोड़े, रथ और मनुष्योंसे युक्त वह चतुरंगिणी सेना भी युद्धसे उपरत हो गयी थी ।५२-५३½।

गतप्रत्यागतावृत्तैर्मण्डलैः संनिवर्तनैः ॥ ५४ ॥
सारथेस्तु रथस्थस्य काश्यपेयस्य विस्मिताः ।
नभस्तलगताश्चैव देवगन्धर्वदानवाः ॥ ५५ ॥
अतीवावहिता द्रष्टुं कर्णशैनेययो रणम् ।
मित्रार्थे तौ पराक्रान्तौ शुष्मिणौ स्पर्धिनौ रणे ॥ ५६ ॥

रथपर बैठे हुए कश्यपगोत्रीय सारथि दारुकके रथ-संचालनकी गमन, प्रत्यागमन, आवर्तन, मण्डल तथा संनि-वर्तन आदि विविध रीतियोंसे आकाशमें खड़े हुए देवता, गन्धर्व और दानव भी चकित हो उठे तथा कर्ण और सात्यकिके युद्धको देखनेके लिये अत्यन्त सावधान हो गये । वे दोनों बलवान् वीर रणभूमिमें एक दूसरेसे स्पर्धा रखते हुए अपने-अपने मित्रके लिये पराक्रम दिखा रहे थे ।५४-५६।

कर्णश्चामरसंकाशो युयुधानश्च सात्यकिः ।
अन्योन्यं तौ महाराज शरवर्षैरवर्षताम् ॥ ५७ ॥

महाराज ! देवताओंके समान तेजस्वी कर्ण तथा सत्यकपुत्र युयुधान दोनों एक दूसरेपर बाणोंकी बौछार करने लगे ॥

प्रममाथ शिनेः पौत्रं कर्णः सायकवृष्टिभिः ।
असृष्यमाणो निधनं कौरव्यजलसंधयोः ॥ ५८ ॥

कर्णने भूरिश्रवा और जलसंधके वधको सहन न करने-के कारण अपने बाणोंकी वर्षासे शिनिपौत्र सात्यकिको मथ डाला ॥ ५८ ॥

कर्णः शोकसमाविष्टो महोरग इव श्वसन् ।
स शैनेयं रणे क्रुद्धः प्रदहन्निव चक्षुषा ॥ ५९ ॥
अभ्यधावत वेगेन पुनः पुनररिंदम ।

शत्रुदमन नरेश ! कर्ण उन दोनोंकी मृत्युसे शोकमग्न हो फुफकारते हुए महान् सर्पकी भाँति लंबी साँसें खींच रहा था । वह युद्धमें क्रुद्ध हो अपने नेत्रोंसे सात्यकिकी ओर इस प्रकार देख रहा था, मानो वह उन्हें जलाकर भस्म कर देगा । उसने बारंबार वेगपूर्वक सात्यकिपर धावा किया ॥५९½॥

तं तु सक्रोधमालोक्य सात्यकिः प्रत्ययुध्यत ॥ ६० ॥
महता शरवर्षेण गजं प्रति गजो यथा ।

कर्णको कुपित देख सात्यकि बाणोंकी बड़ी भारी वर्षा करते हुए उसका सामना करने लगे, मानो एक हाथी दूसरे हाथीसे लड़ रहा हो ॥ ६०½ ॥

तौ समेतौ नरव्याघ्रौ व्याघ्राविव तरस्विनौ ॥ ६१ ॥
अन्योन्यं संततक्षाते रणेऽनुपमविक्रमौ ।

वेगशाली व्याघ्रोंके समान परस्पर भिड़े हुए वे दोनों पुरुषसिंह युद्धमें अनुपम पराक्रम दिखाते हुए एक दूसरेको क्षत-विक्षत कर रहे थे ॥ ६१½ ॥

ततः कर्णं शिनेः पौत्रः सर्वपारसवैः शरैः ॥ ६२ ॥
बिभेद सर्वगात्रेषु पुनः पुनररिंदम ।
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ६३ ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले महाराज ! तदनन्तर शिनि-पौत्र सात्यकिने सम्पूर्णतः लोहमय बाणोंद्वारा कर्णको उसके सारे अङ्गोंमें बारंबार चोट पहुँचायी और एक भल्लद्वारा उसके सारथिको रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया ६२-६३

अश्वांश्च चतुरः श्वेतान् निजघान शितैः शरैः ।
छित्त्वा ध्वजं रथं चैव शतधा पुरुषर्षभ ॥ ६४ ॥
चकार विरथं कर्णं तव पुत्रस्य पश्यतः ।

नरश्रेष्ठ ! इसके बाद सात्यकिने तीखे बाणोंद्वारा कर्णके चारों श्वेत घोड़ोंको मार डाला और उसके ध्वजको काटकर रथके सैकड़ों टुकड़े करके आपके पुत्रके देखते-देखते कर्णको रथहीन कर दिया ॥ ६४½ ॥

ततो विमनसो राजंस्तावकास्ते महारथाः ॥ ६५ ॥
वृषसेनः कर्णसुतः शल्यो मद्राधिपस्तथा ।
द्रोणपुत्रश्च शैनेयं सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ६६ ॥

राजन्! इससे खिन्नचित्त होकर आपके महारथी वीर कर्ण-पुत्र वृषसेन, मद्रराज शल्य तथा द्रोणकुमार अश्वत्थामाने सात्यकिको सब ओरसे घेर लिया ॥ ६५-६६ ॥

ततः पर्याकुलं सर्वं न प्राज्ञायत किंचन।
तथा सात्यकिना वीरे विरथे सूतजे कृते ॥ ६७ ॥

सात्यकिके द्वारा वीरवर सूतपुत्र कर्णके रथहीन कर दिये जानेपर सारा सैन्यदल सब ओरसे व्याकुल हो उठा। किसीको कुछ सूझ नहीं पड़ता था ॥ ६७ ॥

हाहाकारस्ततो राजन् सर्वसैन्येष्वभून्महान्।
कर्णोऽपि विरथो राजन् सात्वतेन कृतः शरैः ॥ ६८ ॥
दुर्योधनरथं तूर्णमारुरोह विनिःश्वसन्।

राजन्! उस समय सारी सेनाओंमें महान् हाहाकार होने लगा। महाराज! सात्यकिके बाणोंसे रथहीन किया गया कर्ण भी लंबी साँस खींचता हुआ तुरंत ही दुर्योधनके रथपर जा बैठा ॥ ६८½ ॥

मानयंस्तव पुत्रस्य बाल्यात् प्रभृति सौहृदम् ॥ ६९ ॥
कृतां राज्यप्रदानेन प्रतिज्ञां परिपालयन्।

बचपनसे लेकर सदा ही किये हुए आपके पुत्रके सौहार्दका वह समादर करता था और दुर्योधनको राज्य दिलानेकी जो उसने प्रतिज्ञा कर रक्खी थी, उसके पालनमें वह तत्पर था ॥ ६९½ ॥

तथा तु विरथं कर्णं पुत्रांश्च तव पार्थिव ॥ ७० ॥
दुःशासनमुखान् वीरान् नावधीत् सात्यकिर्वशी।
रक्षन् प्रतिज्ञां भीमेन पार्थेन च पुराकृताम् ॥ ७१ ॥

राजन्! अपने मनको वशमें करनेवाले सात्यकिने रथहीन हुए कर्णको तथा दुःशासन आदि आपके वीर पुत्रोंको भी उस समय इसलिये नहीं मारा कि वे भीमसेन और अर्जुनकी पहलेसे की हुई प्रतिज्ञाकी रक्षा कर रहे थे ॥ ७०-७१ ॥

विरथान् विह्वलांश्चक्रे न तु प्राणैर्व्ययोजयत्।
भीमसेनेन तु वधः पुत्राणां ते प्रतिश्रुतः ॥ ७२ ॥
अनुद्यूते च पार्थेन वधः कर्णस्य संश्रुतः।

उन्होंने उन सबको रथहीन और अत्यन्त व्याकुल तो कर दिया, परंतु उनके प्राण नहीं लिये। जब दुबारा द्यूत हुआ था, उस समय भीमसेनने आपके पुत्रोंके वधकी प्रतिज्ञा की थी और अर्जुनने कर्णको मार डालनेकी घोषणा की थी ॥ ७२½ ॥

वधे त्वकुर्वन् यत्नं ते तस्य कर्णमुखास्तदा ॥ ७३ ॥
नाशक्नुवंस्ततो हन्तुं सात्यकिं प्रवरा रथाः।

कर्ण आदि श्रेष्ठ महारथियोंने सात्यकिके वधके लिये पूरा प्रयत्न किया; परंतु वे उन्हें मार न सके ॥ ७३½ ॥

द्रौणिश्च कृतवर्मा च तथैवान्ये महारथाः ॥ ७४ ॥
निर्जिता धनुषैकेन शतशः क्षत्रियर्षभाः।
काङ्क्षता परलोकं च धर्मराजस्य च प्रियम् ॥ ७५ ॥

अश्वत्थामा, कृतवर्मा, अन्यान्य महारथी तथा सैकड़ों क्षत्रियशिरोमणि सात्यकिद्वारा एकमात्र धनुषसे परास्त कर दिये गये। सात्यकि धर्मराजका प्रिय करना और परलोकपर विजय पाना चाहते थे ॥ ७४-७५ ॥

कृष्णयोः सदृशो वीर्ये सात्यकिः शत्रुतापनः।
जितवान् सर्वसैन्यानि तावकानि हसन्निव ॥ ७६ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले सात्यकि श्रीकृष्ण और अर्जुनके समान पराक्रमी थे। उन्होंने आपकी सारी सेनाओंको हँसते हुए-से जीत लिया था ॥ ७६ ॥

कृष्णो वापि भवेल्लोके पार्थो वापि धनुर्धरः।
शैनेयो वा नरव्याघ्र चतुर्थस्तु न विद्यते ॥ ७७ ॥

नरव्याघ्र! संसारमें श्रीकृष्ण, कुन्तीकुमार अर्जुन और शिनिपौत्र सात्यकि—ये तीन ही वास्तवमें धनुर्धर हैं। इनके समान चौथा कोई नहीं है ॥ ७७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

अजय्यं वासुदेवस्य रथमास्थाय सात्यकिः।
विरथं कृतवान् कर्णं वासुदेवसमो युधि ॥ ७८ ॥
दारुकेण समायुक्तः स्वबाहुबलदर्पितः।
कच्चिदन्यं समारूढः सात्यकिः शत्रुतापनः ॥ ७९ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! सात्यकि युद्धमें भगवान् श्रीकृष्णके समान हैं। उन्होंने श्रीकृष्णके ही अजेय रथपर आरूढ़ होकर कर्णको रथहीन कर दिया। उस समय उनके साथ दारुक-जैसा सारथि था और उन्हें अपने बाहुबलका अभिमान तो था ही; परंतु शत्रुओंको संताप देनेवाले सात्यकि क्या किसी दूसरे रथपर भी आरूढ़ हुए थे? ॥ ७८-७९ ॥

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कुशलो ह्यसि भाषितुम्।
असह्यं तमहं मन्ये तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ८० ॥

मैं यह सुनना चाहता हूँ। तुम कथा कहनेमें बड़े कुशल हो। मैं तो सात्यकिको किसीके लिये भी असह्य मानता हूँ, अतः संजय! तुम मुझसे सारी बातें स्पष्टरूपसे बताओ ॥ ८० ॥

संजय उवाच

शृणु राजन् यथावृत्तं रथमन्यं महामतिः।
दारुकस्यानुजस्तूर्णं कल्पनाविधिकल्पितम् ॥ ८१ ॥

संजयने कहा—राजन्! सारा वृत्तान्त यथार्थरूपसे सुनिये। दारुकका एक छोटा भाई था, जो बड़ा बुद्धिमान् था। वह तुरंत ही रथ सजानेकी विधिसे सुसज्जित किया हुआ एक दूसरा रथ ले आया ॥ ८१ ॥

आयसैः काञ्चनैश्चापि पट्टैः संनद्धकूबरम्।
तारासहस्रखचितं सिंहध्वजपताकिनम् ॥ ८२ ॥

लोहे और सोनेके पट्टोंसे उसका कूबर अच्छी तरह

कसा हुआ था । उसमें सहस्रों तारे जड़े गये थे । उसकी ध्वजा-पताकाओंमें सिंहका चिह्न बना हुआ था ॥ ८२ ॥

अश्वैर्वातजवैर्युक्तं हेमभाण्डपरिच्छदैः ।
सैन्धवैरिन्दुसंकाशैः सर्वशब्दातिगैर्दृढैः ॥ ८३ ॥

उस रथमें सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित, वायुके समान वेगशाली, सम्पूर्ण शब्दोंको लाँघ जानेवाले, सुदृढ़ तथा चन्द्रमाके समान श्वेतवर्ण सिन्धी घोड़े जुते हुए थे ८३

चित्रकाञ्चनसंनाहैर्वाजिमुख्यैर्विशाम्पते ।
घण्टाजालाकुलरवं शक्तितोमरविद्युतम् ॥ ८४ ॥

प्रजानाथ ! उन घोड़ोंको विचित्र स्वर्णमय कवचोंसे सुसज्जित किया गया था । वे सभी अश्व अच्छी श्रेणीके थे । उनसे जुते हुए उस रथमें क्षुद्र घंटिकाओंके समूहसे निकलती हुई मधुर ध्वनि व्याप्त हो रही थी । वहाँ रक्खे हुए शक्ति और तोमर आदि शस्त्र विद्युत्के समान प्रकाशित होते थे ॥ ८४ ॥

युक्तं सांग्रामिकैर्द्रव्यैर्बहुशस्त्रपरिच्छदैः ।
रथं सम्पादयामास मेघगम्भीरनिःस्वनम् ॥ ८५ ॥

उसमें बहुत-से अस्त्र-शस्त्र आदि युद्धोपयोगी आवश्यक सामान एवं द्रव्य यथास्थान रक्खे गये थे । उस रथके चलनेपर मेघोंकी गर्जनाके समान गम्भीर शब्द होता था । दारुकका छोटा भाई उस रथको सात्यकिके पास ले आया ॥

तं समारुह्य शैनेयस्तव सैन्यमुपाद्रवत् ।
दारुकोऽपि यथाकामं प्रययौ केशवान्तिकम् ॥ ८६ ॥

सात्यकिने उसीपर आरूढ़ होकर आपकी सेनापर आक्रमण किया । दारुक भी इच्छानुसार भगवान् श्रीकृष्णके निकट चला गया ॥ ८६ ॥

कर्णस्यापि रथं राजञ्शङ्खगोक्षीरपाण्डुरैः ।
चित्रकाञ्चनसंनाहैः सदश्वैर्वेगवत्तरैः ॥ ८७ ॥

राजन् ! कर्णके लिये भी एक सुन्दर रथ लाया गया, जिसमें शङ्ख और गोदुग्धके समान श्वेतवर्णवाले, विचित्र सुवर्णमय कवचसे सुसज्जित और अत्यन्त वेगशाली श्रेष्ठ अश्व जुते हुए थे ॥ ८७ ॥

हेमकक्ष्याध्वजोपेतं क्लृप्तयन्त्रपताकिनम् ।
अग्र्यं रथं सुयन्तारं बहुशस्त्रपरिच्छदम् ॥ ८८ ॥

उसमें सुवर्णमयी रज्जुसे आवेष्टित ध्वजा फहरा रही थी । वह रथ यन्त्र और पताकाओंसे सुशोभित था । उसके भीतर बहुत-से अस्त्र-शस्त्र आदि आवश्यक सामान रक्खे गये थे । उस श्रेष्ठ रथका सारथि भी सुयोग्य था ॥ ८८ ॥

उपाजह्रुस्तमास्थाय कर्णोऽप्यभ्यद्रवद् रिपून् ।
एतत् ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ८९ ॥

दुर्योधनके सेवक वह रथ लेकर आये और कर्णने उसके ऊपर आरूढ़ होकर शत्रुओंपर धावा किया । राजन् ! आप मुझसे जो कुछ पूछ रहे थे, वह सब मैंने आपको बता दिया ॥

भूयश्चापि निबोधेमं तवापनयजं क्षयम् ।
एकत्रिंशत् तव सुता भीमसेनेन पातिताः ॥ ९० ॥
दुर्मुखं प्रमुखे कृत्वा सततं चित्रयोधिनम् ।

अब पुनः आपके ही अन्यायसे होनेवाले इस महान् जनसंहारका वृत्तान्त सुनिये । भीमसेनने अबतक सदा विचित्र युद्ध करनेवाले दुर्मुख आदि आपके इकतीस पुत्रोंको मार गिराया है ॥ ९०½ ॥

शतशो निहताः शूराः सात्वतेनार्जुनेन च ॥ ९१ ॥
भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा भगदत्तं च भारत ।
एवमेष क्षयो वृत्तो राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ ९२ ॥

भारत ! इसी प्रकार सात्यकि और अर्जुनने भी भीष्म और भगदत्त आदि सैकड़ों शूरवीरोंका संहार कर डाला है । राजन् ! इस प्रकार आपकी कुमन्त्रणाके फलस्वरूप यह विनाशकार्य सम्पन्न हुआ है ॥ ९१-९२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णसात्यकियुद्धे सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें कर्ण और सात्यकिका युद्धविषयक एक सौ सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४७ ॥

अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अर्जुनका कर्णको फटकारना और वृषसेनके वधकी प्रतिज्ञा करना, श्रीकृष्णका अर्जुनको बधाई देकर उन्हें रणभूमिका भयानक दृश्य दिखाते हुए युधिष्ठिरके पास ले जाना

धृतराष्ट्र उवाच

तथा गतेषु शूरेषु तेषां मम च संजय ।
किं वै भीमस्तदाकार्षीत् तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! जब पाण्डवपक्षके और मेरे शूरवीर सैनिक पूर्वोक्तरूपसे युद्धके लिये उद्यत हो गये, तब भीमसेनने क्या किया ? यह मुझे बताओ ॥ १ ॥

संजय उवाच

विरथो भीमसेनो वै कर्णवाक्शल्यपीडितः ।
अमर्षवशमापन्नः फाल्गुनं वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥

संजयने कहा—राजन् ! रथहीन भीमसेन कर्णके वाग्बाणोंसे पीड़ित हो अमर्षके वशीभूत हो गये थे । वे अर्जुनसे इस प्रकार बोले— ॥ २ ॥

पुनः पुनस्तूबरक मूढ औदरिकेति च।
अकृतास्त्रक मा योत्सीर्बाल संग्रामकातर ॥ ३ ॥
इति मामब्रवीत् कर्णः पश्यतस्ते धनंजय।
एवं वक्ता च मे वध्यस्तेन चोक्तोऽस्मि भारत ॥ ४ ॥

'धनंजय ! कर्णने तुम्हारे सामने ही मुझसे बारंबार कहा है कि 'अरे ! तू निमूछिया, मूर्ख, पेटू, अस्त्रविद्याको न जाननेवाला, बालक और संग्रामभीरु है; अतः युद्ध न कर।' भारत ! जो ऐसा कह दे, वह मेरा वध्य होता है। उसने मुझे ऐसा कह दिया ॥ ३-४ ॥

एतद् व्रतं महाबाहो त्वया सह कृतं मया।
तथैतन्मम कौन्तेय यथा तव न संशयः ॥ ५ ॥

'महाबाहु कुन्तीकुमार ! ऐसा कहनेवालेके वधकी यह प्रतिज्ञा मैंने तुम्हारे साथ ही की थी। यह कर्णका वध जैसे मेरा कार्य है, वैसे ही तुम्हारा भी है, इसमें संशय नहीं है ॥ ५ ॥

तद्वधाय नरश्रेष्ठ स्मरैतद् वचनं मम।
यथा भवति तत् सत्यं तथा कुरु धनंजय ॥ ६ ॥

'नरश्रेष्ठ ! कर्णके वधके लिये तुम मेरे इस कथनपर भी ध्यान दो। धनंजय ! जैसे भी मेरी वह प्रतिज्ञा सत्य हो सके, वैसा प्रयत्न करो' ॥ ६ ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य भीमस्यामितविक्रमः।
ततोऽर्जुनोऽब्रवीत् कर्णं किंचिदभ्येत्य संयुगे ॥ ७ ॥

भीमसेनका यह वचन सुनकर अमित पराक्रमी अर्जुन युद्धस्थलमें कर्णके कुछ निकट जाकर उससे इस प्रकार बोले—॥ ७ ॥

कर्ण कर्ण वृथादृष्टे सूतपुत्रात्मसंस्तुत।
अधर्मबुद्धे शृणु मे यत् त्वां वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥ ८ ॥

'कर्ण ! कर्ण ! तेरी दृष्टि मिथ्या है। सूतपुत्र ! तू स्वयं ही अपनी प्रशंसा करता है। अधर्मबुद्धे ! मैं इस समय तुझसे जो कुछ कहता हूँ, उसे सुन ॥ ८ ॥

द्विविधं कर्म शूराणां युद्धे जयपराजयौ।
तौ चाप्यनित्यौ राधेय वासवस्यापि युध्यतः ॥ ९ ॥

'राधानन्दन ! युद्धमें शूरवीरोंके दो प्रकारके कर्म (परिणाम) देखे जाते हैं—जय और पराजय। यदि इन्द्र भी युद्ध करें तो उनके लिये भी वे दोनों परिणाम अनिश्चित हैं (अर्थात् यह निश्चित नहीं कि कब किसकी विजय होगी और कब किसकी पराजय) ॥ ९ ॥

(रणमुत्सृज्य निर्लज्ज गच्छसे वै पुनः पुनः।
माहात्म्यं पश्य भीमस्य कर्ण जन्म कुले तथा ॥
नोक्तवान् परुषं यत् त्वां पलायनपरायणम्।

'ओ निर्लज्ज कर्ण ! तू बार-बार युद्ध छोड़कर भाग जाता है, तो भी तुझ भागते हुएके प्रति भीमसेनने कोई कटु वचन नहीं कहा। भीमसेनके इस माहात्म्यको और उनके उत्तम कुलमें जन्म लेनेके कारण प्राप्त हुए अच्छे शील-स्वभावको प्रत्यक्ष देख ले ॥

भूयस्त्वमपि सङ्गम्य सकृदेव यदृच्छया ॥
विरथं कृतवान् वीरं पाण्डवं सूतदायद।
कुलस्य सदृशं चापि राधेय कृतवानसि ॥

'सूतपुत्र ! फिर तूने भी पुनः युद्ध करके केवल एक ही बार दैवेच्छासे पाण्डुपुत्र वीरवर भीमसेनको रथहीन किया है। राधापुत्र ! तूने भीमको कटुवचन सुनाकर अपने कुलके अनुरूप कार्य किया है ॥

त्वमिदानीं नरश्रेष्ठ प्रस्तुतं नावबुध्यसे।
शृगाल इव वन्यान् वै क्षत्रं त्वमवमन्यसे ॥
पित्र्यं कर्मास्य संग्रामस्तव तस्य कुलोचितम्।

'नरश्रेष्ठ ! इस समय जो संकट तेरे सामने प्रस्तुत है, उसे तू नहीं जानता है। जैसे सियार जंगली व्याघ्र आदि जन्तुओंकी अवहेलना करे, उसी प्रकार तू भी क्षत्रियसमाजका अपमान कर रहा है। संग्राम भीमसेनका तो पैतृक कर्म है और तेरा काम तेरे कुलके अनुरूप रथ हाँकना है ॥

अहं त्वामपि राधेय ब्रवीमि रणमूर्धनि ॥
सर्वशस्त्रभृतां मध्ये कुरु कार्याणि सर्वशः।
नैकान्तसिद्धिः संग्रामे वासवस्यापि विद्यते ॥)

'राधापुत्र ! मैं इस युद्धके मुहानेपर सम्पूर्ण शस्त्रधारी योद्धाओंके बीचमें तुझसे कहे देता हूँ, तू अपने सारे कार्य सब प्रकारसे पूर्ण कर ले। संग्राममें इन्द्रको भी एकान्ततः सिद्धि नहीं प्राप्त होती ॥

मुमूर्षुर्युयुधानेन विरथो विकलेन्द्रियः।
मद्वध्यस्त्वमिति ज्ञात्वा जित्वा जीवन् विसर्जितः ॥ १० ॥

'सात्यकिने तुझे रथहीन करके मृत्युके निकट पहुँचा दिया था। तेरी सारी इन्द्रियाँ व्याकुल हो उठी थीं, तो भी 'तू मेरा वध्य है' यह जानकर उन्होंने तुझे जीतकर भी जीवित छोड़ दिया ॥ १० ॥

यदृच्छया रणे भीमं युध्यमानं महाबलम्।
कथंचिद् विरथं कृत्वा यत् त्वं रूक्षमभाषथाः ॥ ११ ॥
अधर्मस्त्वेष सुमहाननार्यचरितं च तत्।

'परंतु तूने रणभूमिमें युद्धपरायण महाबली भीमसेनको दैवेच्छासे किसी प्रकार रथहीन करके जो उनके प्रति कठोर बातें कही थीं, यह तेरा महान् अधर्म है। नीच मनुष्य वैसा कार्य करते हैं ॥ ११½ ॥

नारिं जित्वातिकत्थन्ते न च जल्पन्ति दुर्वचः ॥ १२ ॥
न च कञ्चन निन्दन्ति सन्तः शूरा नरर्षभाः।

'नरश्रेष्ठ शूरवीर सज्जन शत्रुको जीतकर बढ़-बढ़कर बातें

नहीं बनाते, किसीको कटु वचन नहीं कहते और न किसी-की निन्दा ही करते हैं ॥ १२½ ॥

त्वं तु प्राकृतविज्ञानस्तत् तद् वदसि सूतज ॥ १३ ॥
बह्वबद्धमकर्ण्यं च चापलादपरीक्षितम् ।

'सूतपुत्र ! तेरी बुद्धि बहुत ओछी है। इसीलिये तू चपलतावश बिना जाँचे-बूझे बहुत-सी न सुननेयोग्य असम्बद्ध बातें बक जाया करता है ॥ १३½ ॥

युध्यमानं पराक्रान्तं शूरमार्यव्रते रतम् ॥ १४ ॥
यद्वोचोऽप्रियं भीमं नैतत् सत्यं वचस्तव ।

'तूने युद्धमें संलग्न, श्रेष्ठ व्रतके पालनमें तत्पर, पराक्रमी और शूरवीर भीमसेनके प्रति जो अप्रिय वचन कहा है, तेरा यह कथन ठीक नहीं है ॥ १४½ ॥

पश्यतां सर्वसैन्यानां केशवस्य ममैव च ॥ १५ ॥
विरथो भीमसेनेन कृतोऽसि बहुशो रणे ।

'सारी सेनाओंके देखते-देखते मेरे और श्रीकृष्णके सामने युद्धस्थलमें भीमसेनने तुझे अनेक बार रथहीन कर दिया है ॥ १५½ ॥

न च त्वां परुषं किंचिदुक्तवान् पाण्डुनन्दनः ॥ १६ ॥
यस्मात् तु बहु रूक्षं च श्रावितस्ते वृकोदरः ।
परोक्षं यच्च सौभद्रो युष्माभिर्निहतो मम ॥ १७ ॥
तस्मादस्यावलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि ।

'परंतु उन पाण्डुनन्दन भीमने तुझसे कोई कटु वचन नहीं कहा। तूने जो भीमको बहुत-सी रूखी बातें सुनायी हैं और मेरे परोक्षमें तुमलोगोंने जो मेरे पुत्र सुभद्राकुमार अभिमन्युको अन्यायपूर्वक मार डाला है, अपने उस घमंड-का तत्काल ही उचित फल तू प्राप्त कर ले ॥ १६-१७½ ॥

त्वया तस्य धनुश्छिन्नमात्मनाशाय दुर्मते ॥ १८ ॥
तस्माद् वध्योऽसि मे मूढ सभृत्यसुतबान्धवः ।

'दुर्मते ! मूढ ! तूने अपने विनाशके लिये अभिमन्युका धनुष काट दिया था, अतः तू मेरेद्वारा भृत्य, पुत्र तथा बन्धु-बान्धवोंसहित प्राणदण्ड पानेयोग्य है ॥ १८½ ॥

कुरु त्वं सर्वकृत्यानि महत् ते भयमागतम् ॥ १९ ॥
हन्तास्मि वृषसेनं ते प्रेक्षमाणस्य संयुगे ।

'तू अपने सारे कर्तव्य पूर्ण कर ले। तुझे भारी भय आ पहुँचा है। मैं युद्धस्थलमें तेरे देखते-देखते तेरे पुत्र वृषसेनको मार डालूँगा ॥ १९½ ॥

ये चान्येऽप्युपयास्यन्ति बुद्धिमोहेन मां नृपाः ॥ २० ॥
तांश्च सर्वान् हनिष्यामि सत्येनायुधमालभे ।

'दूसरे भी जो राजा अपनी बुद्धिपर मोह छा जानेके कारण मेरे समीप आ जायँगे, उन सबका संहार कर डालूँगा। इस सत्यको सामने रखकर मैं अपना धनुष छूता (शपथ खाता) हूँ ॥ २०½ ॥

त्वां च मूढाकृतप्रज्ञमतिमानिनमाहवे ॥ २१ ॥
दृष्ट्वा दुर्योधनो मन्दो भृशं तप्स्यति पातितम् ।

'ओ मूढ़ ! तुझ अपवित्र बुद्धिवाले अत्यन्त घमंडी सहायकको युद्धस्थलमें धराशायी हुआ देखकर मूर्ख दुर्योधनको भी बड़ा पश्चात्ताप होगा' ॥ २१½ ॥

अर्जुनेन प्रतिज्ञाते वधे कर्णसुतस्य तु ॥ २२ ॥
महान् सुतुमुलः शब्दो बभूव रथिनां तदा ।

इस प्रकार अर्जुनके द्वारा कर्णपुत्र वृषसेनके वधकी प्रतिज्ञा होनेपर उस समय वहाँ रथियोंका महान् एवं भयंकर कोलाहल छा गया ॥ २२½ ॥

तस्मिन्नाकुलसंग्रामे वर्तमाने महाभये ॥ २३ ॥
मन्दरश्मिः सहस्रांशुरस्तं गिरिमुपाद्रवत् ।

उस महाभयानक तुमुल संग्रामके छिड़ जानेपर मन्द किरणोंवाले भगवान् सूर्यदेव अस्ताचलको चले गये ॥ २३½ ॥

ततो राजन् हृषीकेशः संग्रामशिरसि स्थितम् ॥ २४ ॥
तीर्णप्रतिज्ञं बीभत्सुं परिष्वज्यैनमब्रवीत् ।

राजन् ! तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णने प्रतिज्ञासे पार होकर युद्धके मुहानेपर खड़े हुए अर्जुनको हृदयसे लगाकर इस प्रकार कहा—॥ २४½ ॥

दिष्ट्या सम्पादिता जिष्णो प्रतिज्ञा महती त्वया ॥ २५ ॥
दिष्ट्या विनिहतः पापो वृद्धक्षत्रः सहात्मजः ।

'विजयशील अर्जुन ! बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुमने अपनी बड़ी भारी प्रतिज्ञा पूरी कर ली। सौभाग्यसे पापी वृद्धक्षत्र पुत्रसहित मारा गया ॥ २५½ ॥

धार्तराष्ट्रबलं प्राप्य देवसेनापि भारत ॥ २६ ॥
सीदेत समरे जिष्णो नात्र कार्या विचारणा ।

'भारत ! दुर्योधनकी सेनामें पहुँचकर समरभूमिमें देवताओंकी सेना भी शिथिल हो सकती है। जिष्णो ! इस विषयमें कोई दूसरा विचार नहीं करना चाहिये ॥ २६½ ॥

न तं पश्यामि लोकेषु चिन्तयन् पुरुषं क्वचित् ॥ २७ ॥
त्वदृते पुरुषव्याघ्र य एतद् योधयेद् बलम् ।

'पुरुषसिंह ! मैं बहुत सोचनेपर भी तीनों लोकोंमें कहीं तुम्हारे सिवा किसी दूसरे पुरुषको ऐसा नहीं देखता, जो इस सेनाके साथ युद्ध कर सके ॥ २७½ ॥

महाप्रभावा बहवस्त्वया तुल्याधिकाऽपि वा ॥ २८ ॥
समेताः पृथिवीपाला धार्तराष्ट्रस्य कारणात् ।

'धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनके लिये बहुत-से महान् प्रभावशाली राजा यहाँ एकत्र हो गये हैं, जिनमेंसे कितने ही तुम्हारे समान या तुमसे भी अधिक बलशाली हैं ॥ २८½ ॥

ते त्वां प्राप्य रणे क्रुद्धा नाभ्यवर्तन्त दंशिताः ॥ २९ ॥
तव वीर्यं बलं चैव रुद्रशक्रान्तकोपमम् ।

'वे भी रणक्षेत्रमें कवच बाँधकर कुपित हो तुम्हारा सामना करनेके लिये आये, परंतु टिक न सके । तुम्हारा बल और पराक्रम रुद्र, इन्द्र तथा यमराजके समान है ॥ २९½ ॥

नेदृशं शक्नुयात् कश्चिद् रणे कर्तुं पराक्रमम् ॥ ३० ॥
यादृशं कृतवानद्य त्वमेकः शत्रुतापनः ।

'युद्धमें कोई भी ऐसा पराक्रम नहीं कर सकता, जैसा कि आज तुमने अकेले ही कर दिखाया है । वास्तवमें तुम शत्रुओं-को संताप देनेवाले हो ॥ ३०½ ॥

एवमेव हते कर्णे सानुबन्धे दुरात्मनि ॥ ३१ ॥
वर्धयिष्यामि भूयस्त्वां विजितारिं हतद्विषम् ।

'इसी प्रकार सगे-सम्बन्धियोंसहित दुरात्मा कर्णके मारे जानेपर शत्रुओंको जीतने और द्वेषी विपक्षियोंको मार डालने-वाले तुझ विजयी वीरको पुनः बधाई दूँगा' ॥ ३१½ ॥

तमर्जुनः प्रत्युवाच प्रसादात् तव माधव ॥ ३२ ॥
प्रतिज्ञेयं मया तीर्णा विबुधैरपि दुस्तरा ।

तब अर्जुनने उनकी बातोंका उत्तर देते हुए कहा—'माधव ! आपकी कृपासे ही मैं इस प्रतिज्ञाको पार कर सका हूँ; अन्यथा इसका पार पाना देवताओंके लिये भी कठिन था ॥ ३२½ ॥

अनाश्चर्यो जयस्तेषां येषां नाथोऽसि केशव ॥ ३३ ॥
त्वत्प्रसादान्महीं कृत्स्नां सम्प्राप्स्यति युधिष्ठिरः ।
तव प्रभावो वार्ष्णेय तवैव विजयः प्रभो ।
वर्धनीयास्तव वयं सदैव मधुसूदन ॥ ३४ ॥

'केशव ! आप जिनके रक्षक हैं, उनकी विजय हो, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । आपके कृपा-प्रसादसे राजा युधिष्ठिर सम्पूर्ण भूमण्डलका राज्य प्राप्त कर लेंगे । वृष्णिनन्दन ! प्रभो ! यह आपका ही प्रभाव और आपकी ही विजय है । मधुसूदन ! आपकी बधाईके पात्र तो हमलोग सदा ही बने रहेंगे' ॥ ३३-३४ ॥

एवमुक्तस्ततः कृष्णः शनकैर्वाहयन् हयान् ।
दर्शयामास पार्थाय क्रूरमायोधनं महत् ॥ ३५ ॥

अर्जुनके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने धीरे-धीरे घोड़ोंको बढ़ाते हुए उस विशाल एवं क्रूरतापूर्ण संग्रामका दृश्य अर्जुनको दिखाना आरम्भ किया ॥ ३५ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

प्रार्थयन्तो जयं युद्धे प्रथितं च महद् यशः ।
पृथिव्यां शेरते शूराः पार्थिवास्त्वच्छरैर्हताः ॥ ३६ ॥

श्रीकृष्ण बोले—अर्जुन ! युद्धमें विजय और सब ओर फैले हुए महान् सुयशकी अभिलाषा रखनेवाले ये शूरवीर भूपाल तुम्हारे बाणोंसे मरकर पृथ्वीपर सो रहे हैं ॥ ३६ ॥



विकीर्णशस्त्राभरणा विपन्नाश्वरथद्विपाः ।
संछिन्नभिन्नमर्माणो वैक्लव्यं परमं गताः ॥ ३७ ॥

इनके अस्त्र-शस्त्र और आभूषण बिखरे पड़े हैं; घोड़े, रथ और हाथी नष्ट हो गये हैं तथा मर्मस्थल छिन्न-भिन्न हो जानेके कारण ये नरेश भारी व्याकुलतामें पड़ गये हैं ॥ ३७ ॥

ससत्त्वा गतसत्त्वाश्च प्रभया परया युताः ।
सजीवा इव लक्ष्यन्ते गतसत्त्वा नराधिपाः ॥ ३८ ॥

कितने ही राजाओंके प्राण चले गये हैं और कितनोंके प्राण अभी नहीं निकले हैं । जिनके प्राण निकल गये हैं, वे नरेश भी अत्यन्त कान्तिसे प्रकाशित होनेके कारण जीवित-से दिखायी देते हैं ॥ ३८ ॥

तेषां शरैः स्वर्णपुङ्खैः शस्त्रैश्च विविधैः शितैः ।
वाहनैरायुधैश्चैव सम्पूर्णां पश्य मेदिनीम् ॥ ३९ ॥

देखो, यह सारी पृथ्वी उन राजाओंके सुवर्णमय पंख-वाले बाणों, तेज धारवाले नाना प्रकारके शस्त्रों, वाहनों और आयुधोंसे भरी हुई है ॥ ३९ ॥

वर्मभिश्चर्मभिर्हारैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
उष्णीषैर्मुकुटैः स्रग्भिश्चूडामणिभिरम्बरैः ॥ ४० ॥
कण्ठसूत्रैरङ्गदैश्च निष्कैरपि च सप्रभैः ।
अन्यैश्चाभरणैश्चित्रैर्भाति भारत मेदिनी ॥ ४१ ॥

भारत ! चारों ओर गिरे हुए कवच, ढाल, हार, कुण्डलयुक्त मस्तक, पगड़ी, मुकुट, माला, चूड़ामणि, वस्त्र, कण्ठसूत्र, बाजूबंद, चमकीले निष्क एवं अन्यान्य विचित्र आभूषणोंसे इस रणभूमिकी बड़ी शोभा हो रही है ॥ ४०-४१ ॥

अनुकर्षैरुपासङ्गैः पताकाभिर्ध्वजैस्तथा।
उपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डकबन्धुरैः ॥ ४२ ॥
चक्रैः प्रमथितैश्चित्रैरक्षैश्च बहुधा रणे।
युगैर्योक्त्रैः कलापैश्च धनुर्भिः सायकैस्तथा ॥ ४३ ॥
परिस्तोमैः कुथाभिश्च परिघैरङ्कुशैस्तथा।
शक्तिभिर्भिन्दिपालैश्च तूणैः शूलैः परश्वधैः ॥ ४४ ॥
प्रासैश्च तोमरैश्चैव कुन्तैर्यष्टिभिरेव च।
शतघ्नीभिर्भुशुण्डीभिः खड्गैः परशुभिस्तथा ॥ ४५ ॥
मुसलैर्मुद्गरैश्चैव गदाभिः कुणपैस्तथा।
सुवर्णविकृताभिश्च कशाभिर्भरतर्षभ ॥ ४६ ॥
घण्टाभिश्च गजेन्द्राणां भाण्डैश्च विविधैरपि।
स्रग्भिश्च नानाभरणैर्वस्त्रैश्चैव महाधनैः ॥ ४७ ॥
अपविद्धैर्बभौ भूमिर्ग्रहैर्द्यौरिव शारदी।

बहुत-से अनुकर्ष, उपासङ्ग, पताका, ध्वज, सजावटकी सामग्री, बैठक, ईषादण्ड, बन्धनरज्जु, टूटे-फूटे पहिये, विचित्र धुरे, नाना प्रकारके जुए, जोत, लगाम, धनुष-बाण, हाथीकी रंगीन झूल, हाथीकी पीठपर बिछाये जानेवाले गलीचे, परिघ, अङ्कुश, शक्ति, भिन्दिपाल, तरकस, शूल, फरसे, प्रास, तोमर, कुन्त, डंडे, शतघ्नी, भुसुण्डी, खड्ग, परशु, मुसल, मुद्गर, गदा, कुणप, सोनेके चाबुक, गजराजों-के घण्टे, नाना प्रकारके हौदे और जीन, माला, भाँति-भाँतिके अलंकार तथा बहुमूल्य वस्त्र रणभूमिमें सब ओर बिखरे पड़े हैं। भरतश्रेष्ठ! इनके द्वारा यह भूमि नक्षत्रोंद्वारा शरद्‌ऋतुके आकाशकी भाँति सुशोभित हो रही है ॥ ४२—४७½ ॥

पृथिव्यां पृथिवीहेतोः पृथिवीपतयो हताः ॥ ४८ ॥
पृथिवीमुपगुह्याङ्गैः सुप्ताः कान्तामिव प्रियाम्।

इस पृथ्वीके राज्यके लिये मारे गये ये पृथ्वीपति अपने सम्पूर्ण अंगोंद्वारा प्यारी प्राणवल्लभाके समान इस भूमिका आलिंगन करके इसपर सो रहे हैं ॥ ४८½ ॥

इमांश्च गिरिकूटाभान् नागानैरावतोपमान् ॥ ४९ ॥
क्षरतः शोणितं भूरि शस्त्रच्छेददरीमुखैः।
दरीमुखैरिव गिरीन् गैरिकाम्बुपरिस्रवान् ॥ ५० ॥
तांश्च बाणहतान् वीर पश्य निष्टनतः क्षितौ।

वीर! देखो, ये पर्वतशिखरके समान प्रतीत होनेवाले ऐरावत-जैसे हाथी शस्त्रोंद्वारा बने हुए घावोंके छिद्रसे उसी प्रकार अधिकाधिक रक्तकी धारा बहा रहे हैं, जैसे पर्वत अपनी कन्दराओंके मुखसे गेरुमिश्रित जलके झरने बहाया करते हैं। वे बाणोंसे मारे जाकर धरतीपर लोट रहे हैं ॥ ४९-५०½ ॥

हयांश्च पतितान् पश्य स्वर्णभाण्डविभूषितान् ॥ ५१ ॥
गन्धर्वनगराकारान् रथांश्च निहतेश्वरान्।
छिन्नध्वजपताकाक्षान् विचक्रान् हतसारथीन् ॥ ५२ ॥

सोनेके जीन एवं साज्रबाजसे विभूषित इन घोड़ोंको तो देखो, ये भी प्राणशून्य होकर पड़े हैं। ये रथ जिनके स्वामी मारे गये हैं, गन्धर्वनगरके समान दिखायी देते हैं। इनकी ध्वजा, पताका और धुरे छिन्न-भिन्न हो गये हैं, पहिये नष्ट हो चुके हैं और सारथि भी मार डाले गये हैं ॥ ५१-५२ ॥

निकृत्तकूबरयुगान् भग्नेषाबन्धुरान् प्रभो।
पश्य पार्थ हयान् भूमौ विमानोपमदर्शनान् ॥ ५३ ॥

प्रभो! इन रथोंके कूबर और जुए खण्डित हो गये हैं। ईषादण्ड टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये हैं और इनकी बन्धन-रज्जुओंकी भी धज्जियाँ उड़ गयी हैं। पार्थ! भूमिपर पड़े हुए इन घोड़ोंको तो देखो, ये विमानके समान दिखायी दे रहे हैं ॥ ५३ ॥

पत्तींश्च निहतान् वीर शतशोऽथ सहस्रशः।
धनुर्भृतश्चर्मभृतः शयानान् रुधिरोक्षितान् ॥ ५४ ॥

वीर! अपने मारे हुए इन सैकड़ों और हजारों पैदल सैनिकोंको देखो, जो धनुष और ढाल लिये खूनसे लथपथ हो धरतीपर सो रहे हैं ॥ ५४ ॥

महीमालिङ्ग्य सर्वाङ्गैः पांसुध्वस्तशिरोरुहान्।
पश्य योधान् महाबाहो त्वच्छरैर्भिन्नविग्रहान् ॥ ५५ ॥

महाबाहो! तुम्हारे बाणोंसे जिनके शरीर छिन्न-भिन्न हो रहे हैं, उन योद्धाओंकी दशा तो देखो। उनके बाल धूलमें सन गये हैं और वे अपने सम्पूर्ण अङ्गोंसे इस पृथ्वीका आलिङ्गन करके सो रहे हैं ॥ ५५ ॥

निपातितद्विपरथवाजिसंकुल-
मसृग्वसापिशितसमृद्धकर्दमम्।
निशाचरश्ववृकपिशाचमोदनं
महीतलं नरवर पश्य दुर्दृशम् ॥ ५६ ॥

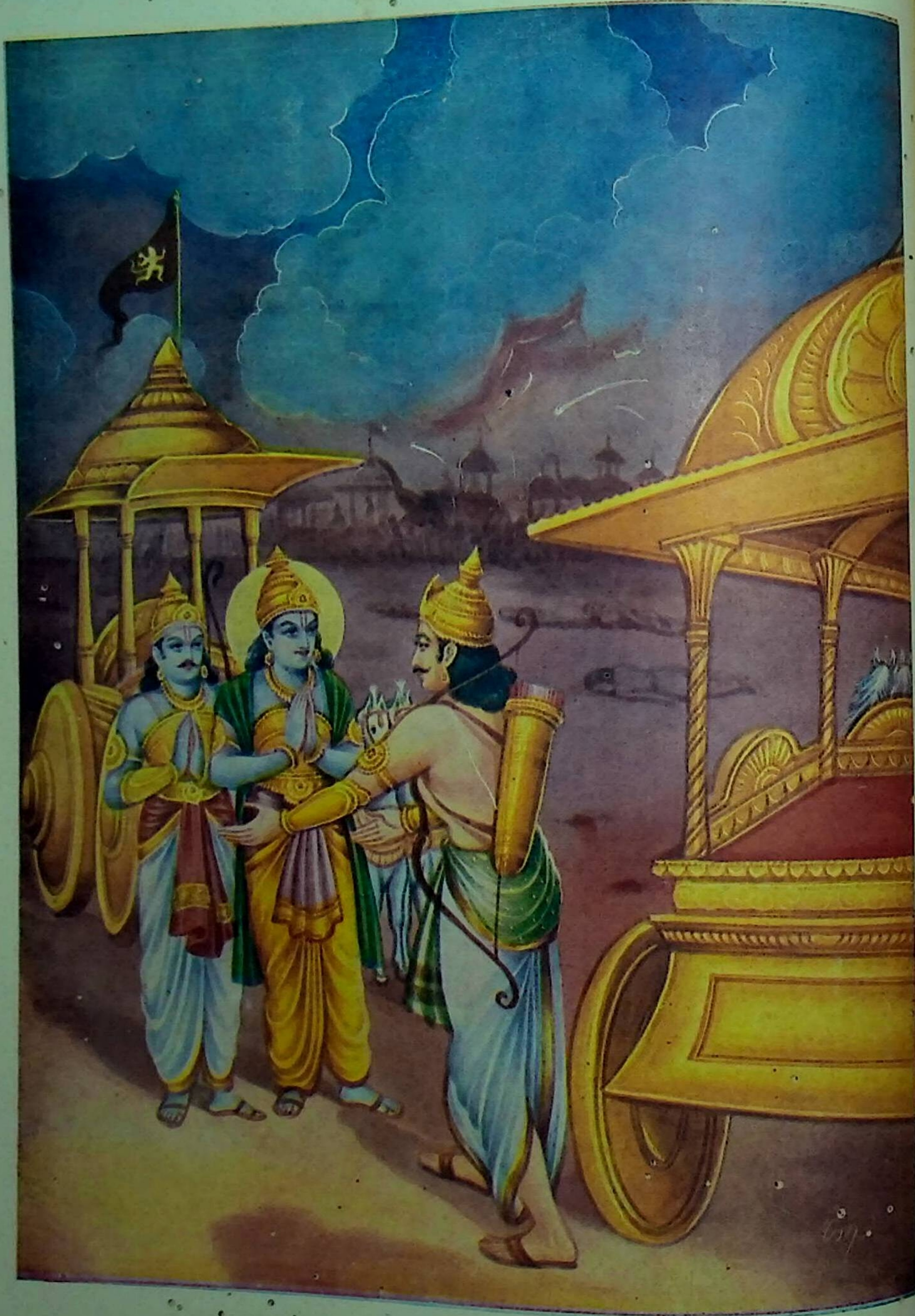
नरश्रेष्ठ! इस भूतलकी दशा देख लो। इसकी ओर दृष्टि डालना कठिन हो रहा है। यह मारे गये हाथियों, चौपट हुए रथों और मरे हुए घोड़ोंसे पट गया है। रक्त, चर्बी और मांससे यहाँ कीच जम गयी है। यह रणभूमि निशाचरों, कुत्तों, भेड़ियों और पिशाचोंके लिये आनन्द-दायिनी बन गयी है ॥ ५६ ॥

इदं महत् त्वय्युपपद्यते प्रभो
रणाजिरे कर्म यशोऽभिवर्धनम्।
शतक्रतौ चापि च देवसत्तमे
महाहवे जघ्नुषि दैत्यदानवान् ॥ ५७ ॥

प्रभो! समराङ्गणमें यह यशोवर्धक महान् कर्म करनेकी शक्ति तुममें तथा महायुद्धमें दैत्यों और दानवोंका संहार करनेवाले देवराज इन्द्रमें ही सम्भव है ॥ ५७ ॥

संजय उवाच

एवं संदर्शयन् कृष्णो रणभूमिं किरीटिने।



जयद्रथवधके पश्चात् श्रीकृष्ण और अर्जुनका युधिष्ठिरसे मिलना

स्वैः समेतः समुदितैः पाञ्चजन्यं व्यनादयत् ॥ ५८ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार किरीटधारी अर्जुनको रणभूमिका दृश्य दिखाते हुए भगवान् श्रीकृष्णने वहाँ जुटे हुए स्वजनोंसहित पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया ॥ ५८ ॥

स दर्शयन्नेव किरीटिनेऽरिहा
जनार्दनस्तामरिभूमिमञ्जसा ।
अजातशत्रुं समुपेत्य पाण्डवं
निवेदयामास हतं जयद्रथम् ॥ ५९ ॥

शत्रुसूदन भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको इस प्रकार रणभूमिका दृश्य दिखाते हुए अनायास ही अजातशत्रु पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरके पास पहुँचकर उनसे यह निवेदन किया कि जयद्रथ मारा गया ॥ ५९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें एक सौ अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ६ श्लोक मिलाकर कुल ६५ श्लोक हैं)

एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका युधिष्ठिरसे विजयका समाचार सुनाना और युधिष्ठिरद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति तथा अर्जुन, भीम एवं सात्यकिका अभिनन्दन

संजय उवाच

ततो राजानमभ्येत्य धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
ववन्दे स प्रहृष्टात्मा हते पार्थेन सैन्धवे ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर अर्जुनद्वारा सिंधुराज जयद्रथके मारे जानेपर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके पास पहुँच कर भगवान् श्रीकृष्णने हर्षपूर्ण हृदयसे उन्हें प्रणाम किया और कहा—॥ १ ॥

दिष्ट्या वर्धसि राजेन्द्र हतशत्रुर्नरोत्तम ।
दिष्ट्या निस्तीर्णवांश्चैव प्रतिज्ञामनुजस्तव ॥ २ ॥

'राजेन्द्र ! सौभाग्यसे आपका अभ्युदय हो रहा है । नरश्रेष्ठ ! आपका शत्रु मारा गया । आपके छोटे भाईने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ली, यह महान् सौभाग्यकी बात है' ॥

स त्वेवमुक्तः कृष्णेन हृष्टः परपुरंजयः ।
ततो युधिष्ठिरो राजा रथादाप्लुत्य भारत ॥ ३ ॥
पर्यष्वजत् तदा कृष्णावानन्दाश्रुपरिप्लुतः ।

भारत ! भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर शत्रुओंकी राजधानीपर विजय पानेवाले राजा युधिष्ठिर हर्षमें भरकर अपने रथसे कूद पड़े और आनन्दके आँसू बहाते हुए उन्होंने उस समय श्रीकृष्ण और अर्जुनको हृदयसे लगा लिया ॥ ३½ ॥

प्रमृज्य वदनं शुभ्रं पुण्डरीकसमप्रभम् ॥ ४ ॥
अब्रवीद् वासुदेवं च पाण्डवं च धनंजयम् ।

फिर उनके कमलके समान कान्तिमान् सुन्दर मुखपर हाथ फेरते हुए वे वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण और पाण्डुपुत्र अर्जुनसे इस प्रकार बोले—॥ ४½ ॥

प्रियमेतदुपश्रुत्य त्वत्तः पुष्करलोचन ॥ ५ ॥
नान्तं गच्छामि हर्षस्य तितीर्षुरुदधेरिव ।
अत्यद्भुतमिदं कृष्ण कृतं पार्थेन धीमता ॥ ६ ॥

'कमलनयन कृष्ण ! जैसे तैरनेकी इच्छावाला पुरुष समुद्रका पार नहीं पाता, उसी प्रकार आपके मुखसे यह प्रिय समाचार सुनकर मेरे हर्षकी सीमा नहीं रह गयी है । बुद्धिमान् अर्जुनने यह अत्यन्त अद्भुत पराक्रम किया है ॥

दिष्ट्या पश्यामि संग्रामे तीर्णभारौ महारथौ ।
दिष्ट्या विनिहतः पापः सैन्धवः पुरुषाधमः ॥ ७ ॥

'आज सौभाग्यवश संग्रामभूमिमें मैं आप दोनों महारथियोंको प्रतिज्ञाके भारसे मुक्त हुआ देखता हूँ । यह बड़े हर्षकी बात है कि पापी नराधम सिंधुराज जयद्रथ मारा गया ॥

कृष्ण दिष्ट्या मम प्रीतिर्महती प्रतिपादिता ।
त्वया गुप्तेन गोविन्द घ्नता पापं जयद्रथम् ॥ ८ ॥

'श्रीकृष्ण ! गोविन्द ! सौभाग्यवश आपके द्वारा सुरक्षित हुए अर्जुनने पापी जयद्रथको मारकर मुझे महान् हर्ष प्रदान किया है ॥ ८ ॥

किं तु नात्यद्भुतं तेषां येषां नस्त्वं समाश्रयः ।
न तेषां दुष्कृतं किंचित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ९ ॥
सर्वलोकगुरुर्येषां त्वं नाथो मधुसूदन ।
त्वत्प्रसादाद्धि गोविन्द वयं जेष्यामहे रिपून् ॥ १० ॥

'परंतु जिनके आप आश्रय हैं, उन हमलोगोंके लिये विजय और सौभाग्यकी प्राप्ति अत्यन्त अद्भुत बात नहीं है । मधुसूदन ! सम्पूर्ण जगत्के गुरु आप जिनके रक्षक हैं, उनके लिये तीनों लोकोंमें कहीं कुछ भी दुष्कर नहीं है । गोविन्द ! हम आपकी कृपासे शत्रुओंपर निश्चय ही विजय पायेंगे ॥

स्थितः सर्वात्मना नित्यं प्रियेषु च हितेषु च ।
त्वां चैवास्माभिराश्रित्य कृतः शस्त्रसमुद्यमः ॥ ११ ॥
सुरैरिवासुरवधे शक्रं शक्रानुजाहवे ।

'उपेन्द्र ! आप सदा सब प्रकारसे हमारे प्रिय और हित-साधनमें लगे हुए हैं । हमलोगोंने आपका ही आश्रय लेकर शस्त्रोंद्वारा युद्धकी तैयारी की है । ठीक उसी तरह, जैसे देवता इन्द्रका आश्रय लेकर युद्धमें असुरोंके वधका उद्योग करते हैं ॥ ११½ ॥

असम्भाव्यमिदं कर्म देवैरपि जनार्दन ॥ १२ ॥
त्वद्बुद्धिबलवीर्येण कृतवानेष फाल्गुनः ।

'जनार्दन ! आपकी ही बुद्धि, बल और पराक्रमसे इस अर्जुनने यह देवताओंके लिये भी असम्भव कर्म कर दिखाया है॥

बाल्यात् प्रभृति ते कृष्ण कर्माणि श्रुतवानहम् ॥ १३ ॥
अमानुषाणि दिव्यानि महान्ति च बहूनि च ।
तदैवाज्ञासिषं शत्रून् हतान् प्राप्तां च मेदिनीम्॥ १४ ॥

'श्रीकृष्ण ! बाल्यावस्थासे ही आपने जो बहुत-से अलौकिक, दिव्य एवं महान् कर्म किये हैं, उन्हें जबसे मैंने सुना है, तभीसे यह निश्चितरूपसे जान लिया है कि मेरे शत्रु मारे गये और मैंने भूमण्डलका राज्य प्राप्त कर लिया॥१३-१४॥

त्वत्प्रसादसमुत्थेन विक्रमेणारिसूदन ।
सुरेशत्वं गतः शक्रो हत्वा दैत्यान् सहस्रशः ॥ १५ ॥

'शत्रुसूदन ! आपकी कृपासे प्राप्त हुए पराक्रमद्वारा इन्द्र सहस्रों दैत्योंका संहार करके देवराजके पदपर प्रतिष्ठित हुए हैं ॥ १५ ॥

त्वत्प्रसादाद्धृषीकेश जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
स्ववर्त्मनि स्थितं वीर जपहोमेषु वर्तते ॥ १६ ॥

'वीर हृषीकेश ! आपके ही प्रसादसे यह स्थावर-जङ्गम-रूप जगत् अपनी मर्यादामें स्थित रहकर जप और होम आदि सत्कर्मोंमें संलग्न होता है ॥ १६ ॥

एकार्णवमिदं पूर्वं सर्वमासीत् तमोमयम् ।
त्वत्प्रसादान्महाबाहो जगत् प्राप्तं नरोत्तम ॥ १७ ॥

'महाबाहो ! नरश्रेष्ठ ! पहले यह सारा जगत् एकार्णवके जलमें निमग्न हो अन्धकारमें विलीन हो गया था । फिर आपकी ही कृपादृष्टिसे यह वर्तमान रूपमें उपलब्ध हुआ है ॥

स्रष्टारं सर्वलोकानां परमात्मानमव्ययम् ।
ये पश्यन्ति हृषीकेशं न ते मुह्यन्ति कर्हिचित् ॥ १८ ॥

'जो सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करनेवाले आप अविनाशी परमात्मा हृषीकेशका दर्शन पा जाते हैं, वे कभी मोहके वशीभूत नहीं होते हैं ॥ १८ ॥

पुराणं परमं देवं देवदेवं सनातनम् ।
ये प्रपन्नाः सुरगुरुं न ते मुह्यन्ति कर्हिचित् ॥ १९ ॥

'आप पुराण पुरुष, परमदेव, देवताओंके भी देवता, देवगुरु एवं सनातन परमात्मा हैं । जो लोग आपकी शरणमें जाते हैं, वे कभी मोहमें नहीं पड़ते हैं ॥ १९ ॥

अनादिनिधनं देवं लोककर्तारमव्ययम् ।
ये भक्तास्त्वां हृषीकेश दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ २० ॥

'हृषीकेश ! आप आदि-अन्तसे रहित विश्व-विधाता और अविकारी देवता हैं । जो आपके भक्त हैं, वे बड़े-बड़े संकटोंसे पार हो जाते हैं ॥ २० ॥

परं पुराणं पुरुषं पराणां परमं च यत् ।
प्रपद्यतस्तत् परमं परा भूतिर्विधीयते ॥ २१ ॥

'आप परम पुरातन पुरुष हैं । परसे भी पर हैं । आप परमेश्वरकी शरण लेनेवाले पुरुषको परम ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है ॥ २१ ॥

गायन्ति चतुरो वेदा यश्च वेदेषु गीयते ।
तं प्रपद्य महात्मानं भूतिमह्नाम्यनुत्तमाम् ॥ २२ ॥

'चारों वेद जिनके यशका गान करते हैं, जो सम्पूर्ण वेदोंमें गाये जाते हैं, उन महात्मा श्रीकृष्णकी शरण लेकर मैं सर्वोत्तम ऐश्वर्य (कल्याण) प्राप्त करूँगा ॥ २२ ॥

परमेश परेशेश तिर्यगीश नरेश्वर ।
सर्वेश्वरेश्वरेशेश नमस्ते पुरुषोत्तम ॥ २३ ॥

'पुरुषोत्तम ! आप परमेश्वर हैं । पशु, पक्षी तथा मनुष्योंके भी ईश्वर हैं । 'परमेश्वर' कहे जानेवाले इन्द्रादि लोकपालोंके भी स्वामी हैं । सर्वेश्वर ! जो सबके ईश्वर हैं, उनके भी आप ही ईश्वर हैं । आपको नमस्कार है ॥ २३ ॥

त्वमीशेशेश्वरेशान प्रभो वर्धस्व माधव ।
प्रभवाप्यय सर्वस्य सर्वात्मन् पृथुलोचन ॥ २४ ॥

'विशाल नेत्रोंवाले माधव ! आप ईश्वरोंके भी ईश्वर और शासक हैं । प्रभो ! आपका अभ्युदय हो । सर्वात्मन् ! आप ही सबके उत्पत्ति और प्रलयके कारण हैं ॥ २४ ॥

धनंजयसखा यश्च धनंजयहितश्च यः ।
धनंजयस्य गोप्ता तं प्रपद्य सुखमेधते ॥ २५ ॥

'जो अर्जुनके मित्र, अर्जुनके हितैषी और अर्जुनके रक्षक हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णकी शरण लेकर मनुष्य सुखी होता है ॥ २५ ॥

मार्कण्डेयः पुराणर्षिश्चरितज्ञस्तवानघ ।
माहात्म्यमनुभावं च पुरा कीर्तितवान् मुनिः ॥ २६ ॥

'निष्पाप श्रीकृष्ण ! प्राचीनकालके महर्षि मार्कण्डेय आपके चरित्रको जानते हैं । उन मुनिश्रेष्ठने पहले (वनवासके समय) आपके प्रभाव और माहात्म्यका मुझसे वर्णन किया था॥२६॥

असितो देवलश्चैव नारदश्च महातपाः ।
पितामहश्च मे व्यासस्त्वामाहुर्विधिमुत्तमम् ॥ २७ ॥

'असित, देवल, महातपस्वी नारद तथा मेरे पितामह व्यासने आपको ही सर्वोत्तम विधि बताया है ॥ २७ ॥

त्वं तेजस्त्वं परं ब्रह्म त्वं सत्यं त्वं महत् तपः ।
त्वं श्रेयस्त्वं यशश्चाग्र्यं कारणं जगतस्तथा ॥ २८ ॥
त्वया सृष्टमिदं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
प्रलये समनुप्राप्ते त्वां वै निविशते पुनः ॥ २९ ॥

'आप ही तेज, आप ही परब्रह्म, आप ही सत्य, आप ही महान् तप, आप ही श्रेय, आप ही उत्तम यश और

आप ही जगत्‌के कारण हैं। आपने ही इस सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम जगत्‌की सृष्टि की है और प्रलयकाल आनेपर यह पुनः आपहीमें लीन हो जाता है ॥ २८-२९ ॥

अनादिनिधनं देवं विश्वस्येशं जगत्पते।
धातारमजमव्यक्तमाहुर्वेदविदो जनाः ॥ ३० ॥
भूतात्मानं महात्मानमनन्तं विश्वतोमुखम्।

'जगत्पते! वेदवेत्ता पुरुष आपको आदि-अन्तसे रहित, दिव्य-स्वरूप, विश्वेश्वर, धाता, अजन्मा, अव्यक्त, भूतात्मा, महात्मा, अनन्त तथा विश्वतोमुख आदि नामोंसे पुकारते हैं ॥

अपि देवा न जानन्ति गुह्यमाद्यं जगत्पतिम् ॥ ३१ ॥
नारायणं परं देवं परमात्मानमीश्वरम्।
ज्ञानयोनिं हरिं विष्णुं मुमुक्षूणां परायणम्।
परं पुराणं पुरुषं पुराणानां परं च यत् ॥ ३२ ॥

'आपका रहस्य गूढ़ है। आप सबके आदि कारण और इस जगत्‌के स्वामी हैं। आप ही परमदेव, नारायण, परमात्मा और ईश्वर हैं। ज्ञानस्वरूप श्रीहरि तथा मुमुक्षुओंके परम आश्रय भगवान् विष्णु भी आप ही हैं। आपके यथार्थ स्वरूपको देवता भी नहीं जानते हैं। आप ही परम पुराण-पुरुष तथा पुराणोंसे भी परे हैं ॥ ३१-३२ ॥

एवमादिगुणानां ते कर्मणां दिवि चेह च।
अतीतभूतभव्यानां संख्याता न विद्यते ॥ ३३ ॥
सर्वतो रक्षणीयाः स्म शक्रेणेव दिवौकसः।
यैस्त्वं सर्वगुणोपेतः सुहृन्न उपपादितः ॥ ३४ ॥

'आपके ऐसे-ऐसे गुणों तथा भूत, वर्तमान एवं भविष्य-कालमें होनेवाले कर्मोंकी गणना करनेवाला इस भूलोकमें या स्वर्गमें भी कोई नहीं है। जैसे इन्द्र देवताओंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार हम सब लोग आपके द्वारा सर्वथा रक्षणीय हैं। हमें आप सर्वगुणसम्पन्न सुहृद्‌के रूपमें प्राप्त हुए हैं' ॥ ३३-३४ ॥

इत्येवं धर्मराजेन हरिरुक्तो महायशाः।
अनुरूपमिदं वाक्यं प्रत्युवाच जनार्दनः ॥ ३५ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर महायशस्वी भगवान् जनार्दनने उनके कथनके अनुरूप इस प्रकार उत्तर दिया—॥

भवता तपसोग्रेण धर्मेण परमेण च।
साधुत्वादार्जवाच्चैव हतः पापो जयद्रथः ॥ ३६ ॥

'धर्मराज! आपकी उग्र तपस्या, परम धर्म, साधुता तथा सरलतासे ही पापी जयद्रथ मारा गया है ॥ ३६ ॥

अयं च पुरुषव्याघ्र त्वदनुध्यानसंवृतः।
हत्वा योधसहस्राणि न्यहन् जिष्णुर्जयद्रथम् ॥ ३७ ॥

'पुरुषसिंह! आपने जो निरन्तर शुभ-चिन्तन किया है, उसीसे सुरक्षित हो अर्जुनने सहस्रों योद्धाओंका संहार करके जयद्रथका वध किया है ॥ ३७ ॥

कृतित्वे बाहुवीर्ये च तथैवासम्भ्रमेऽपि च।
शीघ्रतामोघबुद्धित्वे नास्ति पार्थसमः क्वचित् ॥ ३८ ॥

'अस्त्रोंके ज्ञान, बाहुबल, स्थिरता, शीघ्रता और अमोघ-बुद्धिता आदि गुणोंमें कहीं कोई भी कुन्तीकुमार अर्जुनकी समता करनेवाला नहीं है ॥ ३८ ॥

तदयं भरतश्रेष्ठ भ्राता तेऽद्य यदर्जुनः।
सैन्यक्षयं रणे कृत्वा सिन्धुराजशिरोऽहरत् ॥ ३९ ॥

'भरतश्रेष्ठ! इसीलिये आज आपके इस छोटे भाई अर्जुनने संग्राममें शत्रुसेनाका संहार करके सिंधुराजका सिर काट लिया है' ॥ ३९ ॥

ततो धर्मसुतो जिष्णुं परिष्वज्य विशाम्पते।
प्रमृज्य वदनं तस्य पर्याश्वासयत प्रभुः ॥ ४० ॥

प्रजानाथ! तब धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने अर्जुनको हृदयसे लगा लिया और उनका मुँह पोंछकर उन्हें आश्वासन देते हुए कहा—॥ ४० ॥

अतीव सुमहत् कर्म कृतवानसि फाल्गुन।
असह्यं चाविषह्यं च देवैरपि सवासवैः ॥ ४१ ॥

'फाल्गुन! आज तुमने बड़ा भारी कर्म कर दिखाया। इसका सम्पादन करना अथवा इसके भारको सह लेना इन्द्र-सहित सम्पूर्ण देवताओंके लिये भी असम्भव था ॥ ४१ ॥

दिष्ट्या निस्तीर्णभारोऽसि हतारिश्चासि शत्रुहन्।
दिष्ट्या सत्या प्रतिज्ञेयं कृता हत्वा जयद्रथम् ॥ ४२ ॥

'शत्रुसूदन! आज तुम अपने शत्रुको मारकर प्रतिज्ञाके भारसे मुक्त हो गये। यह सौभाग्यकी बात है। हर्षका विषय है कि तुमने जयद्रथको मारकर अपनी यह प्रतिज्ञा सत्य कर दिखायी' ॥ ४२ ॥

एवमुक्त्वा गुडाकेशं धर्मराजो महायशाः।
पस्पर्श पुण्यगन्धेन पृष्ठे हस्तेन पार्थिवः ॥ ४३ ॥

महायशस्वी धर्मराज राजा युधिष्ठिरने निद्राविजयी अर्जुनसे ऐसा कहकर उनकी पीठपर पवित्र सुगन्धसे युक्त अपना हाथ फेरा ॥ ४३ ॥

एवमुक्तौ महात्मानावुभौ केशवपाण्डवौ।
तावब्रूतां तदा कृष्णौ राजानं पृथिवीपतिम् ॥ ४४ ॥

उनके ऐसा कहनेपर महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुनने उस समय उन पृथ्वीपति नरेशसे इस प्रकार कहा—॥ ४४ ॥

तव कोपाग्निना दग्धः पापो राजा जयद्रथः।
उत्तीर्णं चापि सुमहद् धार्तराष्ट्रबलं रणे ॥ ४५ ॥

'महाराज! पापी राजा जयद्रथ आपकी क्रोधाग्निसे दग्ध हो गया है तथा रणभूमिमें दुर्योधनकी विशाल सेनासे पार पाना भी आपकी कृपासे ही सम्भव हुआ है ॥ ४५ ॥

हन्यन्ते निहताश्चैव विनङ्क्ष्यन्ति च भारत।

तव क्रोधहता ह्येते कौरवाः शत्रुसूदन ॥ ४६ ॥

'भारत ! शत्रुसूदन ! ये सारे कौरव आपके क्रोधसे ही नष्ट होकर मारे गये हैं, मारे जाते हैं और भविष्यमें भी मारे जायँगे ॥ ४६ ॥

त्वां हि चक्षुर्हणं वीरं कोपयित्वा सुयोधनः।
समित्रबन्धुः समरे प्राणांस्त्यक्ष्यति दुर्मतिः ॥ ४७ ॥

'क्रोधपूर्ण दृष्टिपात मात्रसे विरोधीको दग्ध कर देनेवाले आप-जैसे वीरको कुपित करके दुर्बुद्धि दुर्योधन अपने मित्रों और बन्धुओंके साथ समरभूमिमें प्राणोंका परित्याग कर देगा॥

तव क्रोधहतः पूर्वं देवैरपि सुदुर्जयः ।
शरतल्पगतः शेते भीष्मः कुरुपितामहः ॥ ४८ ॥

'जिनपर विजय पाना पहले देवताओंके लिये भी अत्यन्त कठिन था, वे कुरुकुलके पितामह भीष्म आपके क्रोधसे ही दग्ध होकर इस समय बाणशय्यापर सो रहे हैं ॥ ४८ ॥

दुर्लभो विजयस्तेषां संग्रामे रिपुसूदन ।
याता मृत्युवशं ते वै येषां क्रुद्धोऽसि पाण्डव ॥ ४९ ॥

'शत्रुसूदन पाण्डुनन्दन ! आप जिनपर कुपित हैं, उनके लिये युद्धमें विजय दुर्लभ है । वे निश्चय ही मृत्युके वशमें हो गये हैं ॥ ४९ ॥

राज्यं प्राणाः श्रियः पुत्राः सौख्यानि विविधानि च।
अचिरात् तस्य नश्यन्ति येषां क्रुद्धोऽसि मानद॥ ५० ॥

'दूसरोंको मान देनेवाले नरेश ! जिनपर आपका क्रोध हुआ है, उनके राज्य, प्राण, सम्पत्ति, पुत्र तथा नाना प्रकारके सौख्य शीघ्र नष्ट हो जायँगे ॥ ५० ॥

विनष्टान् कौरवान् मन्ये सपुत्रपशुबान्धवान् ।
राजधर्मपरे नित्यं त्वयि क्रुद्धे परंतप ॥ ५१ ॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले वीर ! सदा राजधर्मके पालनमें तत्पर रहनेवाले आपके कुपित होनेपर मैं कौरवोंको पुत्र, पशु तथा बन्धु-बान्धवोंसहित नष्ट हुआ ही मानता हूँ' ॥

ततो भीमो महाबाहुः सात्यकिश्च महारथः ।
अभिवाद्य गुरुं ज्येष्ठं मार्गणैः क्षतविक्षतौ ॥ ५२ ॥
क्षितावास्तां महेष्वासौ पाञ्चाल्यैः परिवारितौ ।
तौ दृष्ट्वा मुदितौ वीरौ प्राञ्जली चाग्रतः स्थितौ ॥ ५३ ॥
अभ्यनन्दत कौन्तेयस्तावुभौ भीमसात्यकी।

तदनन्तर, बाणोंसे क्षत-विक्षत हुए महाबाहु भीमसेन और महारथी सात्यकि अपने ज्येष्ठ गुरु युधिष्ठिरको प्रणाम करके भूमिपर खड़े हो गये । पाञ्चालोंसे घिरे हुए उन दोनों महाधनुर्धर वीरोंको प्रसन्नतापूर्वक हाथ जोड़े सामने खड़े देख कुन्तीकुमार युधिष्ठिरने भीम और सात्यकि दोनोंका अभिनन्दन किया ॥ ५२-५३½ ॥

दिष्ट्या पश्यामि वां शूरौ विमुक्तौ सैन्यसागरात् ॥ ५४ ॥
द्रोणग्राहदुराधर्षाद्धार्दिक्यमकरालयात् ।

वे बोले--'बड़े सौभाग्यकी बात है कि मैं तुम दोनों शूरवीरोंको शत्रुसेनाके समुद्रसे पार हुआ देख रहा हूँ । वह सैन्यसागर द्रोणाचार्यरूपी ग्राहके कारण दुर्द्धर्ष है और कृतवर्मा-जैसे मगरोंका वासस्थान बना हुआ है ॥ ५४½ ॥

दिष्ट्या विनिर्जिताः संख्ये पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः ॥ ५५ ॥
युवां विजयिनौ चापि दिष्ट्या पश्यामि संयुगे।

'युद्धमें सारे भूपाल पराजित हो गये और संग्राम-भूमिमें मैं तुम दोनोंको विजयी देख रहा हूँ--यह बड़े हर्षका विषय है॥

दिष्ट्या द्रोणो जितः संख्ये हार्दिक्यश्च महाबलः ॥ ५६ ॥
दिष्ट्या विकर्णिभिः कर्णो रणे नीतः पराभवम्।
विमुखश्च कृतः शल्यो युवाभ्यां पुरुषर्षभौ ॥ ५७ ॥

'हमारे सौभाग्यसे ही आचार्य द्रोण और महाबली कृतवर्मा युद्धमें परास्त हो गये । भाग्यसे ही कर्ण भी तुम्हारे बाणोंद्वारा रणक्षेत्रमें पराभवको पहुँच गया । नरश्रेष्ठ वीरो ! तुम दोनोंने राजा शल्यको भी युद्धसे विमुख कर दिया॥ ५६-५७॥

दिष्ट्या युवां कुशलिनौ संग्रामात् पुनरागतौ ।
पश्यामि रथिनां श्रेष्ठावुभौ युद्धविशारदौ ॥ ५८ ॥

'रथियोंमें श्रेष्ठ तथा युद्धमें कुशल तुम दोनों वीरोंको मैं पुनः रणभूमिसे सकुशल लौटा हुआ देख रहा हूँ--यह मेरे लिये बड़े आनन्दकी बात है ॥ ५८ ॥

मम वाक्यकरौ वीरौ मम गौरवयन्त्रितौ ।
सैन्यार्णवं समुत्तीर्णौ दिष्ट्या पश्यामि वामहम् ॥ ५९ ॥

'मेरे प्रति गौरवसे बँधकर मेरी आज्ञाका पालन करनेवाले तुम दोनों वीरोंको मैं सैन्य-समुद्रसे पार हुआ देख रहा हूँ, यह सौभाग्यका विषय है ॥ ५९ ॥

समरश्लाघिनौ वीरौ समरेष्वपराजितौ ।
मम वाक्यसमौ चैव दिष्ट्या पश्यामि वामहम् ॥ ६० ॥

'तुम दोनों वीर मेरे कथनके अनुरूप ही युद्धकी श्लाघा रखनेवाले तथा समराङ्गणमें पराजित न होनेवाले हो । सौभाग्यसे मैं तुम दोनोंको यहाँ सकुशल देख रहा हूँ' ॥ ६० ॥

इत्युक्त्वा पाण्डवो राजन् युयुधानवृकोदरौ ।
सस्वजे पुरुषव्याघ्रौ हर्षाद् बाष्पं मुमोच ह ॥ ६१ ॥

राजन् ! पुरुषसिंह सात्यकि और भीमसेनसे ऐसा कहकर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने उन दोनोंको हृदयसे लगा लिया और वे हर्षके आँसू बहाने लगे ॥ ६१ ॥

ततः प्रमुदितं सर्वं बलमासीद् विशाम्पते ।
पाण्डवानां रणे हृष्टं युद्धाय तु मनो दधे ॥ ६२ ॥

'प्रजानाथ ! तदनन्तर पाण्डवोंकी सारी सेनाने युद्धस्थलमें प्रसन्न एवं उत्साहित होकर संग्राममें ही मन लगाया ६२

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरहर्षे एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें युधिष्ठिरका हर्षविषयक एक सौ उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४९ ॥

पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

व्याकुल हुए दुर्योधनका खेद प्रकट करते हुए द्रोणाचार्यको उपालम्भ देना

संजय उवाच

सैन्धवे निहते राजन् पुत्रस्तव सुयोधनः।
अश्रुपूर्णमुखो दीनो निरुत्साहो द्विषज्जये ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! सिंधुराज जयद्रथके मारे जानेपर आपका पुत्र दुर्योधन बहुत दुखी हो गया। उसके मुँहपर आँसुओंकी धारा बहने लगी। शत्रुओंको जीतनेका उसका सारा उत्साह जाता रहा ॥ १ ॥

दुर्मना निःश्वसन् दुष्टो भग्नदंष्ट्र इवोरगः।
आगस्कृत् सर्वलोकस्य पुत्रस्तेऽऽर्तिं परामगात् ॥ २ ॥

जिसके दाँत तोड़ दिये गये हैं, उस दुष्ट सर्पके समान वह मन-ही-मन दुखी हो लंबी साँस खींचने लगा। सम्पूर्ण जगत्का अपराध करनेवाले आपके पुत्रको बड़ी पीड़ा हुई ॥ २ ॥

दृष्ट्वा तत्कदनं घोरं स्वबलस्य कृतं महत्।
जिष्णुना भीमसेनेन सात्वतेन च संयुगे ॥ ३ ॥
स विवर्णः कृशो दीनो बाष्पविप्लुतलोचनः।

युद्धस्थलमें अर्जुन, भीमसेन और सात्यकिके द्वारा अपनी सेनाका अत्यन्त घोर संहार हुआ देखकर वह दीन, दुर्बल और कान्तिहीन हो गया। उसके नेत्रोंमें आँसू भर आये ३½

अमन्यतार्जुनसमो न योद्धा भुवि विद्यते ॥ ४ ॥
न द्रोणो न च राधेयो नाश्वत्थामा कृपो न च।
क्रुद्धस्य समरे स्थातुं पर्याप्ता इति मारिष ॥ ५ ॥

माननीय नरेश! उसे यह निश्चय हो गया कि 'इस भूतलपर अर्जुनके समान कोई दूसरा योद्धा नहीं है। समराङ्गणमें कुपित हुए अर्जुनके सामने न द्रोण, न कर्ण, न अश्वत्थामा और न कृपाचार्य ही ठहर सकते हैं' ॥ ४-५ ॥

निर्जित्य हि रणे पार्थः सर्वान् मम महारथान्।
अवधीत् सैन्धवं संख्ये न च कश्चिदवारयत् ॥ ६ ॥

वह सोचने लगा कि 'आजके युद्धमें अर्जुनने हमारे सभी महारथियोंको जीतकर सिंधुराजका वध कर डाला, किंतु कोई भी उन्हें समराङ्गणमें रोक न सका ॥ ६ ॥

सर्वथा हतमेवेदं कौरवाणां महद् बलम्।
न ह्यस्य विद्यते त्राता साक्षादपि पुरंदरः ॥ ७ ॥

'कौरवोंकी यह विशाल सेना अब सर्वथा नष्टप्राय ही है। साक्षात् देवराज इन्द्र भी इसकी रक्षा नहीं कर सकते ॥ ७ ॥

यमुपाश्रित्य संग्रामे कृतः शस्त्रसमुद्यमः।
स कर्णो निर्जितः संख्ये हतश्चैव जयद्रथः ॥ ८ ॥

'जिसका भरोसा करके मैंने युद्धके लिये शस्त्र-संग्रहकी चेष्टा की, वह कर्ण भी युद्धस्थलमें परास्त हो गया और जयद्रथ भी मारा ही गया ॥ ८ ॥

यस्य वीर्यं समाश्रित्य शमं याचन्तमच्युतम्।
तृणवत् तमहं मन्ये स कर्णो निर्जितो युधि ॥ ९ ॥

'जिसके पराक्रमका आश्रय लेकर मैंने संधिकी याचना करनेवाले श्रीकृष्णको तिनकेके समान समझा था, वह कर्ण युद्धमें पराजित हो गया' ॥ ९ ॥

एवं क्लान्तमना राजन्नुपायाद् द्रोणमीक्षितुम्।
आगस्कृत् सर्वलोकस्य पुत्रस्ते भरतर्षभ ॥ १० ॥

राजन्! भरतश्रेष्ठ! सम्पूर्ण जगत्का अपराध करनेवाला आपका पुत्र जब इस प्रकार सोचते-सोचते मन-ही-मन बहुत खिन्न हो गया, तब आचार्य द्रोणका दर्शन करनेके लिये उनके पास गया ॥ १० ॥

ततस्तत्सर्वमाचख्यौ कुरूणां वैशसं महत्।
परान् विजयतश्चापि धार्तराष्ट्रान् निमज्जतः ॥ ११ ॥

तदनन्तर वहाँ उसने कौरवोंके महान् संहारका वह सारा समाचार कहा और यह भी बताया कि शत्रु विजयी हो रहे हैं और महाराज धृतराष्ट्रके सभी पुत्र विपत्तिके समुद्रमें डूब रहे हैं ॥ ११ ॥

दुर्योधन उवाच

पश्य मूर्धाभिषिक्तानामाचार्य कदनं महत्।
कृत्वा प्रमुखतः शूरं भीष्मं मम पितामहम् ॥ १२ ॥

दुर्योधन बोला—आचार्य! जिनके मस्तकपर विधिपूर्वक राज्याभिषेक किया गया था, उन राजाओंका यह महान् संहार देखिये। मेरे शूरवीर पितामह भीष्मसे लेकर अबतक कितने ही नरेश मारे गये ॥ १२ ॥

तं निहत्य प्रलुब्धोऽयं शिखण्डी पूर्णमानसः।
पाञ्चाल्यैः सहितः सर्वैः सेनाग्रमभिवर्तते ॥ १३ ॥

व्याधों-जैसा बर्ताव करनेवाला यह शिखण्डी भीष्मको मारकर मन-ही-मन उत्साहसे भरा हुआ है और समस्त पाञ्चाल सैनिकोंके साथ सेनाके मुहानेपर खड़ा है ॥ १३ ॥

अपरश्चापि दुर्धर्षः शिष्यस्ते सव्यसाचिना।
अक्षौहिणीः सप्त हत्वा हतो राजा जयद्रथः ॥ १४ ॥
अस्मद्विजयकामानां सुहृदामुपकारिणाम्।
गन्तास्मि कथमानृण्यं गतानां यमसादनम् ॥ १५ ॥

सव्यसाची अर्जुनने मेरी सात अक्षौहिणी सेनाओंका संहार करके आपके दूसरे दुर्धर्ष शिष्य राजा जयद्रथको भी मार डाला है। मुझे विजय दिलानेकी इच्छा रखनेवाले मेरे

जो-जो उपकारी सुहृद् युद्धमें प्राण देकर यमलोकमें जा पहुँचे हैं, उनका ऋण मैं कैसे चुका सकूँगा? ॥ १४-१५ ॥

ये मदर्थं परीप्सन्ते वसुधां वसुधाधिपाः ।
ते हित्वा वसुधैश्वर्यं वसुधामधिशेरते ॥ १६ ॥

जो भूमिपाल मेरे लिये इस भूमिको जीतना चाहते थे, वे स्वयं भूमण्डलका ऐश्वर्य त्यागकर भूमिपर सो रहे हैं ॥ १६ ॥

सोऽहं कापुरुषः कृत्वा मित्राणां क्षयमीदृशम् ।
अश्वमेधसहस्रेण पावितुं न समुत्सहे ॥ १७ ॥

मैं कायर हूँ, अपने मित्रोंका ऐसा संहार कराकर हजारों अश्वमेध यज्ञोंसे भी अपनेको पवित्र नहीं कर सकता ॥

मम लुब्धस्य पापस्य तथा धर्मापचायिनः ।
व्यायामेन जिगीषन्तः प्राप्ता वैवस्वतक्षयम् ॥ १८ ॥

हाय ! मुझ लोभी तथा धर्मनाशक पापीके लिये युद्धके द्वारा विजय चाहनेवाले मेरे मित्रगण यमलोक चले गये ॥

कथं पतितवृत्तस्य पृथिवी सुहृदां द्रुहः ।
विवरं नाशकद् दातुं मम पार्थिवसंसदि ॥ १९ ॥

मुझ आचारभ्रष्ट और मित्रद्रोहीके लिये राजाओंके समाजमें 'यह पृथ्वी फट क्यों नहीं जाती, जिससे मैं उसीमें समा जाऊँ ॥ १९ ॥

योऽहं रुधिरसिक्ताङ्गं राज्ञां मध्ये पितामहम् ।
शयानं नाशकं त्रातुं भीष्ममायोधने हतम् ॥ २० ॥

मेरे पितामह भीष्म राजाओंके बीच युद्धस्थलमें मारे गये और अब खूनसे लथपथ होकर बाणशय्यापर पड़े हैं; परंतु मैं उनकी रक्षा न कर सका ॥ २० ॥

तं मामनार्यपुरुषं मित्रद्रुहमधार्मिकम् ।
किं वक्ष्यति हि दुर्धर्षः समेत्य परलोकजित् ॥ २१ ॥

वे परलोक-विजयी दुर्धर्ष वीर भीष्म यदि मैं उनके पास जाऊँ तो मुझ नीच, मित्रद्रोही तथा पापात्मा पुरुषसे क्या कहेंगे ? ॥ २१ ॥

जलसंधं महेष्वासं पश्य सात्यकिना हतम् ।
मदर्थमुद्यतं शूरं प्राणांस्त्यक्त्वा महारथम् ॥ २२ ॥

आचार्य ! देखिये तो सही, मेरे लिये प्राणोंका मोह छोड़कर राज्य दिलानेको उद्यत हुए महाधनुर्धर शूरवीर महारथी जलसंधको सात्यकिने मार डाला ॥ २२ ॥

काम्बोजं निहतं दृष्ट्वा तथालम्बुषमेव च ।
अन्यान् बहूंश्च सुहृदो जीवितार्थोऽद्य को मम ॥ २३ ॥

काम्बोजराज, अलम्बुष तथा अन्यान्य बहुत-से सुहृदोंको मारा गया देखकर भी अब मेरे जीवित रहनेका क्या प्रयोजन है ? ॥ २३ ॥

व्यायच्छन्तो हताः शूरा मदर्थे येऽपराङ्मुखाः ।
यतमानाः परं शक्त्या विजेतुमहितान् मम ॥ २४ ॥
तेषां गत्वाहमानृण्यमद्य शक्त्या परंतप ।
तर्पयिष्यामि तानेव जलेन यमुनामनु ॥ २५ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले आचार्य ! जो युद्धसे विमुख न होनेवाले शूरवीर सुहृद् मेरे लिये जूझते और मेरे शत्रुओंको जीतनेके लिये यथाशक्ति पूरी चेष्टा करते हुए मारे गये हैं, उनका अपनी शक्तिभर ऋण उतारकर आज मैं यमुनाके जलसे उन सभीका तर्पण करूँगा ॥ २४-२५ ॥

सत्यं ते प्रतिजानामि सर्वशस्त्रभृतां वर ।
इष्टापूर्तेन च शपे वीर्येण च सुतैरपि ॥ २६ ॥
निहत्य तान् रणे सर्वान् पञ्चालान् पाण्डवैः सह ।
शान्तिं लब्धास्मि तेषां वा रणे गन्ता सलोकताम् ॥ २७ ॥

समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ गुरुदेव ! आज मैं अपने यज्ञ-यागादि तथा कुँआ, बावली बनवाने आदि शुभ कर्मोंकी, पराक्रमकी तथा पुत्रोंकी शपथ खाकर आपके सामने सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब मैं पाण्डवोंके सहित समस्त पाञ्चालोंको युद्धमें मारकर ही शान्ति पाऊँगा अथवा मेरे वे सुहृद् युद्धमें मरकर जिन लोकोंमें गये हैं, उन्हींमें मैं भी चला जाऊँगा ॥ २६-२७ ॥

सोऽहं तत्र गमिष्यामि यत्र ते पुरुषर्षभाः ।
हता मदर्थे संग्रामे युध्यमानाः किरीटिना ॥ २८ ॥

वे पुरुषशिरोमणि सुहृद् रणभूमिमें मेरे लिये युद्ध करते-करते अर्जुनके हाथसे मारे जाकर जिन लोकोंमें गये हैं, वहीं मैं भी जाऊँगा ॥ २८ ॥

न हीदानीं सहाया मे परीप्सन्त्यनुपस्कृताः ।
श्रेयो हि पाण्डून् मन्यन्ते न तथास्मान् महाभुज ॥ २९ ॥

महाबाहो ! इस समय जो मेरे सहायक हैं, वे अरक्षित होनेके कारण हमारी सहायता करना नहीं चाहते हैं। वे जैसा पाण्डवोंका कल्याण चाहते हैं, वैसा हमलोगोंका नहीं ॥ २९ ॥

स्वयं हि मृत्युर्विहितः सत्यसंधेन संयुगे ।
भवानुपेक्षां कुरुते शिष्यत्वादर्जुनस्य हि ॥ ३० ॥

युद्धस्थलमें सत्यप्रतिज्ञ भीष्मने स्वयं ही अपनी मृत्यु स्वीकार कर ली और आप भी हमारी इसलिये उपेक्षा करते हैं कि अर्जुन आपके प्रिय शिष्य हैं ॥ ३० ॥

अतो विनिहताः सर्वे येऽस्मज्जयचिकीर्षवः ।
कर्णमेव तु पश्यामि सम्प्रत्यस्मज्जयैषिणम् ॥ ३१ ॥

इसलिये हमारी विजय चाहनेवाले सभी योद्धा मारे गये। इस समय तो मैं केवल कर्णको ही ऐसा देखता हूँ, जो सच्चे हृदयसे मेरी विजय चाहता है ॥ ३१ ॥

यो हि मित्रमविज्ञाय याथातथ्येन मन्दधीः ।
मित्रार्थे योजयत्येनं तस्य सोऽर्थोऽवसीदति ॥ ३२ ॥

जो मूर्ख मनुष्य मित्रको ठीक-ठीक पहचाने बिना ही उसे मित्रके कार्यमें नियुक्त कर देता है, उसका वह काम बिगड़ जाता है ॥ ३२ ॥

तादृग् रूपं कृतमिदं मम कार्यं सुहृत्तमैः।
मोहाल्लुब्धस्य पापस्य जिह्मस्य धनमीहतः ॥ ३३ ॥

मेरे परम सुहृद् कहलानेवालोंने मोहवश धन (राज्य) चाहनेवाले मुझ लोभी, पापी और कुटिलके इस कार्यको उसी प्रकार चौपट कर दिया है ॥ ३३ ॥

हतो जयद्रथश्चैव सौमदत्तिश्च वीर्यवान्।
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ॥ ३४ ॥

जयद्रथ और सोमदत्तकुमार भूरिश्रवा मारे गये। अभीषाह, शूरसेन, शिबि तथा वसातिगण भी चल बसे ॥ ३४ ॥

सोऽहमद्य गमिष्यामि यत्र ते पुरुषर्षभाः।
हता मदर्थे संग्रामे युध्यमानाः किरीटिना ॥ ३५ ॥

वे नरश्रेष्ठ सुहृद् रणभूमिमें मेरे लिये युद्ध करते-करते अर्जुनके हाथसे मारे जाकर जिन लोकोंमें गये हैं, वहीं आज मैं भी जाऊँगा ॥ ३५ ॥

न हि मे जीवितेनार्थस्तानृते पुरुषर्षभान्।
आचार्यः पाण्डुपुत्राणामनुजानातु नो भवान् ॥ ३६ ॥

उन पुरुषरत्न मित्रोंके बिना अब मेरे जीवित रहनेका कोई प्रयोजन नहीं है। आप हम पाण्डुपुत्रोंके आचार्य हैं, अतः मुझे जानेकी आज्ञा दें ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनानुतापे पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें दुर्योधनका अनुतापविषयक एक सौ पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५० ॥

एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

द्रोणाचार्यका दुर्योधनको उत्तर और युद्धके लिये प्रस्थान

धृतराष्ट्र उवाच

सिन्धुराजे हते तात समरे सव्यसाचिना।
तथैव भूरिश्रवसि किमासीद् वो मनस्तदा ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—तात! समराङ्गणमें सव्यसाची अर्जुनके द्वारा सिंधुराज जयद्रथके तथा सात्यकिद्वारा भूरिश्रवाके मारे जानेपर उस समय तुमलोगोंके मनकी कैसी अवस्था हुई?

दुर्योधनेन च द्रोणस्तथोक्तः कुरुसंसदि।
किमुक्तवान् परं तस्मै तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ २ ॥

संजय! दुर्योधनने जब कौरव-सभामें द्रोणाचार्यसे वैसी बातें कहीं, तब उन्होंने उसे क्या उत्तर दिया? यह मुझे बताओ ॥ २ ॥

संजय उवाच

निष्ठानको महानासीत् सैन्यानां तव भारत।
सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा भूरिश्रवसमेव च ॥ ३ ॥

संजयने कहा—भारत! सिंधुराज जयद्रथ तथा भूरिश्रवाको मारा गया देखकर आपकी सेनाओंमें महान् आर्तनाद होने लगा ॥ ३ ॥

मन्त्रितं तव पुत्रस्य ते सर्वमवमेनिरे।
येन मन्त्रेण निहताः शतशः क्षत्रियर्षभाः ॥ ४ ॥

वे सब लोग आपके पुत्र दुर्योधनकी उस सारी मन्त्रणाका अनादर करने लगे, जिससे सैकड़ों क्षत्रिय-शिरोमणि कालके गालमें चले गये ॥ ४ ॥

द्रोणस्तु तद् वचः श्रुत्वा पुत्रस्य तव दुर्मनाः।
मुहूर्तमिव तद् ध्यात्वा भृशमार्तोऽभ्यभाषत ॥ ५ ॥

आपके पुत्रका पूर्वोक्त वचन सुनकर द्रोणाचार्य मन-ही-मन दुखी हो उठे। उन्होंने दो घड़ीतक कुछ सोच-विचारकर अत्यन्त आर्तभावसे इस प्रकार कहा ॥ ५ ॥

द्रोण उवाच

दुर्योधन किमेवं मां वाक्शरैरपि कृन्तसि।
अजय्यं सततं संख्ये ब्रुवाणं सव्यसाचिनम् ॥ ६ ॥

द्रोणाचार्य बोले—दुर्योधन! तुम क्यों इस प्रकार अपने वचनरूपी बाणोंसे मुझे छेद रहे हो? मैं तो सदासे ही कहता आया हूँ कि सव्यसाची अर्जुन युद्धमें अजेय हैं॥

एतेनैवार्जुनं ज्ञातुमलं कौरव संयुगे।
यच्छिखण्ड्यवधीद् भीष्मं पाल्यमानः किरीटिना ॥ ७ ॥

कुरुनन्दन! अर्जुनको तो केवल इसी बातसे समझ लेना चाहिये था कि उनके द्वारा सुरक्षित होकर शिखण्डीने भी युद्धके मैदानमें भीष्मको मार डाला ॥ ७ ॥

अवध्यं निहतं दृष्ट्वा संयुगे देवदानवैः।
तदैवाज्ञासिषमहं नेयमस्तीति भारती ॥ ८ ॥

जो देवताओं और दानवोंके लिये भी अवध्य थे, उन्हें युद्धमें मारा गया देख मैंने उसी समय यह जान लिया कि यह कौरवसेना अब नहीं रह सकेगी ॥ ८ ॥

यं पुंसां त्रिषु लोकेषु सर्वशूरममंस्महि।
तस्मिन् निपतिते शूरे किं शेषं पर्युपास्महे ॥ ९ ॥

हमलोग जिन्हें तीनों लोकोंके पुरुषोंमें सबसे अधिक शूरवीर मानते थे, उन शौर्यसम्पन्न भीष्मके मारे जानेपर हम दूसरोंका क्या भरोसा करें? ॥ ९ ॥

यान् स्म तान् ग्लहते तात शकुनिः कुरुसंसदि।
अक्षान् न तेऽक्षा निशिता बाणास्ते शत्रुतापनाः ॥ १० ॥

द्यूतक्रीड़ाके समय विदुरजीने तुमसे कहा था कि 'तात! कौरव-सभामें शकुनि जिन पासोंको फेंक रहा है, उन्हें पासे न समझो, वे किसी दिन शत्रुओंको संताप देनेवाले तीखे बाण बन सकते हैं' ॥ १० ॥

त एते घ्नन्ति नस्तात विशिखाः पार्थचोदिताः।
तांस्तदाऽऽख्यायमानस्त्वं विदुरेण न बुद्धवान् ॥ ११ ॥

परंतु वत्स ! उस समय विदुरजीकी कही हुई बातोंको तुमने कुछ नहीं समझा। तात ! वे ही पासे ये अर्जुनके चलाये हुए बाण बनकर हमें मार रहे हैं ॥ ११ ॥

यास्ता विजयतश्चापि विदुरस्य महात्मनः।
धीरस्य वाचो नाश्रौषीः क्षेमाय वदतः शिवाः ॥ १२ ॥
तदिदं वर्तते घोरमागतं वैशसं महत्।
तस्यावमानाद् वाक्यस्य दुर्योधन कृते तव ॥ १३ ॥

दुर्योधन! विदुरजी धीर हैं, महात्मा पुरुष हैं। उन्होंने तुम्हारे कल्याणके लिये जो मङ्गलकारक वचन कहे थे और जिन्हें तुमने विजयके उल्लासमें अनसुना कर दिया था, उनके उन वचनोंके अनादरसे ही तुम्हारे लिये यह घोर महासंहार प्राप्त हुआ है ॥ १२-१३ ॥

योऽवमन्य वचः पथ्यं सुहृदामाप्तकारिणाम्।
स्वमतं कुरुते मूढः स शोच्यो नचिरादिव ॥ १४ ॥

जो मूर्ख अपने हितैषी मित्रोंके हितकर वचनकी अवहेलना करके मनमाना बर्ताव करता है, वह थोड़े ही समयमें शोचनीय दशाको प्राप्त हो जाता है ॥ १४ ॥

यच्च नः प्रेक्षमाणानां कृष्णामानाय्य तत्सभाम्।
अनर्हन्तीं कुले जातां सर्वधर्मानुचारिणीम् ॥ १५ ॥
तस्याधर्मस्य गान्धारे फलं प्राप्तमिदं महत्।
नो चेत् पापं परे लोके त्वमर्च्छेथास्ततोऽधिकम् ॥ १६ ॥

इसके सिवा तुमने हमलोगोंके सामने ही जो द्रौपदीको सभामें बुलाकर अपमानित किया, वह अपमान उसके योग्य नहीं था। वह उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई है और सम्पूर्ण धर्मोंका निरन्तर पालन करती है। गान्धारीनन्दन ! द्रौपदीके अपमानरूपी तुम्हारे अधर्मका ही यह महान् फल प्राप्त हुआ है कि तुम्हारे दलका विनाश हो रहा है। यदि यहाँ यह फल नहीं मिलता तो परलोकमें तुम्हें उस पापका इससे भी अधिक दण्ड भोगना पड़ता ॥ १५-१६ ॥

यच्च तान् पाण्डवान् द्यूते विषमेण विजित्य ह।
प्राव्राजयस्तदारण्ये रौरवाजिनवाससः ॥ १७ ॥

इतना ही नहीं, तुमने पाण्डवोंको जूएमें बेईमानीसे जीतकर और मृगचर्ममय वस्त्र पहनाकर उन्हें वनवास दे दिया (इस अधर्मका भी फल तुम्हें भोगना पड़ता है) ॥ १७ ॥

पुत्राणामिव चैतेषां धर्ममाचरतां सदा।
द्रुह्येत् को नु नरो लोके मदन्यो ब्राह्मणब्रुवः ॥ १८ ॥

पाण्डव मेरे पुत्रके समान हैं और वे सदा धर्मका आचरण करते रहते हैं। संसारमें मेरे सिवा दूसरा कौन मनुष्य है, जो ब्राह्मण कहलाकर भी उनसे द्रोह करे ॥ १८ ॥

पाण्डवानामयं कोपस्त्वया शकुनिना सह।
आहृतो धृतराष्ट्रस्य सम्मते कुरुसंसदि ॥ १९ ॥

तुमने राजा धृतराष्ट्रकी सम्मतिसे कौरवोंकी सभामें शकुनिके साथ बैठकर पाण्डवोंका यह क्रोध मोल लिया है ॥ १९ ॥

दुःशासनेन संयुक्तः कर्णेन परिवर्धितः।
क्षत्तुर्वाक्यमनादृत्य त्वयाभ्यस्तः पुनः पुनः ॥ २० ॥

इस कार्यमें दुःशासनने तुम्हारा साथ दिया है, कर्णसे भी उस क्रोधको बढ़ावा मिला है और विदुरजीके उपदेशकी अवहेलना करके तुमने बारंबार पाण्डवोंके उस क्रोधको बढ़नेका अवसर दिया है ॥ २० ॥

यत्ताः सर्वे पराभूताः पर्यवारयताऽर्जुनम्।
सिन्धुराजानमाश्रित्य स वो मध्ये कथं हतः ॥ २१ ॥

तुम सब लोगोंने बड़ी सावधानीसे अर्जुनको घेर लिया था। फिर सब-के-सब पराजित कैसे हो गये ? तुमने सिंधुराजको आश्रय दिया था। फिर तुम्हारे बीचमें वह कैसे मारा गया ? ॥ २१ ॥

कथं त्वयि च कर्णे च कृपे शल्ये च जीवति।
अश्वत्थाम्नि च कौरव्य निधनं सैन्धवोऽगमत् ॥ २२ ॥

कुरुनन्दन ! तुम और कर्ण तो नहीं मर गये थे, कृपाचार्य, शल्य और अश्वत्थामा तो जीवित थे; फिर तुम्हारे रहते सिंधुराजकी मृत्यु क्यों हुई ? ॥ २२ ॥

युध्यन्तः सर्वराजानस्तेजस्तिग्ममुपासते।
सिन्धुराजं परित्रातुं स वो मध्ये कथं हतः ॥ २३ ॥

युद्ध करते हुए समस्त राजा सिंधुराजकी रक्षाके लिये प्रचण्ड तेजका आश्रय लिये हुए थे। फिर वह आपलोगोंके बीचमें कैसे मारा गया ? ॥ २३ ॥

मय्येव हि विशेषेण तथा दुर्योधन त्वयि।
आशंसत परित्राणमर्जुनात् स महीपतिः ॥ २४ ॥

दुर्योधन ! राजा जयद्रथ विशेषतः मुझपर और तुमपर ही अर्जुनसे अपनी जीवन-रक्षाका भरोसा किये बैठा था ॥ २४ ॥

ततस्तस्मिन् परित्राणमलब्धवति फाल्गुनात्।
न किंचिदनुपश्यामि जीवितस्थानमात्मनः ॥ २५ ॥

तो भी जब अर्जुनसे उसकी रक्षा न की जा सकी, तब मुझे अब अपने जीवनकी रक्षाके लिये भी कोई स्थान दिखायी नहीं देता ॥ २५ ॥

मज्जन्तमिव चात्मानं धृष्टद्युम्नस्य किल्बिषे।

पश्याम्यहत्वा पञ्चालान् सह तेन शिखण्डिना ॥ २६ ॥

मैं धृष्टद्युम्न और शिखण्डीसहित समस्त पाञ्चालोंका वध न करके अपने-आपको धृष्टद्युम्नके पापपूर्ण संकल्पमें डूबता-सा देख रहा हूँ ॥ २६ ॥

तन्मां किमभितप्यन्तं वाक्शरैरेव कृन्तसि ।
अशक्तः सिन्धुराजस्य भूत्वा त्राणाय भारत ॥ २७ ॥

भारत ! ऐसी दशामें तुम स्वयं सिंधुराजकी रक्षामें असमर्थ होकर मुझे अपने वाग्बाणोंसे क्यों छेद रहे हो ? मैं तो स्वयं ही संतप्त हो रहा हूँ ॥ २७ ॥

सौवर्णं सत्यसंधस्य ध्वजमक्लिष्टकर्मणः ।
अपश्यन् युधि भीष्मस्य कथमाशंससे जयम् ॥ २८ ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले सत्यप्रतिज्ञ भीष्मके सुवर्णमय ध्वजको अब युद्धस्थलमें फहराता न देखकर भी तुम विजयकी आशा कैसे करते हो ? ॥ २८ ॥

मध्ये महारथानां च यत्राहन्यत सैन्धवः ।
हतो भूरिश्रवाश्चैव किं शेषं तत्र मन्यसे ॥ २९ ॥

जहाँ बड़े-बड़े महारथियोंके बीच सिंधुराज जयद्रथ और भूरिश्रवा मारे गये, वहाँ तुम किसके बचनेकी आशा करते हो ? ॥ २९ ॥

कृप एव च दुर्धर्षो यदि जीवति पार्थिव ।
यो नागात् सिन्धुराजस्य वर्त्म तं पूजयाम्यहम् ॥ ३० ॥

पृथ्वीपते ! दुर्धर्ष वीर कृपाचार्य यदि जीवित हैं, यदि सिंधुराजके पथपर नहीं गये हैं तो मैं उनके बल और सौभाग्यकी प्रशंसा करता हूँ ॥ ३० ॥

यत्रापश्यं हतं भीष्मं पश्यतस्तेऽनुजस्य वै ।
दुःशासनस्य कौरव्य कुर्वाणं कर्म दुष्करम् ॥ ३१ ॥
अवध्यकल्पं संग्रामे देवैरपि सवासवैः ।
न ते वसुन्धरास्तीति तदाहं चिन्तये नृप ॥ ३२ ॥

कुरुनन्दन ! नरेश ! जिन्हें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी युद्धमें नहीं मार सकते थे, दुष्कर कर्म करनेवाले उन्हीं भीष्मको जबसे मैंने तुम्हारे छोटे भाई दुःशासनके देखते-देखते मारा गया देखा है, तबसे मैं यही सोचता हूँ कि अब यह पृथ्वी तुम्हारे अधिकारमें नहीं रह सकती ॥ ३१-३२ ॥

इमानि पाण्डवानां च सृञ्जयानां च भारत ।
अनीकान्याद्रवन्ते मां सहितान्यद्य भारत ॥ ३३ ॥

भारत ! वह देखो, पाण्डवों और सृंजयोंकी सेनाएँ एक साथ मिलकर इस समय मुझपर चढ़ी आ रही हैं ॥ ३३ ॥

नाहत्वा सर्वपञ्चालान् कवचस्य विमोक्षणम् ।
कर्तास्मि समरे कर्म धार्तराष्ट्र हितं तव ॥ ३४ ॥

दुर्योधन ! अब मैं समस्त पाञ्चालोंको मारे बिना अपना कवच नहीं उतारूँगा । मैं समराङ्गणमें वही कार्य करूँगा, जिससे तुम्हारा हित हो ॥ ३४ ॥

राजन् ब्रूयाः सुतं मे त्वमश्वत्थामानमाहवे ।
न सोमकाः प्रमोक्तव्या जीवितं परिरक्षता ॥ ३५ ॥

राजन् ! तुम मेरे पुत्र अश्वत्थामासे जाकर कहना कि 'वह युद्धमें अपने जीवनकी रक्षा करते हुए जैसे भी हो, सोमकोंको जीवित न छोड़े' ॥ ३५ ॥

यच्च पित्रानुशिष्टोऽसि तद् वचः परिपालय ।
आनृशंस्ये दमे सत्ये चार्जवे च स्थिरो भव ॥ ३६ ॥

यह भी कहना कि 'पिताने जो तुम्हें उपदेश दिया है, उसका पालन करो । दया, दम, सत्य और सरलता आदि सद्गुणोंमें स्थिर रहो ॥ ३६ ॥

धर्मार्थकामकुशलो धर्मार्थावप्यपीडयन् ।
धर्मप्रधानकार्याणि कुर्याश्चेति पुनः पुनः ॥ ३७ ॥

'तुम धर्म, अर्थ और कामके साधनमें कुशल हो । अतः धर्म और अर्थको पीड़ा न देते हुए बारंबार धर्मप्रधान कर्मोंका ही अनुष्ठान करो ॥ ३७ ॥

चक्षुर्मनोभ्यां संतोष्या विप्राः पूज्याश्च शक्तितः ।
न चैषां विप्रियं कार्यं ते हि वह्निशिखोपमाः ॥ ३८ ॥

'विनयपूर्ण दृष्टि और श्रद्धायुक्त हृदयसे ब्राह्मणोंको संतुष्ट रखना, यथाशक्ति उनका आदर-सत्कार करते रहना । कभी उनका अप्रिय न करना; क्योंकि वे अग्निकी ज्वालाके समान तेजस्वी होते हैं' ॥ ३८ ॥

एष त्वहमनीकानि प्रविशाम्यरिसूदन ।
रणाय महते राजंस्त्वया वाक्शरपीडितः ॥ ३९ ॥

राजन् ! शत्रुसूदन ! अब मैं तुम्हारे वाग्बाणोंसे पीड़ित हो महान् युद्धके लिये शत्रुओंकी सेनामें प्रवेश करता हूँ ॥ ३९ ॥

त्वं च दुर्योधन बलं यदि शक्तोऽसि पालय ।
रात्रावपि च योत्स्यन्ते संरब्धाः कुरुसृञ्जयाः ॥ ४० ॥

दुर्योधन ! यदि तुममें शक्ति हो तो सेनाकी रक्षा करना; क्योंकि इस समय क्रोधमें भरे हुए कौरव और संजय रात्रिमें भी युद्ध करेंगे ॥ ४० ॥

एवमुक्त्वा ततः प्रायाद् द्रोणः पाण्डवसृञ्जयान् ।
मुष्णन् क्षत्रियतेजांसि नक्षत्राणामिवांशुमान् ॥ ४१ ॥

जैसे सूर्य नक्षत्रोंके तेज हर लेते हैं, उसी प्रकार क्षत्रियोंके तेजका अपहरण करते हुए आचार्य द्रोण दुर्योधनसे पूर्वोक्त बातें कहकर पाण्डवों और सृंजयोंसे युद्ध करनेके लिये चल दिये ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणवाक्ये एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें द्रोणवाक्यविषयक एक सौ इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५१ ॥

द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

दुर्योधन और कर्णकी बातचीत तथा पुनः युद्धका आरम्भ

संजय उवाच

ततो दुर्योधनो राजा द्रोणेनैवं प्रचोदितः।
अमर्षवशमापन्नो युद्धायैव मनो दधे ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर द्रोणाचार्यसे इस प्रकार प्रेरित हो अमर्षमें भरे हुए राजा दुर्योधनने मन-ही-मन युद्ध करनेका ही निश्चय किया ॥ १ ॥

अब्रवीच्च तदा कर्णं पुत्रो दुर्योधनस्तव।
पश्य कृष्णसहायेन पाण्डवेन किरीटिना ॥ २ ॥
आचार्यविहितं व्यूहं भित्त्वा देवैः सुदुर्भिदम्।
तव व्यायच्छमानस्य द्रोणस्य च महात्मनः ॥ ३ ॥
मिषतां योधमुख्यानां सैन्धवो विनिपातितः।

उस समय आपके पुत्र दुर्योधनने कर्णसे इस प्रकार कहा—'कर्ण! देखो, श्रीकृष्णसहित पाण्डुपुत्र अर्जुनने आचार्यद्वारा



निर्मित व्यूहको, जिसका भेदन करना देवताओंके लिये भी अत्यन्त कठिन था, भेदकर तुम्हारे और महात्मा द्रोणके युद्धमें तत्पर रहते हुए भी मुख्य-मुख्य योद्धाओंके देखते-देखते सिंधुराज जयद्रथको मार गिराया है ॥ २-३½ ॥

पश्य राधेय पृथ्वीशाः पृथिव्यां प्रवरा युधि ॥ ४ ॥
पार्थेनैकेन निहताः सिंहेनेवेतरे मृगाः।

'राधानन्दन! देखो, जैसे सिंह दूसरे वन्य पशुओंका संहार कर डालता है, उसी प्रकार एकमात्र कुन्तीकुमार अर्जुनद्वारा मारे गये ये भूमण्डलके श्रेष्ठ भूपाल युद्धभूमिमें पड़े हैं ॥ ४½ ॥

मम व्यायच्छमानस्य द्रोणस्य च महात्मनः ॥ ५ ॥
अल्पावशेषं सैन्यं मे कृतं शक्रात्मजेन ह।

'मेरे और महात्मा द्रोणके परिश्रमपूर्वक युद्ध करते रहनेपर भी इन्द्रपुत्र अर्जुनने मेरी सेनाको अल्पमात्रामें ही जीवित छोड़ा है (अधिकांश सेनाको तो मार ही डाला है) ॥ ५½ ॥

कथं नियच्छमानस्य द्रोणस्य युधि फाल्गुनः ॥ ६ ॥
भिन्द्यात् सुदुर्भिदं व्यूहं यतमानोऽपि संयुगे।
प्रतिज्ञाया गतः पारं हत्वा सैन्धवमर्जुनः ॥ ७ ॥

'यदि इस युद्धमें आचार्य द्रोण अर्जुनको रोकनेकी पूरी चेष्टा करते तो प्रयत्न करनेपर भी वे समराङ्गणमें उस दुर्भेद्य व्यूहको कैसे तोड़ सकते थे? सिंधुराजको मारकर अर्जुन अपनी प्रतिज्ञाके भारसे मुक्त हो गये ॥ ६-७ ॥

पश्य राधेय पृथ्वीशान् पृथिव्यां पातितान् बहून्।
पार्थेन निहतान् संख्ये महेन्द्रोपमविक्रमान् ॥ ८ ॥

'राधाकुमार! संग्रामभूमिमें पार्थके मारे और पृथ्वीपर गिराये हुए इन बहुसंख्यक भूपतियोंको देखो, ये सब-के-सब देवराज इन्द्रके समान पराक्रमी थे ॥ ८ ॥

अनिच्छतः कथं वीर द्रोणस्य युधि पाण्डवः।
भिन्द्यात् सुदुर्भिदं व्यूहं यतमानस्य शुष्मिणः ॥ ९ ॥

'वीर! यदि बलवान् द्रोणाचार्य पूरा प्रयत्न करके उन्हें व्यूहमें नहीं घुसने देना चाहते तो वे उस दुर्भेद्य व्यूहको कैसे तोड़ सकते थे? ॥ ९ ॥

दयितः फाल्गुनो नित्यमाचार्यस्य महात्मनः।
ततोऽस्य दत्तवान् द्वारमयुद्धेनैव शत्रुहन् ॥ १० ॥

'शत्रुसूदन! किंतु अर्जुन तो महात्मा आचार्य द्रोणको सदा ही परम प्रिय हैं। इसीलिये उन्होंने युद्ध किये बिना ही उन्हें व्यूहमें घुसनेका मार्ग दे दिया ॥ १० ॥

अभयं सिन्धुराजाय दत्त्वा द्रोणः परंतपः।
प्रादात् किरीटिने द्वारं पश्य निर्गुणतां मयि ॥ ११ ॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले द्रोणाचार्यने सिंधुराजको अभय-दान देकर भी किरीटधारी अर्जुनको व्यूहमें घुसनेका मार्ग दे दिया। देखो, मुझमें कितनी गुणहीनता है ॥ ११ ॥

यद्यदास्यदनुज्ञां वै पूर्वमेव गृहान् प्रति।
प्रस्थातुं सिन्धुराजस्य नाभविष्यज्जनक्षयः ॥ १२ ॥

'यदि उन्होंने पहले ही सिंधुराजको घर जानेकी आज्ञा दे दी होती तो यह इतना बड़ा जनसंहार नहीं होता ॥ १२ ॥

जयद्रथो जीवितार्थी गच्छमानो गृहान् प्रति ।
प्रयानार्येण संरुद्धो द्रोणात् प्राप्याभयं सखे ॥ १३ ॥

'सखे ! जयद्रथ अपनी जीवनरक्षाके लिये घरकी ओर पधार रहे थे, परंतु मुझ अधमने ही द्रोणाचार्यसे अभय पाकर उन्हें रोक लिया ॥ १३ ॥

(रक्षामि सैन्धवं युद्धे नैनं प्राप्स्यति फाल्गुनः ।
मम सैन्यविनाशाय रुद्धो विप्रेण सैन्धवः ॥

'मैं युद्धमें सिंधुराजकी रक्षा करूँगा; अर्जुन उसे नहीं पा सकेंगे' ऐसा कहकर इस ब्राह्मणने मेरी सेनाका संहार करानेके लिये सिंधुराजको रोक लिया ॥

तस्य मे मन्दभाग्यस्य यतमानस्य संयुगे ।
हतानि सर्वसैन्यानि हतो राजा जयद्रथः ॥

'युद्धमें प्रयत्न करनेपर भी मुझ भाग्यहीनकी सारी सेनाएँ नष्ट हो गयीं और राजा जयद्रथ भी मार डाले गये ॥

पश्य योधवरान् कर्ण शतशोऽथ सहस्रशः ।
पार्थनामाङ्कितैर्बाणैः सर्वे नीता यमक्षयम् ॥

'कर्ण ! इन सैकड़ों-हजारों श्रेष्ठ योद्धाओंको देखो, ये सब-के-सब अर्जुनके नामसे अङ्कित बाणोंद्वारा यमलोक पहुँचाये गये हैं ॥

कथमेकरथेनाजौ बहूनां नः प्रपश्यताम् ।
विपन्नः सैन्धवो राजा योधाश्चैव सहस्रशः ॥)

'हम बहुसंख्यक योद्धा देखते ही रह गये और युद्धस्थलमें एकमात्र रथकी सहायतासे अर्जुनने मेरे इन सहस्रों योद्धाओं तथा सिंधुराज जयद्रथको भी मार डाला । यह कैसे सम्भव हुआ ॥

अद्य मे भ्रातरः क्षीणाश्चित्रसेनादयो रणे ।
भीमसेनं समासाद्य पश्यतां नो दुरात्मनाम् ॥ १४ ॥

'आज युद्धमें हम दुरात्माओंके देखते-देखते मेरे चित्रसेन आदि भाई भीमसेनसे भिड़कर नष्ट हो गये' ॥ १४ ॥

कर्ण उवाच

आचार्यं मा विगर्हस्व शक्त्यासौ युध्यते द्विजः ।
यथाबलं यथोत्साहं त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ १५ ॥

कर्ण बोला—भाई ! तुम आचार्यकी निन्दा न करो । वह ब्राह्मण तो अपने बल, शक्ति और उत्साहके अनुसार प्राणोंका भी मोह छोड़कर युद्ध करता ही है ॥ १५ ॥

यद्येनं समतिक्रम्य प्रविष्टः श्वेतवाहनः ।
नात्र सूक्ष्मोऽपि दोषः स्यादाचार्यस्य कथंचन ॥ १६ ॥

यदि श्वेतवाहन अर्जुन आचार्य द्रोणका उल्लङ्घन करके सेनामें घुस गये तो इसमें किसी प्रकार आचार्यका कोई सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म दोष नहीं है ॥ १६ ॥

कृती दक्षो युवा शूरः कृतास्त्रो लघुविक्रमः ।
दिव्यास्त्रयुक्तमास्थाय रथं वानरलक्षणम् ॥ १७ ॥

कृष्णेन च गृहीताश्वमभेद्यकवचावृतः ।
गाण्डीवमजरं दिव्यं धनुरादाय वीर्यवान् ॥ १८ ॥
प्रवर्षन् निशितान् बाणान् बाहुद्रविणदर्पितः ।
यदर्जुनोऽभ्ययाद् द्रोणमुपपन्नं हि तस्य तत् ॥ १९ ॥

अर्जुन अस्त्रविद्याके विद्वान्, दक्ष, युवावस्थासे सम्पन्न, शूरवीर, अनेक दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता और शीघ्रतापूर्वक पराक्रम प्रकट करनेवाले हैं । वे दिव्यास्त्रोंसे सम्पन्न एवं वानरध्वजसे उपलक्षित रथपर बैठे हुए थे । श्रीकृष्णने उनके घोड़ोंकी बागडोर ले रक्खी थी । वे अभेद्य कवचसे सुरक्षित थे । उन्हें अपने बाहुबलका अभिमान है ही । ऐसी दशामें पराक्रमी अर्जुन कभी जीर्ण न होनेवाले दिव्य गाण्डीव धनुषको लेकर तीखे बाणोंकी वर्षा करते हुए यदि वहाँ आचार्य द्रोणको लाँघ गये तो वह उनके योग्य ही कर्म था ॥ १७–१९ ॥

आचार्यः स्थविरो राजञ्शीघ्रयाने तथाक्षमः ।
बाहुव्यायामचेष्टायामशक्तस्तु नराधिप ॥ २० ॥

राजन् ! नरेश्वर ! आचार्य द्रोण अब बूढ़े हुए । वे शीघ्रतापूर्वक चलनेमें भी असमर्थ हैं । भुजाओंद्वारा परिश्रमपूर्वक की जानेवाली प्रत्येक चेष्टामें अब उनकी शक्ति उतनी काम नहीं देती है ॥ २० ॥

तेनैवमभ्यतिक्रान्तः श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ।
तस्य दोषं न पश्यामि द्रोणस्यानेन हेतुना ॥ २१ ॥

इसीलिये श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं, वे श्वेतवाहन अर्जुन द्रोणाचार्यको लाँघ गये । यही कारण है कि मैं इसमें द्रोणाचार्यका दोष नहीं देख रहा हूँ ॥ २१ ॥

अजय्यान् पाण्डवान् मन्ये द्रोणेनास्त्रविदा मृधे ।
तथा ह्येनमतिक्रम्य प्रविष्टः श्वेतवाहनः ॥ २२ ॥

मैं तो ऐसा मानता हूँ कि अस्त्रवेत्ता होनेपर भी द्रोण युद्धमें पाण्डवोंको नहीं जीत सकते, तभी तो उन्हें लाँघकर श्वेतवाहन अर्जुन व्यूहमें घुस गये ॥ २२ ॥

दैवादिष्टेऽन्यथाभावो न मन्ये विद्यते क्वचित् ।
यतो नो युध्यमानानां परं शक्त्या सुयोधन ॥ २३ ॥
सैन्धवो निहतो युद्धे दैवमत्र परं स्मृतम् ।

सुयोधन ! दैवके विधानमें कहीं कोई उलट-फेर नहीं हो सकता, यह मेरी मान्यता है; क्योंकि हमलोग सम्पूर्ण शक्ति लगाकर युद्ध कर रहे थे, तो भी रणभूमिमें सिंधुराज मारे गये । इस विषयमें दैव (प्रारब्ध) को ही प्रधान माना गया है ॥ २३½ ॥

परं यत्नं कुर्वतां च त्वया सार्धं रणाजिरे ॥ २४ ॥
हत्वास्माकं पौरुषं वै दैवं पश्चात् करोति नः ।
सततं चेष्टमानानां निकृत्या विक्रमेण च ॥ २५ ॥

समराङ्गणमें तुम्हारे साथ हमलोग भी विजयके लिये

महान् प्रयत्न करते हैं, छल-कपट तथा पराक्रमद्वारा भी सदा विजयकी चेष्टामें लगे रहते हैं, तो भी दैव हमारे पुरुषार्थको नष्ट करके हमें पीछे ढकेल देता है ॥ २४-२५ ॥

दैवोपसृष्टः पुरुषो यत् कर्म कुरुते क्वचित् ।
कृतं कृतं हि तत्कर्म दैवेन विनिपात्यते ॥ २६ ॥

दैव या दुर्भाग्यका मारा हुआ पुरुष कहीं जो भी कर्म करता है, उसके किये हुए प्रत्येक कर्मको दैव उलट देता है ॥ २६ ॥

यत् कर्तव्यं मनुष्येण व्यवसायवता सदा ।
तत् कार्यमविशङ्केन सिद्धिर्दैवे प्रतिष्ठिता ॥ २७ ॥

मनुष्यको सदा उद्योगशील होकर निःशङ्कभावसे अपने कर्तव्यका पालन करना चाहिये; परंतु उसकी सिद्धि दैवके ही अधीन है ॥ २७ ॥

निकृत्या वञ्चिताः पार्था विषयोगैश्च भारत ।
दग्धा जतुगृहे चापि द्यूतेन च पराजिताः ॥ २८ ॥
राजनीतिं व्यपाश्रित्य प्रहिताश्चैव काननम् ।
यत्नेन च कृतं तत्तद् दैवेन विनिपातितम् ॥ २९ ॥

भारत ! हमलोगोंने कपट करके कुन्तीकुमारोंको छला, उन्हें मारनेके लिये विषका प्रयोग किया, लाक्षागृहमें जलाया, जूएमें हराया और राजनीतिका सहारा लेकर उन्हें वनमें भी भेजा । इस प्रकार प्रयत्नपूर्वक किये हुए हमारे उन सभी कार्योंको दैवने नष्ट कर दिया ॥ २८-२९ ॥

युध्यस्व यत्नमास्थाय दैवं कृत्वा निरर्थकम् ।
यततस्तव तेषां च दैवं मार्गेण यास्यति ॥ ३० ॥

फिर भी तुम दैवको व्यर्थ समझकर प्रयत्नपूर्वक युद्ध करो । तुम्हारे और पाण्डवोंके अपनी-अपनी विजयके लिये प्रयत्न करते रहनेपर दैव अपने गन्तव्य मार्गसे जाता रहेगा ॥ ३० ॥

न तेषां मतिपूर्वं हि सुकृतं दृश्यते क्वचित् ।
दुष्कृतं तव वा वीर बुद्ध्या हीनं कुरूद्वह ॥ ३१ ॥

वीर कुरुश्रेष्ठ ! मुझे तो पाण्डवोंका बुद्धिपूर्वक किया हुआ कहीं कोई सुकृत नहीं दिखायी देता अथवा तुम्हारा बुद्धिहीनतापूर्वक किया हुआ कोई दुष्कृत भी देखनेमें नहीं आता ॥ ३१ ॥

दैवं प्रमाणं सर्वस्य सुकृतस्येतरस्य वा ।
अनन्यकर्म दैवं हि जागर्ति स्वपतामपि ॥ ३२ ॥

सुकृत हो या दुष्कृत, सबपर दैवका ही अधिकार है; वही उसका फल देनेवाला है । अपना ही पूर्वकृत कर्म दैव है, जो मनुष्योंके सो जानेपर भी जागता रहता है ॥ ३२ ॥

बहूनि तव सैन्यानि योधाश्च बहवस्तव ।
न तथा पाण्डुपुत्राणामेवं युद्धमवर्तत ॥ ३३ ॥

पहले तुम्हारे पास बहुत-सी सेनाएँ और बहुत-से योद्धा थे । पाण्डवोंके पास उतने सैनिक नहीं थे । इस अवस्थामें युद्ध आरम्भ हुआ था ॥ ३३ ॥

तैरल्पैर्बहवो यूयं क्षयं नीताः प्रहारिणः ।
शङ्के दैवस्य तत् कर्म पौरुषं येन नाशितम् ॥ ३४ ॥

तथापि उन अल्पसंख्यकोंने तुम बहुसंख्यक योद्धाओंको क्षीण कर दिया । मैं समझता हूँ, वह दैवका ही कर्म है; जिसने तुम्हारे पुरुषार्थका नाश कर दिया है ॥ ३४ ॥

संजय उवाच

एवं सम्भाषमाणानां बहु तत् तज्जनाधिप ।
पाण्डवानामनीकानि समदृश्यन्त संयुगे ॥ ३५ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार जब कर्ण और दुर्योधन परस्पर बहुत-सी बातें कर रहे थे, उसी समय युद्धस्थलमें पाण्डवोंकी सेनाएँ दिखायी दीं ॥ ३५ ॥

ततः प्रववृते युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम् ।
तावकानां परैः सार्धं राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ ३६ ॥

राजन् ! तदनन्तर आपकी कुमन्त्रणाके अनुसार आपके पुत्रोंका शत्रुओंके साथ घोर युद्ध छिड़ गया, जिसमें रथसे रथ और हाथीसे हाथी भिड़ गये थे ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि पुनर्युद्धारम्भे द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें पुनः युद्धारम्भविषयक एक सौ बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५२ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ४ श्लोक मिलाकर कुल ४० श्लोक हैं)

(घटोत्कचवधपर्व)

त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

कौरव-पाण्डव-सेनाका युद्ध, दुर्योधन और युधिष्ठिरका संग्राम तथा दुर्योधनकी पराजय

संजय उवाच

तदुदीर्णं गजानीकं बलं तव जनाधिप ।
पाण्डुसेनामतिक्रम्य योधयामास सर्वतः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—जनेश्वर ! आपकी प्रचण्ड गजसेना पाण्डवसेनाका उल्लङ्घन करके सब ओर फैलकर युद्ध करने लगी ॥ १ ॥

पञ्चालाः कुरवश्चैव योधयन्तः परस्परम् ।
यमराष्ट्राय महते परलोकाय दीक्षिताः ॥ २ ॥

पाञ्चाल और कौरव योद्धा महान् यमराज्य एवं परलोककी दीक्षा लेकर परस्पर युद्ध करने लगे ॥ २ ॥

शूराः शूरैः समागम्य शरतोमरशक्तिभिः ।
विव्यधुः समरेऽन्योन्यं निन्युश्चैव यमक्षयम् ॥ ३ ॥

एक पक्षके शूरवीर दूसरे पक्षके शूरवीरोंसे भिड़कर बाण, तोमर और शक्तियोंसे समरभूमिमें एक दूसरेको चोट पहुँचाने और यमलोक भेजने लगे ॥ ३ ॥

रथिनां रथिभिः सार्धं रुधिरस्रावदारुणम् ।
प्रावर्तत महद् युद्धं निघ्नतामितरेतरम् ॥ ४ ॥

परस्पर प्रहार करनेवाले रथियोंका रथियोंके साथ महान् युद्ध होने लगा, जो खूनकी धारा बहानेके कारण अत्यन्त भयंकर जान पड़ता था ॥ ४ ॥

वारणाश्च महाराज समासाद्य परस्परम् ।
विषाणैर्दारयामासुः सुसंक्रुद्धा मदोत्कटाः ॥ ५ ॥

महाराज ! अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए मदमत्त हाथी परस्पर भिड़कर दाँतोंके प्रहारसे एक-दूसरेको विदीर्ण करने लगे॥

हयारोहान् हयारोहाः प्रासशक्तिपरश्वधैः ।
बिभिदुस्तुमुले युद्धे प्रार्थयन्तो महद् यशः ॥ ६ ॥

उस भयंकर युद्धमें महान् यशकी अभिलाषा रखते हुए घुड़सवार घुड़सवारोंको प्रास, शक्ति और फरसोंद्वारा घायल कर रहे थे ॥ ६ ॥

पत्तयश्च महाबाहो शतशः शस्त्रपाणयः ।
अन्योन्यमार्दयन् राजन् नित्यं यत्ताः पराक्रमे ॥ ७ ॥

राजन् ! हाथोंमें शस्त्र लिये सैकड़ों पैदल सैनिक सदा पराक्रमके लिये प्रयत्नशील हो एक दूसरेपर चोट कर रहे थे ॥

गोत्राणां नामधेयानां कुलानां चैव मारिष ।
श्रवणाद्धि विजानीमः पञ्चालान् कुरुभिः सह ॥ ८ ॥

आर्य ! नाम, गोत्र और कुलोंका परिचय सुनकर ही हमलोग उस समय कौरवोंके साथ युद्ध करनेवाले पाञ्चालोंको पहचान पाते थे ॥ ८ ॥

तेऽन्योन्यं समरे योधाः शरशक्तिपरश्वधैः ।
प्रेषयन् परलोकाय विचरन्तो ह्यभीतवत् ॥ ९ ॥

उस समराङ्गणमें वे समस्त योद्धा निर्भय-से विचरते हुए बाण, शक्ति और फरसोंकी मारसे एक दूसरेको परलोक भेज रहे थे ॥ ९ ॥

शरा दश दिशो राजंस्तेषां मुक्ताः सहस्रशः ।
न भ्राजन्ते यथातत्त्वं भास्करेऽस्तंगतेऽपि च ॥ १० ॥

राजन् ! सूर्यास्त हो जानेके कारण उन योद्धाओंके छोड़े हुए सहस्रों बाण दसों दिशाओंमें फैलकर अच्छी तरह प्रकाशित नहीं हो पाते थे ॥ १० ॥

तथा प्रयुध्यमानेषु पाण्डवेयेषु भारत ।
दुर्योधनो महाराज व्यवागाहत तद् बलम् ॥ ११ ॥

भरतवंशी महाराज ! जब इस प्रकार पाण्डव-सैनिक युद्ध कर रहे थे, उस समय दुर्योधनने उस सेनामें प्रवेश किया॥

सैन्धवस्य वधेनैव भृशं दुःखसमन्वितः ।
मर्तव्यमिति संचिन्त्य प्राविशच्च द्विषद्बलम् ॥ १२ ॥

वह सिंधुराजके वधसे बहुत दुखी हो गया था । अतः मरनेका ही निश्चय करके उसने शत्रुओंकी सेनामें प्रवेश किया॥

नादयन् रथघोषेण कम्पयन्निव मेदिनीम् ।
अभ्यवर्तत पुत्रस्ते पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ १३ ॥

अपने रथकी घरघराहटसे दिशाओंको प्रतिध्वनित करता और पृथ्वीको कँपाता हुआ-सा आपका पुत्र पाण्डवसेनाके सम्मुख आया ॥ १३ ॥

स संनिपातस्तुमुलस्तस्य तेषां च भारत ।
अभवत् सर्वसैन्यानामभावकरणो महान् ॥ १४ ॥

भारत ! पाण्डव सैनिकों तथा दुर्योधनका वह भयंकर संग्राम समस्त सेनाओंका महान् विनाश करनेवाला था॥१४॥

(धृतराष्ट्र उवाच

द्रोणः कर्णः कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ।
नावारयन् कथं युद्धे राजानं राजकाङ्क्षिणः ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—द्रोण, कर्ण, कृप तथा सात्वतवंशी कृतवर्मा—ये तो राजाके चाहनेवालोंमेंसे हैं, इन्होंने उसे युद्धमें जानेसे रोका क्यों नहीं ? ॥

सर्वोपायैर्हि युद्धेषु रक्षितव्यो महीपतिः ।
एषा नीतिः परा युद्धे दृष्टा तत्र महर्षिभिः ॥

युद्धमें सभी उपायोंसे राजाकी रक्षा करनी चाहिये । महर्षियोंने युद्धविषयक इसी सर्वोत्तम नीतिका साक्षात्कार किया है ॥

प्रविष्टे वा मम सुते परेषां वै महद् बलम् ।
मामका रथिनां श्रेष्ठाः किमकुर्वत संजय ॥

संजय ! जब मेरा पुत्र शत्रुओंकी विशाल सेनामें घुस गया, उस समय मेरे पक्षके श्रेष्ठ रथियोंने क्या किया ? ॥

संजय उवाच

राजन् संग्राममाश्चर्यं पुत्रस्य तव भारत ।
एकस्य च बहूनां च शृणु मे ब्रुवतोऽद्भुतम् ॥

संजयने कहा—भरतवंशी नरेश ! आपके पुत्रके आश्चर्यजनक एवं अद्भुत संग्रामका, जो एकका बहुत-से योद्धाओंके साथ हुआ था, वर्णन करता हूँ, सुनिये ॥

द्रोणेन वार्यमाणोऽसौ कर्णेन च कृपेण च ।
प्राविशत् पाण्डवीं सेनां मकराः सागरं यथा ॥

द्रोणाचार्य, कर्ण और कृपाचार्यके मना करनेपर भी जैसे मगर समुद्रमें प्रवेश करता है, उसी प्रकार दुर्योधन पाण्डवसेनामें घुस गया था ॥

किरन्निषुसहस्राणि तत्र तत्र तदा तदा ।
पञ्चालान् पाण्डवांश्चैव विव्याध निशितैः शरैः ॥

जहाँ-तहाँ सब ओर सहस्रों बाणोंकी वर्षा करते हुए उसने तीखे बाणोंद्वारा पाञ्चालों और पाण्डवोंको घायल कर दिया ॥

यथोद्यन् विततं सूर्यो रश्मिभिर्नाशयेत् तमः ।
तथा पुत्रस्तव बलं नाशयत् तन्महाबलः ॥)

जैसे उदयकालका सूर्य अपनी किरणोंद्वारा सर्वत्र फैले हुए अंधकारका नाश कर देता है, उसी प्रकार आपके महाबली पुत्रने शत्रुसेनाका विनाश कर दिया ॥

यथा मध्यंदिने सूर्यं प्रतपन्तं गभस्तिभिः ।
तथा तव सुतं मध्ये प्रतपन्तं शरार्चिभिः ॥ १५ ॥
न शेकुर्भ्रातरं युद्धे पाण्डवाः समुदीक्षितुम् ।

जैसे अपनी किरणोंसे तपते हुए दोपहरके सूर्यकी ओर कोई देख नहीं पाता, उसी प्रकार अपने बाणोंकी ज्वालाओंसे शत्रुओंको संताप देते हुए सेनाके मध्यभागमें खड़े आपके पुत्र एवं अपने भाई दुर्योधनकी ओर उस युद्धस्थलमें पाण्डव देख नहीं पाते थे ॥ १५½ ॥

पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ॥ १६ ॥
पर्यधावन्त पञ्चाला वध्यमाना महात्मना ।

महामनस्वी दुर्योधनकी मार खाकर पाञ्चाल सैनिक इधर-उधर भागने लगे। अब वे पलायन करनेमें ही उत्साह दिखा रहे थे। उनमें शत्रुओंको जीतनेका उत्साह नहीं रह गया था ॥ १६½ ॥

रुक्मपुङ्खैः प्रसन्नाग्रैस्तव पुत्रेण धन्विना ॥ १७ ॥
अर्द्यमानाः शरैस्तूर्णं न्यपतन् पाण्डुसैनिकाः ।

आपके धनुर्धर पुत्रके द्वारा चलाये हुए सुवर्णमय पंख तथा चमकती हुई धारवाले बाणोंसे पीड़ित होकर बहुतेरे पाण्डव सैनिक तुरंत धराशायी हो गये ॥ १७½ ॥

न तादृशं रणे कर्म कृतवन्तस्तु तावकाः ॥ १८ ॥
यादृशं कृतवान् राजा पुत्रस्तव विशाम्पते ।

प्रजानाथ ! आपके सैनिकोंने रणभूमिमें वैसा पराक्रम नहीं किया था, जैसा कि आपके पुत्र राजा दुर्योधनने किया॥

पुत्रेण तव सा सेना पाण्डवी मथिता रणे ॥ १९ ॥
नलिनी द्विरदेनेव समन्तात् फुल्लपङ्कजा ।

जैसे हाथी सब ओरसे खिले हुए कमलपुष्पोंसे सुशोभित पोखरेको मथ डालता है, उसी प्रकार आपके पुत्रने रणभूमिमें पाण्डव-सेनाको मथ डाला ॥ १९½ ॥

क्षीणतोयानिलार्काभ्यां हतत्विडिव पद्मिनी ॥ २० ॥
बभूव पाण्डवी सेना तव पुत्रस्य तेजसा ।

जैसे हवा और सूर्यसे पानी सूख जानेके कारण पद्मिनी हतप्रभ हो जाती है, उसी प्रकार आपके पुत्रके तेजसे तप्त होकर पाण्डव-सेना श्रीहीन हो गयी थी ॥ २०½ ॥

पाण्डुसेनां हतां दृष्ट्वा तव पुत्रेण भारत ॥ २१ ॥
भीमसेनपुरोगास्तु पञ्चालाः समुपाद्रवन् ।

भारत ! आपके पुत्रद्वारा पाण्डवसेनाको मारी गयी देख पाञ्चालोंने भीमसेनको अगुआ बनाकर उसपर आक्रमण किया ॥ २१½ ॥

स भीमसेनं दशभिर्माद्रीपुत्रौ त्रिभिस्त्रिभिः ॥ २२ ॥
विराटद्रुपदौ षड्भिः शतेन च शिखण्डिनम् ।
धृष्टद्युम्नं च सप्तत्या धर्मपुत्रं च सप्तभिः ॥ २३ ॥
केकयांश्चैव चेदींश्च बहुभिर्निशितैः शरैः ।

उस समय दुर्योधनने भीमसेनको दस, माद्रीकुमारोंको तीन-तीन, विराट और द्रुपदको छः-छः, शिखण्डीको सौ, धृष्टद्युम्नको सत्तर, धर्मपुत्र युधिष्ठिरको सात और केकय तथा चेदिदेशके सैनिकोंको बहुत-से तीखे बाण मारे ॥२२-२३½॥

सात्वतं पञ्चभिर्विद्ध्वा द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥२४॥
घटोत्कचं च समरे विद्ध्वा सिंह इवानदत् ।

फिर सात्यकिको पाँच बाणोंसे घायल करके द्रौपदीपुत्रोंको तीन-तीन बाण मारे। तत्पश्चात् समरभूमिमें घटोत्कचको घायल करके दुर्योधनने सिंहके समान गर्जना की॥२४½॥

शतशश्चापरान् योधान् सद्विपांश्च महारणे ॥ २५ ॥
शरैरवचकर्तोग्रैः क्रुद्धोऽन्तक इव प्रजाः ।

उस महायुद्धमें हाथियोंसहित सैकड़ों दूसरे योद्धाओंको क्रोधमें भरे हुए दुर्योधनने अपने भयंकर बाणोंद्वारा उसी प्रकार काट डाला, जैसे यमराज प्रजाका विनाश करते हैं॥

सा तेन पाण्डवी सेना वध्यमाना शिलीमुखैः ॥ २६ ॥
तव पुत्रेण संग्रामे विदुद्राव नराधिप ।

नरेश्वर ! उस संग्राममें आपके पुत्रके चलाये हुए बाणोंकी मार खाकर पाण्डव-सेना इधर-उधर भागने लगी॥२६½॥

तं तपन्तमिवादित्यं कुरुराजं महाहवे ॥ २७ ॥
नाशकन् वीक्षितुं राजन् पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ।

राजन् ! उस महासमरमें तपते हुए सूर्यके समान कुरुराज दुर्योधनकी ओर पाण्डवसैनिक देख भी न सके ॥२७½॥

ततो युधिष्ठिरो राजा कुपितो राजसत्तम ॥ २८ ॥
अभ्यधावत् कुरुपतिं तव पुत्रं जिघांसया ।

नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए राजा युधिष्ठिर आपके पुत्र कुरुराज दुर्योधनको मार डालनेकी इच्छासे उसकी ओर दौड़े ॥ २८½ ॥

तावुभौ युधि कौरव्यौ समीयतुररिंदमौ ॥ २९ ॥
स्वार्थहेतोः पराक्रान्तौ दुर्योधनयुधिष्ठिरौ ।

शत्रुओंका दमन करनेवाले वे दोनों कुरुवंशी वीर दुर्योधन

और युधिष्ठिर अपने-अपने स्वार्थके लिये युद्धमें पराक्रम प्रकट करते हुए एक दूसरेसे भिड़ गये ॥ २९½ ॥

ततो दुर्योधनः क्रुद्धः शरैः संनतपर्वभिः ॥ ३० ॥
विव्याध दशभिस्तूर्णं ध्वजं चिच्छेद चेषुणा ।

तब दुर्योधनने कुपित होकर झुकी हुई गाँठवाले दस बाणोंद्वारा तुरंत ही युधिष्ठिरको घायल कर दिया और एक बाणसे उनका ध्वज भी काट डाला ॥ ३०½ ॥

इन्द्रसेनं त्रिभिश्चैव ललाटे जघ्निवान् नृप ॥ ३१ ॥
सारथिं दयितं राज्ञः पाण्डवस्य महात्मनः ।

नरेश्वर ! उन्होंने तीन बाणोंद्वारा महात्मा पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरके प्रिय सारथि इन्द्रसेनको उसके ललाटप्रदेशमें चोट पहुँचायी ॥ ३१½ ॥

धनुश्च पुनरन्येन चकर्तास्य महारथः ॥ ३२ ॥
चतुर्भिश्चतुरश्चैव बाणैर्विव्याध वाजिनः ।

फिर दूसरे बाणसे महारथी दुर्योधनने राजा युधिष्ठिरका धनुष भी काट दिया और चार बाणोंसे उनके चारों घोड़ोंको बींध डाला ॥ ३२½ ॥

ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धो निमेषादिव कार्मुकम् ॥ ३३ ॥
अन्यदादाय वेगेन कौरवं प्रत्यवारयत् ।

तब राजा युधिष्ठिरने कुपित हो पलक मारते-मारते दूसरा धनुष हाथमें ले लिया और बड़े वेगसे कुरुवंशी दुर्योधनको रोका ॥ ३३½ ॥

तस्य तान् निघ्नतः शत्रून् रुक्मपृष्ठं महद् धनुः ॥ ३४ ॥
भल्लाभ्यां पाण्डवो ज्येष्ठस्त्रिधा चिच्छेद मारिष ।

माननीय नरेश ! ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिरने दो भल्ल मारकर शत्रुओंके संहारमें लगे हुए दुर्योधनके सुवर्णमय पृष्ठवाले विशाल धनुषके तीन टुकड़े कर डाले ॥ ३४½ ॥

विव्याध चैनं दशभिः सम्यगस्तैः शितैः शरैः ॥ ३५ ॥
मर्म भित्त्वा तु ते सर्वे संलग्नाः क्षितिमाविशन् ।

साथ ही, उन्होंने अच्छी तरह चलाये हुए दस पैने बाणोंसे दुर्योधनको भी घायल कर दिया। वे सारे बाण दुर्योधनके मर्मस्थानोंमें लगकर उन्हें विदीर्ण करते हुए पृथ्वीमें समा गये।३५½

ततः परिवृता योधाः परिवव्रुर्युधिष्ठिरम् ॥ ३६ ॥
वृत्रहत्यै यथा देवाः परिवव्रुः पुरंदरम् ।

फिर तो भागे हुए पाण्डव-योद्धा लौट आये और युधिष्ठिरको, वैसे ही घेरकर खड़े हो गये, जैसे वृत्रासुरके वधके लिये सब देवता इन्द्रको घेरकर खड़े हुए थे ॥३६½॥

ततो युधिष्ठिरो राजा तव पुत्रस्य मारिष ।
शरं च सूर्यरश्म्याभमत्युग्रमनिवारणम् ॥ ३७ ॥
हा हतोऽसीति राजानमुक्त्वामुञ्चद् युधिष्ठिरः ।

आर्य ! तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने आपके पुत्र राजा दुर्योधनपर सूर्यकिरणोंके समान तेजस्वी, अत्यन्त भयंकर तथा अनिवार्य बाण यह कहकर चलाया कि 'हाय ! तुम मारे गये' ॥ ३७½ ॥

स तेनाकर्णमुक्तेन विद्धो बाणेन कौरवः ॥ ३८ ॥
निषसाद रथोपस्थे भृशं सम्मूढचेतनः ।

कानोंतक खींचकर चलाये हुए उस बाणसे घायल हो कुरुवंशी दुर्योधन अत्यन्त मूर्च्छित हो गया और रथके पिछले भागमें धम्मसे बैठ गया ॥ ३८½ ॥

ततः पाञ्चाल्यसेनानां भृशमासीद् रवो महान् ॥ ३९ ॥
हतो राजेति राजेन्द्र मुदितानां समन्ततः ।
बाणशब्दरवश्चोग्रः शुश्रुवे तत्र मारिष ॥ ४० ॥

आदरणीय राजेन्द्र ! उस समय प्रसन्न हुए पाञ्चाल-सैनिकोंने 'राजा दुर्योधन मारा गया' ऐसा कहकर चारों ओर अत्यन्त महान् कोलाहल मचाया। वहाँ बाणोंका भयंकर शब्द भी सुनायी दे रहा था ॥ ३९-४० ॥

अथ द्रोणो द्रुतं तत्र प्रत्यदृश्यत संयुगे ।
हृष्टो दुर्योधनश्चापि दृढमादाय कार्मुकम् ॥ ४१ ॥
तिष्ठ तिष्ठेति राजानं ब्रुवन् पाण्डवमभ्ययात् ।

तत्पश्चात् तुरंत ही वहाँ युद्ध-स्थलमें द्रोणाचार्य दिखायी दिये । इधर, राजा दुर्योधनने भी हर्ष और उत्साहमें भरकर सुदृढ धनुष हाथमें ले 'खड़े रहो, खड़े रहो' कहते हुए वहाँ पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरपर आक्रमण किया॥४१½॥

प्रत्युद्ययुस्तं त्वरिताः पञ्चाला जयगृद्धिनः ॥ ४२ ॥
तान् द्रोणः प्रतिजग्राह परीप्सन् कुरुसत्तमम् ।
चण्डवातोद्धुतान् मेघान् निघ्नन् रश्मिमुचो यथा ॥४३॥

यह देख विजयाभिलाषी पाञ्चाल सैनिक तुरंत ही उसका सामना करनेके लिये आगे बढ़े; परंतु कुरुश्रेष्ठ दुर्योधनकी रक्षाके लिये द्रोणाचार्यने उन सबको उसी तरह नष्ट कर दिया, जैसे प्रचण्ड वायुद्वारा उठाये हुए मेघोंको सूर्यदेव नष्ट कर देते हैं ॥ ४२-४३ ॥

ततो राजन् महानासीत् संग्रामो भूरिवर्धनः ।
तावकानां परेषां च समेतानां युयुत्सया ॥ ४४ ॥

राजन् ! तदनन्तर युद्धकी इच्छासे एकत्र हुए आपके और शत्रुपक्षके सैनिकोंका महान् संग्राम होने लगा, जिसमें बहुसंख्यक प्राणियोंका संहार हुआ ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दुर्योधनपराभवे त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रिकालिक-युद्धके प्रसंगमें दुर्योधनकी पराजयविषयक एक सौ तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ७ श्लोक मिलाकर कुल ५१ श्लोक हैं)

चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

रात्रियुद्धमें पाण्डव-सैनिकोंका द्रोणाचार्यपर आक्रमण और द्रोणाचार्यद्वारा उनका संहार

धृतराष्ट्र उवाच

यत् तदा प्राविशत् पाण्डूनाचार्यः कुपितो बली।
उक्त्वा दुर्योधनं मन्दं मम शास्त्रातिगं सुतम् ॥ १ ॥
प्रविश्य विचरन्तं च रथे शूरमवस्थितम्।
कथं द्रोणं महेष्वासं पाण्डवाः पर्यवारयन् ॥ २ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! मेरी आज्ञाका उल्लंघन करनेवाले मेरे मूर्ख पुत्र दुर्योधनसे पूर्वोक्त बातें कहकर क्रोधमें भरे हुए बलवान् आचार्य द्रोणने जब वहाँ पाण्डव-सेनामें प्रवेश किया, उस समय रथपर बैठकर सेनाके भीतर प्रवेश करके सब ओर विचरते हुए महाधनुर्धर शूरवीर द्रोणाचार्यको पाण्डवोंने किस प्रकार रोका? ॥ १-२ ॥

केऽरक्षन् दक्षिणं चक्रमाचार्यस्य महाहवे।
के चोत्तरमरक्षन्त निघ्नतः शात्रवान् बहून् ॥ ३ ॥

उस महासमरमें बहुसंख्यक शत्रुयोद्धाओंका संहार करनेवाले आचार्य द्रोणके दायें चक्रकी किन लोगोंने रक्षा की तथा किन लोगोंने उनके रथके बायें पहियेकी रखवाली की? ॥ ३ ॥

के चास्य पृष्ठतोऽन्वासन् वीरा वीरस्य योधिनः।
के पुरस्तादवर्तन्त रथिनस्तस्य शत्रवः ॥ ४ ॥

युद्धपरायण वीर रथी आचार्यके पीछे कौन-से वीर थे और शत्रुपक्षके कौन-कौनसे वीर उनके सामने खड़े हुए थे॥ ४ ॥

मन्ये तानस्पृशच्छीतमतिवेलमनार्तवम्।
मन्ये ते समवेपन्त गावो वै शिशिरे यथा ॥ ५ ॥

मैं तो समझता हूँ शत्रुओंको बहुत देरतक बिना मौसमके ही सर्दी लगने लगी होगी। जैसे शिशिर ऋतुमें गायें सर्दीके मारे काँपने लगती हैं, उसी तरह वे शत्रुसैनिक भी आचार्यके भयसे थर-थर काँपने लगे होंगे ॥ ५ ॥

यत्प्राविशन्महेष्वासः पञ्चालानपराजितः।
नृत्यन् स रथमार्गेषु सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ६ ॥

क्योंकि किसीसे परास्त न होनेवाले, सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाधनुर्धर द्रोणाचार्यने पाञ्चालोंकी सेनामें रथके मार्गोंपर नृत्य-सा करते हुए प्रवेश किया था ॥ ६ ॥

निर्दहन् सर्वसैन्यानि पञ्चालानां रथर्षभः।
धूमकेतुरिव क्रुद्धः कथं मृत्युमुपेयिवान् ॥ ७ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोण क्रोधमें भरे हुए धूमकेतुके समान प्रकट होकर पाञ्चालोंकी समस्त सेनाओंको दग्ध कर रहे थे; फिर उनकी मृत्यु कैसे हो गयी? ॥ ७ ॥

संजय उवाच

सायाह्ने सैन्धवं हत्वा राज्ञा पार्थः समेत्य च।
सात्यकिश्च महेष्वासो द्रोणमेवाभ्यधावताम् ॥ ८ ॥

संजयने कहा—राजन्! सायंकाल सिंधुराज जयद्रथका वध करके राजा युधिष्ठिरसे मिलकर कुन्तीकुमार अर्जुन और महाधनुर्धर सात्यकि दोनोंने द्रोणाचार्यपर ही धावा किया ॥ ८ ॥

तथा युधिष्ठिरस्तूर्णं भीमसेनश्च पाण्डवः।
पृथक्चमूभ्यां संयत्तौ द्रोणमेवाभ्यधावताम् ॥ ९ ॥

इसी प्रकार राजा युधिष्ठिर और पाण्डुपुत्र भीमसेनने भी पृथक्-पृथक् सेनाओंके साथ तैयार हो शीघ्रतापूर्वक द्रोणाचार्यपर ही आक्रमण किया ॥ ९ ॥

तथैव नकुलो धीमान् सहदेवश्च दुर्जयः।
धृष्टद्युम्नः सहानीको विराटश्च सकेकयः ॥ १० ॥
मत्स्याः शाल्वाः ससेनाश्च द्रोणमेव ययुर्युधि।

इसी तरह बुद्धिमान् नकुल, दुर्जय वीर सहदेव, सेनासहित धृष्टद्युम्न, राजा विराट, केकयराजकुमार तथा मत्स्य और शाल्वदेशके सैनिक अपनी सेनाओंके साथ युद्धस्थलमें द्रोणाचार्यपर ही चढ़ आये ॥ १०½ ॥

द्रुपदश्च तथा राजा पञ्चालैरभिरक्षितः ॥ ११ ॥
धृष्टद्युम्नपिता राजन् द्रोणमेवाभ्यवर्तत।

राजन्! पाञ्चाल सैनिकोंसे सुरक्षित धृष्टद्युम्न-पिता राजा द्रुपदने भी द्रोणाचार्यका ही सामना किया ॥ ११½ ॥

द्रौपदेया महेष्वासा राक्षसश्च घटोत्कचः ॥ १२ ॥
ससैन्यास्ते न्यवर्तन्त द्रोणमेव महाद्युतिम्।

महाधनुर्धर द्रौपदीकुमार तथा राक्षस घटोत्कच भी अपनी सेनाओंके साथ महातेजस्वी द्रोणाचार्यकी ही ओर लौट आये ॥ १२½ ॥

प्रभद्रकाश्च पञ्चालाः षट्सहस्राः प्रहारिणः ॥ १३ ॥
द्रोणमेवाभ्यवर्तन्त पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्।

प्रहार करनेमें कुशल छः हजार प्रभद्रक और पाञ्चाल योद्धा भी शिखण्डीको आगे करके द्रोणाचार्यपर ही चढ़ आये ॥ १३½ ॥

तथेतरे नरव्याघ्राः पाण्डवानां महारथाः ॥ १४ ॥
सहिताः संन्यवर्तन्त द्रोणमेव द्विजर्षभम्।

इसी प्रकार पाण्डव-सेनाके अन्य महारथी वीर पुरुषसिंह भी एक साथ द्विजश्रेष्ठ द्रोणाचार्यकी ओर ही लौट आये ॥ १४½ ॥

तेषु शूरेषु युद्धाय गतेषु भरतर्षभ ॥ १५ ॥
बभूव रजनी घोरा भीरूणां भयवर्धिनी।

भरतश्रेष्ठ! युद्धके लिये उन शूरवीरोंके आ पहुँचनेपर वह रात बड़ी भयंकर हो गयी, जो भीरु पुरुषोंके भयको बढ़ानेवाली थी ॥ १५½ ॥

योधानामशिवा रौद्रा राजन्नन्तकगामिनी ॥ १६ ॥
कुञ्जराश्वमनुष्याणां प्राणान्तकरणी तदा ।

राजन् ! वह रात्रि समस्त योद्धाओंके लिये अमङ्गलकारक, भयंकर, यमराजके पास ले जानेवाली तथा हाथी, घोड़े और मनुष्योंके प्राणोंका अन्त करनेवाली थी ॥ १६½ ॥

तस्यां रजन्यां घोरायां नदन्त्यः सर्वतः शिवाः ॥ १७ ॥
न्यवेदयन् भयं घोरं सज्वालकवलैर्मुखैः ।

उस घोर रजनीमें सब ओर कोलाहल करती हुई सियारिनें अपने मुँहसे आग उगलती हुई घोर भयकी सूचना दे रही थीं ॥ १७½ ॥

उलूकाश्चाप्यदृश्यन्त शंसन्तो विपुलं भयम् ॥ १८ ॥
विशेषतः कौरवाणां ध्वजिन्यामतिदारुणाः ।

विशेषतः कौरवसेनामें महान् भयकी सूचना देनेवाले अत्यन्त दारुण उल्लू पक्षी भी दिखायी दे रहे थे ॥ १८½ ॥

ततः सैन्येषु राजेन्द्र शब्दः समभवन्महान् ॥ १९ ॥
भेरीशब्देन महता मृदङ्गानां स्वनेन च ।
गजानां बृंहितैश्चापि तुरङ्गाणां च ह्रेषितैः ॥ २० ॥
खुरशब्दनिपातैश्च तुमुलः सर्वतोऽभवत् ।

राजेन्द्र ! तदनन्तर सारी सेनाओंमें रणभेरीकी भारी आवाज, मृदङ्गोंकी ध्वनि, हाथियोंके चिग्घाड़ने, घोड़ोंके हिनहिनाने और धरतीपर उनकी टाप पड़नेसे चारों ओर अत्यन्त भयंकर शब्द गूँजने लगा ॥ १९–२०½ ॥

ततः समभवद् युद्धं संध्यायामतिदारुणम् ॥ २१ ॥
द्रोणस्य च महाराज सृंजयानां च सर्वशः ।

महाराज ! तत्पश्चात् संध्याकालमें समस्त सृंजय-वीरों तथा द्रोणाचार्यका अत्यन्त दारुण संग्राम होने लगा ॥ २१½ ॥

तमसा चावृते लोके न प्राज्ञायत किंचन ॥ २२ ॥
सैन्येन रजसा चैव समन्तादुत्थितेन ह ।

सारा जगत् अंधकारसे तथा सेनाद्वारा सब ओर उड़ायी हुई धूलसे आच्छादित होनेके कारण किसीको कुछ भी ज्ञात नहीं होता था ॥ २२½ ॥

नरस्याश्वस्य नागस्य समसज्जत शोणितम् ॥ २३ ॥
नापश्याम रजो भौमं कश्मलेनाभिसंवृताः ।

मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंके रक्तमें सन जानेके कारण हमें धरतीकी धूल दिखायी नहीं देती थी । हम सब लोगोंपर मोह-सा छा गया था ॥ २३½ ॥

रात्रौ वंशवनस्येव दह्यमानस्य पर्वते ॥ २४ ॥
घोरश्चटचटाशब्दः शस्त्राणां पततामभूत् ।

जैसे पर्वतपर रातके समय बाँसोंका जंगल जल रहा हो और उन बाँसोंके चटखनेका घोर शब्द सुनायी दे रहा हो, उसी प्रकार शस्त्रोंके आघात-प्रत्याघातसे घोर चटचट शब्द कानोंमें पड़ रहा था ॥ २४½ ॥

मृदङ्गानकनिर्ह्रादैर्झर्झरैः पटहैस्तथा ॥ २५ ॥
फेत्कारैर्ह्रेषितैः शब्दैः सर्वमेवाकुलं बभौ ।

मृदङ्ग और ढोलोंकी आवाजसे, झाँझ और पटहोंकी ध्वनिसे तथा हाथी-घोड़ोंके फुंकार और हींसनेके शब्दोंसे वहाँका सब कुछ व्याप्त जान पड़ता था ॥ २५½ ॥

नैव स्वे न परे राजन् प्राज्ञायन्त तमोवृते ॥ २६ ॥
उन्मत्तमिव तत् सर्वं बभूव रजनीमुखे ।

राजन् ! उस अन्धकाराच्छन्न प्रदेशमें अपने और परायेकी पहचान नहीं होती थी । उस प्रदोषकालमें सब कुछ उन्मत्त-सा जान पड़ता था ॥ २६½ ॥

भौमं रजोऽथ राजेन्द्र शोणितेन प्रणाशितम् ॥ २७ ॥
शातकौम्भैश्च कवचैर्भूषणैश्च तमोऽभ्यगात् ।

राजेन्द्र ! रक्तकी धाराने धरतीकी धूलको नष्ट कर दिया । सोनेके कवचों और आभूषणोंकी चमकसे अंधकार दूर हो गया ॥ २७½ ॥

ततः सा भारती सेना मणिहेमविभूषिता ॥ २८ ॥
द्यौरिवासीत् सनक्षत्रा रजन्यां भरतर्षभ ।

भरतश्रेष्ठ ! उस समय रात्रिकालमें मणियों तथा सुवर्णके आभूषणोंसे विभूषित हुई वह कौरवसेना नक्षत्रोंसे युक्त आकाशके समान सुशोभित होती थी ॥ २८½ ॥

गोमायुबलसंघुष्टा शक्तिध्वजसमाकुला ॥ २९ ॥
दारुणाभिरुता घोरा क्ष्वेडितोत्क्रुष्टनादिता ।

उस सेनाके आसपास सियारोंके समूह अपनी भयंकर बोली बोल रहे थे । शक्तियों तथा ध्वजोंसे सारी सेना व्याप्त थी । कहीं हाथी चिग्घाड़ रहे थे, कहीं योद्धा सिंहनाद कर रहे थे और कहीं एक सैनिक दूसरेको पुकारते तथा ललकारते थे । इन शब्दोंसे कोलाहलपूर्ण हुई वह सेना बड़ी भयानक जान पड़ती थी ॥ २९½ ॥

तत्राभवन्महाशब्दस्तुमुलो लोमहर्षणः ॥ ३० ॥
समावृण्वन् दिशः सर्वा महेन्द्राशनिनिःस्वनः ।

थोड़ी देरमें वहाँ रोंगटे खड़े कर देनेवाला अत्यन्त भयंकर महान् शब्द गूँज उठा । ऐसा जान पड़ता था देवराज इन्द्रके वज्रकी गड़गड़ाहट फैल गयी हो । वह शब्द वहाँ सारी दिशाओंमें छा गया था ॥ ३०½ ॥

सा निशीथे महाराज सेनादृश्यत भारती ॥ ३१ ॥
अङ्गदैः कुण्डलैर्निष्कैः शस्त्रैश्चैवावभासिता ।

महाराज ! रातके समय कौरवसेना अपने बाजूबन्द, कुण्डल, सोनेके हार तथा अस्त्र-शस्त्रोंसे प्रकाशित हो रही थी ॥ ३१½ ॥

तत्र नागा रथाश्चैव जाम्बूनदविभूषिताः ॥ ३२ ॥
निशायां प्रत्यदृश्यन्त मेघा इव सविद्युतः ।

वहाँ रात्रिमें सुवर्णभूषित हाथी और रथ बिजलीसहित मेघोंके समान दिखायी दे रहे थे ॥ ३२½ ॥

ऋष्टिशक्तिगदाबाणमुसलप्रासपट्टिशाः ॥ ३३ ॥
सम्पतन्तो व्यदृश्यन्त भ्राजमाना इवाग्नयः ।

वहाँ चारों ओर गिरते हुए ऋष्टि, शक्ति, गदा, बाण मूसल, प्रास और पट्टिश आदि अस्त्र आगके अंगारोंके समान प्रकाशित दिखायी देते थे ॥ ३३½ ॥

दुर्योधनपुरोवातां रथनागबलाहकाम् ॥ ३४ ॥
वादित्रघोषस्तनितां चापविद्युद्ध्वजैर्वृताम् ।
द्रोणपाण्डवपर्जन्यां खड्गशक्तिगदाशनिम् ॥ ३५ ॥
शरधारास्त्रपवनां भृशं शीतोष्णसंकुलाम् ।
घोरां विस्मापनीमुग्रां जीवितच्छिदमप्लवाम् ॥ ३६ ॥
तां प्राविशन्नतिभयां सेनां युद्धचिकीर्षवः ।

युद्ध करनेकी इच्छावाले सैनिकोंने उस अत्यन्त भयंकर सेनामें प्रवेश किया, जो मेघोंकी घटाके समान जान पड़ती थी। दुर्योधन उसके लिये पुरवैया हवाके समान था। रथ और हाथी बादलोंके दल थे। रणवाद्योंकी गम्भीर ध्वनि मेघोंकी गर्जनाके समान जान पड़ती थी। धनुष और ध्वज बिजलीके समान चमक रहे थे। द्रोणाचार्य और पाण्डव पर्जन्यका काम देते थे। खड्ग, शक्ति और गदाका आघात ही वज्रपात था। बाणरूपी जलकी वहाँ वर्षा होती थी। अस्त्र ही पवनके समान प्रतीत होते थे। सर्दी और गर्मीसे व्याप्त हुई वह अत्यन्त भयंकर उग्र सेना सबको विस्मयमें डालनेवाली और योद्धाओंके जीवनका उच्छेद करनेवाली थी। उससे पार होनेके लिये नौकास्वरूप कोई साधन नहीं था ३४-३६½

तस्मिन् रात्रिमुखे घोरे महाशब्दनिनादिते ॥ ३७ ॥
भीरूणां त्रासजनने शूराणां हर्षवर्धने ।

महान् शब्दसे मुखरित एवं भयंकर रात्रिका प्रथम पहर बीत रहा था, जो कायरोंको डरानेवाला और शूरवीरोंका हर्ष बढ़ानेवाला था ॥ ३७½ ॥

रात्रियुद्धे महाघोरे वर्तमाने सुदारुणे ॥ ३८ ॥
द्रोणमभ्यद्रवन् क्रुद्धाः सहिताः पाण्डुसृञ्जयाः ।

जब वह अत्यन्त भयंकर और दारुण रात्रियुद्ध चल रहा था, उस समय क्रोधमें भरे हुए पाण्डवों तथा सृंजयोंने द्रोणाचार्यपर एक साथ धावा किया ॥ ३८½ ॥

ये ये प्रमुखतो राजन्नावर्तन्त महारथाः ॥ ३९ ॥
तान् सर्वान् विमुखांश्चक्रे कांश्चिन्निन्ये यमक्षयम् ।

राजन् ! जो-जो प्रमुख महारथी द्रोणाचार्यके सामने आये, उन सबको उन्होंने युद्धसे विमुख कर दिया और कितनोंको यमलोक पहुँचा दिया ॥ ३९½ ॥

तानि नागसहस्राणि रथानामयुतानि च ॥ ४० ॥
पदातिहयसंघानां प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
द्रोणेनैकेन नाराचैर्निर्भिन्नानि निशामुखे ॥ ४१ ॥

उस प्रदोषकालमें अकेले द्रोणाचार्यने अपने नाराचोंद्वारा एक हजार हाथी, दस हजार रथ तथा लाखों-करोड़ों पैदल एवं घुड़सवार नष्ट कर दिये ॥ ४०-४१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥
इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धविषयक एक सौ चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५४ ॥

पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

द्रोणाचार्यद्वारा शिबिका वध तथा भीमसेनद्वारा घुस्से और थप्पड़से कलिङ्गराजकुमारका एवं ध्रुव, जयरात तथा धृतराष्ट्रपुत्र दुष्कर्ण और दुर्मदका वध

धृतराष्ट्र उवाच

तस्मिन् प्रविष्टे दुर्धर्षे सृञ्जयानमितौजसि ।
अमृष्यमाणे संरब्धे का वोऽभूद् वै मतिस्तदा ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! अमित तेजस्वी दुर्धर्ष वीर आचार्य द्रोणने जब रोष और अमर्षमें भरकर संजयोंकी सेनामें प्रवेश किया, उस समय तुमलोगोंकी मनोवृत्ति कैसी हुई ? ॥ १ ॥

दुर्योधनं तथा पुत्रमुक्त्वा शास्त्रातिगं मम ।
यत् प्राविशदमेयात्मा किं पार्थः प्रत्यपद्यत ॥ २ ॥

गुरुजनोंकी आज्ञाका उल्लंघन करनेवाले मेरे पुत्र दुर्योधनसे पूर्वोक्त बातें कहकर जब अमेय आत्मबलसे सम्पन्न द्रोणाचार्यने शत्रुसेनामें पदार्पण किया, तब कुन्तीकुमार अर्जुनने क्या किया ? ॥ २ ॥

निहते सैन्धवे वीरे भूरिश्रवसि चैव ह ।
यदाभ्यगान्महातेजाः पञ्चालानपराजितः ॥ ३ ॥
किममन्यत दुर्धर्षे प्रविष्टे शत्रुतापने ।
दुर्योधनस्तु किं कृत्यं प्राप्तकालममन्यत ॥ ४ ॥

सिंधुराज जयद्रथ तथा वीर भूरिश्रवाके मारे जानेपर अपराजित वीर महातेजस्वी द्रोणाचार्य जब पाञ्चालोंकी सेनामें घुसे, उस समय शत्रुओंको संताप देनेवाले उन दुर्धर्ष वीरके प्रवेश कर लेनेपर दुर्योधनने उस अवसरके अनुरूप किस कार्यको मान्यता प्रदान की ॥ ३-४ ॥

के च तं वरदं वीरमन्वयुर्द्विजसत्तमम् ।
के चास्य पृष्ठतोऽगच्छन् वीराः शूरस्य युध्यतः ॥ ५ ॥

उन वरदायक वीर विप्रवर द्रोणाचार्यके पीछे-पीछे कौन गये तथा युद्धपरायण शूरवीर आचार्यके पृष्ठभागमें कौन-कौन-से वीर गये ? ॥ ५ ॥

के पुरस्तादवर्तन्त निघ्नन्तः शात्रवान् रणे।
मन्येऽहं पाण्डवान् सर्वान् भारद्वाजशरार्दितान् ॥ ६ ॥
शिशिरे कम्पमाना वै कृशा गाव इव प्रभो।

रणभूमिमें शत्रुओंका संहार करते हुए कौन-कौन-से वीर आचार्यके आगे खड़े थे। प्रभो! मैं तो समझता हूँ, द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीड़ित होकर समस्त पाण्डव शिशिर ऋतुमें दुबली-पतली गायोंके समान थर-थर काँपने लगे होंगे॥

प्रविश्य स महेष्वासः पञ्चालानरिमर्दनः।
कथं नु पुरुषव्याघ्रः पञ्चत्वमुपजग्मिवान् ॥ ७ ॥

शत्रुओंका मर्दन करनेवाले महाधनुर्धर पुरुषसिंह द्रोणाचार्य पाञ्चालोंकी सेनामें प्रवेश करके कैसे मृत्युको प्राप्त हुए? ॥ ७ ॥

सर्वेषु योधेषु च संगतेषु
रात्रौ समेतेषु महारथेषु।
संलोड्यमानेषु पृथग्बलेषु
के वस्तदानीं मतिमन्त आसन् ॥ ८ ॥

रात्रिके समय जब समस्त योद्धा और महारथी एकत्र होकर परस्पर जूझ रहे थे और पृथक्-पृथक् सेनाओंका मन्थन हो रहा था, उस समय तुमलोगोंमेंसे किन-किन बुद्धिमानोंकी बुद्धि ठिकाने रह सकी? ॥ ८ ॥

हतांश्चैव विषक्तांश्च पराभूतांश्च शंससि।
रथिनो विरथांश्चैव कृतान् युद्धेषु मामकान् ॥ ९ ॥

तुम प्रत्येक युद्धमें मेरे रथियोंको हताहत, पराजित तथा रथहीन हुआ बताते हो ॥ ९ ॥

तेषां संलोड्यमानानां पाण्डवैर्हतचेतसाम्।
अन्धे तमसि मग्नानामभवत् का मतिस्तदा ॥ १० ॥

जब पाण्डवोंने उन सबको मथकर अचेत कर दिया और वे घोर अन्धकारमें डूब गये, तब मेरे उन सैनिकोंने क्या विचार किया? ॥ १० ॥

प्रहृष्टांश्चाप्युदग्रांश्च संतुष्टांश्चैव पाण्डवान्।
शंससीहाप्रहृष्टांश्च विप्रद्रुष्टांश्चैव मामकान् ॥ ११ ॥

संजय! तुम पाण्डवोंको तो हर्ष और उत्साहसे युक्त, आगे बढ़नेवाले और संतुष्ट बताते हो और मेरे सैनिकोंको दुखी एवं युद्धसे विमुख बताया करते हो ॥ ११ ॥

कथमेषां तदा तत्र पार्थानामपलायिनाम्।
प्रकाशमभवद् रात्रौ कथं कुरुषु संजय ॥ १२ ॥

सूत! युद्धसे पीछे न हटनेवाले इन कुन्तीकुमारोंके दलमें रातके समय कैसे प्रकाश हुआ और कौरवदलमें भी किस प्रकार उजाला सम्भव हुआ? ॥ १२ ॥

संजय उवाच

रात्रियुद्धे तदा राजन् वर्तमाने सुदारुणे।
द्रोणमभ्यद्रवन् सर्वे पाण्डवाः सह सोमकैः ॥ १३ ॥

संजयने कहा—राजन्! जब वह अत्यन्त दारुण रात्रियुद्ध चलने लगा, उस समय सोमकोंसहित समस्त पाण्डवोंने द्रोणाचार्यपर धावा किया ॥ १३ ॥

ततो द्रोणः केकयांश्च धृष्टद्युम्नस्य चात्मजान्।
सम्प्रैषयत् प्रेतलोकं सर्वानिषुभिराशुगैः ॥ १४ ॥

तदनन्तर द्रोणाचार्यने केकयों और धृष्टद्युम्नके समस्त पुत्रोंको अपने शीघ्रगामी बाणोंद्वारा यमलोक भेज दिया ॥

तस्य प्रमुखतो राजन् येऽवर्तन्त महारथाः।
तान् सर्वान् प्रेषयामास पितृलोकं स भारत ॥ १५ ॥

भरतवंशी नरेश! जो-जो महारथी उनके सामने आये, उन सबको आचार्यने पितृलोकमें भेज दिया ॥ १५ ॥

प्रमथ्नन्तं तदा वीरान् भारद्वाजं महारथम्।
अभ्यवर्तत संक्रुद्धः शिबी राजा प्रतापवान् ॥ १६ ॥

इस प्रकार शत्रुवीरोंका संहार करते हुए महारथी द्रोणाचार्यका सामना करनेके लिये प्रतापी राजा शिबि क्रोधपूर्वक आये ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य पाण्डवानां महारथम्।
विव्याध दशभिर्बाणैः सर्वपारशवैः शितैः ॥ १७ ॥

पाण्डवपक्षके उन महारथी वीरको आते देख आचार्यने सम्पूर्णतः लोहेके बने हुए दस पैने बाणोंसे उन्हें घायल कर दिया ॥ १७ ॥

तं शिबिः प्रतिविव्याध त्रिंशता निशितैः शरैः।
सारथिं चास्य भल्लेन स्मयमानो न्यपातयत् ॥ १८ ॥

तब शिबिने तीस तीखे सायकोंसे बेधकर बदला चुकाया और मुसकराते हुए उन्होंने एक भल्लसे उनके सारथिको मार गिराया ॥ १८ ॥

तस्य द्रोणो हयान् हत्वा सारथिं च महात्मनः।
अथास्य सशिरस्त्राणं शिरः कायादपाहरत् ॥ १९ ॥

यह देख द्रोणाचार्यने भी महामना शिबिके घोड़ोंको मारकर सारथिका भी वध कर दिया। फिर उनके शिरस्त्राणसहित मस्तकको धड़से काट लिया ॥ १९ ॥

ततोऽस्य सारथिं क्षिप्रमन्यं दुर्योधनोऽदिशत्।
स तेन संगृहीताश्वः पुनरभ्यद्रवद् रिपून् ॥ २० ॥

तत्पश्चात् दुर्योधनने द्रोणाचार्यको शीघ्र ही दूसरा सारथि दे दिया। जब उस नये सारथिने उनके घोड़ोंकी बागडोर सँभाली, तब उन्होंने पुनः शत्रुओंपर धावा किया ॥ २० ॥

कलिङ्गानामनीकेन कालिङ्गस्य सुतो रणे।
पूर्वं पितृवधात् क्रुद्धो भीमसेनमुपाद्रवत् ॥ २१ ॥

उस रणभूमिमें कलिंगराजकुमारने कलिंगोंकी सेना साथ लेकर भीमसेनपर आक्रमण किया। भीमसेनने पहले उसके पिताका वध किया था। इससे उनके प्रति उसका क्रोध बढ़ा हुआ था ॥

स भीमं पञ्चभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः।
विशोकं त्रिभिराजघ्ने ध्वजमेकेन पत्त्रिणा ॥ २२ ॥

उसने भीमसेनको पहले पाँच बाणोंसे बेधकर पुनः सात बाणोंसे घायल कर दिया। उनके सारथि विशोकको उसने तीन बाण मारे और एक बाणसे उनकी ध्वजा छेद डाली ॥ २२ ॥

कलिङ्गानां तु तं शूरं क्रुद्धं क्रुद्धो वृकोदरः।
रथाद् रथमभिद्रुत्य मुष्टिनाभिजघान ह ॥ २३ ॥

क्रोधमें भरे हुए कलिंग देशके उस शूरवीरको कुपित हुए भीमसेनने अपने रथसे उसके रथपर कूदकर मुक्केसे मारा ॥ २३ ॥

तस्य मुष्टिहतस्याजौ पाण्डवेन बलीयसा।
सर्वाण्यस्थीनि सहसा प्रापतन् वै पृथक् पृथक् ॥२४॥

युद्धस्थलमें बलवान् पाण्डुपुत्रके मुक्केकी मार खाकर कलिंगराजकी सारी हड्डियाँ सहसा चूर-चूर हो पृथक्-पृथक् गिर गयीं ॥ २४ ॥

तं कर्णो भ्रातरश्चास्य नामृष्यन्त परंतप।
ते भीमसेनं नाराचैर्जघ्नुराशीविषोपमैः ॥ २५ ॥

परंतप! कर्ण और उसके भाई भीमसेनके इस पराक्रमको सहन न कर सके। उन्होंने विषधर सर्पोंके समान विषैले नाराचोंद्वारा भीमसेनको गहरी चोट पहुँचायी ॥ २५ ॥

ततः शत्रुरथं त्यक्त्वा भीमो ध्रुवरथं गतः।
ध्रुवं चास्यन्तमनिशं मुष्टिना समपोथयत् ॥ २६ ॥

तदनन्तर भीमसेन शत्रुके उस रथको त्यागकर दूसरे शत्रु ध्रुवके रथपर जा चढ़े। ध्रुव लगातार बाणोंकी वर्षा कर रहा था। भीमसेनने उसे भी एक मुक्केसे मार गिराया ॥ २६ ॥

स तथा पाण्डुपुत्रेण बलिनाभिहतोऽपतत्।
तं निहत्य महाराज भीमसेनो महाबलः ॥ २७ ॥
जयरातरथं प्राप्य मुहुः सिंह इवानदत्।

बलवान् पाण्डुपुत्रके मुक्केकी चोट लगते ही वह धराशायी हो गया। महाराज! ध्रुवको मारकर महाबली भीमसेन जयरातके रथपर जा पहुँचे और बारंबार सिंहनाद करने लगे ॥ २७½ ॥

जयरातमथाक्षिप्य नदन् सव्येन पाणिना ॥ २८ ॥
तलेन नाशयामास कर्णस्यैवाग्रतः स्थितः।

गर्जना करते हुए ही उन्होंने बायें हाथसे जयरातको झटका देकर उसे थप्पड़से मार डाला। फिर वे कर्णके ही सामने जाकर खड़े हो गये ॥ २८½ ॥

कर्णस्तु पाण्डवे शक्तिं काञ्चनीं समवासृजत् ॥ २९ ॥
ततस्तामेव जग्राह प्रहसन् पाण्डुनन्दनः।

तब कर्णने पाण्डुनन्दन भीमपर सोनेकी बनी हुई शक्तिका प्रहार किया; परंतु पाण्डुनन्दन भीमने हँसते हुए ही उसे हाथसे पकड़ लिया ॥ २९½ ॥

कर्णायैव च दुर्धर्षश्चिक्षेपाजौ वृकोदरः ॥ ३० ॥
तामापतन्तीं चिच्छेद शकुनिस्तैलपायिना।

दुर्धर्ष वीर वृकोदरने उस युद्धस्थलमें कर्णपर ही वह शक्ति चला दी; परंतु शकुनिने कर्णपर आती हुई शक्तिको तेल पीनेवाले बाणसे काट डाला ॥ ३०½ ॥

एतत् कृत्वा महत् कर्म रणेऽद्भुतपराक्रमः ॥ ३१ ॥
पुनः स्वरथमास्थाय दुद्राव तव वाहिनीम्।

अद्भुत पराक्रमी भीमसेन रणभूमिमें यह महान् पराक्रम करके पुनः अपने रथपर आ बैठे और आपकी सेनाको खदेड़ने लगे ॥ ३१½ ॥

तमायान्तं जिघांसन्तं भीमं क्रुद्धमिवान्तकम् ॥ ३२ ॥
न्यवारयन् महाबाहुं तव पुत्रा विशाम्पते।
महता शरवर्षेण च्छादयन्तो महारथाः ॥ ३३ ॥

प्रजानाथ! क्रोधमें भरे हुए यमराजके समान महाबाहु भीमसेनको शत्रुवधकी इच्छासे सामने आते देख आपके महारथी पुत्रोंने बाणोंकी बड़ी भारी वर्षा करके उन्हें आच्छादित करते हुए रोका ॥ ३२-३३ ॥

दुर्मदस्य ततो भीमः प्रहसन्निव संयुगे।
सारथिं च हयांश्चैव शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ ३४ ॥

तब युद्धस्थलमें हँसते हुए-से भीमसेनने दुर्मदके सारथि और घोड़ोंको अपने बाणोंसे मारकर यमलोक पहुँचा दिया ॥

दुर्मदस्तु ततो यानं दुष्कर्णस्यावचक्रमे।
तावेकरथमारूढौ भ्रातरौ परतापनौ ॥ ३५ ॥
संग्रामशिरसो मध्ये भीमं द्वावप्यधावताम्।
यथाम्बुपतिमित्रौ हि तारकं दैत्यसत्तमम् ॥ ३६ ॥

तब दुर्मद दुष्कर्णके रथपर जा बैठा। फिर शत्रुओंको संताप देनेवाले उन दोनों भाइयोंने एक ही रथपर आरूढ़ हो युद्धके मुहानेपर भीमसेनपर धावा किया; ठीक उसी तरह, जैसे वरुण और मित्रने दैत्यराज तारकपर आक्रमण किया था ॥ ३५-३६ ॥

ततस्तु दुर्मदश्चैव दुष्कर्णश्च तवात्मजौ।
रथमेकं समारुह्य भीमं बाणैरविध्यताम् ॥ ३७ ॥

तत्पश्चात् आपके पुत्र दुर्मद (दुधर्ष) और दुष्कर्ण एक ही रथपर बैठकर भीमसेनको बाणोंसे घायल करने लगे ॥

ततः कर्णस्य मिषतो द्रौणेर्दुर्योधनस्य च।
कृपस्य सोमदत्तस्य बाह्लीकस्य च पाण्डवः ॥ ३८ ॥
दुर्मदस्य च वीरस्य दुष्कर्णस्य च तं रथम्।
पादप्रहारेण धरां प्रावेशयदरिंदमः ॥ ३९ ॥

तदनन्तर कर्ण, अश्वत्थामा, दुर्योधन, कृपाचार्य, सोमदत्त और बाह्लीकके देखते-देखते शत्रुदमन पाण्डुपुत्र भीमने वीर दुर्मद और दुष्कर्णके उस रथको लात मारकर धरतीमें धँसा दिया ॥ ३८-३९ ॥

ततः सुतौ ते बलिनौ शूरौ दुष्कर्णदुर्मदौ।
मुष्टिनाऽऽहत्य संक्रुद्धो ममर्द च ननर्द च ॥ ४० ॥

फिर आपके बलवान् एवं शूरवीर पुत्र दुर्मद और दुष्कर्णको क्रोधमें भरे हुए भीमसेनने मुक्केसे मारकर मसल डाला और वे जोर-जोरसे गर्जना करने लगे ॥ ४० ॥

ततो हाहाकृते सैन्ये दृष्ट्वा भीमं नृपाऽब्रुवन्।
रुद्रोऽयं भीमरूपेण धार्तराष्ट्रेषु युध्यति ॥ ४१ ॥

यह देख कौरव-सेनामें हाहाकार मच गया। भीमसेनको देखकर राजालोग कहने लगे 'ये साक्षात् भगवान् रुद्र ही भीमसेनका रूप धारण करके धृतराष्ट्रपुत्रोंके साथ युद्ध कर रहे हैं' ॥ ४१ ॥

एवमुक्त्वा पलायन्ते सर्वे भारत पार्थिवाः।
विसंज्ञा वाहयन् वाहान् न च द्वौ सह धावतः ॥ ४२ ॥

भारत! ऐसा कहकर सब राजा अचेत होकर अपने वाहनोंको हाँकते हुए रणभूमिसे पलायन करने लगे। उस समय दो व्यक्ति एक साथ नहीं भागते थे ॥ ४२ ॥

ततो बले भृशलुलिते निशामुखे
सुपूजितो नृपवृषभैर्वृकोदरः।
महाबलः कमलविबुद्धलोचनो
युधिष्ठिरं नृपतिमपूजयद् बली ॥ ४३ ॥

तदनन्तर रात्रिके प्रथम प्रहरमें जब कौरवसेना अत्यन्त भयभीत हो इधर-उधर भाग गयी, तब श्रेष्ठ राजाओंने विकसित कमलके समान सुन्दर नेत्रोंवाले महाबली भीमसेनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और बलवान् भीमने राजा युधिष्ठिरका समादर किया ॥ ४३ ॥

ततो यमौ द्रुपदविराटकेकया
युधिष्ठिरश्चापि परां मुदं ययुः।
वृकोदरं भृशमनुपूजयंश्च ते
यथान्धके प्रतिनिहते हरं सुराः ॥ ४४ ॥

तत्पश्चात् जैसे अन्धकासुरके मारे जानेपर देवताओंने भगवान् शङ्करका स्तवन और पूजन किया था, उसी प्रकार नकुल, सहदेव, द्रुपद, विराट, केकयराजकुमार तथा युधिष्ठिर भी भीमसेनकी विजयसे बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने वृकोदरकी बड़ी प्रशंसा की ॥ ४४ ॥

ततः सुतास्ते वरुणात्मजोपमा
रुषान्विताः सह गुरुणा महात्मना।
वृकोदरं सरथपदातिकुञ्जरा
युयुत्सवो भृशमभिपर्यवारयन् ॥ ४५ ॥

इसके बाद वरुणपुत्रके समान पराक्रमी आपके सभी पुत्र रोषमें भरकर युद्धकी इच्छासे रथ, पैदल और हाथियोंकी सेना साथ ले महात्मा गुरु द्रोणाचार्यके साथ आये और वेगपूर्वक भीमसेनको सब ओरसे घेरकर खड़े हो गये ॥ ४५ ॥

(ततो यमौ द्रुपदसुताः ससैनिका
युधिष्ठिरद्रुपदविराटसात्वताः।
घटोत्कचो जयविजयौ द्रुमो वृकः
ससृञ्जयास्तव तनयानवारयन् ॥)

यह देख नकुल, सहदेव, सैनिकोंसहित द्रुपदपुत्र, युधिष्ठिर, द्रुपद, विराट, सात्यकि, घटोत्कच, जय, विजय, द्रुम, वृक तथा सृंजय योद्धाओंने आपके पुत्रोंको आगे बढ़नेसे रोका ॥

ततोऽभवत् तिमिरघनैरिवावृते
महाभये भयदमतीव दारुणम्।
निशामुखे वृकबलगृध्रमोदनं
महात्मनां नृपवर युद्धमद्भुतम् ॥ ४६ ॥

नृपश्रेष्ठ! फिर तो घने अन्धकारसे आवृत महाभयंकर प्रदोषकालमें उन महामनस्वी वीरोंका अत्यन्त दारुण, भयदायक तथा भेड़ियों, गीधों और कौवोंको आनन्दित करनेवाला अद्भुत युद्ध होने लगा ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे भीमपराक्रमे पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसंगमें भीमसेनका पराक्रमविषयक एक सौ पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५५ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ४७ श्लोक हैं)

षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सोमदत्त और सात्यकिका युद्ध, सोमदत्तकी पराजय, घटोत्कच और अश्वत्थामाका युद्ध और अश्वत्थामाद्वारा घटोत्कचके पुत्रका, एक अक्षौहिणी राक्षस-सेनाका तथा द्रुपदपुत्रोंका वध एवं पाण्डव-सेनाकी पराजय

संजय उवाच

प्रायोपविष्टे तु हते पुत्रे सात्यकिना तदा।
सोमदत्तो भृशं क्रुद्धः सात्यकिं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! आमरण उपवासका व्रत

लेकर बैठे हुए अपने पुत्र भूरिश्रवाके सात्यकिद्वारा मारे जानेपर उस समय सोमदत्तको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने सात्यकिसे इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

क्षत्रधर्मः पुरा दृष्टो यस्तु देवैर्महात्मभिः।
तं त्वं सात्वत संत्यज्य दस्युधर्मे कथं रतः ॥ २ ॥

'सात्वत ! पूर्वकालमें महात्माओं तथा देवताओंने जिस क्षत्रियधर्मका साक्षात्कार किया है, उसे छोड़कर तुम लुटेरोंके धर्ममें कैसे प्रवृत्त हो गये ? ॥ २ ॥

पराङ्मुखाय दीनाय न्यस्तशस्त्राय सात्यके।
क्षत्रधर्मरतः प्राज्ञः कथं नु प्रहरेद् रणे ॥ ३ ॥

'सात्यके ! जो युद्धसे विमुख एवं दीन होकर हथियार डाल चुका हो, उसपर रणभूमिमें क्षत्रियधर्मपरायण विद्वान् पुरुष कैसे प्रहार कर सकता है ? ॥ ३ ॥

द्वावेव किल वृष्णीनां तत्र ख्यातौ महारथौ।
प्रद्युम्नश्च महाबाहुस्त्वं चैव युधि सात्वत ॥ ४ ॥

'सात्वत ! वृष्णिवंशियोंमें दो ही महारथी युद्धके लिये विख्यात हैं। एक तो महाबाहु प्रद्युम्न और दूसरे तुम ॥

कथं प्रायोपविष्टाय पार्थेन छिन्नबाहवे।
नृशंसं पतनीयं च तादृशं कृतवानसि ॥ ५ ॥

'अर्जुनने जिसकी बाँह काट डाली थी तथा जो आमरण अनशनका निश्चय लेकर बैठा था, उस मेरे पुत्रपर तुमने वैसा पतनकारक क्रूर प्रहार क्यों किया ? ॥ ५ ॥

कर्मणस्तस्य दुर्वृत्त फलं प्राप्नुहि संयुगे।
अद्य च्छेत्स्यामि ते मूढ शिरो विक्रम्य पत्रिणा ॥ ६ ॥

'ओ दुराचारी मूर्ख ! उस पापकर्मका फल तुम इस युद्धस्थलमें ही प्राप्त करो। आज मैं पराक्रम करके एक बाणसे तुम्हारा सिर काट डालूँ' ॥ ६ ॥

शपे सात्वत पुत्राभ्यामिष्टेन सुकृतेन च।
अनतीतामिमां रात्रिं यदि त्वां वीरमानिनम् ॥ ७ ॥
अरक्ष्यमाणं पार्थेन जिष्णुना ससुतानुजम्।
न हन्यां नरके घोरे पतेयं वृष्णिपांसन ॥ ८ ॥

'वृष्णिकुलकलंक सात्वत ! मैं अपने दोनों पुत्रोंकी तथा यज्ञ और पुण्यकर्मोंकी शपथ खाकर कहता हूँ कि यदि आज रात्रि बीतनेके पहले ही कुन्तीपुत्र अर्जुनसे अरक्षित रहनेपर अपनेको वीर माननेवाले तुम्हें पुत्रों और भाइयोंसहित न मार डालूँ तो घोर नरकमें पड़ूँ' ॥ ७-८ ॥

एवमुक्त्वा सुसंक्रुद्धः सोमदत्तो महाबलः।
दध्मौ शङ्खं च तारेण सिंहनादं ननाद च ॥ ९ ॥

ऐसा कहकर महाबली सोमदत्तने अत्यन्त कुपित हो उच्चस्वरसे शङ्ख बजाया और सिंहनाद किया ॥ ९ ॥

ततः कमलपत्राक्षः सिंहदंष्ट्रो दुरासदः।
सात्यकिर्भृशसंक्रुद्धः सोमदत्तमथाब्रवीत् ॥ १० ॥

तब कमलके समान नेत्र और सिंहके सदृश दाँतवाले दुर्धर्ष वीर सात्यकि भी अत्यन्त कुपित हो सोमदत्तसे इस प्रकार बोले—॥ १० ॥

कौरवेय न मे त्रासः कथंचिदपि विद्यते।
त्वया सार्धमथान्यैश्च युध्यतो हृदि कश्चन ॥ ११ ॥

'कौरवेय ! तुम्हारे या किसी दूसरेके साथ युद्ध करते समय मेरे हृदयमें किसी तरह भी कोई भय नहीं होगा ॥ ११ ॥

यदि सर्वेण सैन्येन गुप्तो मां योधयिष्यसि।
तथापि न व्यथा काचित् त्वयि स्यान्मम कौरव ॥ १२ ॥

'कौरव ! यदि सारी सेनासे सुरक्षित होकर तुम मेरे साथ युद्ध करोगे तो भी तुम्हारे कारण मुझे कोई व्यथा नहीं होगी ॥

युद्धसारेण वाक्येन असतां सम्मतेन च।
नाहं भीषयितुं शक्यः क्षत्रवृत्ते स्थितस्त्वया ॥ १३ ॥

'मैं सदा क्षत्रियोचित आचारमें स्थित हूँ। युद्ध ही जिसका सार है तथा दुष्ट पुरुष ही जिसे आदर देते हैं, ऐसे कटुवाक्यसे तुम मुझे डरा नहीं सकते ॥ १३ ॥

यदि तेऽस्ति युयुत्साद्य मया सह नराधिप।
निर्दयो निशितैर्बाणैः प्रहर प्रहरामि ते ॥ १४ ॥

'नरेश्वर ! यदि मेरे साथ तुम्हारी युद्ध करनेकी इच्छा है तो निर्दयतापूर्वक पैने बाणोंद्वारा मुझपर प्रहार करो। मैं भी तुमपर प्रहार करूँगा ॥ १४ ॥

हतो भूरिश्रवा वीरस्तव पुत्रो महारथः।
शलश्चैव महाराज भ्रातृव्यसनकर्षितः ॥ १५ ॥

'महाराज ! तुम्हारा वीर महारथी पुत्र भूरिश्रवा मारा गया। भाईके दुःखसे दुखी होकर शल भी वीरगतिको प्राप्त हुआ है ॥ १५ ॥

त्वां चाप्यद्य वधिष्यामि सहपुत्रं सबान्धवम्।
तिष्ठेदानीं रणे यत्तः कौरवोऽसि महारथः ॥ १६ ॥

'अब पुत्रों और बान्धवोंसहित तुम्हें भी मार डालूँगा। तुम कुरुकुलके महारथी वीर हो। इस समय रणभूमिमें सावधान होकर खड़े रहो ॥ १६ ॥

यस्मिन् दानं दमः शौचमहिंसा ह्रीर्धृतिः क्षमा।
अनपायानि सर्वाणि नित्यं राज्ञि युधिष्ठिरे ॥ १७ ॥
मृदङ्गकेतोस्तस्य त्वं तेजसा निहतः पुरा।
सकर्णसौबलः संख्ये विनाशमुपयास्यसि ॥ १८ ॥

'जिन महाराज युधिष्ठिरमें दान, दम, शौच, अहिंसा, लज्जा, धृति और क्षमा आदि सारे सद्गुण अविनश्वरभावसे सदा विद्यमान रहते हैं, अपनी ध्वजामें मृदङ्गका चिह्न धारण करनेवाले उन्हीं धर्मराजके तेजसे तुम पहले ही मर चुके हो। अतः कर्ण और शकुनिके साथ ही इस युद्धस्थलमें तुम विनाशको प्राप्त होओगे ॥ १७-१८ ॥

शापेऽहं कृष्णचरणैरिष्टापूर्तेन चैव ह।
यदि त्वां ससुतं पापं न हन्यां युधि रोषितः ॥ १९ ॥

'मैं श्रीकृष्णके चरणों तथा अपने इष्टापूर्तकर्मोंकी शपथ खाकर कहता हूँ कि यदि मैं युद्धमें क्रुद्ध होकर तुम-जैसे पापीको पुत्रोंसहित न मार डालूँ तो मुझे उत्तम गति न मिले ॥ १९ ॥

अपयास्यसि चेत्युक्त्वा रणं मुक्तो भविष्यसि।
एवमाभाष्य चान्योन्यं क्रोधसंरक्तलोचनौ ॥ २० ॥
प्रवृत्तौ शरसम्पातं कर्तुं पुरुषसत्तमौ।

'यदि तुम उपर्युक्त बातें कहकर भी युद्ध छोड़कर भाग जाओगे तभी मेरे हाथसे छुटकारा पा सकोगे।' परस्पर ऐसा कहकर क्रोधसे लाल आँखें किये उन दोनों नरश्रेष्ठ वीरोंने एक दूसरेपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ २०½ ॥

ततो रथसहस्रेण नागानामयुतेन च ॥ २१ ॥
दुर्योधनः सोमदत्तं परिवार्य समन्ततः।

तदनन्तर दुर्योधन एक हजार रथों और दस हजार हाथियोंद्वारा सोमदत्तको चारों ओरसे घेरकर उनकी रक्षा करने लगा ॥ २१½ ॥

शकुनिश्च सुसंक्रुद्धः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ २२ ॥
पुत्रपौत्रैः परिवृतो भ्रातृभिश्चेन्द्रविक्रमैः।
स्यालस्तव महाबाहुर्वज्रसंहननो युवा ॥ २३ ॥

समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ और वज्रके समान सुदृढ़ शरीरवाला आपका नवयुवक साला महाबाहु शकुनि भी अत्यन्त कुपित हो इन्द्रके समान पराक्रमी भाइयों तथा पुत्र-पौत्रोंसे घिरकर वहाँ आ पहुँचा ॥ २२-२३ ॥

साग्रं शतसहस्रं तु हयानां तस्य धीमतः।
सोमदत्तं महेष्वासं समन्तात् पर्यरक्षत ॥ २४ ॥

बुद्धिमान् शकुनिके एक लाखसे अधिक घुड़सवार महाधनुर्धर सोमदत्तकी सब ओरसे रक्षा करने लगे ॥ २४ ॥

रक्ष्यमाणश्च बलिभिश्छादयामास सात्यकिम्।
तं छाद्यमानं विशिखैर्दृष्ट्वा संनतपर्वभिः ॥ २५ ॥
धृष्टद्युम्नोऽभ्ययात् क्रुद्धः प्रगृह्य महतीं चमूम्।

बलवान् सहायकोंसे सुरक्षित हो सोमदत्तने अपने बाणोंसे सात्यकिको आच्छादित कर दिया। झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे सात्यकिको आच्छादित होते देख क्रोधमें भरे हुए धृष्टद्युम्न विशाल सेना साथ लेकर वहाँ आ पहुँचे ॥ २५½ ॥

चण्डवाताभिसृष्टानामुदधीनामिव स्वनः ॥ २६ ॥
आसीद् राजन् बलौघानामन्योन्यमभिनिघ्नताम्।

राजन्! उस समय परस्पर प्रहार करनेवाली सेनाओंका कोलाहल प्रचण्ड वायुसे विक्षुब्ध हुए समुद्रोंकी गर्जनाके समान प्रतीत होता था ॥ २६½ ॥

विव्याध सोमदत्तस्तु सात्वतं नवभिः शरैः ॥ २७ ॥
सात्यकिर्नवभिश्चैनमवधीत् कुरुपुङ्गवम्।

सोमदत्तने सात्यकिको नौ बाणोंसे बींध डाला। फिर सात्यकिने भी कुरुश्रेष्ठ सोमदत्तको नौ बाणोंसे घायल कर दिया ॥ २७½ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता समरे दृढधन्विना ॥ २८ ॥
रथोपस्थं समासाद्य मुमोह गतचेतनः।

सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले बलवान् सात्यकिके द्वारा समरभूमिमें अत्यन्त घायल किये जानेपर सोमदत्त रथकी बैठकमें जा बैठे और सुध-बुध खोकर मूर्छित हो गये ॥ २८½ ॥

तं विमूढं समालक्ष्य सारथिस्त्वरया युतः ॥ २९ ॥
अपोवाह रणाद् वीरं सोमदत्तं महारथम्।

तब महारथी वीर सोमदत्तको मूर्छित हुआ देख सारथि बड़ी उतावलीके साथ उन्हें रणभूमिसे दूर हटा ले गया ॥ २९½ ॥

तं विसंज्ञं समालक्ष्य युयुधानशरार्दितम् ॥ ३० ॥
अभ्यद्रवत् ततो द्रोणो यदुवीरजिघांसया।

सोमदत्तको युयुधानके बाणोंसे पीड़ित एवं अचेत हुआ देख द्रोणाचार्य यदुवीर सात्यकिका वध करनेकी इच्छासे उनकी ओर दौड़े ॥ ३०½ ॥

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ ३१ ॥
परिवव्रुर्महात्मानं परीप्सन्तो यदूत्तमम्।

द्रोणाचार्यको आते देख युधिष्ठिर आदि पाण्डव वीर यदुकुलतिलक महामना सात्यकिकी रक्षाके लिये उन्हें सब ओरसे घेरकर खड़े हो गये ॥ ३१½ ॥

ततः प्रववृते युद्धं द्रोणस्य सह पाण्डवैः ॥ ३२ ॥
बलेरिव सुरैः पूर्वं त्रैलोक्यजयकाङ्क्षया।

जैसे पूर्वकालमें त्रिलोकीपर विजय पानेकी इच्छासे राजा बलिका देवताओंके साथ युद्ध हुआ था, उसी प्रकार द्रोणाचार्यका पाण्डवोंके साथ घोर संग्राम आरम्भ हुआ ॥ ३२½ ॥

ततः सायकजालेन पाण्डवानीकमावृणोत् ॥ ३३ ॥
भारद्वाजो महातेजा विव्याध च युधिष्ठिरम्।

तत्पश्चात् महातेजस्वी द्रोणाचार्यने अपने बाणसमूहसे पाण्डवसेनाको आच्छादित कर दिया और युधिष्ठिरको बींध डाला ॥ ३३½ ॥

सात्यकिं दशभिर्बाणैर्विंशत्या पार्षतं शरैः ॥ ३४ ॥
भीमसेनं च नवभिर्नकुलं पञ्चभिस्तथा।
सहदेवं तथाष्टाभिः शतेन च शिखण्डिनम् ॥ ३५ ॥
द्रौपदेयान् महाबाहुः पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः।
विराटं मत्स्यमष्टाभिर्द्रुपदं दशभिः शरैः ॥ ३६ ॥
युधामन्युं त्रिभिः षड्भिरुत्तमौजसमाहवे।
अन्यांश्च सैनिकान् विद्ध्वा युधिष्ठिरमुपाद्रवत्॥ ३७ ॥

फिर महाबाहु द्रोणने सात्यकिको दस, धृष्टद्युम्नको बीस, भीमसेनको नौ, नकुलको पाँच, सहदेवको आठ, शिखण्डीको सौ, द्रौपदी-पुत्रोंको पाँच-पाँच, मत्स्यराज विराटको आठ, द्रुपदको दस, युधामन्युको तीन, उत्तमौजाको छः तथा अन्य सैनिकोंको अन्यान्य बाणोंसे घायल करके युद्धस्थलमें राजा युधिष्ठिरपर आक्रमण किया ॥ ३४–३७ ॥

ते वध्यमाना द्रोणेन पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ।
प्राद्रवन् वै भयाद् राजन् सार्तनादा दिशो दश ॥ ३८ ॥

राजन् ! द्रोणाचार्यकी मार खाकर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके सैनिक आर्तनाद करते हुए भयके मारे दसों दिशाओंमें भाग गये ॥ ३८ ॥

काल्यमानं तु तत् सैन्यं दृष्ट्वा द्रोणेन फाल्गुनः ।
किंचिदागतसंरम्भो गुरुं पार्थोऽभ्ययाद् द्रुतम् ॥ ३९ ॥

द्रोणाचार्यके द्वारा पाण्डव-सेनाका संहार होता देख कुन्तीकुमार अर्जुनके हृदयमें कुछ क्रोध हो आया । वे तुरंत ही आचार्यका सामना करनेके लिये चल दिये ॥ ३९ ॥

दृष्ट्वा द्रोणं तु बीभत्सुमभिधावन्तमाहवे ।
संन्यवर्तत तत् सैन्यं पुनर्यौधिष्ठिरं बलम् ॥ ४० ॥

अर्जुनको युद्धमें द्रोणाचार्यपर धावा करते देख युधिष्ठिरकी सेना पुनः वापस लौट आयी ॥ ४० ॥

ततो युद्धमभूद् भूयो भारद्वाजस्य पाण्डवैः ।
द्रोणस्तव सुतै राजन् सर्वतः परिवारितः ॥ ४१ ॥
व्यधमत् पाण्डुसैन्यानि तूलराशिमिवानलः ।

राजन् ! तदनन्तर भरद्वाजनन्दन द्रोणका पाण्डवोंके साथ पुनः युद्ध आरम्भ हुआ । आपके पुत्रोंने द्रोणाचार्यको सब ओरसे घेर रक्खा था । जैसे आग रूईके ढेरको जला देती है, उसी प्रकार वे पाण्डव-सेनाको तहस-नहस करने लगे ॥ ४१½ ॥

तं ज्वलन्तमिवादित्यं दीप्तानलसमद्युतिम् ॥ ४२ ॥
राजन्ननिशमत्यन्तं दृष्ट्वा द्रोणं शरार्चिषम् ।
मण्डलीकृतधन्वानं तपन्तमिव भास्करम् ॥ ४३ ॥
दहन्तमहितान् सैन्ये नैनं कश्चिदवारयत् ।

नरेश्वर ! प्रज्वलित अग्निके समान कान्तिमान् तथा निरन्तर बाणरूपी किरणोंसे युक्त सूर्यके समान अत्यन्त प्रकाशित होनेवाले द्रोणाचार्यको धनुषको मण्डलाकार करके तपते हुए प्रभाकरके समान शत्रुओंको दग्ध करते देख पाण्डव-सेनामें कोई वीर उन्हें रोक न सका ॥ ४२-४३½ ॥

यो यो हि प्रमुखे तस्य तस्थौ द्रोणस्य पूरुषः ॥ ४४ ॥
तस्य तस्य शिरश्छित्त्वा ययुर्द्रोणशराः क्षितिम् ।

जो-जो योद्धा पुरुष द्रोणाचार्यके सामने खड़ा होता, उसी-उसीका सिर काटकर द्रोणाचार्यके बाण धरतीमें समा जाते थे ॥ ४४½ ॥

एवं सा पाण्डवी सेना वध्यमाना महात्मना ॥ ४५ ॥
प्रदुद्राव पुनर्भीता पश्यतः सव्यसाचिनः ।

इस प्रकार महात्मा द्रोणके द्वारा मारी जाती हुई पाण्डव-सेना पुनः भयभीत हो सव्यसाची अर्जुनके देखते-देखते भागने लगी ॥ ४५½ ॥

सम्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा द्रोणेन निशि भारत ॥ ४६ ॥
गोविन्दमब्रवीज्जिष्णुर्गच्छ द्रोणरथं प्रति ।

भरतनन्दन ! रातमें द्रोणाचार्यके द्वारा अपनी सेनाको भगायी हुई देख अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा—'आप द्रोणाचार्यके रथके समीप चलिये' ॥ ४६½ ॥

ततो रजतगोक्षीरकुन्देन्दुसदृशप्रभान् ॥ ४७ ॥
चोदयामास दाशार्हो हयान् द्रोणरथं प्रति ।

तब दशार्हकुलनन्दन श्रीकृष्णने चाँदी, गोदुग्ध, कुन्द-पुष्प तथा चन्द्रमाके समान श्वेत कान्तिवाले घोड़ोंको द्रोणाचार्यके रथकी ओर हाँका ॥ ४७½ ॥

भीमसेनोऽपि तं दृष्ट्वा यान्तं द्रोणाय फाल्गुनम् ॥ ४८ ॥
स्वसारथिमुवाचेदं द्रोणानीकाय मा वह ।

अर्जुनको द्रोणाचार्यका सामना करनेके लिये जाते देख भीमसेनने भी अपने सारथिसे कहा—'तुम द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर मुझे ले चलो' ॥ ४८½ ॥

सोऽपि तस्य वचः श्रुत्वा विशोकोऽवाहयद्धयान् ॥ ४९ ॥
पृष्ठतः सत्यसंधस्य जिष्णोर्भरतसत्तम ।

भरतश्रेष्ठ ! उनके सारथि विशोकने उनकी बात सुनकर सत्यप्रतिज्ञ अर्जुनके पीछे अपने घोड़ोंको बढ़ाया ॥ ४९½ ॥

तौ दृष्ट्वा भ्रातरौ यत्तौ द्रोणानीकमभिद्रुतौ ॥ ५० ॥
पञ्चालाः सृञ्जया मत्स्याश्चेदिकारूषकोसलाः ।
अन्वगच्छन् महाराज केकयाश्च महारथाः ॥ ५१ ॥

महाराज ! उन दोनों भाइयोंको द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर युद्धके लिये उद्यत होकर जाते देख पाञ्चाल, सृंजय, मत्स्य, चेदि, कारूष, कोसल तथा केकय महारथियोंने भी उन्हींका अनुसरण किया ॥ ५०-५१ ॥

ततो राजन्नभूद् घोरः संग्रामो लोमहर्षणः ।
बीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वमुत्तरं च वृकोदरः ॥ ५२ ॥
महद्भ्यां रथवृन्दाभ्यां बलं जगृहतुस्तव ।

राजन् ! फिर तो वहाँ रोंगटे खड़े कर देनेवाला घोर संग्राम आरम्भ हो गया । अर्जुनने द्रोणाचार्यकी सेनाके दक्षिणभागको और भीमसेनने वामभागको अपना लक्ष्य बनाया । उन दोनों भाइयोंके साथ विशाल रथ तथा सेनाएँ थीं ॥ ५२½ ॥

तौ दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रौ भीमसेनधनंजयौ ॥ ५३ ॥
धृष्टद्युम्नोऽभ्ययाद् राजन् सात्यकिश्च महाबलः ।



घटोत्कचका रथ

राजन्! पुरुषसिंह भीमसेन और अर्जुनको द्रोणाचार्यपर धावा करते देख धृष्टद्युम्न और महाबली सात्यकि भी वहीं जा पहुँचे ॥ ५३½ ॥

चण्डवाताभिपन्नानामुदधीनामिव स्वनः ॥ ५४ ॥
आसीद् राजन् बलौघानां तदान्योन्यमभिघ्नताम् ।

महाराज! उस समय परस्पर आघात-प्रतिघात करते हुए उन सैन्यसमूहोंका कोलाहल प्रचण्ड वायुसे विक्षुब्ध हुए समुद्रकी गर्जनाके समान प्रतीत होता था ॥ ५४½ ॥

सौमदत्तिवधात् क्रुद्धो दृष्ट्वा सात्यकिमाहवे ॥ ५५ ॥
द्रौणिरभ्यद्रवद् राजन् वधाय कृतनिश्चयः ।

नरेश्वर! द्रोणपुत्र अश्वत्थामा सोमदत्तकुमार भूरिश्रवाके वधसे अत्यन्त कुपित हो उठा था। उसने युद्धस्थलमें सात्यकिको देखकर उनके वधका दृढ़ निश्चय करके उनपर आक्रमण किया ॥ ५५½ ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य शैनेयस्य रथं प्रति ॥ ५६ ॥
भैमसेनिः सुसंक्रुद्धः प्रत्यमित्रमवारयत् ।

अश्वत्थामाको शिनिपौत्रके रथकी ओर जाते देख अत्यन्त कुपित हुए भीमसेनके पुत्र घटोत्कचने अपने उस शत्रुको रोका ॥ ५६½ ॥

कार्ष्णायसं महाघोरमृक्षचर्मपरिच्छदम् ॥ ५७ ॥
महान्तं रथमास्थाय त्रिंशन्नल्वान्तरान्तरम् ।
विक्षिप्तयन्त्रसंनाहं महामेघौघनिःस्वनम् ॥ ५८ ॥
युक्तं गजनिभैर्वाहैर्न हयैर्नापि वारणैः ।
विक्षिप्तपक्षचरणविवृताक्षेण कूजता ॥ ५९ ॥
ध्वजेनोच्छ्रितदण्डेन गृध्रराजेन राजितम् ।
लोहितार्द्रपताकं तु अन्त्रमालाविभूषितम् ॥ ६० ॥

घटोत्कच जिस विशाल रथपर बैठकर आया था, वह काले लोहेका बना हुआ और अत्यन्त भयंकर था। उसके ऊपर रीछकी खाल मढ़ी हुई थी। उसके भीतरी भागकी लम्बाई-चौड़ाई तीस नल्व (बारह हजार हाथ) थी। उसमें यन्त्र और कवच रक्खे हुए थे। चलते समय उससे मेघोंकी भारी घटाके समान गम्भीर शब्द होता था। उसमें हाथी-जैसे विशालकाय वाहन जुते हुए थे, जो वास्तवमें न घोड़े थे और न हाथी। उस रथकी ध्वजाका डंडा बहुत ऊँचा था। वह ध्वज पंख और पंजे फैलाकर आँखें फाड़-फाड़कर देखने और कूजनेवाले एक गृध्रराजसे सुशोभित था। उसकी पताका खूनसे भीगी हुई थी और उस रथको आँतोंकी मालासे विभूषित किया गया था ॥ ५७—६० ॥

अष्टचक्रसमायुक्तमास्थाय विपुलं रथम् ।
शूलमुद्गरधारिण्या शैलपादपहस्तया ॥ ६१ ॥
रक्षसां घोररूपाणामक्षौहिण्या समावृतः ।

ऐसे आठ पहियोंवाले विशाल रथपर बैठा हुआ घटोत्कच भयंकर रूपवाले राक्षसोंकी एक अक्षौहिणी सेनासे घिरा हुआ था। उस समस्त सेनाने अपने हाथोंमें शूल, मुद्गर, पर्वत-शिखर और वृक्ष ले रक्खे थे ॥ ६१½ ॥

तमुद्यतमहाचापं निशम्य व्यथिता नृपाः ॥ ६२ ॥
युगान्तकालसमये दण्डहस्तमिवान्तकम् ।

प्रलयकालमें दण्डधारी यमराजके समान विशाल धनुष उठाये घटोत्कचको देखकर समस्त राजा व्यथित हो उठे ॥ ६२½ ॥

ततस्तं गिरिशृङ्गाभं भीमरूपं भयावहम् ॥ ६३ ॥
दंष्ट्राकरालोग्रमुखं शङ्कुकर्णं महाहनुम् ।
ऊर्ध्वकेशं विरूपाक्षं दीप्तास्यं निम्नितोदरम् ॥ ६४ ॥
महाश्वभ्रगलद्वारं किरीटच्छन्नमूर्धजम् ।
त्रासनं सर्वभूतानां व्यात्ताननमिवान्तकम् ॥ ६५ ॥
वीक्ष्य दीप्तमिवायान्तं रिपुविक्षोभकारिणम् ।
तमुद्यतमहाचापं राक्षसेन्द्रं घटोत्कचम् ॥ ६६ ॥
भयार्दिता प्रचुक्षोभ पुत्रस्य तव वाहिनी ।
वायुना क्षोभितावर्ता गङ्गेवोर्ध्वतरङ्गिणी ॥ ६७ ॥

वह देखनेमें पर्वत-शिखरके समान जान पड़ता था। उसका रूप भयानक होनेके कारण वह सबको भयंकर प्रतीत होता था। उसका मुख यों ही बड़ा भीषण था; किंतु दाढ़ोंके कारण और भी विकराल हो उठा था। उसके कान कील या खूँटेके समान जान पड़ते थे। ठोढ़ी बहुत बड़ी थी। बाल ऊपरकी ओर उठे हुए थे। आँखें डरावनी थीं। मुख आगके समान प्रज्वलित था, पेट भीतरकी ओर धँसा हुआ था। उसके गलेका छेद बहुत बड़े गड्ढेके समान जान पड़ता था। सिरके बाल किरीटसे ढके हुए थे। वह मुँह बाये हुए यमराजके समान समस्त प्राणियोंके मनमें त्रास उत्पन्न करनेवाला था। शत्रुओंको क्षुब्ध कर देनेवाले प्रज्वलित अग्निके समान राक्षसराज घटोत्कचको विशाल धनुष उठाये आते देख आपके पुत्रकी सेना भयसे पीड़ित एवं क्षुब्ध हो उठी, मानो वायुसे विक्षुब्ध हुई गङ्गामें भयानक भँवरें और ऊँची-ऊँची लहरें उठ रही हों ॥ ६३—६७ ॥

घटोत्कचप्रयुक्तेन सिंहनादेन भीषिताः ।
प्रसुस्रुवुर्गजा मूत्रं विव्यथुश्च नरा भृशम् ॥ ६८ ॥

घटोत्कचके द्वारा किये हुए सिंहनादसे भयभीत हो हाथियोंके पेशाब झड़ने लगे और मनुष्य भी अत्यन्त व्यथित हो उठे ॥ ६८ ॥

ततोऽश्मवृष्टिरत्यर्थमासीत् तत्र समन्ततः ।
संध्याकालाधिकबलैः प्रमुक्ता राक्षसैः क्षितौ ॥ ६९ ॥

तदनन्तर उस रणभूमिमें चारों ओर संध्याकालसे ही

१. भूमि नापनेका एक नाप जो चार सौ हाथका होता है।

अधिक बलवान् हुए राक्षसोंद्वारा की हुई पत्थरोंकी बड़ी भारी वर्षा होने लगी ॥ ६९ ॥

आयसानि च चक्राणि भुशुण्ड्यः प्रासतोमराः।
पतन्त्यविरताः शूलाः शतघ्न्यः पट्टिशास्तथा ॥ ७० ॥

लोहेके चक्र, भुशुण्डी, प्रास, तोमर, शूल, शतघ्नी और पट्टिश आदि अस्त्र अविराम गतिसे गिरने लगे ॥ ७० ॥

तदुग्रमतिरौद्रं च दृष्ट्वा युद्धं नराधिपाः।
तनयास्तव कर्णश्च व्यथिताः प्राद्रवन् दिशः ॥ ७१ ॥

उस अत्यन्त भयंकर और उग्र संग्रामको देखकर समस्त नरेश, आपके पुत्र और कर्ण—ये सभी पीड़ित हो सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये ॥ ७१ ॥

तत्रैकोऽस्त्रबलश्लाघी द्रौणिर्मानी न विव्यथे।
व्यधमच्च शरैर्मायां घटोत्कचविनिर्मिताम् ॥ ७२ ॥

उस समय वहाँ अपने अस्त्र-बलपर अभिमान करनेवाला एकमात्र द्रोणकुमार स्वाभिमानी अश्वत्थामा तनिक भी व्यथित नहीं हुआ। उसने घटोत्कचकी रची हुई माया अपने बाणोंद्वारा नष्ट कर दी ॥ ७२ ॥

विहतायां तु मायायाममर्षी स घटोत्कचः।
विससर्ज शरान् घोरांस्तेऽश्वत्थामानमाविशन् ॥ ७३ ॥

माया नष्ट हो जानेपर अमर्षमें भरे हुए घटोत्कचने बड़े भयंकर बाण छोड़े। वे सभी बाण अश्वत्थामाके शरीरमें घुस गये ॥ ७३ ॥

भुजङ्गा इव वेगेन वल्मीकं क्रोधमूर्च्छिताः।
ते शरा रुधिराक्ताङ्गा भित्त्वा शारद्वतीसुतम् ॥ ७४ ॥
विविशुर्धरणीं शीघ्रा रुक्मपुङ्खाः शिलाशिताः।

जैसे क्रोधातुर सर्प बड़े वेगसे बाँबीमें घुसते हैं, उसी प्रकार शिलापर तेज किये हुए वे सुवर्णमय पंखवाले शीघ्रगामी बाण कृपीकुमारको विदीर्ण करके खूनसे लथपथ हो धरतीमें घुस गये ॥ ७४½ ॥

अश्वत्थामा तु संक्रुद्धो लघुहस्तः प्रतापवान् ॥ ७५ ॥
घटोत्कचमभिक्रुद्धं बिभेद दशभिः शरैः।

इससे अश्वत्थामाका क्रोध बहुत बढ़ गया। फिर तो शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले उस प्रतापी वीरने क्रोधी घटोत्कचको दस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ७५½ ॥

घटोत्कचोऽतिविद्धस्तु द्रोणपुत्रेण मर्मसु ॥ ७६ ॥
चक्रं शतसहस्रारमगृह्णाद् व्यथितो भृशम्।
क्षुरान्तं बालसूर्याभं मणिवज्रविभूषितम् ॥ ७७ ॥

द्रोणपुत्रके द्वारा मर्मस्थानोंमें गहरी चोट लगनेके कारण घटोत्कच अत्यन्त व्यथित हो उठा और उसने एक ऐसा चक्र हाथमें लिया, जिसमें एक लाख अरे थे। उसके प्रान्तभागमें छुरे लगे हुए थे। मणियों तथा हीरोंसे विभूषित वह चक्र प्रातःकालके सूर्यके समान जान पड़ता था ॥ ७६-७७ ॥

अश्वत्थाम्नि स चिक्षेप भैमसेनिर्जिघांसया।
वेगेन महताऽऽगच्छद् विक्षिप्तं द्रौणिना शरैः ॥ ७८ ॥
अभाग्यस्येव संकल्पस्तन्मोघमपतद् भुवि।

भीमसेनकुमारने अश्वत्थामाका वध करनेकी इच्छासे वह चक्र उसके ऊपर चला दिया, परंतु अश्वत्थामाने अपने बाणोंद्वारा बड़े वेगसे आते हुए उस चक्रको दूर फेंक दिया। वह भाग्यहीनके संकल्प (मनोरथ)की भाँति व्यर्थ होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ७८½ ॥

घटोत्कचस्ततस्तूर्णं दृष्ट्वा चक्रं निपातितम् ॥ ७९ ॥
द्रौणिं प्राच्छादयद् बाणैः स्वर्भानुरिव भास्करम्।

तदनन्तर अपने चक्रको धरतीपर गिराया हुआ देख घटोत्कचने अपने बाणोंकी वर्षासे अश्वत्थामाको उसी प्रकार ढक दिया, जैसे राहु सूर्यको आच्छादित कर देता है ॥ ७९½ ॥

घटोत्कचसुतः श्रीमान् भिन्नाञ्जनचयोपमः ॥ ८० ॥
रुरोध द्रौणिमायान्तं प्रभञ्जनमिवाद्रिराट्।

घटोत्कचके तेजस्वी पुत्र अंजनपर्वाने, जो कटे हुए कोयलेके ढेरके समान काला था, अपनी ओर आते हुए अश्वत्थामाको उसी प्रकार रोक दिया, जैसे गिरिराज हिमालय आँधीको रोक देता है ॥ ८०½ ॥

पौत्रेण भीमसेनस्य शरैरञ्जनपर्वणा ॥ ८१ ॥
बभौ मेघेन धाराभिर्गिरिर्मेरुरिवावृतः।

भीमसेनके पौत्र अंजनपर्वाके बाणोंसे आच्छादित हुआ अश्वत्थामा मेघकी जलधारासे आवृत हुए मेरुपर्वतके समान सुशोभित हो रहा था ॥ ८१½ ॥

अश्वत्थामा त्वसम्भ्रान्तो रुद्रोपेन्द्रेन्द्रविक्रमः ॥ ८२ ॥
ध्वजमेकेन बाणेन चिच्छेदाञ्जनपर्वणः।

रुद्र, विष्णु तथा इन्द्रके समान पराक्रमी अश्वत्थामाके मनमें तनिक भी घबराहट नहीं हुई। उसने एक बाणसे अंजनपर्वाकी ध्वजा काट डाली ॥ ८२½ ॥

द्वाभ्यां तु रथयन्तारौ त्रिभिश्चास्य त्रिवेणुकम् ॥ ८३ ॥
धनुरेकेन चिच्छेद चतुर्भिश्चतुरो हयान्।

फिर दो बाणोंसे उसके दो सारथियोंको, तीनसे त्रिवेणुको, एकसे धनुषको और चारसे चारों घोड़ोंको काट डाला ॥ ८३½ ॥

विरथस्योद्यतं हस्ताद्धेमबिन्दुभिराचितम् ॥ ८४ ॥
विशिखेन सुतीक्ष्णेन खड्गमस्य द्विधाकरोत्।

तत्पश्चात् रथहीन हुए राक्षसपुत्रके हाथसे उठे हुए सुवर्ण-बिन्दुओंसे व्याप्त खड्गको उसने एक तीखे बाणसे मारकर उसके दो टुकड़े कर दिये ॥ ८४½ ॥

गदा हेमाङ्गदा राजंस्तूर्णं हैडिम्बिसूनुना ॥ ८५ ॥
भ्राम्योत्क्षिप्ता शरैः साऽपि द्रौणिनाभ्याहताऽपतत्।

राजन्! तब घटोत्कचपुत्रने तुरंत ही सोनेके अंगदसे विभूषित गदा घुमाकर अश्वत्थामापर दे मारी; परंतु

अश्वत्थामाके बाणोंसे आहत होकर वह भी पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ८५½ ॥

ततोऽन्तरिक्षमुत्प्लुत्य कालमेघ इवोन्नदन् ॥ ८६ ॥
ववर्षाञ्जनपर्वा स द्रुमवर्षं नभस्तलात् ।

तब आकाशमें उछलकर प्रलयकालके मेघकी भाँति गर्जना करते हुए अंजनपर्वाने आकाशसे वृक्षोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ८६½ ॥

ततो मायाधरं द्रौणिर्घटोत्कचसुतं दिवि ॥ ८७ ॥
मार्गणैरभिविव्याध घनं सूर्य इवांशुभिः ।

तदनन्तर द्रोणपुत्रने आकाशमें स्थित हुए मायाधारी घटोत्कचकुमारको अपने बाणोंद्वारा उसी तरह घायल कर दिया, जैसे सूर्य अपनी किरणोंद्वारा मेघोंकी घटाको गला देते हैं ॥ ८७½ ॥

सोऽवतीर्य पुरस्तस्थौ रथे हेमविभूषिते ॥ ८८ ॥
महीगत इवात्युग्रः श्रीमानञ्जनपर्वतः ।

इसके बाद वह नीचे उतरकर अपने स्वर्णभूषित रथपर अश्वत्थामाके सामने खड़ा हो गया । उस समय वह तेजस्वी राक्षस पृथ्वीपर खड़े हुए अत्यन्त भयंकर कज्जल-गिरिके समान जान पड़ा ॥ ८८½ ॥

तमयस्मयवर्माणं द्रौणिर्भीमात्मजात्मजम् ॥ ८९ ॥
जघानाञ्जनपर्वाणं महेश्वर इवान्धकम् ।

उस समय द्रोणकुमारने लोहेके कवच धारण करके आये हुए भीमसेनपौत्र अंजनपर्वाको उसी प्रकार मार डाला, जैसे भगवान् महेश्वरने अन्धकासुरका वध किया था ॥८९½॥

अथ दृष्ट्वा हतं पुत्रमश्वत्थाम्ना महाबलम् ॥ ९० ॥
द्रौणेः सकाशमभ्येत्य रोषात् प्रज्वलिताङ्गदः ।
प्राह वाक्यमसम्भ्रान्तो वीरं शारद्वतीसुतम् ॥ ९१ ॥
दहन्तं पाण्डवानीकं वनमग्निमिवोच्छ्रितम् ।

अपने महाबली पुत्रको अश्वत्थामाद्वारा मारा गया देख चमकते हुए बाजूबंदसे विभूषित घटोत्कच बड़े रोषके साथ द्रोणकुमारके समीप आकर बढ़े हुए दावानलके समान पाण्डवसेनारूपी वनको दग्ध करते हुए उस वीर कृपी-कुमारसे बिना किसी घबराहटके इस प्रकार बोला॥९०-९१½॥

घटोत्कच उवाच

तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन् द्रोणपुत्र गमिष्यसि ॥ ९२ ॥
त्वामद्य निहनिष्यामि क्रौञ्चमग्निसुतो यथा ।

घटोत्कचने कहा—द्रोणपुत्र ! खड़े रहो, खड़े रहो। आज तुम मेरे हाथसे जीवित बचकर नहीं जा सकोगे । जैसे अग्निपुत्र कार्तिकेयने क्रौञ्च पर्वतको विदीर्ण किया था, उसी प्रकार आज मैं तुम्हारा विनाश कर डालूँगा ॥ ९२½ ॥

अश्वत्थामोवाच

गच्छ वत्स सहान्यैस्त्वं युध्यस्वामरविक्रम ॥ ९३ ॥
न हि पुत्रेण हैडिम्बे पिता न्याय्यः प्रबाधितुम् ।

अश्वत्थामाने कहा—देवताओंके समान पराक्रमी पुत्र ! तुम जाओ, दूसरोंके साथ युद्ध करो । हिडिम्बानन्दन ! पुत्रके लिये यह उचित नहीं है कि वह पिताको भी सताये ॥

कामं खलु न रोषो मे हैडिम्बे विद्यते त्वयि ॥ ९४ ॥
किं तु रोषान्वितो जन्तुर्हन्यादात्मानमप्युत ।

हिडिम्बाकुमार ! अभी मेरे मनमें तुम्हारे प्रति तनिक भी रोष नहीं है, परंतु यदि रोष हो जाय तो तुम्हें ज्ञात होना चाहिये कि रोषके वशीभूत हुआ प्राणी अपना भी विनाश कर डालता है (फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है ? अतः मेरे कुपित होनेपर तुम सकुशल नहीं रह सकते) ॥ ९४½ ॥

संजय उवाच

श्रुत्वैतत् क्रोधताम्राक्षः पुत्रशोकसमन्वितः ॥ ९५ ॥
अश्वत्थामानमायस्तो भैमसेनिरभाषत ।

संजय कहते हैं—राजन् ! पुत्रशोकमें डूबे हुए भीमसेन-कुमारने अश्वत्थामाकी यह बात सुनकर क्रोधसे लाल आँखें करके रोषपूर्वक उससे कहा—॥ ९५½ ॥

किमहं कातरो द्रौणे पृथग्जन इवाहवे ॥ ९६ ॥
यन्मां भीषयसे वाग्भिरसदेतद् वचस्तव ।

'द्रोणकुमार ! क्या मैं युद्धस्थलमें नीच लोगोंके समान कायर हूँ, जो तू मुझे अपनी बातोंसे डरा रहा है । तेरी यह बात नीचतापूर्ण है ॥ ९६½ ॥

भीमात् खलु समुत्पन्नः कुरूणां विपुले कुले ॥ ९७ ॥
पाण्डवानामहं पुत्रः समरेष्वनिवर्तिनाम् ।
रक्षसामधिराजोऽहं दशग्रीवसमो बले ॥ ९८ ॥

'देख, मैं कौरवोंके विशाल कुलमें भीमसेनसे उत्पन्न हुआ हूँ, समराङ्गणमें कभी पीठ न दिखानेवाले पाण्डवोंका पुत्र हूँ, राक्षसोंका राजा हूँ और दशग्रीव रावणके समान बलवान् हूँ ॥ ९७-९८ ॥

तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन् द्रोणपुत्र गमिष्यसि ।
युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे ॥ ९९ ॥

'द्रोणपुत्र ! खड़ा रह, खड़ा रह, तू मेरे हाथसे छूटकर जीवित नहीं जा सकेगा । आज इस रणाङ्गणमें मैं तेरा युद्धका हौसला मिटा दूँगा' ॥ ९९ ॥

इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षो राक्षसः सुमहाबलः ।
द्रौणिमभ्यद्रवत् क्रुद्धो गजेन्द्रमिव केसरी ॥१००॥

ऐसा कहकर क्रोधसे लाल आँखें किये महाबली राक्षस घटोत्कचने द्रोणपुत्रपर रोषपूर्वक धावा किया, मानो सिंहने गजराजपर आक्रमण किया हो ॥ १०० ॥

रथाक्षमात्रैरिषुभिरभ्यवर्षद् घटोत्कचः ।
रथिनामृषभं द्रौणिं धाराभिरिव तोयदः ॥१०१॥

जैसे बादल पर्वतपर जलकी धारा बरसाता है, उसी प्रकार घटोत्कच रथियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामापर रथकी धुरीके समान मोटे बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ १०१ ॥

शरवृष्टिं शरैर्द्रौणिरप्राप्तां तां व्यशातयत् ।
ततोऽन्तरिक्षे बाणानां संग्रामोऽन्य इवाभवत् ॥१०२॥

परंतु द्रोणपुत्र अश्वत्थामा अपने पास आनेसे पहले ही उस बाण-वर्षाको बाणोंद्वारा नष्ट कर देता था। इससे आकाशमें बाणोंका दूसरा संग्राम-सा मच गया था ॥१०२॥

अथास्त्रसम्मर्दकृतैर्विस्फुलिङ्गैस्तदा बभौ ।
विभावरीमुखे व्योम खद्योतैरिव चित्रितम् ॥१०३॥

अस्त्रोंके परस्पर टकरानेसे जो आगकी चिनगारियाँ छूटती थीं, उससे रात्रिके प्रथम प्रहरमें आकाश जुगनुओंसे चित्रित-सा प्रतीत होता था ॥ १०३ ॥

निशाम्य निहतां मायां द्रौणिना रणमानिना ।
घटोत्कचस्ततो मायां ससर्जान्तर्हितः पुनः ॥१०४॥

युद्धाभिमानी अश्वत्थामाके द्वारा अपनी माया नष्ट हुई देख घटोत्कचने अदृश्य होकर पुनः दूसरी मायाकी सृष्टि की॥

सोऽभवद् गिरिरत्युच्चः शिखरैस्तरुसंकटैः ।
शूलप्रासासिमुसलजलप्रस्रवणो महान् ॥१०५॥

वह वृक्षोंसे भरे हुए शिखरोंद्वारा सुशोभित एक बहुत ऊँचा पर्वत बन गया। वह महान् पर्वत शूल, प्रास, खड्ग और मूसलरूपी जलके झरने बहा रहा था ॥ १०५ ॥

तमञ्जनगिरिप्रख्यं द्रौणिर्दृष्ट्वा महीधरम् ।
प्रपतद्भिश्च बहुभिः शस्त्रसंघैर्न विव्यथे ॥१०६॥

अंजनगिरिके समान उस काले पहाड़को देखकर और वहाँसे गिरनेवाले बहुतेरे अस्त्र-शस्त्रोंसे घायल होकर भी द्रोणकुमार अश्वत्थामा व्यथित नहीं हुआ ॥ १०६ ॥

ततो हसन्निव द्रौणिर्वज्रमस्त्रमुदैरयत् ।
स तेनास्त्रेण शैलेन्द्रः क्षिप्तः क्षिप्रं व्यनश्यत ॥१०७॥

तदनन्तर द्रोणकुमारने हँसते हुए-से वज्रास्त्रको प्रकट किया। उस अस्त्रका आघात होते ही वह पर्वतराज तत्काल अदृश्य हो गया ॥ १०७ ॥

ततः स तोयदो भूत्वा नीलः सेन्द्रायुधो दिवि ।
अश्मवृष्टिभिरत्युग्रो द्रौणिमाच्छादयद् रणे ॥१०८॥

तत्पश्चात् वह आकाशमें इन्द्रधनुषसहित अत्यन्त भयंकर नील मेघ बनकर पत्थरोंकी वर्षासे रणभूमिमें अश्वत्थामाको आच्छादित करने लगा ॥ १०८ ॥

अथ संधाय वायव्यमस्त्रमस्त्रविदां वरः ।
व्यधमद् द्रोणतनयो नीलमेघं समुत्थितम् ॥१०९॥

तब अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ द्रोणकुमारने वायव्यास्त्रका संधान करके वहाँ प्रकट हुए नील मेघको नष्ट कर दिया ॥ १०९ ॥

स मार्गणगणैर्द्रौणिर्दिशः प्रच्छाद्य सर्वशः ।
शतं रथसहस्राणां जघान द्विपदां वरः ॥११०॥

मनुष्योंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामाने अपने बाणसमूहोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित करके शत्रुपक्षके एक लाख रथियोंका संहार कर डाला ॥ ११० ॥

स दृष्ट्वा पुनरायान्तं रथेनायातकार्मुकम् ।
घटोत्कचमसम्भ्रान्तं राक्षसैर्बहुभिर्वृतम् ॥१११॥
सिंहशार्दूलसदृशैर्मत्तद्विरदविक्रमैः ।
गजस्थैश्च रथस्थैश्च वाजिपृष्ठगतैरपि ॥११२॥
विकृतास्यशिरोग्रीवैर्हैडिम्बानुचरैः सह ।
पौलस्त्यैर्यातुधानैश्च तामसैश्चेन्द्रविक्रमैः ॥११३॥
नानाशस्त्रधरैर्वीरैर्नानाकवचभूषणैः ।
महाबलैर्भीमरवैः संरम्भोद्वृत्तलोचनैः ॥११४॥
उपस्थितैस्ततो युद्धे राक्षसैर्युद्धदुर्मदैः ।
विषण्णमभिसम्प्रेक्ष्य पुत्रं ते द्रौणिरब्रवीत् ॥११५॥

तत्पश्चात् अश्वत्थामाने देखा कि घटोत्कच बिना किसी घबराहटके बहुत-से राक्षसोंसे घिरा हुआ पुनः रथपर आरूढ़ होकर आ रहा है। उसने अपने धनुषको खींचकर फैला रक्खा है। उसके साथ सिंह, व्याघ्र और मतवाले हाथियोंके समान पराक्रमी तथा विकराल मुख, मस्तक और कण्ठवाले बहुत-से अनुचर हैं, जो हाथी, घोड़ों तथा रथपर बैठे हुए हैं। उसके अनुचरोंमें राक्षस, यातुधान तथा तामस जातिके लोग हैं, जिनका पराक्रम इन्द्रके समान है। नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण करनेवाले, भाँति-भाँतिके कवच और आभूषणोंसे विभूषित, महाबली, भयंकर सिंहनाद करनेवाले तथा क्रोधसे घूरते हुए नेत्रोंवाले बहुसंख्यक रणदुर्मद राक्षस घटोत्कचकी ओरसे युद्धके लिये उपस्थित हैं। यह सब देखकर दुर्योधन विषादग्रस्त हो रहा है। इन सब बातोंपर दृष्टिपात करके अश्वत्थामाने आपके पुत्रसे कहा—॥१११-११५॥

तिष्ठ दुर्योधनाद्य त्वं न कार्यः सम्भ्रमस्त्वया ।
सहैभिर्भ्रातृभिर्वीरैः पार्थिवैश्चेन्द्रविक्रमैः ॥११६॥

'दुर्योधन ! आज तुम चुपचाप खड़े रहो। तुम्हें इन्द्रके समान पराक्रमी इन राजाओं तथा अपने वीर भाइयोंके साथ तनिक भी घबराना नहीं चाहिये ॥ ११६ ॥

निहनिष्याम्यमित्रांस्ते न तवास्ति पराजयः ।
सत्यं ते प्रतिजानामि पर्याश्वासय वाहिनीम् ॥११७॥

'राजन् ! मैं तुम्हारे शत्रुओंको मार डालूँगा, तुम्हारी पराजय नहीं हो सकती; इसके लिये मैं तुमसे सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ। तुम अपनी सेनाको आश्वासन दो' ॥ ११७ ॥

दुर्योधन उवाच

न त्वेतदद्भुतं मन्ये यत् ते महदिदं मनः ।
अस्मासु च परा भक्तिस्तव गौतमिनन्दन ॥११८॥

दुर्योधन बोला—गौतमीनन्दन ! तुम्हारा यह हृदय इतना विशाल है कि तुम्हारे द्वारा इस कार्यका होना मैं अद्भुत नहीं मानता । हमलोगोंपर तुम्हारा अनुराग बहुत अधिक है ॥ ११८ ॥

संजय उवाच

अश्वत्थामानमुक्त्वैवं ततः सौबलमब्रवीत् ।
वृतं रथसहस्रेण हयानां रणशोभिनाम् ॥११९॥

संजय कहते हैं—राजन् ! अश्वत्थामासे ऐसा कहकर दुर्योधन संग्राममें शोभा पानेवाले घोड़ोंसे युक्त एक हजार रथोंद्वारा घिरे हुए शकुनिसे इस प्रकार बोला—॥ ११९ ॥

षष्ट्या रथसहस्रैश्च प्रयाहि त्वं धनंजयम् ।
कर्णश्च वृषसेनश्च कृपो नीलस्तथैव च ॥१२०॥
उदीच्याः कृतवर्मा च पुरुमित्रः सुतापनः ।
दुःशासनो निकुम्भश्च कुण्डभेदी पराक्रमः ॥१२१॥
पुरंजयो दृढरथः पताकी हेमकम्पनः ।
शल्यारुणीन्द्रसेनाश्च संजयो विजयो जयः ॥१२२॥
कमलाक्षः परक्राथी जयवर्मा सुदर्शनः ।
एते त्वामनुयास्यन्ति पत्तीनामयुतानि षट् ॥१२३॥

'मामा ! तुम साठ हजार रथियोंकी सेना साथ लेकर अर्जुनपर आक्रमण करो । कर्ण, वृषसेन, कृपाचार्य, नील, उत्तर दिशाके सैनिक, कृतवर्मा, पुरुमित्र, सुतापन, दुःशासन, निकुम्भ, कुण्डभेदी, पराक्रमी पुरंजय, दृढ़रथ, पताकी, हेम-कम्पन, शल्य, आरुणि, इन्द्रसेन, संजय, विजय, जय, कमलाक्ष, परक्राथी, जयवर्मा और सुदर्शन—ये सभी महारथी वीर तथा साठ हजार पैदल सैनिक तुम्हारे साथ जायँगे ॥ १२०—१२३ ॥

जहि भीमं यमौ चोभौ धर्मराजं च मातुल ।
असुरानिव देवेन्द्रो जयाशा मे त्वयि स्थिता ॥१२४॥

'मामा ! जैसे देवराज इन्द्र असुरोंका संहार करते हैं, उसी प्रकार तुम भीमसेन, नकुल, सहदेव तथा धर्मराज युधिष्ठिरका भी वध कर डालो । मेरी विजयकी आशा तुमपर ही अवलम्बित है ॥ १२४ ॥

दारितान् द्रौणिना बाणैर्भृशं विक्षतविग्रहान् ।
जहि मातुल कौन्तेयानसुरानिव पावकिः ॥१२५॥

'मातुल ! द्रोणकुमार अश्वत्थामाने कुन्तीकुमारोंको अपने बाणोंद्वारा विदीर्ण कर डाला है; उनके शरीरोंको क्षत-विक्षत कर दिया है । इस अवस्थामें असुरोंका वध करनेवाले कुमार कार्तिकेयकी भाँति तुम कुन्तीपुत्रोंको मार डालो' ॥ १२५ ॥

एवमुक्तो ययौ शीघ्रं पुत्रेण तव सौबलः ।
पिप्रीषुस्ते सुतान् राजन् दिधक्षुश्चैव पाण्डवान् ॥१२६॥

राजन् ! आपके पुत्रके ऐसा कहनेपर सुबलपुत्र शकुनि आपके पुत्रोंको प्रसन्न करने तथा पाण्डवोंको दग्ध कर डालनेकी इच्छासे शीघ्र ही युद्धके लिये चल दिया ॥ १२६ ॥

अथ प्रववृते युद्धं द्रौणिराक्षसयोर्मृधे ।
विभावर्यां सुतुमुलं शक्रप्रह्लादयोरिव ॥१२७॥

तदनन्तर रणभूमिमें रात्रिके समय द्रोणकुमार अश्वत्थामा तथा राक्षस घटोत्कचका इन्द्र और प्रह्लादके समान अत्यन्त भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ ॥ १२७ ॥

ततो घटोत्कचो बाणैर्दशभिर्गौतमीसुतम् ।
जघानोरसि संक्रुद्धो विषाग्निप्रतिमैर्दृढैः ॥१२८॥

उस समय घटोत्कचने अत्यन्त कुपित होकर विष और अग्निके समान भयंकर दस सुदृढ़ बाणोंद्वारा कृपीकुमार अश्वत्थामाकी छातीमें गहरा आघात किया ॥ १२८ ॥

स तैरभ्याहतो गाढं शरैर्भीमसुतेरितैः ।
चचाल रथमध्यस्थो वातोद्धत इव द्रुमः ॥१२९॥

भीमपुत्र घटोत्कचके चलाये हुए उन बाणोंद्वारा गहरी चोट खाकर रथमें बैठा हुआ अश्वत्थामा वायुके झकझोरे हुए वृक्षके समान काँपने लगा ॥ १२९ ॥

भूयश्चाञ्जलिकेनाथ मार्गणेन महाप्रभम् ।
द्रौणिहस्तस्थितं चापं चिच्छेदाशु घटोत्कचः ॥१३०॥

इतनेहीमें घटोत्कचने पुनः अञ्जलिकनामक बाणसे अश्वत्थामाके हाथमें स्थित अत्यन्त कान्तिमान् धनुषको शीघ्रतापूर्वक काट डाला ॥ १३० ॥

ततोऽन्यद् द्रौणिरादाय धनुर्भारसहं महत् ।
ववर्ष विशिखांस्तीक्ष्णान् वारिधारा इवाम्बुदः ॥१३१॥

तब द्रोणकुमार भार सहन करनेमें समर्थ दूसरा विशाल धनुष हाथमें लेकर, जैसे मेघ जलकी धारा बरसाता है, उसी प्रकार तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ १३१ ॥

ततः शारद्वतीपुत्रः प्रेषयामास भारत ।
सुवर्णपुङ्खाञ्छत्रुघ्नान् खचरान् खचरं प्रति ॥१३२॥

भारत ! तदनन्तर गौतमीपुत्रने सुवर्णमय पंखवाले शत्रु-नाशक आकाशचारी बाणोंको उस राक्षसपर चलाया ॥ १३२ ॥

तद् बाणैरर्दितं यूथं रक्षसां पीनवक्षसाम् ।
सिंहैरिव बभौ मत्तं गजानामाकुलं कुलम् ॥१३३॥

उन बाणोंसे चौड़ी छातीवाले राक्षसोंका वह समूह अत्यन्त पीड़ित हो सिंहोंद्वारा व्याकुल किये गये मतवाले हाथियोंके झुंडके समान प्रतीत होने लगा ॥ १३३ ॥

विधम्य राक्षसान् बाणैः साश्वसूतरथद्विपान् ।
ददाह भगवान् वह्निर्भूतानीव युगक्षये ॥१३४॥

जैसे भगवान् अग्निदेव प्रलयकालमें सम्पूर्ण प्राणियोंको दग्ध कर देते हैं, उसी प्रकार अश्वत्थामाने अपने बाणोंद्वारा घोड़े, सारथि, रथ और हाथियोंसहित बहुत-से राक्षसोंको जलाकर भस्म कर दिया ॥ १३४ ॥

स दग्ध्वाक्षौहिणीं बाणैर्नैर्ऋतीं रुरुचे नृप।
पुरेव त्रिपुरं दग्ध्वा दिवि देवो महेश्वरः ॥१३५॥

नरेश्वर ! जैसे भगवान् महेश्वर आकाशमें त्रिपुरको दग्ध करके सुशोभित हुए थे, उसी प्रकार राक्षसोंकी अक्षौहिणी सेनाको बाणोंद्वारा दग्ध करके अश्वत्थामा शोभा पाने लगा ॥ १३५ ॥

युगान्ते सर्वभूतानि दग्ध्वेव वसुरुल्बणः।
रराज जयतां श्रेष्ठो द्रोणपुत्रस्तवाहितान् ॥१३६॥

राजन् ! विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ द्रोणपुत्र अश्वत्थामा प्रलयकालमें समस्त प्राणियोंको भस्म कर देनेवाले संवर्तक अग्निके समान आपके शत्रुओंको दग्ध करके देदीप्यमान हो उठा ॥

ततो घटोत्कचः क्रुद्धो रक्षसां भीमकर्मणाम्।
द्रौणिं हतेति महतीं चोदयामास तां चमूम् ॥१३७॥

तब घटोत्कचने कुपित हो भयानक कर्म करनेवाले राक्षसोंकी उस विशाल सेनाको आदेश दिया, 'अरे ! अश्वत्थामाको मार डालो' ॥ १३७ ॥

घटोत्कचस्य तामाज्ञां प्रतिगृह्याथ राक्षसाः।
दंष्ट्रोज्ज्वला महावक्त्रा घोररूपा भयानकाः ॥१३८॥
व्यात्ताननाः घोरजिह्वाः क्रोधताम्रेक्षणा भृशम्।
सिंहनादेन महता नादयन्तो वसुन्धराम् ॥१३९॥
हन्तुमभ्यद्रवन् द्रौणिं नानाप्रहरणायुधाः।

घटोत्कचकी उस आज्ञाको शिरोधार्य करके दाढ़ोंसे प्रकाशित, विशाल मुखवाले, घोर रूपधारी, फैले मुँह और डरावनी जीभवाले भयानक राक्षस क्रोधसे लाल आँखें किये महान् सिंहनादसे पृथ्वीको प्रतिध्वनित करते हुए हाथोंमें भाँति-भाँतिके अस्त्र-शस्त्र ले अश्वत्थामाको मार डालनेके लिये उसपर टूट पड़े ॥ १३८–१३९½ ॥

शक्तीः शतघ्नीः परिघानशनीः शूलपट्टिशान् ॥१४०॥
खड्गान् गदा भिन्दिपालान् मुसलानि परश्वधान्।
प्रासानसींस्तोमरांश्च कणपान् कम्पनाञ्छितान्॥१४१॥
स्थूलान् भुशुण्ड्यश्मगदाःस्थूणान् कार्ष्णायसांस्तथा।
मुद्गरांश्च महाघोरान् समरे शत्रुदारणान् ॥१४२॥
द्रौणिमूर्धन्यसंत्रस्ता राक्षसा भीमविक्रमाः।
चिक्षिपुः क्रोधताम्राक्षाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥१४३॥

समराङ्गणमें किसीसे भी न डरनेवाले तथा क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले भयंकर पराक्रमी सैकड़ों और हजारों राक्षस अश्वत्थामाके मस्तकपर शक्ति, शतघ्नी, परिघ, अशनि, शूल, पट्टिश, खड्ग, गदा, भिन्दिपाल, मुसल, फरसे, प्रास, कटार, तोमर, कणप, तीखे कम्पन, मोटे-मोटे पत्थर, भुशुण्डी, गदा, काले लोहेके खंभे तथा शत्रुओंको विदीर्ण करनेमें समर्थ महाघोर मुद्गरोंकी वर्षा करने लगे ॥ १४०–१४३ ॥

तच्छस्त्रवर्षं सुमहद् द्रोणपुत्रस्य मूर्धनि।
पतमानं समीक्ष्याथ योधास्ते व्यथिताभवन् ॥१४४॥

द्रोणपुत्रके मस्तकपर अस्त्रोंकी वह बड़ी भारी वर्षा होती देख आपके समस्त सैनिक व्यथित हो उठे ॥ १४४ ॥

द्रोणपुत्रस्तु विक्रान्तस्तद् वर्षं घोरमुच्छ्रितम्।
शरैर्विध्वंसयामास वज्रकल्पैः शिलाशितैः ॥१४५॥

परंतु पराक्रमी द्रोणकुमारने शिलापर तेज किये हुए अपने वज्रोपम बाणोंद्वारा वहाँ प्रकट हुई उस भयंकर अस्त्र-वर्षाका विध्वंस कर डाला ॥ १४५ ॥

ततोऽन्यैर्विशिखैस्तूर्णं स्वर्णपुङ्खैर्महामनाः।
निजघ्ने राक्षसान् द्रौणिर्दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रितैः ॥१४६॥

तत्पश्चात् महामनस्वी अश्वत्थामाने दिव्यास्त्रोंसे अभिमन्त्रित सुवर्णमय पंखवाले अन्य बाणोंद्वारा तत्काल ही राक्षसोंको घायल कर दिया ॥ १४६ ॥

तद्बाणैरर्दितं यूथं रक्षसां पीनवक्षसाम्।
सिंहैरिव बभौ मत्तं गजानामाकुलं कुलम् ॥१४७॥

उन बाणोंसे चौड़ी छातीवाले राक्षसोंका समूह अत्यन्त पीड़ित हो सिंहोंद्वारा व्याकुल किये गये मतवाले हाथियोंके झुंडके समान प्रतीत होने लगा ॥ १४७ ॥

ते राक्षसाः सुसंक्रुद्धा द्रोणपुत्रेण ताडिताः।
क्रुद्धाः स्म प्राद्रवन् द्रौणिं जिघांसन्तो महाबलाः॥१४८॥

द्रोणपुत्रकी मार खाकर, अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए महाबली राक्षस उसे मार डालनेकी इच्छासे रोषपूर्वक दौड़े ॥

तत्राद्भुतमिमं द्रौणिर्दर्शयामास विक्रमम्।
अशक्यं कर्तुमन्येन सर्वभूतेषु भारत ॥१४९॥

भारत ! वहाँ अश्वत्थामाने यह ऐसा अद्भुत पराक्रम दिखाया, जिसे समस्त प्राणियोंमें और किसीके लिये कर दिखना असम्भव था ॥ १४९ ॥

यदेको राक्षसीं सेनां क्षणाद् द्रौणिर्महास्त्रवित्।
ददाह ज्वलितैर्बाणै राक्षसेन्द्रस्य पश्यतः ॥१५०॥

क्योंकि महान् अस्त्रवेत्ता अश्वत्थामाने अकेले ही उस राक्षसी सेनाको राक्षसराज घटोत्कचके देखते-देखते अपने प्रज्वलित बाणोंद्वारा क्षणभरमें भस्म कर दिया ॥ १५० ॥

स हत्वा राक्षसानीकं रराज द्रौणिराहवे।
युगान्ते सर्वभूतानि संवर्तक इवानलः ॥१५१॥

जैसे प्रलयकालमें संवर्तक अग्नि समस्त प्राणियोंको दग्ध कर देती है, उसी प्रकार राक्षसोंकी उस सेनाका संहार करके

युद्धस्थलमें अश्वत्थामाकी बड़ी शोभा हुई ॥ १५१ ॥

तं दहन्तमनीकानि शरैराशीविषोपमैः ।
तेषु राजसहस्रेषु पाण्डवेयेषु भारत ॥१५२॥
नैनं निरीक्षितुं कश्चिदशक्नोद् द्रौणिमाहवे ।
ऋते घटोत्कचाद् वीराद् राक्षसेन्द्रान्महाबलात् ॥१५३॥

भरतनन्दन ! युद्धस्थलमें पाण्डवपक्षके सहस्रों राजाओंमेंसे वीर महाबली राक्षसराज घटोत्कचको छोड़कर दूसरा कोई भी विषधर सर्पोंके समान भयंकर बाणोंद्वारा पाण्डवोंकी सेनाओंको दग्ध करते हुए अश्वत्थामाकी ओर देख न सका॥

स पुनर्भरतश्रेष्ठ क्रोधादुद्भ्रान्तलोचनः ।
तलं तलेन संहत्य संदश्य दशनच्छदम् ॥१५४॥
स्वं सूतमब्रवीत् क्रुद्धो द्रोणपुत्राय मां वह ।

भरतश्रेष्ठ ! पुनः क्रोधसे घटोत्कचकी आँखें घूमने लगीं। उसने हाथसे हाथ मलकर ओठ चबा लिया और कुपित हो सारथिसे कहा—'सूत ! तू मुझे द्रोणपुत्रके पास ले चल' ॥ १५४½ ॥

स ययौ घोररूपेण सुपताकेन भास्वता ॥१५५॥
द्वैरथं द्रोणपुत्रेण पुनरप्यरिसूदनः ।

शत्रुओंका संहार करनेवाला घटोत्कच सुन्दर पताकाओंसे सुशोभित, प्रकाशमान एवं भयंकर रथके द्वारा पुनः द्रोणपुत्रके साथ द्वैरथ युद्ध करनेके लिये गया ॥ १५५½ ॥

स विनद्य महानादं सिंहवद् भीमविक्रमः ॥१५६॥
चिक्षेपाविध्य संग्रामे द्रोणपुत्राय राक्षसः ।
अष्टघण्टां महाघोरामशनिं देवनिर्मिताम् ॥१५७॥

उस भयंकर पराक्रमी राक्षसने सिंहके समान बड़ी भारी गर्जना करके संग्राममें द्रोणपुत्रपर देवताओंद्वारा निर्मित तथा आठ घंटियोंसे सुशोभित एक महाभयंकर अशनि (वज्र) घुमाकर चलायी ॥ १५६-१५७ ॥

तामवप्लुत्य जग्राह द्रौणिर्न्यस्य रथे धनुः ।
चिक्षेप चैनां तस्यैव स्यन्दनात् सोऽवपुप्लुवे ॥१५८॥

यह देख अश्वत्थामाने रथपर अपना धनुष रख उछलकर उस अशनिको पकड़ लिया और उसे घटोत्कचके ही रथपर दे मारा। घटोत्कच उस रथसे कूद पड़ा ॥ १५८ ॥

साश्वसूतध्वजं यानं भस्म कृत्वा महाप्रभा ।
विवेश वसुधां भित्त्वा साशनिर्भृशदारुणा ॥१५९॥

वह अत्यन्त प्रकाशमान तथा परम दारुण अशनि घोड़े, सारथि और ध्वजसहित घटोत्कचके रथको भस्म करके पृथ्वीको छेदकर उसके भीतर समा गयी ॥ १५९ ॥

द्रौणेस्तत् कर्म दृष्ट्वा तु सर्वभूतान्यपूजयन् ।
यदवप्लुत्य जग्राह घोरां शङ्करनिर्मिताम् ॥१६०॥

अश्वत्थामाने भगवान् शङ्करद्वारा निर्मित उस भयंकर अशनिको जो उछलकर पकड़ लिया, उसके उस कर्मको देखकर समस्त प्राणियोंने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की॥१६०॥

धृष्टद्युम्नरथं गत्वा भैमसेनिस्ततो नृप ।
धनुर्घोरं समादाय महदिन्द्रायुधोपमम् ।
मुमोच निशितान् बाणान् पुनर्द्रौणेर्महोरसि ॥१६१॥

नरेश्वर ! उस समय भीमसेनकुमारने धृष्टद्युम्नके रथपर आरूढ़ हो इन्द्रायुधके समान विशाल एवं घोर धनुष हाथमें लेकर अश्वत्थामाके विशाल वक्षःस्थलपर बहुत-से तीखे बाण मारे ॥ १६१ ॥

धृष्टद्युम्नस्त्वसम्भ्रान्तो मुमोचाशीविषोपमान् ।
सुवर्णपुङ्खान् विशिखान् द्रोणपुत्रस्य वक्षसि ॥१६२॥

धृष्टद्युम्नने भी बिना किसी घबराहटके विषधर सर्पोंके समान सुवर्णमय पंखवाले बहुत-से बाण द्रोणपुत्रके वक्षःस्थल पर छोड़े

ततो मुमोच नाराचान् द्रौणिस्तांश्च सहस्रशः ।
तावप्यग्निशिखप्रख्यैर्जघ्नतुस्तस्य मार्गणान् ॥१६३॥

तब अश्वत्थामाने भी उनपर सहस्रों नाराच चलाये। धृष्टद्युम्न और घटोत्कचने भी अग्निशिखाके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा अश्वत्थामाके नाराचोंको काट डाला ॥ १६३ ॥

अतितीव्रं महद् युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः ।
योधानां प्रीतिजननं द्रौणेश्च भरतर्षभ ॥१६४॥

भरतश्रेष्ठ ! उन दोनों पुरुषसिंहों तथा अश्वत्थामाका वह अत्यन्त उग्र और महान् युद्ध समस्त योद्धाओंका हर्ष बढ़ा रहा था ॥ १६४ ॥

ततो रथसहस्रेण द्विरदानां शतैस्त्रिभिः ।
षड्भिर्वाजिसहस्रैश्च भीमस्तं देशमागमत् ॥१६५॥

तदनन्तर एक हजार रथ, तीन सौ हाथी और छः हजार घुड़सवारोंके साथ भीमसेन उस युद्धस्थलमें आये ॥१६५॥

ततो भीमात्मजं रक्षो धृष्टद्युम्नं च सानुगम् ।
अयोधयत धर्मात्मा द्रौणिरक्लिष्टविक्रमः ॥१६६॥

उस समय अनायास ही पराक्रम प्रकट करनेवाला धर्मात्मा अश्वत्थामा भीमपुत्र राक्षस घटोत्कच तथा सेवकोंसहित धृष्टद्युम्नके साथ अकेला ही युद्ध कर रहा था ॥१६६॥

तत्राद्भुततमं द्रौणिर्दर्शयामास विक्रमम् ।
अशक्यं कर्तुमन्येन सर्वभूतेषु भारत ॥१६७॥

भारत ! वहाँ द्रोणपुत्रने अत्यन्त अद्भुत पराक्रम दिखाया, जिसे कर दिखाना समस्त प्राणियोंमें दूसरेके लिये असम्भव था ॥ १६७ ॥

निमेषान्तरमात्रेण साश्वसूतरथद्विपाम् ।
अक्षौहिणीं राक्षसानां शितैर्बाणैरशातयत् ॥१६८॥

उसने पलक मारते-मारते अपने पैने बाणोंसे घोड़े, सारथि, रथ और हाथियोंसहित राक्षसोंकी एक अक्षौहिणी सेनाका संहार कर दिया ॥ १६८ ॥

मिषतो भीमसेनस्य हैडिम्बेः पार्षतस्य च ।
यमयोर्धर्मपुत्रस्य विजयस्याच्युतस्य च ॥१६९॥

भीमसेन, घटोत्कच, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, धर्मपुत्र युधिष्ठिर, अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्णके देखते-देखते यह सब कुछ हो गया ॥ १६९ ॥

प्रगाढमञ्जोगतिभिर्नाराचैरभिताडिताः ।
निपेतुर्द्विरदा भूमौ सशृङ्गा इव पर्वताः ॥१७०॥

शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़नेवाले नाराचोंकी गहरी चोट खाकर बहुत-से हाथी शिखरयुक्त पर्वतोंके समान धराशायी हो गये ॥ १७० ॥

निकृत्तैर्हस्तिहस्तैश्च विचलद्भिरितस्ततः ।
रराज वसुधा कीर्णा विसर्पद्भिरिवोरगैः ॥१७१॥

हाथियोंके शुण्ड कटकर इधर-उधर छटपटा रहे थे । उनसे ढकी हुई पृथ्वी रेंगते हुए सर्पोंसे आच्छादित हुई-सी शोभा पा रही थी ॥ १७१ ॥

क्षिप्तैः काञ्चनदण्डैश्च नृपच्छत्रैः क्षितिर्बभौ ।
द्यौरिवोदितचन्द्रार्का ग्रहाकीर्णा युगक्षये ॥१७२॥

इधर-उधर गिरे हुए सुवर्णमय दण्डवाले राजाओंके छत्रोंसे छायी हुई यह पृथ्वी प्रलयकालमें उदित हुए सूर्य, चन्द्रमा तथा ग्रहनक्षत्रोंसे परिपूर्ण आकाशके समान जान पड़ती थी ॥ १७२ ॥

प्रवृद्धध्वजमण्डूकां भेरीविस्तीर्णकच्छपाम् ।
छत्रहंसावलीजुष्टां फेनचामरमालिनीम् ॥१७३॥
कङ्कगृध्रमहाग्राहां नैकायुधझषाकुलाम् ।
विस्तीर्णगजपाषाणां हताश्वमकराकुलाम् ॥१७४॥
रथक्षिप्तमहावप्रां पताकारुचिरद्रुमाम् ।
शरमीनां महारौद्रां प्रासशक्त्यृष्टिडुण्डुभाम् ॥१७५॥
मज्जामांसमहापङ्कां कबन्धावर्जितोडुपाम् ।
केशशैवलकल्माषां भीरूणां कश्मलावहाम् ॥१७६॥
नागेन्द्रहययोधानां शरीरव्ययसम्भवाम् ।
शोणितौघमहाघोरां द्रौणिः प्रावर्तयन्नदीम् ॥१७७॥
योधार्तरवनिर्घोषां क्षतजोर्मिसमाकुलाम् ।
श्वापदातिमहाघोरां यमराष्ट्रमहोदधिम् ॥१७८॥

अश्वत्थामाने उस युद्धस्थलमें खूनकी नदी बहा दी, जो शोणितके प्रवाहसे अत्यन्त भयंकर प्रतीत होती थी, जिसमें कटकर गिरी हुई विशाल ध्वजाएँ मेढकोंके समान और रणभेरियाँ विशाल कछुओंके सदृश जान पड़ती थीं। राजाओंके श्वेत छत्र हंसोंकी श्रेणीके समान उस नदीका सेवन करते थे । चँवरसमूह फेनका भ्रम उत्पन्न करते थे । कंक और गीध ही बड़े बड़े ग्राह-से जान पड़ते थे । अनेक प्रकारके आयुध वहाँ मछलियोंके समान भरे थे । विशाल हाथी शिलाखण्डोंके समान प्रतीत होते थे । मरे हुए घोड़े वहाँ मगरोंके समान व्याप्त थे । गिरे पड़े हुए रथ ऊँचे-ऊँचे टीलोंके समान जान पड़ते थे । पताकाएँ सुन्दर वृक्षोंके समान प्रतीत होती थीं । बाण ही मीन थे । देखनेमें वह बड़ी भयंकर थी । प्रास, शक्ति और ऋष्टि आदि अस्त्र डुण्डुभ सर्पके समान थे । मज्जा और मांस ही उस नदीमें महापङ्कके समान प्रतीत होते थे । तैरती हुई लाशें नौकाका भ्रम उत्पन्न करती थीं । केशरूपी सेवारोंसे वह रंग-बिरंगी दिखायी दे रही थी । वह कायरोंको मोह प्रदान करनेवाली थी । गजराजों, घोड़ों और योद्धाओंके शरीरोंका नाश होनेसे उस नदीका प्राकट्य हुआ था । योद्धाओंकी आर्तवाणी ही उसकी कलकल ध्वनि थी । उस नदीसे रक्तकी लहरें उठ रही थीं । हिंसक जन्तुओंके कारण उसकी भयंकरता और भी बढ़ गयी थी । वह यमराजके राज्यरूपी महासागरसे मिलनेवाली थी ॥ १७३–१७८ ॥

निहत्य राक्षसान् बाणैर्द्रौणिर्हैडिम्बिमार्दयत् ।
पुनरप्यतिसंक्रुद्धः सवृकोदरपार्षतान् ॥१७९॥
स नाराचगणैः पार्थान् द्रौणिर्विद्ध्वा महाबलः ।
जघान सुरथं नाम द्रुपदस्य सुतं विभुः ॥१८०॥

राक्षसोंका वध करके बाणोंद्वारा अश्वत्थामाने घटोत्कचको अत्यन्त पीड़ित कर दिया । फिर उस महाबली वीरने अत्यन्त कुपित होकर अपने नाराचोंसे भीमसेन और धृष्टद्युम्नसहित समस्त कुन्तीकुमारोंको घायल करके द्रुपदपुत्र सुरथको मार डाला ॥ १७९-१८० ॥

पुनः शत्रुंजयं नाम द्रुपदस्यात्मजं रणे ।
बलानीकं जयानीकं जयाश्वं चाभिजघ्निवान् ॥१८१॥

तत्पश्चात् उसने रणक्षेत्रमें द्रुपदकुमार शत्रुंजय, बलानीक, जयानीक और जयाश्वको भी मार गिराया ॥ १८१ ॥

श्रुताह्वयं च राजानं द्रौणिर्निन्ये यमक्षयम् ।
त्रिभिश्चान्यैः शरैस्तीक्ष्णैः सुपुङ्खैर्हेममालिनम् ॥१८२॥
जघान स पृषध्रं च चन्द्रसेनं च मारिष ।
कुन्तिभोजसुतांश्चासौ दशभिर्दश जघ्निवान् ॥१८३॥

आर्य ! इसके बाद द्रोणकुमारने राजा श्रुताह्वको भी यमलोक पहुँचा दिया । फिर दूसरे तीन तीखे और सुन्दर पंखवाले बाणोंद्वारा हेममाली, पृषध्र और चन्द्रसेनका भी वध कर डाला । तदनन्तर दस बाणोंसे उसने राजा कुन्तिभोजके दस पुत्रोंको कालके गालमें डाल दिया ॥

अश्वत्थामा सुसंक्रुद्धः संधायोग्रमजिह्मगम् ।
मुमोचाकर्णपूर्णेन धनुषा शरमुत्तमम् ॥१८४॥
यमदण्डोपमं घोरमुद्दिश्याशु घटोत्कचम् ।

इसके बाद अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए अश्वत्थामाने एक सीधे जानेवाले अत्यन्त भयंकर एवं उत्तम बाणका संधान करके धनुषको कानतक खींचकर उसे शीघ्र ही घटोत्कच-

को लक्ष्य करके छोड़ दिया। वह बाण घोर यमदण्डके समान था ॥ १८४½ ॥

स भित्त्वा हृदयं तस्य राक्षसस्य महाशरः ॥१८५॥
विवेश वसुधां शीघ्रं सुपुङ्खः पृथिवीपते ।

पृथ्वीपते ! वह सुन्दर पंखोंवाला महाबाण उस राक्षसका हृदय विदीर्ण करके शीघ्र ही पृथ्वीमें समा गया ।१८५½।

तं हतं पतितं ज्ञात्वा धृष्टद्युम्नो महारथः ॥१८६॥
द्रौणेः सकाशाद् राजेन्द्र व्यपनिन्ये रथोत्तमम् ।

राजेन्द्र ! घटोत्कचको मरकर गिरा हुआ जान महारथी धृष्टद्युम्नने अपने उत्तम रथको अश्वत्थामाके पाससे हटा लिया ॥ १८६½ ॥

ततः पराङ्मुखनृपं सैन्यं यौधिष्ठिरं नृप ॥१८७॥
पराजित्य रणे वीरो द्रोणपुत्रो ननाद ह ।
पूजितः सर्वभूतेषु तव पुत्रैश्च भारत ॥१८८॥

नरेश्वर ! फिर तो युधिष्ठिरकी सेनाके सभी नरेश युद्धसे विमुख हो गये। उस सेनाको परास्त करके वीर द्रोणपुत्र रणभूमिमें गर्जना करने लगा। भारत ! उस समय सम्पूर्ण प्राणियोंमें अश्वत्थामाका बड़ा आदर हुआ। आपके पुत्रोंने भी उसका बड़ा सम्मान किया ॥ १८७-१८८ ॥

अथ शरशतभिन्नकृत्तदेहै-
र्हतपतितैः क्षणदाचरैः समन्तात् ।
निधनमुपगतैर्मही कृताभूद्
गिरिशिखरैरिव दुर्गमातिरौद्रा ॥१८९॥

तदनन्तर सैकड़ों बाणोंसे शरीर छिन्न-भिन्न हो जानेके कारण मरकर गिरे और मृत्युको प्राप्त हुए निशाचरोंकी लाशोंसे पटी हुई चारों ओरकी भूमि पर्वतशिखरोंसे आच्छादित हुई-सी अत्यन्त भयंकर और दुर्गम प्रतीत होने लगी ॥ १८९ ॥

तं सिद्धगन्धर्वपिशाचसंघा
नागाः सुपर्णाः पितरो वयांसि ।
रक्षोगणा भूतगणाश्च द्रौणि-
मपूजयन्नप्सरसः सुराश्च ॥१९०॥

उस समय वहाँ सिद्धों, गन्धर्वों, पिशाचों, नागों, सुपर्णों, पितरों, पक्षियों, राक्षसों, भूतों, अप्सराओं तथा देवताओंने भी द्रोणपुत्र अश्वत्थामाकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धविषयक एक सौ छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५६ ॥

सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सोमदत्तकी मूर्छा, भीमके द्वारा बाह्लीकका वध, धृतराष्ट्रके दस पुत्रों और शकुनिके सात रथियों एवं पाँच भाइयोंका संहार तथा द्रोणाचार्य और युधिष्ठिरके युद्धमें युधिष्ठिरकी विजय

संजय उवाच

द्रुपदस्यात्मजान् दृष्ट्वा कुन्तिभोजसुतांस्तथा ।
द्रोणपुत्रेण निहतान् राक्षसांश्च सहस्रशः ॥ १ ॥
युधिष्ठिरो भीमसेनो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
युयुधानश्च संयत्ता युद्धायैव मनो दधुः ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके द्वारा द्रुपद और कुन्तिभोजके पुत्रों तथा सहस्रों राक्षसोंको मारा गया देख युधिष्ठिर, भीमसेन, द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न तथा युयुधानने भी सावधान होकर युद्धमें ही मन लगाया ॥

सोमदत्तः पुनः क्रुद्धो दृष्ट्वा सात्यकिमाहवे ।
महता शरवर्षेणच्छादयामास भारत ॥ ३ ॥

भारत ! युद्धस्थलमें सात्यकिको देखकर सोमदत्त पुनः कुपित हो उठे और उन्होंने बड़ी भारी बाणवर्षा करके सात्यकिको आच्छादित कर दिया ॥ ३ ॥

ततः समभवद् युद्धमतीव भयवर्धनम् ।
त्वदीयानां परेषां च घोरं विजयकाङ्क्षिणाम् ॥ ४ ॥

फिर तो विजयकी अभिलाषा रखनेवाले आपके और शत्रुपक्षके सैनिकोंमें अत्यन्त भयंकर घोर युद्ध छिड़ गया ॥

तं दृष्ट्वा समुपायान्तं रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ।
दशभिः सात्वतस्यार्थे भीमो विव्याध सायकैः ॥ ५ ॥

सोमदत्तको आते देख भीमसेनने सात्यकिकी सहायताके लिये शिलापर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले दस बाणोंद्वारा उन्हें घायल कर दिया ॥ ५ ॥

सोमदत्तोऽपि तं वीरं शतेन प्रत्यविध्यत ।
सात्वतस्त्वभिसंक्रुद्धः पुत्राधिभिरभिप्लुतम् ॥ ६ ॥
वृद्धं वृद्धगुणैर्युक्तं ययातिमिव नाहुषम् ।
विव्याध दशभिस्तीक्ष्णैः शरैर्वज्रनिपातनैः ॥ ७ ॥

सोमदत्तने भी वीर भीमसेनको सौ बाणोंसे बेधकर बदला चुकाया। इधर सात्यकिने भी अत्यन्त कुपित हो पुत्रशोकमें डूबे हुए, नहुषनन्दन ययातिकी भाँति वृद्धताके गुणोंसे युक्त बूढ़े सोमदत्तको वज्रकी भी मार गिरानेवाले दस तीखे बाणोंसे बींध डाला ॥ ६-७ ॥

शक्त्या चैनं विनिर्भिद्य पुनर्विव्याध सप्तभिः ।
ततस्तु सात्यकेरर्थे भीमसेनो नवं दृढम् ॥ ८ ॥

मुमोच परिघं घोरं सोमदत्तस्य मूर्धनि ।

फिर शक्तिसे इन्हें विदीर्ण करके सात बाणोंद्वारा पुनः गहरी चोट पहुँचायी । तत्पश्चात् सात्यकिके लिये भीमसेनने सोमदत्तके मस्तकपर नूतन, सुदृढ़ एवं भयंकर परिघका प्रहार किया ॥ ८½ ॥

सात्वतोऽप्यग्निसंकाशं मुमोच शरमुत्तमम् ॥ ९ ॥
सोमदत्तोरसि क्रुद्धः सुपत्रं निशितं युधि ।

इसी समय सात्यकिने भी युद्धस्थलमें कुपित हो सोमदत्तकी छातीपर सुन्दर पंखवाले, अग्निके समान तेजस्वी, उत्तम और तीखे बाणका प्रहार किया ॥ ९½ ॥

युगपत् पेततुर्वीरे घोरौ परिघमार्गणौ ॥ १० ॥
शरीरे सोमदत्तस्य स पपात महारथः ।

वे भयंकर परिघ और बाण वीर सोमदत्तके शरीरपर एक ही साथ गिरे । इससे महारथी सोमदत्त मूर्छित होकर गिर पड़े ॥ १०½ ॥

व्यामोहिते तु तनये बाह्लीकस्तमुपाद्रवत् ॥ ११ ॥
विसृजञ्छरवर्षाणि कालवर्षीव तोयदः ।

अपने पुत्रके मूर्च्छित होनेपर बाह्लीकने वर्षा ऋतुमें वर्षा करनेवाले मेघके समान बाणोंकी वृष्टि करते हुए वहाँ सात्यकिपर धावा किया ॥ ११½ ॥

भीमोऽथ सात्वतस्यार्थे बाह्लीकं नवभिः शरैः ॥ १२ ॥
प्रपीडयन् महात्मानं विव्याध रणमूर्धनि ।

भीमसेनने सात्यकिके लिये महात्मा बाह्लीकको पीड़ित करते हुए युद्धके मुहानेपर उन्हें नौ बाणोंसे घायल कर दिया ॥ १२½ ॥

प्रातिपेयस्तु संक्रुद्धः शक्तिं भीमस्य वक्षसि ॥ १३ ॥
निचखान महाबाहुः पुरंदर इवाशनिम् ।

तब महाबाहु प्रतीपपुत्र बाह्लीकने अत्यन्त कुपित हो भीमसेनकी छातीमें अपनी शक्ति धँसा दी, मानो देवराज इन्द्रने किसी पर्वतपर वज्र मारा हो ॥ १३½ ॥

स तथाभिहतो भीमश्चकम्पे च मुमोह च ॥ १४ ॥
प्राप्य चेतश्च बलवान् गदामस्मै ससर्ज ह ।

इस प्रकार शक्तिसे आहत होकर भीमसेन काँप उठे और मूर्च्छित हो गये । फिर सचेत होनेपर बलवान् भीमने उनपर गदाका प्रहार किया ॥ १४½ ॥

सा पाण्डवेन प्रहिता बाह्लीकस्य शिरोऽहरत् ॥ १५ ॥
स पपात हतः पृथ्व्यां वज्राहत इवाद्रिराट् ।

पाण्डुपुत्र भीमसेनद्वारा चलायी हुई उस गदाने बाह्लीकका सिर उड़ा दिया । वे वज्रके मारे हुए पर्वतराजकी भाँति मरकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १५½ ॥

तस्मिन् विनिहते वीरे बाह्लीके पुरुषर्षभ ॥ १६ ॥
पुत्रास्तेऽभ्यर्दयन् भीमं दश दाशरथेः समाः ।

नरश्रेष्ठ ! वीर बाह्लीकके मारे जानेपर श्रीरामचन्द्रजीके समान पराक्रमी आपके दस पुत्र भीमसेनको पीड़ा देने लगे ॥

नागदत्तो दृढरथो महाबाहुरयोभुजः ॥ १७ ॥
दृढः सुहस्तो विरजाः प्रमाथ्युग्रोऽनुयाय्यपि ।

उनके नाम इस प्रकार हैं—नागदत्त, दृढ़रथ (दृढ़रथाश्रय), महाबाहु, अयोभुज (अयोबाहु), दृढ़ (दृढ़क्षत्र), सुहस्त, विरजा, प्रमाथी, उग्र (उग्रश्रवा) और अनुयायी (अग्रयायी) ॥ १७½ ॥

तान् दृष्ट्वा चुक्रुधे भीमो जगृह्वे भारसाधनान् ॥ १८ ॥
एकमेकं समुद्दिश्य पातयामास मर्मसु ।

उनको सामने देखकर भीमसेन कुपित हो उठे । उन्होंने प्रत्येकके लिये एक-एक करके भारसाधनमें समर्थ दस बाण हाथमें लिये और उन्हें उनके मर्मस्थानोंपर चलाया ॥ १८½ ॥

ते विद्धा व्यसवः पेतुः स्यन्दनेभ्यो हतौजसः ॥ १९ ॥
चण्डवातप्रभग्नास्तु पर्वताग्रान्महीरुहाः ।

उन बाणोंसे घायल होकर आपके पुत्र अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठे और पर्वतशिखरसे प्रचण्ड वायुद्वारा उखाड़े हुए वृक्षोंके समान तेजोहीन होकर रथोंसे नीचे गिर पड़े ॥

नाराचैर्दशभिर्भीमस्तान् निहत्य तवात्मजान् ॥ २० ॥
कर्णस्य दयितं पुत्रं वृषसेनमवाकिरत् ।

आपके उन पुत्रोंको दस नाराचोंद्वारा मारकर भीमसेनने कर्णके प्यारे पुत्र वृषसेनपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥

ततो वृकरथो नाम भ्राता कर्णस्य विश्रुतः ॥ २१ ॥
जघान भीमं नाराचैस्तमप्यभ्यद्रवद् बली ।

तदनन्तर कर्णके सुविख्यात बलवान् भ्राता वृकरथने आकर भीमसेनपर भी आक्रमण किया और उन्हें नाराचोंद्वारा घायल कर दिया ॥ २१½ ॥

ततः सप्त रथान् वीरः स्यालानां तव भारत ॥ २२ ॥
निहत्य भीमो नाराचैः शतचन्द्रमपोथयत् ।

भारत ! तत्पश्चात् वीर भीमसेनने आपके सालोंमेंसे सात रथियोंको नाराचोंद्वारा मारकर शतचन्द्रको भी कालके गालमें भेज दिया ॥ २२½ ॥

अमर्षयन्तो निहतं शतचन्द्रं महारथम् ॥ २३ ॥
शकुनेर्भ्रातरो वीरा गवाक्षः शरभो विभुः ।
सुभगो भानुदत्तश्च शूराः पञ्च महारथाः ॥ २४ ॥
अभिद्रुत्य शरैस्तीक्ष्णैर्भीमसेनमताडयन् ।

महारथी शतचन्द्रके मारे जानेपर अमर्षमें भरे हुए शकुनिके वीर भाई गवाक्ष, शरभ, विभु, सुभग और भानुदत्त—ये पाँच शूर महारथी भीमसेनपर टूट पड़े और उन्हें पैने बाणोंद्वारा घायल करने लगे ॥ २३-२४½ ॥

स ताड्यमानो नाराचैर्वृष्टिवेगैरिवाचलः ॥ २५ ॥
जघान पञ्चभिर्बाणैः पञ्चैवातिरथान् बली ।

जैसे वर्षाके वेगसे पर्वत आहत होता है, उसी प्रकार उनके नाराचोंसे घायल होकर बलवान् भीमसेनने अपने पाँच बाणोंद्वारा उन पाँचों अतिरथी वीरोंको मार डाला ॥

तान् दृष्ट्वा निहतान् वीरान् विचेलुर्नृपसत्तमाः ॥ २६ ॥
ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धस्तवानीकमशातयत् ।
मिषतः कुम्भयोनेस्तु पुत्राणां तव चानघ ॥ २७ ॥

उन पाँचों वीरोंको मारा गया देख सभी श्रेष्ठ नरेश विचलित हो उठे। निष्पाप नरेश्वर! तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए राजा युधिष्ठिर द्रोणाचार्य तथा आपके पुत्रोंके देखते-देखते आपकी सेनाका संहार करने लगे ॥ २६-२७ ॥

अम्बष्ठान् मालवाञ्छूरांस्त्रिगर्तान् स शिबीनपि ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय क्रुद्धो युद्धे युधिष्ठिरः ॥ २८ ॥

उस युद्धमें क्रुद्ध होकर युधिष्ठिरने अम्बष्ठों, मालवों, शूरवीर त्रिगर्तों तथा शिबिदेशीय सैनिकोंको भी मृत्युके लोकमें भेज दिया ॥ २८ ॥

अभीषाहाञ्छूरसेनान् बाह्लीकान् सवसातिकान् ।
निकृत्य पृथिवीं राजा चक्रे शोणितकर्दमाम् ॥ २९ ॥

अभीषाह, शूरसेन, बाह्लीक और वसातिदेशीय योद्धाओंको नष्ट करके राजा युधिष्ठिरने इस भूतलपर रक्तकी कीच मचा दी ॥ २९ ॥

यौधेयान् मालवान् राजन् मद्रकाणां गणान् युधि ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय शूरान् बाणैर्युधिष्ठिरः ॥ ३० ॥

राजन्! युधिष्ठिरने अपने बाणोंसे यौधेय, मालव तथा शूरवीर मद्रकगणोंको मृत्युके लोकमें भेज दिया ॥ ३० ॥

हताहरत गृह्णीत विध्यत व्यवकृन्तत ।
इत्यासीत् तुमुलः शब्दो युधिष्ठिररथं प्रति ॥ ३१ ॥

युधिष्ठिरके रथके आसपास 'मारो, ले आओ, पकड़ो, घायल करो, टुकड़े-टुकड़े कर डालो' इत्यादि भयंकर शब्द गूँजने लगा ॥ ३१ ॥

सैन्यानि द्रावयन्तं तं द्रोणो दृष्ट्वा युधिष्ठिरम् ।
चोदितस्तव पुत्रेण सायकैरभ्यवाकिरत् ॥ ३२ ॥

द्रोणाचार्यने युधिष्ठिरको अपनी सेनाओंको खदेड़ते देख आपके पुत्र दुर्योधनसे प्रेरित होकर उनपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ३२ ॥

द्रोणस्तु परमक्रुद्धो वायव्यास्त्रेण पार्थिवम् ।
विव्याध सोऽपि तद् दिव्यमस्त्रमस्त्रेण जघ्निवान् ॥ ३३ ॥

अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए द्रोणाचार्यने वायव्यास्त्रसे राजा युधिष्ठिरको बींध डाला। युधिष्ठिरने भी उनके दिव्यास्त्रको अपने दिव्यास्त्रसे ही नष्ट कर दिया ॥ ३३ ॥

तस्मिन् विनिहते चास्त्रे भारद्वाजो युधिष्ठिरे ।
वारुणं याम्यमाग्नेयं त्वाष्ट्रं सावित्रमेव च ॥ ३४ ॥
चिक्षेप परमक्रुद्धो जिघांसुः पाण्डुनन्दनम् ।

उस अस्त्रके नष्ट हो जानेपर द्रोणाचार्यने युधिष्ठिरपर क्रमशः वारुण, याम्य, आग्नेय, त्वाष्ट्र और सावित्र नामक दिव्यास्त्र चलाया; क्योंकि वे अत्यन्त कुपित होकर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरको मार डालना चाहते थे ॥ ३४½ ॥

क्षिप्तानि क्षिप्यमाणानि तानि चास्त्राणि धर्मजः ॥ ३५ ॥
जघानास्त्रैर्महाबाहुः कुम्भयोनेरवित्रसन् ।

परंतु महाबाहु धर्मपुत्र युधिष्ठिरने द्रोणाचार्यसे तनिक भी भय न खाकर उनके द्वारा चलाये गये और चलाये जानेवाले सभी अस्त्रोंको अपने दिव्यास्त्रोंसे नष्ट कर दिया ॥

सत्यां चिकीर्षमाणस्तु प्रतिज्ञां कुम्भसम्भवः ॥ ३६ ॥
प्रादुश्चक्रेऽस्त्रमैन्द्रं वै प्राजापत्यं च भारत ।
जिघांसुर्धर्मतनयं तव पुत्रहिते रतः ॥ ३७ ॥

भारत! द्रोणाचार्यने अपनी प्रतिज्ञाको सच्ची करनेकी इच्छासे आपके पुत्रके हितमें तत्पर हो धर्मपुत्र युधिष्ठिरको मार डालनेकी अभिलाषा लेकर उनके ऊपर ऐन्द्र और प्राजापत्य नामक अस्त्रोंका प्रयोग किया ॥ ३६-३७ ॥

पतिः कुरूणां गजसिंहगामी
विशालवक्षाः पृथुलोहिताक्षः ।
प्रादुश्चकारास्त्रमहीनतेजा
माहेन्द्रमन्यत् स जघान तेन ॥ ३८ ॥

तब गज और सिंहके समान गतिवाले, विशाल वक्षःस्थलसे सुशोभित, बड़े-बड़े लाल नेत्रोंवाले, उत्कृष्ट तेजस्वी कुरुपति युधिष्ठिरने माहेन्द्र अस्त्र प्रकट किया और उसीसे अन्य सभी दिव्यास्त्रोंको नष्ट कर दिया ॥ ३८ ॥

विहन्यमानेष्वस्त्रेषु द्रोणः क्रोधसमन्वितः ।
युधिष्ठिरवधं प्रेप्सुर्ब्राह्ममस्त्रमुदैरयत् ॥ ३९ ॥

उन अस्त्रोंके नष्ट हो जानेपर क्रोधभरे द्रोणाचार्यने युधिष्ठिरका वध करनेकी इच्छासे ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया ॥

ततो नाज्ञासिषं किंचिद् घोरेण तमसाऽऽवृते ।
सर्वभूतानि च परं त्रासं जग्मुर्महीपते ॥ ४० ॥

महीपते! फिर तो मैं घोर अन्धकारसे आवृत उस युद्धस्थलमें कुछ भी जान न सका और समस्त प्राणी अत्यन्त भयभीत हो उठे ॥ ४० ॥

ब्रह्मास्त्रमुद्यतं दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र तदस्त्रं प्रत्यवारयत् ॥ ४१ ॥

राजेन्द्र! ब्रह्मास्त्रको उद्यत देख कुन्तीकुमार युधिष्ठिरने ब्रह्मास्त्रसे ही उस अस्त्रका निवारण कर दिया ॥ ४१ ॥

ततः सैनिकमुख्यास्ते प्रशशंसुर्नरर्षभौ ।
द्रोणपार्थौ महेष्वासौ सर्वयुद्धविशारदौ ॥ ४२ ॥

तदनन्तर प्रधान-प्रधान सैनिक सम्पूर्ण युद्धकलामें

प्रवीण, महाधनुर्धर, नरश्रेष्ठ द्रोणाचार्य और युधिष्ठिरकी बड़ी प्रशंसा करने लगे ॥ ४२ ॥

ततः प्रमुच्य कौन्तेयं द्रोणो द्रुपदवाहिनीम् ।
व्यधमत् क्रोधताम्राक्षो वायव्यास्त्रेण भारत ॥ ४३ ॥

भारत ! उस समय द्रोणाचार्यने कुन्तीकुमारका सामना करना छोड़कर क्रोधसे लाल आँखें किये वायव्यास्त्रके द्वारा द्रुपदकी सेनाका संहार आरम्भ किया ॥४३॥

ते हन्यमाना द्रोणेन पञ्चालाः प्राद्रवन् भयात् ।
पश्यतो भीमसेनस्य पार्थस्य च महात्मनः ॥ ४४ ॥

द्रोणाचार्यकी मार खाकर पाञ्चाल सैनिक भीमसेन और महात्मा अर्जुनके देखते-देखते भयके मारे भागने लगे ॥४४॥

ततः किरीटी भीमश्च सहसा संन्यवर्तताम् ।
महद्भ्यां रथवंशाभ्यां परिगृह्य बलं तदा ॥ ४५ ॥

यह देख किरीटधारी अर्जुन और भीमसेन विशाल रथ-सेनाओंके द्वारा अपनी सेनाकी रोक-थाम करते हुए सहसा उस ओर लौट पड़े ॥ ४५ ॥

बीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वमुत्तरं च वृकोदरः ।
भारद्वाजं शरौघाभ्यां महद्भ्यामभ्यवर्षताम् ॥ ४६ ॥

अर्जुनने द्रोणाचार्यके दाहिने पार्श्वमें और भीमसेनने बायें पार्श्वमें महान् बाण-समूहोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ४६ ॥

केकयाः सृञ्जयाश्चैव पञ्चालाश्च महौजसः ।
अन्वगच्छन् महाराज मत्स्याश्च सह सात्वतैः ॥ ४७ ॥

महाराज ! उस समय केकय, सृंजय, महातेजस्वी पाञ्चाल, मत्स्य तथा यादव सैनिकोंने भी उन दोनोंका अनुसरण किया॥

ततः सा भारती सेना वध्यमाना किरीटिना ।
तमसा निद्रया चैव पुनरेव व्यदीर्यत ॥ ४८ ॥

उस समय किरीटधारी अर्जुनकी मार खाती हुई कौरवी-सेना अंधकार और निद्रासे पीड़ित हो पुनः तितर-बितर हो गयी ॥ ४८ ॥

द्रोणेन वार्यमाणास्ते स्वयं तव सुतेन च ।
नाशक्यन्त महाराज योधा वारयितुं तदा ॥ ४९ ॥

महाराज ! द्रोणाचार्य और स्वयं आपके पुत्र दुर्योधनके मना करनेपर भी उस समय आपके योद्धा रोके न जा सके॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे द्रोणयुधिष्ठिरयुद्धे सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसंगमें द्रोणाचार्य और युधिष्ठिरका युद्धविषयक एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५७॥

अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

दुर्योधन और कर्णकी बातचीत, कृपाचार्यद्वारा कर्णको फटकारना तथा कर्णद्वारा कृपाचार्यका अपमान

संजय उवाच

उदीर्यमाणं तद् दृष्ट्वा पाण्डवानां महद् बलम् ।
अविषह्यं च मन्वानः कर्णं दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! पाण्डवोंकी उस विशाल सेनाका जोर बढ़ते देख उसे असह्य मानकर दुर्योधनने कर्णसे कहा—॥ १ ॥

अयं स कालः सम्प्राप्तो मित्राणां मित्रवत्सल ।
त्रायस्व समरे कर्ण सर्वान् योधान् महारथान् ॥ २ ॥
पञ्चालैर्मत्स्यकैकेयैः पाण्डवैश्च महारथैः ।
वृतान् समन्तात् संक्रुद्धैर्निःश्वसद्भिरिवोरगैः ॥ ३ ॥

'मित्रवत्सल कर्ण ! यही मित्रोंके कर्तव्यपालनका उपयुक्त अवसर आया है । क्रोधमें भरे हुए पाञ्चाल, मत्स्य, केकय तथा पाण्डव महारथी फुफकारते हुए सर्पोंके समान भयंकर हो उठे हैं । उनके द्वारा चारों ओरसे घिरे हुए मेरे समस्त महारथी योद्धाओंकी आज तुम समराङ्गणमें रक्षा करो ॥

एते नदन्ति संहृष्टाः पाण्डवा जितकाशिनः ।
शक्रोपमाश्च बहवः पञ्चालानां रथव्रजाः ॥ ४ ॥

'देखो, ये विजयसे सुशोभित होनेवाले पाण्डव तथा इन्द्रके समान पराक्रमी बहुसंख्यक पाञ्चाल महारथी कैसे हर्षोत्फुल्ल होकर सिंहनाद कर रहे हैं !' ॥ ४ ॥

कर्ण उवाच

परित्रातुमिह प्राप्तो यदि पार्थं पुरंदरः ।
तमप्याशु पराजित्य ततो हन्तास्मि पाण्डवम् ॥ ५ ॥

कर्णने कहा—राजन् ! यदि साक्षात् इन्द्र यहाँ कुन्तीकुमार अर्जुनकी रक्षा करनेके लिये आ गये हों तो उन्हें भी शीघ्र ही पराजित करके मैं पाण्डुपुत्र अर्जुनको अवश्य मार डालूँगा ॥ ५ ॥

सत्यं ते प्रतिजानामि समाश्वसिहि भारत ।
हन्तास्मि पाण्डुतनयान् पञ्चालांश्च समागतान् ॥ ६ ॥

भरतनन्दन ! तुम धैर्य धारण करो । मैं तुमसे सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि युद्धस्थलमें आये हुए पाण्डवों तथा पाञ्चालोंको निश्चय ही मारूँगा ॥ ६ ॥

जयं ते प्रतिदास्यामि वासवस्येव पावकिः ।
प्रियं तव मया कार्यमिति जीवामि पार्थिव ॥ ७ ॥

जैसे अग्निकुमार कार्तिकेयने तारकासुरका विनाश करके इन्द्रको विजय दिलायी थी, उसी प्रकार मैं आज तुम्हें

विजय प्रदान करूँगा । भूपाल ! मुझे तुम्हारा प्रिय करना है, इसीलिये जीवन धारण करता हूँ ॥ ७ ॥

सर्वेषामेव पार्थानां फाल्गुनो बलवत्तरः ।
तस्याமोघां विमोक्ष्यामि शक्तिं शक्रविनिर्मिताम् ॥ ८ ॥

कुन्तीके सभी पुत्रोंमें अर्जुन ही अधिक शक्तिशाली हैं, अतः मैं इन्द्रकी दी हुई अमोघ शक्तिको अर्जुनपर ही छोड़ूँगा ॥

तस्मिन् हते महेष्वासे भ्रातरस्तस्य मानद ।
तव वश्या भविष्यन्ति वनं यास्यन्ति वा पुनः ॥ ९ ॥

मानद ! महाधनुर्धर अर्जुनके मारे जानेपर उनके सभी भाई तुम्हारे वशमें हो जायँगे अथवा पुनः वनमें चले जायँगे ॥

मयि जीवति कौरव्य विषादं मा कृथाः क्वचित् ।
अहं जेष्यामि समरे सहितान् सर्वपाण्डवान् ॥ १० ॥

कुरुनन्दन ! तुम मेरे जीते-जी कभी विषाद न करो । मैं समरभूमिमें संगठित होकर आये हुए समस्त पाण्डवोंको जीत लूँगा ॥ १० ॥

पञ्चालान् केकयांश्चैव वृष्णींश्चापि समागतान् ।
बाणौघैः शकलीकृत्य तव दास्यामि मेदिनीम् ॥ ११ ॥

मैं अपने बाणसमूहोंद्वारा रणभूमिमें पधारे हुए पाञ्चालों, केकयों और वृष्णिवंशियोंके भी टुकड़े-टुकड़े करके यह सारी पृथ्वी तुम्हें दे दूँगा ॥ ११ ॥

संजय उवाच

एवं ब्रुवाणं कर्णं तु कृपः शारद्वतोऽब्रवीत् ।
स्मयन्निव महाबाहुः सूतपुत्रमिदं वचः ॥ १२ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस तरहकी बातें करते हुए सूतपुत्र कर्णसे शरद्वान्के पुत्र महाबाहु कृपाचार्यने मुसकराते हुए-से यह बात कही—॥ १२ ॥

शोभनं शोभनं कर्ण सनाथः कुरुपुङ्गवः ।
त्वया नाथेन राधेय वचसा यदि सिध्यति ॥ १३ ॥

'कर्ण ! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा ! राधापुत्र ! यदि बातें बनानेसे ही कार्य सिद्ध हो जाय, तब तो तुम-जैसे सहायकको पाकर कुरुराज दुर्योधन सनाथ हो गये ॥ १३ ॥

बहुशः कत्थसे कर्ण कौरवस्य समीपतः ।
न तु ते विक्रमः कश्चिद् दृश्यते फलमेव वा ॥ १४ ॥

'कर्ण ! तुम कुरुनन्दन सुयोधनके समीप तो बहुत बढ़-कर बातें किया करते हो; किंतु न तो कभी कोई तुम्हारा पराक्रम देखा जाता है और न उसका कोई फल ही सामने आता है ॥

समागमः पाण्डुसुतैर्दृष्टस्ते बहुशो युधि ।
सर्वत्र निर्जितश्चासि पाण्डवैः सूतनन्दन ॥ १५ ॥

'सूतनन्दन ! पाण्डुके पुत्रोंसे युद्धस्थलमें तुम्हारी अनेकों बार मुठभेड़ हुई है; परंतु सर्वत्र पाण्डवोंसे तुम्हीं परास्त हुए हो ॥ १५ ॥

ह्रियमाणे तदा कर्णे गन्धर्वैर्धृतराष्ट्रजे ।
तदायुध्यन्त सैन्यानि त्वमेकोऽग्रेऽपलायिथाः ॥ १६ ॥

'कर्ण ! याद है कि नहीं, जब गन्धर्व दुर्योधनको पकड़-कर लिये जा रहे थे, उस समय सारी सेना तो युद्ध कर रही थी और अकेले तुम ही सबसे पहले पलायन कर गये थे ॥

विराटनगरे चापि समेताः सर्वकौरवाः ।
पार्थेन निर्जिता युद्धे त्वं च कर्ण सहानुजः ॥ १७ ॥

'कर्ण ! विराट नगरमें भी सम्पूर्ण कौरव एकत्र हुए थे; किंतु अर्जुनने अकेले ही वहाँ सबको हरा दिया था । कर्ण ! तुम भी अपने भाइयोंके साथ परास्त हुए थे ॥ १७ ॥

एकस्याप्यसमर्थस्त्वं फाल्गुनस्य रणाजिरे ।
कथमुत्सहसे जेतुं सकृष्णान् सर्वपाण्डवान् ॥ १८ ॥

'समराङ्गणमें अकेले अर्जुनका सामना करनेकी भी तुममें शक्ति नहीं है; फिर श्रीकृष्णसहित सम्पूर्ण पाण्डवोंको जीत लेनेका उत्साह कैसे दिखाते हो ? ॥ १८ ॥

अब्रुवन् कर्ण युध्यस्व कत्थसे बहु सूतज ।
अनुक्त्वा विक्रमेद् यस्तु तद् वै सत्पुरुषव्रतम् ॥ १९ ॥

'सूतपुत्र कर्ण ! चुपचाप युद्ध करो । तुम बातें बहुत बनाते हो । जो बिना कुछ कहे ही पराक्रम दिखाये, वही वीर है और वैसा करना ही सत्पुरुषोंका व्रत है ॥ १९ ॥

गर्जित्वा सूतपुत्र त्वं शारदाभ्रमिवाफलम् ।
निष्फलो दृश्यसे कर्ण तच्च राजा न बुध्यते ॥ २० ॥

'सूतपुत्र कर्ण ! तुम शरद् ऋतुके निष्फल बादलोंके समान गर्जना करके भी निष्फल ही दिखायी देते हो; किंतु राजा दुर्योधन इस बातको नहीं समझ रहे हैं ॥ २० ॥

तावद् गर्जस्व राधेय यावत् पार्थं न पश्यसि ।
आरात् पार्थं हि ते दृष्ट्वा दुर्लभं गर्जितं पुनः ॥ २१ ॥

'राधानन्दन ! जबतक तुम अर्जुनको नहीं देखते हो, तभीतक गर्जना कर लो । कुन्तीकुमार अर्जुनको समीप देख लेनेपर फिर यह गर्जना तुम्हारे लिये दुर्लभ हो जायगी ॥ २१ ॥

त्वमनासाद्य तान् बाणान् फाल्गुनस्य विगर्जसि ।
पार्थसायकविद्धस्य दुर्लभं गर्जितं तव ॥ २२ ॥

'जबतक अर्जुनके वे बाण तुम्हारे ऊपर नहीं पड़ रहे हैं, तभीतक तुम जोर-जोरसे गरज रहे हो । अर्जुनके बाणोंसे घायल होनेपर तुम्हारे लिये यह गर्जन-तर्जन दुर्लभ हो जायगा ॥

बाहुभिः क्षत्रियाः शूरा वाग्भिः शूरा द्विजातयः ।
धनुषा फाल्गुनः शूरः कर्णः शूरो मनोरथैः ॥ २३ ॥
तोषितो येन रुद्रोऽपि कः पार्थं प्रतिघातयेत् ।

'क्षत्रिय अपनी भुजाओंसे शौर्यका परिचय देते हैं । ब्राह्मण वाणीद्वारा प्रवचन करनेमें वीर होते हैं । अर्जुन धनुष चलाने-में शूर हैं; किंतु कर्ण केवल मनसूबे बाँधनेमें वीर है । जिन्होंने अपने

पराक्रमसे भगवान् शंकरको भी संतुष्ट किया है, उन अर्जुनको कौन मार सकता है ?' ॥ २३½ ॥

एवं संरुषितस्तेन तदा शारद्वतेन ह ॥ २४ ॥
कर्णः प्रहरतां श्रेष्ठः कृपं वाक्यमथाब्रवीत् ।

उन कृपाचार्यके ऐसा कहनेपर योद्धाओंमें श्रेष्ठ कर्णने उस समय रुष्ट होकर कृपाचार्यसे इस प्रकार कहा—॥ २४½ ॥

शूरा गर्जन्ति सततं प्रावृषीव बलाहकाः ॥ २५ ॥
फलं चाशु प्रयच्छन्ति बीजमुप्तमृताविव ।

'शूरवीर वर्षाकालके मेघोंकी तरह सदा गरजते हैं और ठीक ऋतुमें बोये हुए बीजके समान शीघ्र ही फल भी देते हैं ॥

दोषमत्र न पश्यामि शूराणां रणमूर्धनि ॥ २६ ॥
तत्तद् विकत्थमानानां भारं चोद्वहतां मृधे ।

'युद्धस्थलमें महान् भार उठानेवाले शूरवीर यदि युद्धके मुहानेपर अपनी प्रशंसाकी भी बातें कहते हैं तो इसमें मुझे उनका कोई दोष नहीं दिखायी देता ॥ २६½ ॥

यं भारं पुरुषो वोढुं मनसा हि व्यवस्यति ॥ २७ ॥
दैवमस्य ध्रुवं तत्र साहाय्यायोपपद्यते ।

'पुरुष अपने मनसे जिस भारको ढोनेका निश्चय करता है, उसमें दैव अवश्य ही उसकी सहायता करता है ॥ २७½ ॥

व्यवसायद्वितीयोऽहं मनसा भारमुद्वहन् ॥ २८ ॥
हत्वा पाण्डुसुतानाजौ सकृष्णान् सहसात्वतान् ।
गर्जामि यद्यहं विप्र तव किं तत्र नश्यति ॥ २९ ॥

'मैं मनसे जिस कार्यभारका वहन कर रहा हूँ, उसकी सिद्धिमें दृढ़ निश्चय ही मेरा सहायक है । विप्रवर ! मैं कृष्ण और सात्यकिसहित समस्त पाण्डवोंको युद्धमें मारनेका निश्चय करके यदि गरज रहा हूँ तो उसमें आपका क्या नष्ट हुआ जा रहा है ? ॥ २८-२९ ॥

वृथा शूरा न गर्जन्ति शारदा इव तोयदाः ।
सामर्थ्यमात्मनो ज्ञात्वा ततो गर्जन्ति पण्डिताः ॥ ३० ॥

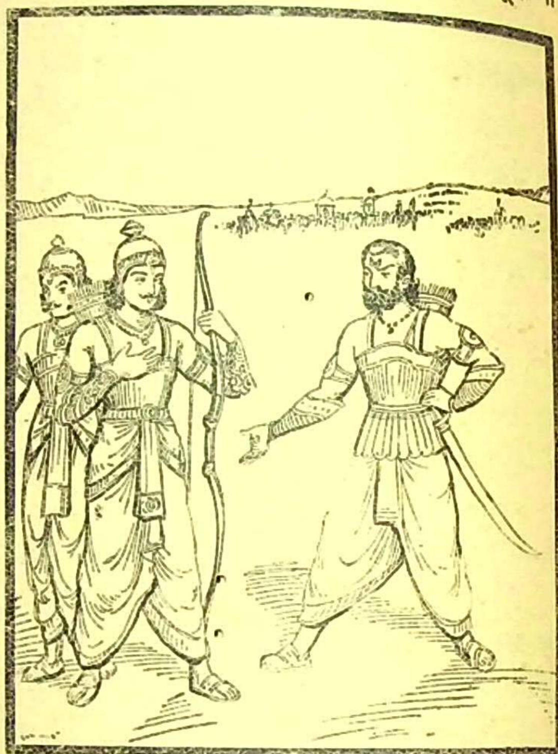
'शरद्-ऋतुके बादलोंके समान शूरवीर व्यर्थ नहीं गरजते हैं। विद्वान् पुरुष पहले अपनी सामर्थ्यको समझ लेते हैं, उसके बाद गर्जना करते हैं ॥ ३० ॥

सोऽहमद्य रणे यत्तौ सहितौ कृष्णपाण्डवौ ।
उत्सहे मनसा जेतुं ततो गर्जामि गौतम ॥ ३१ ॥

'गौतम ! आज मैं रणभूमिमें विजयके लिये साथ-साथ प्रयत्न करनेवाले श्रीकृष्ण और अर्जुनको जीत लेनेके लिये मन-ही-मन उत्साह रखता हूँ । इसीलिये गर्जना करता हूँ ॥

पश्य त्वं गर्जितस्यास्य फलं मे विप्र सानुगान् ।
हत्वा पाण्डुसुतानाजौ सहकृष्णान् ससात्वतान् ॥ ३२ ॥
दुर्योधनाय दास्यामि पृथिवीं हतकण्टकाम् ।

'ब्रह्मन् ! मेरी इस गर्जनाका फल देख लेना । मैं युद्धमें श्रीकृष्ण, सात्यकि तथा अनुगामियोंसहित पाण्डवोंको मारकर इस भूमण्डलका निष्कण्टक राज्य दुर्योधनको दे दूँगा' ॥



कृप उवाच

मनोरथप्रलापा मे न ग्राह्यास्तव सूतज ॥ ३३ ॥
सदा क्षिपसि वै कृष्णौ धर्मराजं च पाण्डवम् ।
ध्रुवस्तत्र जयः कर्ण यत्र युद्धविशारदौ ॥ ३४ ॥

कृपाचार्य बोले—सूतपुत्र ! तुम्हारे ये मनसूबे बाँधनेके निरर्थक प्रलाप मेरे लिये विश्वासके योग्य नहीं हैं । कर्ण ! तुम सदा ही श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरपर आक्षेप किया करते हो; परंतु विजय उसी पक्षकी होगी, जहाँ युद्धविशारद श्रीकृष्ण और अर्जुन विद्यमान हैं ॥ ३३-३४ ॥

देवगन्धर्वयक्षाणां मनुष्योरगरक्षसाम् ।
दंशितानामपि रणे अजेयौ कृष्णपाण्डवौ ॥ ३५ ॥

यदि देवता, गन्धर्व, यक्ष, मनुष्य, सर्प और राक्षस भी कवच बाँधकर युद्धके लिये आ जायँ तो रणभूमिमें श्रीकृष्ण और अर्जुनको वे भी जीत नहीं सकते ॥ ३५ ॥

ब्रह्मण्यः सत्यवाग् दान्तो गुरुदैवतपूजकः ।
नित्यं धर्मरतश्चैव कृतास्त्रश्च विशेषतः ॥ ३६ ॥
धृतिमांश्च कृतज्ञश्च धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।

धर्मपुत्र युधिष्ठिर ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, गुरु और देवताओंका सम्मान करनेवाले, सदा धर्मपरायण, अस्त्रविद्यामें विशेष कुशल, धैर्यवान् और कृतज्ञ हैं ॥ ३६½ ॥

भ्रातरश्चास्य बलिनः सर्वास्त्रेषु कृतश्रमाः ॥ ३७ ॥
गुरुवृत्तिरताः प्राज्ञा धर्मनित्या यशस्विनः ।

इनके बलवान् भाई भी सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंकी कलामें परिश्रम किये हुए हैं। वे गुरुसेवापरायण, विद्वान्, धर्मतत्पर और यशस्वी हैं ॥ ३७½ ॥

सम्बन्धिनश्चेन्द्रवीर्याः स्वनुरक्ताः प्रहारिणः ॥ ३८ ॥
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च दौर्मुखिर्जनमेजयः।
चन्द्रसेनो रुद्रसेनः कीर्तिधर्मा ध्रुवो धरः ॥ ३९ ॥
वसुचन्द्रो दामचन्द्रः सिंहचन्द्रः सुतेजनः।
द्रुपदस्य तथा पुत्रा द्रुपदश्च महास्त्रवित् ॥ ४० ॥

उनके सम्बन्धी भी इन्द्रके समान पराक्रमी, उनमें अनुराग रखनेवाले और प्रहार करनेमें कुशल हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं--धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, दुर्मुख-पुत्र जनमेजय, चन्द्रसेन, रुद्रसेन, कीर्तिधर्मा, ध्रुव, धर, वसुचन्द्र, दामचन्द्र, सिंहचन्द्र, सुतेजन, द्रुपदके पुत्रगण तथा महान् अस्त्रवेत्ता द्रुपद ॥ ३८–४० ॥

येषामर्थाय संयत्तो मत्स्यराजः सहानुजः।
शतानीकः सूर्यदत्तः श्रुतानीकः श्रुतध्वजः ॥ ४१ ॥
बलानीको जयानीको जयाश्वो रथवाहनः।
चन्द्रोदयः समरथो विराटभ्रातरः शुभाः ॥ ४२ ॥
यमौ च द्रौपदेयाश्च राक्षसश्च घटोत्कचः।
येषामर्थाय युध्यन्ते न तेषां विद्यते क्षयः ॥ ४३ ॥

जिनके लिये शतानीक, सूर्यदत्त, श्रुतानीक, श्रुतध्वज, बलानीक, जयानीक, जयाश्व, रथवाहन, चन्द्रोदय तथा समरथ–ये विराटके श्रेष्ठ भाई और इन भाइयोंसहित मत्स्यराज विराट युद्ध करनेको तैयार हैं, नकुल, सहदेव, द्रौपदीके पुत्र तथा राक्षस घटोत्कच–ये वीर जिनके लिये युद्ध कर रहे हैं, उन पाण्डवोंकी कभी कोई क्षति नहीं हो सकती है ॥ ४१–४३ ॥

एते चान्ये च बहवो गुणाः पाण्डुसुतस्य वै।
कामं खलु जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ४४ ॥
सयक्षराक्षसगणं सभूतभुजगद्विपम्।
निःशेषमस्त्रवीर्येण कुर्वाते भीमफाल्गुनौ ॥ ४५ ॥

पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके ये तथा और भी बहुत-से गुण हैं। भीमसेन और अर्जुन यदि चाहें तो अपने अस्त्रबलसे देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष, राक्षस, भूत, नाग और हाथियोंसहित इस सम्पूर्ण जगत्का सर्वथा विनाश कर सकते हैं ॥ ४४-४५ ॥

युधिष्ठिरश्च पृथिवीं निर्दहेद् घोरचक्षुषा।
अप्रमेयबलः शौरिर्येषामर्थे च दंशितः ॥ ४६ ॥
कथं तान् संयुगे कर्ण जेतुमुत्सहसे परान्।

युधिष्ठिर भी यदि रोषभरी दृष्टिसे देखें तो इस भूमण्डलको भस्म कर सकते हैं। कर्ण ! जिनके लिये अनन्त बलशाली भगवान् श्रीकृष्ण भी कवच धारण करके लड़नेको तैयार हैं, उन शत्रुओंको युद्धमें जीतनेका साहस तुम कैसे कर रहे हो ?॥

महानपनयस्त्वेष नित्यं हि तव सूतज ॥ ४७ ॥
यस्त्वमुत्सहसे योद्धुं समरे शौरिणा सह।

सूतपुत्र ! तुम जो सदा समरभूमिमें भगवान् श्रीकृष्णके साथ युद्ध करनेका उत्साह दिखाते हो, यह तुम्हारा महान् अन्याय (अक्षम्य अपराध) है ॥ ४७½ ॥

संजय उवाच

एवमुक्तस्तु राधेयः प्रहसन् भरतर्षभ ॥ ४८ ॥
अब्रवीच्च तदा कर्णो गुरुं शारद्वतं कृपम्।

संजय कहते हैं—भरतश्रेष्ठ ! उनके ऐसा कहनेपर राधापुत्र कर्ण ठठाकर हँस पड़ा और शरद्वान्के पुत्र गुरु कृपाचार्यसे उस समय यों बोला—॥ ४८½ ॥

सत्यमुक्तं त्वया ब्रह्मन् पाण्डवान् प्रति यद् वचः ॥ ४९ ॥
एते चान्ये च बहवो गुणाः पाण्डुसुतेषु वै।

'बाबाजी ! पाण्डवोंके विषयमें तुमने जो बात कही है वह सब सत्य है। यही नहीं, पाण्डवोंमें और भी बहुत-से गुण हैं॥

अजय्याश्च रणे पार्था देवैरपि सवासवैः ॥ ५० ॥
सदैत्ययक्षगन्धर्वैः पिशाचोरगराक्षसैः।

'यह भी ठीक है कि कुन्तीके पुत्रोंको रणभूमिमें इन्द्र आदि देवता, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, नाग और राक्षस भी जीत नहीं सकते ॥ ५०½ ॥

तथापि पार्थाञ्जेष्यामि शक्त्या वासवदत्तया ॥ ५१ ॥
मम ह्यमोघा दत्तेयं शक्तिः शक्रेण वै द्विज।
एतया निहनिष्यामि सव्यसाचिनमाहवे ॥ ५२ ॥

'तथापि मैं इन्द्रकी दी हुई शक्तिसे कुन्तीके पुत्रोंको जीत लूँगा। ब्रह्मन् ! मुझे इन्द्रने यह अमोघ शक्ति दे रक्खी है; इसके द्वारा मैं सव्यसाची अर्जुनको युद्धमें अवश्य मार डालूँगा॥

हते तु पाण्डवे कृष्णे भ्रातरश्चास्य सोदराः।
अनर्जुना न शक्ष्यन्ति महीं भोक्तुं कथञ्चन ॥ ५३ ॥

'पाण्डुपुत्र अर्जुनके मारे जानेपर उनके बिना उनके सहोदर भाई किसी तरह इस पृथ्वीका राज्य नहीं भोग सकेंगे॥

तेषु नष्टेषु सर्वेषु पृथिवीयंससागरा।
अयत्नात् कौरवेन्द्रस्य वशे स्थास्यति गौतम ॥ ५४ ॥

'गौतम ! उन सबके नष्ट हो जानेपर बिना किसी प्रयत्नके ही यह समुद्रसहित सारी पृथ्वी कौरवराज दुर्योधनके वशमें हो जायगी ॥ ५४ ॥

सुनीतैरिह सर्वार्थाः सिध्यन्ते नात्र संशयः।
एतमर्थमहं ज्ञात्वा ततो गर्जामि गौतम ॥ ५५ ॥

'गौतम ! इस संसारमें सुनीतिपूर्ण प्रयत्नोंसे सारे कार्य सिद्ध होते हैं, इसमें संशय नहीं है। इस बातको समझकर ही मैं गर्जना करता हूँ ॥ ५५ ॥

त्वं तु विप्रश्च वृद्धश्च अशक्तश्चापि संयुगे।
कृतस्नेहश्च पार्थेषु मोहान्मामवमन्यसे ॥ ५६ ॥

'तुम तो ब्राह्मण और उसमें भी बूढ़े हो। तुममें युद्ध करनेकी शक्ति है ही नहीं। इसके सिवा, तुम कुन्तीके पुत्रोंपर स्नेह रखते हो; इसलिये मोहवश मेरा अपमान कर रहे हो ॥

यद्येवं वक्ष्यसे भूयो ममाप्रियमिह द्विज।
ततस्ते खड्गमुद्यम्य जिह्वां छेत्स्यामि दुर्मते ॥ ५७ ॥

'दुर्बुद्धि ब्राह्मण! यदि यहाँ पुनः इस प्रकार मुझे अप्रिय लगनेवाली बात बोलोगे तो मैं अपनी तलवार उठाकर तुम्हारी जीभ काट लूँगा ॥ ५७ ॥

यच्चापि पाण्डवान् विप्र स्तोतुमिच्छसि संयुगे।
भीषयन् सर्वसैन्यानि कौरवेयाणि दुर्मते ॥ ५८ ॥
अत्रापि शृणु मे वाक्यं यथावद् ब्रुवतो द्विज।

'ब्रह्मन्! दुर्मते! तुम जो युद्धस्थलमें समस्त कौरव-सेनाओंको भयभीत करनेके लिये पाण्डवोंके गुण गाना चाहते हो, उसके विषयमें भी मैं जो यथार्थ बात कह रहा हूँ, उसे सुन लो॥

दुर्योधनश्च द्रोणश्च शकुनिर्दुर्मुखो जयः ॥ ५९ ॥
दुःशासनो वृषसेनो मद्रराजस्त्वमेव च।
सोमदत्तश्च भूरिश्च तथा द्रौणिर्विविंशतिः ॥ ६० ॥
तिष्ठेयुर्दंशिता यत्र सर्वे युद्धविशारदाः।
जयेदेतान् नरः को नु शक्रतुल्यबलोऽप्यरिः ॥ ६१ ॥

'दुर्योधन, द्रोण, शकुनि, दुर्मुख, जय, दुःशासन, वृषसेन, मद्रराज शल्य, तुम स्वयं, सोमदत्त, भूरि, अश्वत्थामा और विविंशति—ये युद्धकुशल सम्पूर्ण वीर जहाँ कवच बाँधकर खड़े हो जायँगे, वहाँ इन्हें कौन मनुष्य जीत सकता है? वह इन्द्रके तुल्य बलवान् शत्रु ही क्यों न हो (इनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता) ॥ ५९–६१ ॥

शूराश्च हि कृतास्त्राश्च बलिनः स्वर्गलिप्सवः।
धर्मज्ञा युद्धकुशला हन्युर्युद्धे सुरानपि ॥ ६२ ॥

'जो शूरवीर, अस्त्रोंके ज्ञाता, बलवान्, स्वर्ग-प्राप्तिकी अभिलाषा रखनेवाले, धर्मज्ञ और युद्धकुशल हैं, वे देवताओं-को भी युद्धमें मार सकते हैं ॥ ६२ ॥

एते स्थास्यन्ति संग्रामे पाण्डवानां वधार्थिनः।
जयमाकाङ्क्षमाणा हि कौरवेयस्य दंशिताः ॥ ६३ ॥

'ये वीरगण कुरुराज दुर्योधनकी जय चाहते हुए पाण्डवों-के वधकी इच्छासे संग्राममें कवच बाँधकर डट जायँगे ॥ ६३ ॥

दैवायत्तमहं मन्ये जयं सुबलिनामपि।
यत्र भीष्मो महाबाहुः शेते शरशताचितः ॥ ६४ ॥

'मैं तो बड़े-से-बड़े बलवानोंकी भी विजय दैवके ही अधीन मानता हूँ। दैवाधीन होनेके ही कारण महाबाहु भीष्म आज सैकड़ों बाणोंसे विद्ध होकर रणभूमिमें शयन करते हैं ॥ ६४ ॥

विकर्णश्चित्रसेनश्च बाह्लीकोऽथ जयद्रथः।
भूरिश्रवा जयश्चैव जलसंधः सुदक्षिणः ॥ ६५ ॥
शलश्च रथिनां श्रेष्ठो भगदत्तश्च वीर्यवान्।
एते चान्ये च राजानो देवैरपि सुदुर्जयाः ॥ ६६ ॥

'विकर्ण, चित्रसेन, बाह्लीक, जयद्रथ, भूरिश्रवा, जय, जलसंध, सुदक्षिण, रथियोंमें श्रेष्ठ शल तथा पराक्रमी भगदत्त-ये और दूसरे भी बहुत-से राजा देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्जय थे ॥ ६५-६६ ॥

निहताः समरे शूराः पाण्डवैर्बलवत्तराः।
किमन्यद् दैवसंयोगान्मन्यसे पुरुषाधम ॥ ६७ ॥

'परंतु उन अत्यन्त प्रबल तथा शूरवीर नरेशोंको भी पाण्डवोंने युद्धमें मार डाला। पुरुषाधम! तुम इसमें दैव-संयोगके सिवा दूसरा कौन-सा कारण मानते हो? ॥ ६७ ॥

यांश्च तान् स्तौषि सततं दुर्योधनरिपून् द्विज।
तेषामपि हताः शूराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६८ ॥

'ब्रह्मन्! तुम दुर्योधनके जिन शत्रुओंकी सदा स्तुति करते रहते हो, उनके भी तो सैकड़ों और सहस्रों शूरवीर मारे गये हैं ॥ ६८ ॥

क्षीयन्ते सर्वसैन्यानि कुरूणां पाण्डवैः सह।
प्रभावं नात्र पश्यामि पाण्डवानां कथंचन ॥ ६९ ॥

'कौरव तथा पाण्डव दोनों दलोंकी सारी सेनाएँ प्रतिदिन नष्ट हो रही हैं। मुझे इसमें किसी प्रकार भी पाण्डवोंका कोई विशेष प्रभाव नहीं दिखायी देता है ॥ ६९ ॥

यस्तान् बलवतो नित्यं मन्यसे त्वं द्विजाधम।
यतिष्येऽहं यथाशक्ति योद्धुं तैः सह संयुगे।
दुर्योधनहितार्थाय 'जयो दैवे प्रतिष्ठितः' ॥ ७० ॥

'द्विजाधम! तुम जिन्हें सदा बलवान् मानते रहते हो, उन्हींके साथ मैं संग्रामभूमिमें दुर्योधनके हितके लिये यथा-शक्ति युद्ध करनेका प्रयत्न करूँगा। विजय तो दैवके अधीन है' ॥ ७० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे कृपकर्णवाक्येऽष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसंगमें कृपाचार्य और कर्णका विवादविषयक एक सौ अट्ठावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५८ ॥

एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

अश्वत्थामाका कर्णको मारनेके लिये उद्यत होना, दुर्योधनका उसे मनाना, पाण्डवों और पाञ्चालोंका कर्णपर आक्रमण, कर्णका पराक्रम, अर्जुनके द्वारा कर्णकी पराजय तथा दुर्योधनका अश्वत्थामासे पाञ्चालोंके वधके लिये अनुरोध

संजय उवाच

तथा परुषितं दृष्ट्वा सूतपुत्रेण मातुलम् ।
खड्गमुद्यम्य वेगेन द्रौणिरभ्यपतद् द्रुतम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार अपने मामाके प्रति सूतपुत्र कर्णको कटु वचन सुनाते देख अश्वत्थामा बड़े वेगसे तलवार उठाकर तुरंत कर्णपर टूट पड़ा ॥ १ ॥

ततः परमसंक्रुद्धः सिंहो मत्तमिव द्विपम् ।
प्रेक्षतः कुरुराजस्य द्रौणिः कर्णं समभ्ययात् ॥ २ ॥

जैसे सिंह मतवाले हाथीपर झपटता है, उसी प्रकार अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए द्रोणकुमार अश्वत्थामाने कुरुराज दुर्योधनके देखते-देखते कर्णपर आक्रमण किया ॥ २ ॥

अश्वत्थामोवाच

यदर्जुनगुणांस्तथ्यान् कीर्तयानं नराधम ।
शूरं द्वेषात् सुदुर्बुद्धे त्वं भर्त्सयसि मातुलम् ॥ ३ ॥
विकत्थमानः शौर्येण सर्वलोकधनुर्धरम् ।
दर्पोत्सेधगृहीतोऽद्य न कञ्चिद् गणयन् मृधे ॥ ४ ॥

अश्वत्थामाने कहा—दुर्बुद्धि ! नराधम ! मेरे मामा सम्पूर्ण जगत्के श्रेष्ठ धनुर्धर एवं शूरवीर हैं। ये अर्जुनके सच्चे गुणोंका बखान कर रहे थे, तो भी तू द्वेषवश अपनी शूरताकी डींग हाँकता हुआ और घमण्डमें आकर आज युद्धमें किसीको कुछ न समझता हुआ जो इन्हें फटकार रहा है, उसका क्या कारण है ? ॥ ३-४ ॥

क्व ते वीर्यं क्व चास्त्राणि यत्त्वां निर्जित्य संयुगे ।
गाण्डीवधन्वा हतवान् प्रेक्षतस्ते जयद्रथम् ॥ ५ ॥

जब युद्धस्थलमें गाण्डीवधारी अर्जुनने तुझे परास्त करके तेरे देखते-देखते जयद्रथको मार डाला था, उस समय तेरा पराक्रम कहाँ था ? तेरे वे अस्त्र-शस्त्र कहाँ चले गये थे ? ॥

येन साक्षान्महादेवो योधितः समरे पुरा ।
तमिच्छसि वृथा जेतुं सूताधम मनोरथैः ॥ ६ ॥

सूताधम ! जिन्होंने समराङ्गणमें पहले साक्षात् महादेवजीके साथ युद्ध किया है, उन्हें केवल मनोरथोंद्वारा जीतनेकी तू व्यर्थ इच्छा प्रकट कर रहा है ॥ ६ ॥

यं हि कृष्णेन सहितं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
जेतुं न शक्ताः सहिताः सेन्द्रा अपि सुरासुराः ॥ ७ ॥
लोकैकवीरमजितमर्जुनं सूत संयुगे ।
किं पुनस्त्वं सुदुर्बुद्धे सहैभिर्वसुधाधिपैः ॥ ८ ॥

दुर्बुद्धि ! सूत ! जो सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ हैं तथा श्रीकृष्णके साथ रहनेपर जिन्हें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता और असुर भी जीतनेमें समर्थ नहीं हैं, उन्हीं लोकके एकमात्र अपराजित वीर अर्जुनको जीतनेके लिये इन राजाओंसहित तेरी क्या शक्ति है ? ॥ ७-८ ॥

कर्ण पश्य सुदुर्बुद्धे तिष्ठेदानीं नराधम ।
एष तेऽद्य शिरः कायादुद्धरामि सुदुर्मते ॥ ९ ॥

दुर्बुद्धि नराधम ! कर्ण ! तू देख और खड़ा रह। दुर्मते ! मैं अभी तेरा सिर धड़से उतार लेता हूँ ॥ ९ ॥

संजय उवाच

तमुद्यतं तु वेगेन राजा दुर्योधनः स्वयम् ।
न्यवारयन्महातेजाः कृपश्च द्विपदां वरः ॥ १० ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार वेगपूर्वक उठे हुए अश्वत्थामाको महातेजस्वी स्वयं राजा दुर्योधन तथा मनुष्योंमें श्रेष्ठ कृपाचार्यने रोका ॥ १० ॥

कर्ण उवाच

शूरोऽयं समरश्लाघी दुर्मतिश्च द्विजाधमः ।
आसादयतु मद्वीर्यं मुञ्चेमं कुरुसत्तम ॥ ११ ॥

कर्ण बोला—कुरुश्रेष्ठ ! यह दुर्बुद्धि एवं नीच ब्राह्मण बड़ा शूरवीर बनता है और युद्धकी श्लाघा रखता है। तुम इसे छोड़ दो। आज यह मेरे पराक्रमका सामना करे ॥ ११ ॥

अश्वत्थामोवाच

तवैतत् क्षम्यतेऽस्माभिः सूतात्मज सुदुर्मते ।
दर्पमुत्सिक्तमेतत् ते फाल्गुनो नाशयिष्यति ॥ १२ ॥

अश्वत्थामाने कहा—दुर्बुद्धि सूतपुत्र ! हमलोग तेरे इस अपराधको क्षमा करते हैं। तेरे इस बढ़े हुए घमण्डका नाश अर्जुन करेंगे ॥ १२ ॥

दुर्योधन उवाच

अश्वत्थामन् प्रसीदस्व क्षन्तुमर्हसि मानद ।
कोपः खलु न कर्तव्यः सूतपुत्रं कथंचन ॥ १३ ॥

दुर्योधन बोला—दूसरोंको मान देनेवाले (भाई) अश्वत्थामा ! प्रसन्न होओ। तुम्हें क्षमा करना चाहिये। सूतपुत्र कर्णपर तुम्हें किसी प्रकार भी क्रोध करना उचित नहीं है ॥

त्वयि कर्णे कृपे द्रोणे मद्रराजेऽथ सौबले ।
महत् कार्यं समासक्तं प्रसीद द्विजसत्तम ॥ १४ ॥

द्विजश्रेष्ठ ! तुमपर, कर्णपर तथा कृपाचार्य, द्रोणाचार्य मद्रराज शल्य और शकुनिपर महान् कार्यभार रक्खा गया है; तुम प्रसन्न होओ ॥ १४ ॥

एते ह्यभिमुखाः सर्वे राधेयेन युयुत्सवः ।
आयान्ति पाण्डवा ब्रह्मन्नाह्वयन्तः समन्ततः ॥ १५ ॥

ब्रह्मन् ! ये सामने राधापुत्र कर्णके साथ युद्धकी अभिलाषा रखकर समस्त पाण्डव-सैनिक सब ओरसे ललकारते आ रहे हैं॥

संजय उवाच

प्रसाद्यमानस्तु ततो राज्ञा द्रौणिर्महामनाः ।
प्रससाद महाराज क्रोधवेगसमन्वितः ॥ १६ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! राजा दुर्योधनके मनानेपर क्रोधके वेगसे युक्त महामना अश्वत्थामा शान्त एवं प्रसन्न हो गया ॥ १६ ॥

ततः कृपोऽप्युवाचेदमाचार्यः सुमहामनाः ।
सौम्यस्वभावाद् राजेन्द्र क्षिप्रमागतमार्दवः ॥ १७ ॥

राजेन्द्र ! तत्पश्चात् सौम्य स्वभावके कारण शीघ्र ही मृदुता आ जानेसे महामना कृपाचार्य भी शान्त हो गये और इस प्रकार बोले ॥ १७ ॥

कृप उवाच

तवैतत् क्षम्यतेऽस्माभिः सूतात्मज सुदुर्मते ।
दर्पमुत्सिक्तमेतत् ते फाल्गुनो नाशयिष्यति ॥ १८ ॥

कृपाचार्यने कहा—दुर्बुद्धि सूतपुत्र ! हमलोग तो तेरे इस अपराधको क्षमा कर देते हैं; परंतु अर्जुन तेरे इस बढ़े हुए घमंडका अवश्य नाश करेंगे ॥ १८ ॥

संजय उवाच

ततस्ते पाण्डवा राजन् पञ्चालाश्च यशस्विनः ।
आजग्मुः सहिताः कर्णं तर्जयन्तः समन्ततः ॥ १९ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर वे यशस्वी पाण्डव और पाञ्चाल एक साथ होकर गर्जन-तर्जन करते हुए चारों ओरसे कर्णपर चढ़ आये ॥ १९ ॥

कर्णोऽपि रथिनां श्रेष्ठश्चापमुद्यम्य वीर्यवान् ।
कौरवाग्र्यैः परिवृतः शक्रो देवगणैरिव ॥ २० ॥
पर्यतिष्ठत तेजस्वी स्वबाहुबलमाश्रितः ।

रथियोंमें श्रेष्ठ, पराक्रमी एवं तेजस्वी वीर कर्ण भी देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रके समान प्रधान कौरव वीरोंसे घिरकर अपने बाहुबलका भरोसा करके धनुष उठाकर युद्धके लिये खड़ा हो गया ॥२०½॥

ततः प्रववृते युद्धं कर्णस्य सह पाण्डवैः ॥ २१ ॥
भीषणं सुमहाराज सिंहनादविराजितम् ।

महाराज ! तदनन्तर कर्णका पाण्डवोंके साथ भीषण युद्ध आरम्भ हुआ, जो सिंहनादसे सुशोभित हो रहा था ॥२१½॥

ततस्ते पाण्डवा राजन् पञ्चालाश्च यशस्विनः ॥ २२ ॥
दृष्ट्वा कर्णं महाबाहुमुच्चैः शब्दमथानदन् ।

राजन् ! यशस्वी पाण्डव और पाञ्चालोंने महाबाहु कर्णको देखकर उच्चस्वरसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया—॥२२½॥

अयं कर्णः कुतः कर्णस्तिष्ठ कर्ण महारणे ॥ २३ ॥
युध्यस्व सहितोऽस्माभिर्दुरात्मन् पुरुषाधम ।

'कहाँ कर्ण है ? यह कर्ण है । दुरात्मन् नराधम कर्ण ! इस महायुद्धमें खड़ा रह और हमारे साथ युद्ध कर' ॥२३½॥

अन्ये तु दृष्ट्वा राधेयं क्रोधरक्तेक्षणाऽब्रुवन् ॥ २४ ॥
हन्यतामयमुत्सिक्तः सूतपुत्रोऽल्पचेतनः ।
सर्वैः पार्थिवशार्दूलैर्नानेनार्थोऽस्ति जीवता ॥ २५ ॥
अत्यन्तवैरी पार्थानां सततं पापपूरुषः ।
एष मूलमनर्थानां दुर्योधनमते स्थितः ॥ २६ ॥
घ्नतैनमिति जल्पन्तः क्षत्रियाः समुपाद्रवन् ।
महता शरवर्षेण च्छादयन्तो महारथाः ॥ २७ ॥
वधार्थं सूतपुत्रस्य पाण्डवेयेन चोदिताः ।

दूसरे लोगोंने राधापुत्र कर्णको देखकर क्रोधसे लाल आँखें करके कहा—'समस्त श्रेष्ठ राजा मिलकर इस घमंडी और मूर्ख सूतपुत्रको मार डालें । इसके जीनेसे कोई लाभ नहीं है । यह पापात्मा पुरुष सदा कुन्तीकुमारोंके साथ अत्यन्त वैर रखता आया है । दुर्योधनकी रायमें रहकर यही सारे अनर्थोंकी जड़ बना हुआ है । अतः इसे मार डालो ।' ऐसा कहते हुए समस्त क्षत्रिय महारथी पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरसे सूतपुत्रके वधके लिये प्रेरित हो बाणोंकी बड़ी भारी वर्षाद्वारा उसे आच्छादित करते हुए उसपर टूट पड़े ॥ २४–२७½ ॥

तांस्तु सर्वांस्तथा दृष्ट्वा धावमानान् महारथान् ॥ २८ ॥
न विव्यथे सूतपुत्रो न च त्रासमगच्छत ।

उन समस्त महारथियोंको इस प्रकार धावा करते देख सूतपुत्रके मनमें न तो व्यथा हुई और न त्रास ही हुआ ॥

दृष्ट्वा संहारकल्पं तमुद्धूतं सैन्यसागरम् ॥ २९ ॥
पिप्रीषुस्तव पुत्राणां संग्रामेष्वपराजितः ।
सायकौघेन बलवान् क्षिप्रकारी महाबलः ॥ ३० ॥
वारयामास तत् सैन्यं समन्ताद् भरतर्षभ ।

भरतश्रेष्ठ ! प्रलयकालके समान उस सैन्यसागरको उमड़ा हुआ देख संग्राममें पराजित न होनेवाले बलवान्, शीघ्रकारी और महान् शक्तिशाली कर्णने आपके पुत्रोंको प्रसन्न करनेकी इच्छासे बाण-समूहकी वर्षा करके सब ओरसे शत्रुओंकी उस सेनाको रोक दिया ॥ २९-३०½ ॥

ततस्तु शरवर्षेण पार्थिवास्तमवारयन् ॥ ३१ ॥
धनूंषि ते विधुन्वानाः शतशोऽथ सहस्रशः ।
अयोधयन्त राधेयं शक्रं दैत्यगणा इव ॥ ३२ ॥

तदनन्तर सैकड़ों और सहस्रों नरेशोंने अपने धनुषोंको कम्पित करते हुए बाणोंकी वर्षासे कर्णकी भी प्रगति रोक दी । जैसे दैत्योंने इन्द्रके साथ संग्राम किया था, उसी प्रकार वे राजालोग राधापुत्र कर्णके साथ युद्ध करने लगे ॥

शरवर्षं तु तत् कर्णः पार्थिवैः समुदीरितम् ।
शरवर्षेण महता समन्ताद् व्यकिरत् प्रभो ॥ ३३ ॥

प्रभो ! राजाओंद्वारा की हुई उस बाण-वर्षाको कर्णने बाणोंकी बड़ी भारी वृष्टि करके सब ओर बिखेर दिया ॥ ३३ ॥

तद् युद्धमभवत् तेषां कृतप्रतिकृतैषिणाम् ।
यथा देवासुरे युद्धे शक्रस्य सह दानवैः ॥ ३४ ॥

जैसे देवासुर-संग्राममें दानवोंके साथ इन्द्रका युद्ध हुआ था, उसी प्रकार घात-प्रतिघातकी इच्छावाले राजाओं तथा कर्णका वह युद्ध बड़ा भयंकर हो रहा था ॥ ३४ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम सूतपुत्रस्य लाघवम् ।
यदेनं सर्वतो यत्ता नाप्नुवन्ति परे युधि ॥ ३५ ॥

वहाँ हमने सूतपुत्र कर्णकी अद्भुत फुर्ती देखी, जिससे सब ओरसे प्रयत्न करनेपर भी शत्रुपक्षीय योद्धा उस युद्धस्थलमें कर्णको काबूमें नहीं कर पा रहे थे ॥ ३५ ॥

निवार्य च शरौघांस्तान् पार्थिवानां महारथः ।
युगेष्वीषासु च्छत्रेषु ध्वजेषु च हयेषु च ॥ ३६ ॥
आत्मनामाङ्कितान् घोरान् राधेयः प्राहिणोच्छरान् ।

राजाओंके उन बाणसमूहोंका निवारण करके महारथी राधापुत्र कर्णने उनके रथके जूओं, ईषादण्डों, छत्रों, ध्वजाओं तथा घोड़ोंपर अपने नाम खुदे हुए भयंकर बाणोंका प्रहार किया ॥ ३६½ ॥

ततस्ते व्याकुलीभूता राजानः कर्णपीडिताः ॥ ३७ ॥
बभ्रमुस्तत्र तत्रैव गावः शीतार्दिता इव ।

तत्पश्चात् कर्णके बाणोंसे पीड़ित और व्याकुल हुए राजा लोग सर्दीसे कष्ट पानेवाली गायोंके समान इधर-उधर चक्कर काटने लगे ॥ ३७½ ॥

हयानां वध्यमानानां गजानां रथिनां तथा ॥ ३८ ॥
तत्र तत्राभ्यवेक्षाम संघान् कर्णेन ताडितान् ।

कर्णके बाणोंकी चोट खाकर मरनेवाले घोड़ों, हाथियों और रथियोंके झुंड-के-झुंड हमने वहाँ देखे थे ॥ ३८½ ॥

शिरोभिः पतितै राजन् बाहुभिश्च समन्ततः ॥ ३९ ॥
आस्तीर्णा वसुधा सर्वा शूराणामनिवर्तिनाम् ।

राजन् ! युद्धमें पीठ न दिखानेवाले शूरवीरोंके कट-कटकर गिरे हुए मस्तकों और भुजाओंसे वहाँकी सारी भूमि सब ओरसे पट गयी थी ॥ ३९½ ॥

हतैश्च हन्यमानैश्च निष्टनद्भिश्च सर्वशः ॥ ४० ॥
बभूवायोधनं रौद्रं वैवस्वतपुरोपमम् ।

कुछ लोग मारे गये थे, कुछ मारे जा रहे थे और कुछ लोग सब ओर पीड़ासे कराह रहे थे। इससे वह युद्धस्थल यमपुरीके समान भयंकर प्रतीत होता था ॥ ४०½ ॥

ततो दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ ४१ ॥
अश्वत्थामानमासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह ।

उस समय राजा दुर्योधनने कर्णका पराक्रम देख अश्वत्थामाके पास पहुँचकर यह बात कही—॥ ४१½ ॥

युध्यतेऽसौ रणे कर्णो दंशितः सर्वपार्थिवैः ॥ ४२ ॥
पश्यैतां द्रवतीं सेनां कर्णसायकपीडिताम् ।
कार्तिकेयेन विध्वस्तामासुरीं पृतनामिव ॥ ४३ ॥

'रणभूमिमें वह कवचधारी कर्ण समस्त राजाओंके साथ अकेला ही युद्ध कर रहा है। देखो, कर्णके बाणोंसे पीड़ित हुई यह पाण्डव-सेना कार्तिकेयके द्वारा नष्ट की हुई असुरवाहिनीके समान भागी जा रही है ॥ ४२-४३ ॥

दृष्ट्वैतां निर्जितां सेनां रणे कर्णेन धीमता ।
अभियात्येष बीभत्सुः सूतपुत्रजिघांसया ॥ ४४ ॥

'बुद्धिमान् कर्णके द्वारा रणभूमिमें पराजित हुई इस सेनाको देखकर सूतपुत्रका वध करनेकी इच्छासे ये अर्जुन आगे बढ़े जा रहे हैं ॥ ४४ ॥

तद् यथा प्रेक्षमाणानां सूतपुत्रं महारथम् ।
न हन्यात् पाण्डवः संख्ये तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ ४५ ॥

'अतः हमलोगोंके देखते-देखते युद्धमें पाण्डुपुत्र अर्जुन जैसे भी महारथी सूतपुत्रको न मार सकें, वैसी नीतिसे काम लो' ॥ ४५ ॥

ततो द्रौणिः कृपः शल्यो हार्दिक्यश्च महारथः ।
प्रत्युद्ययुस्तदा पार्थं सूतपुत्रपरीप्सया ॥ ४६ ॥
आयान्तं वीक्ष्य कौन्तेयं शक्रं दैत्यचमूमिव ।

तब दैत्यसेनापर आक्रमण करनेवाले इन्द्रके समान अर्जुनको कौरवसेनाकी ओर आते देख अश्वत्थामा, कृपाचार्य, शल्य और महारथी कृतवर्मा सूतपुत्रकी रक्षा करनेकी इच्छासे अर्जुनका सामना करनेके लिये आगे बढ़े ॥ ४६½ ॥

बीभत्सुरपि राजेन्द्र पञ्चालैरभिसंवृतः ॥ ४७ ॥
प्रत्युद्ययौ तदा कर्णं यथा वृत्रं शतक्रतुः ।

राजेन्द्र ! उस समय वृत्रासुरपर चढ़ाई करनेवाले इन्द्रके समान पाञ्चालोंसे घिरे हुए अर्जुनने भी कर्णपर धावा किया ॥

धृतराष्ट्र उवाच

संरब्धं फाल्गुनं दृष्ट्वा कालान्तकयमोपमम् ॥ ४८ ॥
कर्णो वैकर्तनः सूत प्रत्यपद्यत् किमुत्तरम् ।

धृतराष्ट्रने पूछा—सूत ! काल, अन्तक और यमके समान क्रोधमें भरे हुए अर्जुनको देखकर वैकर्तन कर्णने उन्हें किस प्रकार उत्तर दिया ? (कैसे उनका सामना किया) ॥

यो ह्यस्पर्धत पार्थेन नित्यमेव महारथः ॥ ४९ ॥
आशंसते च बीभत्सुं युद्धे जेतुं सुदारुणम् ।

महारथी कर्ण सदा ही अर्जुनके साथ स्पर्धा रखता था और युद्धमें अत्यन्त भयंकर अर्जुनको पराजित करनेका विश्वास प्रकट करता था ॥ ४९½ ॥

स तु तं सहसा प्राप्तं नित्यमत्यन्तवैरिणम् ॥ ५० ॥
कर्णो वैकर्तनः सूत किमुत्तरमपद्यत ।

संजय ! उस समय अपने सदाके अत्यन्त वैरी अर्जुनको सहसा सामने पाकर सूर्यपुत्र कर्णने उन्हें किस प्रकार उत्तर देनेका निश्चय किया ? ॥ ५०½ ॥

संजय उवाच

आयान्तं पाण्डवं दृष्ट्वा गजं प्रतिगजो यथा ॥ ५१ ॥
असम्भ्रान्तो रणे कर्णः प्रत्युदीयाद् धनंजयम् ।

संजयने कहा—राजन् ! जैसे एक हाथीको आते देख दूसरा हाथी उसका सामना करनेके लिये आगे बढ़े, उसी प्रकार पाण्डुपुत्र धनंजयको आते देख कर्ण बिना किसी घबराहटके युद्धमें उनका सामना करनेके लिये आगे बढ़ा ॥ ५१½ ॥

तमापतन्तं वेगेन वैकर्तनमजिह्मगैः ॥ ५२ ॥
छादयामास पार्थोऽथ कर्णस्तु विजयं शरैः ।

वेगसे आते हुए वैकर्तन कर्णको अर्जुनने अपने सीधे जानेवाले बाणोंसे आच्छादित कर दिया और कर्णने भी अर्जुनको अपने बाणोंसे ढक दिया ॥ ५२½ ॥

स कर्णं शरजालेन च्छादयामास पाण्डवः ॥ ५३ ॥
ततः कर्णः सुसंरब्धः शरैस्त्रिभिरविध्यत ।

पाण्डुपुत्र अर्जुनने पुनः अपने बाणोंके जालसे कर्णको आच्छादित कर दिया । तब क्रोधमें भरे हुए कर्णने तीन बाणोंसे अर्जुनको बींध डाला ॥ ५३½ ॥

तस्य तल्लाघवं पार्थो नामृष्यत महाबलः ॥ ५४ ॥
तस्मै बाणाञ्शिलाधौतान् प्रसन्नाग्रानजिह्मगान् ।
प्राहिणोत् सूतपुत्राय त्रिशतं शत्रुतापनः ॥ ५५ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले महाबली अर्जुन कर्णकी इस फुर्तीको न सह सके । उन्होंने सूतपुत्र कर्णको शिलापर तेज किये हुए स्वच्छ अग्रभागवाले तीन सौ बाण मारे ॥ ५४-५५ ॥

विव्याध चैनं संरब्धो बाणेनैकेन वीर्यवान् ।
सव्ये भुजाग्रे बलवान् नाराचेन हसन्निव ॥ ५६ ॥

इसके सिवा कुपित हुए पराक्रमी एवं बलवान् अर्जुनने हँसते हुए-से एक नाराच नामक बाणके द्वारा कर्णकी बायीं भुजाके अग्रभागमें चोट पहुँचायी ॥ ५६ ॥

तस्य विद्धस्य बाणेन कराच्चापं पपात ह ।
पुनरादाय तच्चापं निमेषार्धान्महाबलः ॥ ५७ ॥
छादयामास बाणौघैः फाल्गुनं कृतहस्तवत् ।

उस बाणसे घायल हुए कर्णके हाथसे धनुष छूटकर गिर पड़ा । फिर आधे निमेषमें ही उस महाबली वीरने पुनः वह धनुष लेकर सिद्धहस्त योद्धाकी भाँति बाण-समूहोंकी वर्षा करके अर्जुनको ढक दिया ॥ ५७½ ॥

शरवृष्टिं तु तां मुक्तां सूतपुत्रेण भारत ॥ ५८ ॥
व्यधमच्छरवर्षेण स्मयन्निव धनंजयः ।

भारत ! सूतपुत्रद्वारा की हुई उस बाण-वर्षाको अर्जुनने मुसकराते हुए-से बाणोंकी वृष्टि करके नष्ट कर दिया ॥ ५८½ ॥

तौ परस्परमासाद्य शरवर्षेण पार्थिव ॥ ५९ ॥
छादयेतां महेष्वासौ कृतप्रतिकृतैषिणौ ।

राजन् ! वे दोनों महाधनुर्धर वीर आघातका प्रतिघात करनेकी इच्छासे परस्पर बाणोंकी वर्षा करके एक-दूसरेको आच्छादित करने लगे ॥ ५९½ ॥

तदद्भुतं महद् युद्धं कर्णपाण्डवयोर्मृधे ॥ ६० ॥
क्रुद्धयोर्वासिताहेतोर्वन्ययोर्गजयोरिव ।

जैसे दो जंगली हाथी किसी हथिनीके लिये क्रोधपूर्वक लड़ रहे हों, उसी प्रकार उस युद्धस्थलमें कर्ण और अर्जुनका वह संग्राम महान् एवं अद्भुत था ॥ ६०½ ॥

ततः पार्थो महेष्वासो दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ ६१ ॥
मुष्टिदेशे धनुस्तस्य चिच्छेद त्वरयान्वितः ।

तदनन्तर महाधनुर्धर अर्जुनने कर्णका पराक्रम देखकर, उसके धनुषको मुट्ठी पकड़नेकी जगहसे शीघ्रतापूर्वक काट दिया ॥

अश्वांश्च चतुरो भल्लैरनयद् यमसादनम् ॥ ६२ ॥
सारथेश्च शिरः कायादहरच्छत्रुतापनः ।

साथ ही उसके चारों घोड़ोंको चार भल्लोंद्वारा यमलोक पहुँचा दिया । फिर शत्रुसंतापी अर्जुनने उसके सारथिका सिर धड़से अलग कर दिया ॥ ६२½ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं हताश्वं हतसारथिम् ॥ ६३ ॥
विव्याध सायकैः पार्थश्चतुर्भिः पाण्डुनन्दनः ।

धनुष कट जाने और घोड़ों तथा सारथिके मारे जानेपर कर्णको पाण्डुनन्दन अर्जुनने चार बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥

हताश्वात् तु रथात् तूर्णमवप्लुत्य नरर्षभः ॥ ६४ ॥
आरुरोह रथं तूर्णं कृपस्य शरपीडितः ।

जिसके घोड़े मारे गये थे, उस रथसे तुरंत ही उतरकर बाणपीड़ित कर्ण शीघ्रतापूर्वक कृपाचार्यके रथपर चढ़ गया ॥

स नुन्नोऽर्जुनबाणौघैराचितः शल्यको यथा ॥ ६५ ॥
जीवितार्थमभिप्रेप्सुः कृपस्य रथमारुहत् ।

अर्जुनके बाण-समूहोंसे पीड़ित और व्याप्त होकर वह काँटोंसे भरे हुए साहीके समान जान पड़ता था । अपने प्राण बचानेके लिये कर्ण कृपाचार्यके रथपर जा बैठा था ॥ ६५½ ॥

राधेयं निर्जितं दृष्ट्वा तावका भरतर्षभ ॥ ६६ ॥
धनंजयशरैर्नुन्नाः प्राद्रवन्त दिशो दश ।

भरतश्रेष्ठ ! राधापुत्र कर्णको पराजित हुआ देख आपके सैनिक अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित हो दसों दिशाओंमें भाग चले ॥

द्रवतस्तान् समालोक्य राजा दुर्योधनो नृप ॥ ६७ ॥
निवर्तयामास तदा वाक्यमेतदुवाच ह ।

नरेश्वर ! उन्हें भागते देख राजा दुर्योधनने लौटाया और उस समय उनसे यह बात कही—॥ ६७½ ॥

अलं द्रुतेन वः शूरास्तिष्ठध्वं क्षत्रियर्षभाः ॥ ६८ ॥
एष पार्थवधायाहं स्वयं गच्छामि संयुगे ।
अहं पार्थान् हनिष्यामि सपञ्चालान् ससोमकान् ॥ ६९ ॥

'क्षत्रियशिरोमणि शूरवीरो ! ठहरो, तुम्हारे भागनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । मैं स्वयं अभी अर्जुनका वध करनेके लिये युद्धभूमिमें चलता हूँ । मैं पाञ्चालों और सोमकों-सहित कुन्तीकुमारोंका वध करूँगा ॥ ६८-६९ ॥

अद्य मे युध्यमानस्य सह गाण्डीवधन्वना ।
द्रक्ष्यन्ति विक्रमं पार्थाः कालस्येव युगक्षये ॥ ७० ॥

'आज गाण्डीवधारी अर्जुनके साथ युद्ध करते समय कुन्तीके सभी पुत्र प्रलयकालमें कालके समान मेरा पराक्रम देखेंगे ॥ ७० ॥

अद्य मद्बाणजालानि विमुक्तानि सहस्रशः ।
द्रक्ष्यन्ति समरे योधाः शलभानामिवायतीः ॥ ७१ ॥

'आज समराङ्गणमें सहस्रों योद्धा मेरे छोड़े हुए हजारों बाणसमूहोंको शलभोंकी पंक्तियोंके समान देखेंगे ॥ ७१ ॥

अद्य बाणमयं वर्षं सृजतो मम धन्विनः ।
जीमूतस्येव घर्मान्ते द्रक्ष्यन्ति युधि सैनिकाः ॥ ७२ ॥

'जैसे वर्षाकालमें मेघ जलकी वर्षा करता है, उसी प्रकार धनुष हाथमें लेकर मेरेद्वारा की हुई बाणमयी वर्षाको आज युद्धस्थलमें समस्त सैनिक देखेंगे ॥ ७२ ॥

जेष्याम्यद्य रणे पार्थं सायकैर्नतपर्वभिः ।
तिष्ठध्वं समरे शूरा भयं त्यजत फाल्गुनात् ॥ ७३ ॥

'आज रणभूमिमें झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा मैं अर्जुनको जीत लूँगा । शूरवीरो ! तुम समरभूमिमें डटे रहो और अर्जुनसे भय छोड़ दो ॥ ७३ ॥

न हि मद्वीर्यमासाद्य फाल्गुनः प्रसहिष्यति ।
यथा वेलां समासाद्य सागरो मकरालयः ॥ ७४ ॥

'जैसे समुद्र तटभूमितक पहुँचकर शान्त हो जाता है, उसी प्रकार अर्जुन मेरे समीप आकर मेरा पराक्रम नहीं सह सकेंगे' ॥ ७४ ॥

इत्युक्त्वा प्रययौ राजा सैन्येन महता वृतः ।
फाल्गुनं प्रति दुर्धर्षः क्रोधात् संरक्तलोचनः ॥ ७५ ॥

ऐसा कहकर दुर्धर्ष राजा दुर्योधनने क्रोधसे लाल आँखें करके विशाल सेनाके साथ अर्जुनपर आक्रमण किया ॥ ७५ ॥

तं प्रयान्तं महाबाहुं दृष्ट्वा शारद्वतस्तदा ।
अश्वत्थामानमासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ७६ ॥

महाबाहु दुर्योधनको अर्जुनके सामने जाते देख शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्यने उस समय अश्वत्थामाके पास जाकर यह बात कही—॥ ७६ ॥

एष राजा महाबाहुरमर्षी क्रोधमूर्च्छितः ।
पतङ्गवृत्तिमास्थाय फाल्गुनं योद्धुमिच्छति ॥ ७७ ॥

'यह अमर्षशील महाबाहु राजा दुर्योधन क्रोधसे अपनी सुधबुध खो बैठा है और पतंगोंकी वृत्तिका आश्रय ले अर्जुनके साथ युद्ध करना चाहता है ॥ ७७ ॥

यावन्नः पश्यमानानां प्राणान् पार्थेन संगतः ।
न जह्यात् पुरुषव्याघ्रस्तावद् वारय कौरवम् ॥ ७८ ॥

'यह पुरुषसिंह नरेश अर्जुनसे भिड़कर हमारे देखते-देखते जबतक अपने प्राणोंको त्याग न दे, उसके पहले ही तुम जाकर उस कुरुवंशी राजाको रोको ॥ ७८ ॥

यावत् फाल्गुनबाणानां गोचरं नाद्य गच्छति ।
कौरवः पार्थिवो वीरस्तावद् वारय संयुगे ॥ ७९ ॥

'यह कौरववंशका वीर भूपाल आज जबतक अर्जुनके बाणोंकी पहुँचके भीतर नहीं जाता है, तभीतक इसे रोक दो ॥

यावत् पार्थशरैर्घोरैर्निर्मुक्तोरगसंनिभैः ।
न भस्मीक्रियते राजा तावद् युद्धान्निवार्यताम् ॥ ८० ॥

'केंचुलसे छूटे हुए सर्पोंके समान अर्जुनके भयंकर बाणोंद्वारा जबतक राजा दुर्योधन भस्म नहीं कर दिया जाता है, तबतक ही उसे युद्धसे रोक दो ॥ ८० ॥

अयुक्तमिव पश्यामि तिष्ठत्स्वस्मासु मानद ।
स्वयं युद्धाय यद् राजा पार्थं यात्यसहायवान् ॥ ८१ ॥

'मानद ! यह मुझे अनुचित-सा दिखायी देता है कि हमलोगोंके रहते हुए स्वयं राजा दुर्योधन बिना किसी सहायकके अर्जुनके साथ युद्धके लिये जाय ॥ ८१ ॥

दुर्लभं जीवितं मन्ये कौरव्यस्य किरीटिना ।
युध्यमानस्य पार्थेन शार्दूलेनेव हस्तिनः ॥ ८२ ॥

'जैसे सिंहके साथ हाथी युद्ध करे तो उसका जीवित रहना असम्भव हो जाता है, उसी प्रकार किरीटधारी कुन्ती-कुमार अर्जुनके साथ युद्धमें प्रवृत्त होनेपर कुरुवंशी दुर्योधनके जीवनको मैं दुर्लभ ही मानता हूँ' ॥ ८२ ॥

मातुलेनैवमुक्तस्तु द्रौणिः शस्त्रभृतां वरः ।
दुर्योधनमिदं वाक्यं त्वरितः समभाषत ॥ ८३ ॥

मामाके ऐसा कहनेपर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणकुमार अश्वत्थामाने तुरंत ही दुर्योधनके पास जाकर इस प्रकार कहा—॥

मयि जीवति गान्धारे न युद्धं गन्तुमर्हसि ।
मामनादृत्य कौरव्य तव नित्यं हितैषिणम् ॥ ८४ ॥

'गान्धारीनन्दन ! कुरुकुलरत्न ! मैं सदा तुम्हारा हित चाहनेवाला हूँ । तुम मेरे जीते-जी मेरा अनादर करके स्वयं युद्धमें न जाओ ॥ ८४ ॥

न हि ते सम्भ्रमः कार्यः पार्थस्य विजयं प्रति ।
अहमावारयिष्यामि पार्थं तिष्ठ सुयोधन ॥ ८५ ॥

'सुयोधन ! अर्जुनपर विजय पानेके सम्बन्धमें तुम्हें किसी प्रकार संदेह नहीं करना चाहिये । तुम खड़े रहो । मैं अर्जुनको रोकूँगा' ॥ ८५ ॥

दुर्योधन उवाच

आचार्यः पाण्डुपुत्रान् वै पुत्रवत् परिरक्षति ।
त्वमप्युपेक्षां कुरुषे तेषु नित्यं द्विजोत्तम ॥ ८६ ॥

दुर्योधन बोला—द्विजश्रेष्ठ ! हमारे आचार्य तो अपने पुत्रकी भाँति पाण्डवोंकी रक्षा करते हैं और तुम भी सदा उनकी उपेक्षा ही करते हो ॥ ८६ ॥

मम वा मन्दभाग्यत्वान्मन्दस्ते विक्रमो युधि ।
धर्मराजप्रियार्थं वा द्रौपद्या वा न विद्म तत् ॥ ८७ ॥

अथवा मेरे दुर्भाग्यसे युद्धमें तुम्हारा पराक्रम मन्द पड़ गया है । तुम धर्मराज युधिष्ठिर अथवा द्रौपदीका प्रिय करनेके लिये ऐसा करते हो, इसका मुझे पता नहीं है॥८७॥

धिगस्तु मम लुब्धस्य यत्कृते सर्वबान्धवाः ।
सुखार्हाः परमं दुःखं प्राप्नुवन्त्यपराजिताः ॥ ८८ ॥

मुझ लोभीको धिक्कार है, जिसके कारण किसीसे पराजित न होनेवाले और सुख भोगनेके योग्य मेरे सभी भाई-बन्धु महान् दुःख उठा रहे हैं ॥ ८८ ॥

को हि शस्त्रविदां मुख्यो महेश्वरसमो युधि ।
शत्रुं न क्षपयेच्छक्तो यो न स्याद् गौतमीसुतः ॥ ८९ ॥

कृपीकुमार अश्वत्थामाके सिवा दूसरा कौन ऐसा वीर है, जो शस्त्रवेत्ताओंमें प्रधान, महादेवजीके समान पराक्रमी तथा शक्तिशाली होकर भी युद्धमें शत्रुका संहार नहीं करेगा॥८९॥

अश्वत्थामन् प्रसीदस्व नाशयैतान् ममाहितान् ।
तवास्त्रगोचरे शक्ताः स्थातुं देवा न दानवाः ॥ ९० ॥

अश्वत्थामन् ! प्रसन्न होओ । मेरे इन शत्रुओंका नाश करो । तुम्हारे अस्त्रोंके मार्गमें देवता और दानव भी नहीं ठहर सकते हैं ॥ ९० ॥

पञ्चालान् सोमकांश्चैव जहि द्रौणे सहानुगान् ।
वयं शेषान् हनिष्यामस्त्वयैव परिरक्षिताः ॥ ९१ ॥

द्रोणकुमार ! तुम अनुगामियोंसहित पाञ्चालों और सोमकोंको मार डालो; फिर तुमसे ही सुरक्षित हो हमलोग अपने शेष शत्रुओंका संहार कर डालेंगे ॥ ९१ ॥

एते हि सोमका विप्र पञ्चालाश्च यशस्विनः ।
मम सैन्येषु संक्रुद्धा विचरन्ति दवाग्निवत् ॥ ९२ ॥
तान् वारय महाबाहो केकयांश्च नरोत्तम ।
पुरा कुर्वन्ति निःशेषं रक्ष्यमाणाः किरीटिना ॥ ९३ ॥

विप्रवर ! ये यशस्वी पाञ्चाल और सोमक क्रोधमें भर कर दावानलके समान मेरी सेनाओंमें विचर रहे हैं । इन्हींके साथ केकय भी हैं । महाबाहो ! नरश्रेष्ठ ! वे किरीटधारी अर्जुनसे सुरक्षित हो मेरी सेनाका सर्वनाश न कर डालें । अतः पहले ही उन्हें रोको ॥ ९२–९३ ॥

अश्वत्थामंस्त्वरायुक्तो याहि शीघ्रमरिंदम ।
आदौ वा यदि वा पश्चात् तवेदं कर्म मारिष ॥ ९४ ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले माननीय भाई अश्वत्थामा ! तुम शीघ्र ही जाओ । पहले करो या पीछे; यह कार्य तुम्हारे ही वशका है ॥ ९४ ॥

त्वमुत्पन्नो महाबाहो पञ्चालानां वधं प्रति ।
करिष्यसि जगत् सर्वमपाञ्चालं किलोद्यतः ॥ ९५ ॥

महाबाहो ! तुम पाञ्चालोंका वध करनेके लिये ही उत्पन्न हुए हो । यदि तुम तैयार हो जाओ तो निश्चय ही सारे जगत्को पाञ्चालोंसे शून्य कर दोगे ॥ ९५ ॥

एवं सिद्धाऽब्रुवन् वाचो भविष्यति च तत् तथा ।
तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र पञ्चालाञ्जहि सानुगान् ॥ ९६ ॥

पुरुषसिंह ! सिद्ध पुरुषोंने तुम्हारे विषयमें ऐसी ही बातें कही हैं । वे उसी रूपमें सत्य होंगी । अतः तुम सेवकोंसहित पाञ्चालोंका वध करो ॥ ९६ ॥

न तेऽस्त्रगोचरे शक्ताः स्थातुं देवाः सवासवाः ।
किमु पार्थाः सपाञ्चालाः सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ९७ ॥

मैं तुमसे यह सच कहता हूँ कि तुम्हारे बाणोंके मार्गमें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी नहीं ठहर सकते; फिर कुन्तीके पुत्रों और पाञ्चालोंकी तो बिसात ही क्या है ? ॥ ९७ ॥

न त्वां समर्थाः संग्रामे पाण्डवाः सह सोमकैः ।
बलाद् योधयितुं वीर सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ९८ ॥

वीर ! सोमकोंसहित पाण्डव संग्राममें तुम्हारे साथ बलपूर्वक युद्ध करनेमें समर्थ नहीं हैं । यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ ॥ ९८ ॥

गच्छ गच्छ महाबाहो न नः कालात्ययो भवेत् ।
इयं हि द्रवते सेना पार्थसायकपीडिता ॥ ९९ ॥

महाबाहो ! जाओ, जाओ । हमारे इस कार्यमें विलम्ब नहीं होना चाहिये । देखो, अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित होकर यह सेना भागी जा रही है ॥ ९९ ॥

शक्तो ह्यसि महाबाहो दिव्येन स्वेन तेजसा ।
निग्रहे पाण्डुपुत्राणां पञ्चालानां च मानद ॥१००॥

दूसरोंको मान देनेवाले महाबाहु वीर ! तुम अपने दिव्य तेजसे पाञ्चालों और पाण्डवोंका निग्रह करनेमें समर्थ हो ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दुर्योधनवाक्ये एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१५९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसङ्गमें दुर्योधनका वचनविषयक एक सौ उनसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५९ ॥

षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

अश्वत्थामाका दुर्योधनको उपालम्भपूर्ण आश्वासन देकर पाञ्चालोंके साथ युद्ध करते हुए धृष्टद्युम्नके रथसहित सारथिको नष्ट करके उसकी सेनाको भगाकर अद्भुत पराक्रम दिखाना

संजय उवाच

दुर्योधनेनैवमुक्तो द्रौणिराहवदुर्मदः।
चकारारिवधे यत्नमिन्द्रो दैत्यवधे यथा॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! दुर्योधनके ऐसा कहनेपर रणदुर्मद अश्वत्थामाने उसी प्रकार शत्रुवधके लिये प्रयत्न आरम्भ किया, जैसे इन्द्र दैत्यवधके लिये यत्न करते हैं॥ १॥

प्रत्युवाच महाबाहुस्तव पुत्रमिदं वचः।
सत्यमेतन्महाबाहो यथा वदसि कौरव॥ २॥

उस समय महाबाहु अश्वत्थामाने आपके पुत्रसे यह वचन कहा—'महाबाहु कौरवनन्दन! तुम जैसा कहते हो, यही ठीक है॥ २॥

प्रिया हि पाण्डवा नित्यं मम चापि पितुश्च मे।
तथैवावां प्रियौ तेषां न तु युद्धे कुरूद्वह॥ ३॥

'कुरुश्रेष्ठ! पाण्डव मुझे तथा मेरे पिताजीको भी बहुत प्रिय हैं। इसी प्रकार उनको भी हम दोनों पिता-पुत्र प्रिय हैं, किंतु युद्धस्थलमें हमारा यह भाव नहीं रहता॥ ३॥

शक्तितस्तात युध्यामस्त्यक्त्वा प्राणानभीतवत्।
अहं कर्णश्च शल्यश्च कृपो हार्दिक्य एव च।
निमेषात् पाण्डवीं सेनां क्षपयेम नृपोत्तम॥ ४॥

'तात! हम अपने प्राणोंका मोह छोड़कर निर्भय-से होकर यथाशक्ति युद्ध करते हैं। नृपश्रेष्ठ! मैं, कर्ण, शल्य, कृप और कृतवर्मा पलक मारते-मारते पाण्डव-सेनाका संहार कर सकते हैं॥ ४॥

ते चापि कौरवीं सेनां निमेषार्धात् कुरूद्वह।
क्षपयेयुर्महाबाहो न स्याम यदि संयुगे॥ ५॥

'महाबाहु कुरुश्रेष्ठ! यदि युद्धस्थलमें हमलोग न रहें, तो पाण्डव भी आधे निमेषमें ही कौरव-सेनाका संहार कर सकते हैं॥ ५॥

युध्यतां पाण्डवाञ्छक्त्या तेषां चास्मान् युयुत्सताम्।
तेजस्तेजः समासाद्य प्रशमं याति भारत॥ ६॥

'हम यथाशक्ति पाण्डवोंसे युद्ध करते हैं और वे हमलोगोंसे युद्ध करना चाहते हैं। भारत! इस प्रकार हमारा तेज परस्पर एक दूसरेसे टकराकर शान्त हो जाता है॥ ६॥

अशक्या तरसा जेतुं पाण्डवानामनीकिनी।
जीवत्सु पाण्डुपुत्रेषु तद्धि सत्यं ब्रवीमि ते॥ ७॥

'राजन्! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि पाण्डवोंके जीते-जी उनकी सेनाको बलपूर्वक जीतना असम्भव है॥ ७॥

आत्मार्थं युध्यमानास्ते समर्थाः पाण्डुनन्दनाः।
किमर्थं तव सैन्यानि न हनिष्यन्ति भारत॥ ८॥

'भरतनन्दन! पाण्डव शक्तिशाली हैं और अपने लिये युद्ध करते हैं, फिर वे किस लिये तुम्हारी सेनाओंका संहार नहीं करेंगे?॥ ८॥

त्वं तु लुब्धतमो राजन् निकृतिज्ञश्च कौरव।
सर्वाभिशङ्की मानी च ततोऽस्मानभिशङ्कसे॥ ९॥

'कौरवनरेश! तुम तो लोभी और छल-कपटकी विद्याको जाननेवाले हो। सबपर संदेह करनेवाले और अभिमानी हो; इसीलिये हमलोगोंपर भी शङ्का करते हो॥ ९॥

मन्ये त्वं कुत्सितो राजन् पापात्मा पापपूरुषः।
अन्यानपि स नः क्षुद्र शङ्कसे पापभावितः॥ १०॥

'राजन्! मेरी मान्यता है कि तुम निन्दित, पापात्मा एवं पापपुरुष हो।' क्षुद्र नरेश! तुम्हारा अन्तःकरण पापभावनासे ही पूर्ण है, इसीलिये तुम हमपर तथा दूसरोंपर भी संदेह करते हो॥ १०॥

अहं तु यत्नमास्थाय त्वदर्थे त्यक्तजीवितः।
एष गच्छामि संग्रामं त्वत्कृते कुरुनन्दन॥ ११॥

'कुरुनन्दन! मैं अभी तुम्हारे लिये जीवनका मोह छोड़कर पूरा प्रयत्न करके संग्राम-भूमिमें जा रहा हूँ॥ ११॥

योत्स्येऽहं शत्रुभिः सार्धं जेष्यामि च वरान् वरान्।
पञ्चालैः सह योत्स्यामि सोमकैः केकयैस्तथा॥ १२॥
पाण्डवेयैश्च संग्रामे त्वत्प्रियार्थमरिंदम।

'शत्रुदमन! मैं शत्रुओंके साथ युद्ध करूँगा और उनके प्रधान-प्रधान वीरोंपर विजय पाऊँगा। संग्रामभूमिमें तुम्हारा प्रिय करनेके लिये मैं पाञ्चालों, सोमकों, केकयों तथा पाण्डवोंके साथ भी युद्ध करूँगा॥ १२½॥

अद्य मद्बाणनिर्दग्धाः पञ्चालाः सोमकास्तथा॥ १३॥
सिंहेनेवार्दिता गावो विद्रविष्यन्ति सर्वशः।

'आज पाञ्चाल और सोमक योद्धा मेरे बाणोंसे दग्ध होकर सिंहसे पीड़ित हुई गौओंके समान सब ओर भाग जायँगे॥ १३½॥

अद्य धर्मसुतो राजा दृष्ट्वा मम पराक्रमम्॥ १४॥
अश्वत्थाममयं लोकं मंस्यते सह सोमकैः।

'आज सोमकोसहित धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर मेरा पराक्रम देखकर सम्पूर्ण जगत्को अश्वत्थामासे भरा हुआ मानेंगे॥ १४½॥

आगमिष्यति निर्वेदं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः॥ १५॥
दृष्ट्वा विनिहतान् संख्ये पञ्चालान् सोमकैः सह।

'सुयोधन ! अर्जुनपर विजय पानेके सम्बन्धमें तुम्हें किसी प्रकार संदेह नहीं करना चाहिये । तुम खड़े रहो । मैं अर्जुनको रोकूँगा' ॥ ८५ ॥

दुर्योधन उवाच

आचार्यः पाण्डुपुत्रान् वै पुत्रवत् परिरक्षति ।
त्वमप्युपेक्षां कुरुषे तेषु नित्यं द्विजोत्तम ॥ ८६ ॥

दुर्योधन बोला—द्विजश्रेष्ठ ! हमारे आचार्य तो अपने पुत्रकी भाँति पाण्डवोंकी रक्षा करते हैं और तुम भी सदा उनकी उपेक्षा ही करते हो ॥ ८६ ॥

मम वा मन्दभाग्यत्वान्मन्दस्ते विक्रमो युधि ।
धर्मराजप्रियार्थं वा द्रौपद्या वा न विद्म तत् ॥ ८७ ॥

अथवा मेरे दुर्भाग्यसे युद्धमें तुम्हारा पराक्रम मन्द पड़ गया है । तुम धर्मराज युधिष्ठिर अथवा द्रौपदीका प्रिय करनेके लिये ऐसा करते हो, इसका मुझे पता नहीं है॥८७॥

धिगस्तु मम लुब्धस्य यत्कृते सर्वबान्धवाः ।
सुखार्हाः परमं दुःखं प्राप्नुवन्त्यपराजिताः ॥ ८८ ॥

मुझ लोभीको धिक्कार है, जिसके कारण किसीसे पराजित न होनेवाले और सुख भोगनेके योग्य मेरे सभी भाई-बन्धु महान् दुःख उठा रहे हैं ॥ ८८ ॥

को हि शस्त्रविदां मुख्यो महेश्वरसमो युधि ।
शत्रुं न क्षपयेच्छक्तो यो न स्याद् गौतमीसुतः ॥ ८९ ॥

कृपीकुमार अश्वत्थामाके सिवा दूसरा कौन ऐसा वीर है, जो शस्त्रवेत्ताओंमें प्रधान, महादेवजीके समान पराक्रमी तथा शक्तिशाली होकर भी युद्धमें शत्रुका संहार नहीं करेगा॥८९॥

अश्वत्थामन् प्रसीदस्व नाशयैतान् ममाहितान् ।
तवास्त्रगोचरे शक्ताः स्थातुं देवा न दानवाः ॥ ९० ॥

अश्वत्थामन् ! प्रसन्न होओ । मेरे इन शत्रुओंका नाश करो । तुम्हारे अस्त्रोंके मार्गमें देवता और दानव भी नहीं ठहर सकते हैं ॥ ९० ॥

पञ्चालान् सोमकांश्चैव जहि द्रौणे सहानुगान् ।
वयं शेषान् हनिष्यामस्त्वयैव परिरक्षिताः ॥ ९१ ॥

द्रोणकुमार ! तुम अनुगामियोंसहित पाञ्चालों और सोमकोंको मार डालो; फिर तुमसे ही सुरक्षित हो हमलोग अपने शेष शत्रुओंका संहार कर डालेंगे ॥ ९१ ॥

एते हि सोमका विप्र पञ्चालाश्च यशस्विनः ।
मम सैन्येषु संक्रुद्धा विचरन्ति दवाग्निवत् ॥ ९२ ॥
तान् वारय महाबाहो केकयांश्च नरोत्तम ।
पुरा कुर्वन्ति निःशेषं रक्ष्यमाणाः किरीटिना ॥ ९३ ॥

विप्रवर ! ये यशस्वी पाञ्चाल और सोमक क्रोधमें भरकर दावानलके समान मेरी सेनाओंमें विचर रहे हैं । इन्हींके साथ केकय भी हैं । महाबाहो ! नरश्रेष्ठ ! वे किरीटधारी अर्जुनसे सुरक्षित हो मेरी सेनाका सर्वनाश न कर डालें । अतः पहले ही उन्हें रोको ॥ ९२-९३ ॥

अश्वत्थामंस्त्वरायुक्तो याहि शीघ्रमरिंदम ।
आदौ वा यदि वा पश्चात् तवेदं कर्म मारिष ॥ ९४ ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले माननीय भाई अश्वत्थामा ! तुम शीघ्र ही जाओ । पहले करो या पीछे; यह कार्य तुम्हारे ही वशका है ॥ ९४ ॥

त्वमुत्पन्नो महाबाहो पञ्चालानां वधं प्रति ।
करिष्यसि जगत् सर्वमपाञ्चालं किलोद्यतः ॥ ९५ ॥

महाबाहो ! तुम पाञ्चालोंका वध करनेके लिये ही उत्पन्न हुए हो । यदि तुम तैयार हो जाओ तो निश्चय ही सारे जगत्को पाञ्चालोंसे शून्य कर दोगे ॥ ९५ ॥

एवं सिद्धाऽब्रुवन् वाचो भविष्यति च तत् तथा ।
तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र पञ्चालाञ्जहि सानुगान् ॥ ९६ ॥

पुरुषसिंह ! सिद्ध पुरुषोंने तुम्हारे विषयमें ऐसी ही बातें कही हैं । वे उसी रूपमें सत्य होंगी । अतः तुम सेवकोंसहित पाञ्चालोंका वध करो ॥ ९६ ॥

न तेऽस्त्रगोचरे शक्ताः स्थातुं देवाः सवासवाः ।
किमु पार्थाः सपाञ्चालाः सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ९७ ॥

मैं तुमसे यह सच कहता हूँ कि तुम्हारे बाणोंके मार्गमें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी नहीं ठहर सकते; फिर कुन्तीके पुत्रों और पाञ्चालोंकी तो बिसात ही क्या है ? ॥ ९७ ॥

न त्वां समर्थाः संग्रामे पाण्डवाः सह सोमकैः ।
बलाद् योधयितुं वीर सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ९८ ॥

वीर ! सोमकोंसहित पाण्डव संग्राममें तुम्हारे साथ बलपूर्वक युद्ध करनेमें समर्थ नहीं हैं । यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ ॥ ९८ ॥

गच्छ गच्छ महाबाहो न नः कालात्ययो भवेत् ।
इयं हि द्रवते सेना पार्थसायकपीडिता ॥ ९९ ॥

महाबाहो ! जाओ, जाओ । हमारे इस कार्यमें विलम्ब नहीं होना चाहिये । देखो, अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित होकर यह सेना भागी जा रही है ॥ ९९ ॥

शक्तो ह्यसि महाबाहो दिव्येन स्वेन तेजसा ।
निग्रहे पाण्डुपुत्राणां पञ्चालानां च मानद ॥१००॥

दूसरोंको मान देनेवाले महाबाहु वीर ! तुम अपने दिव्य तेजसे पाञ्चालों और पाण्डवोंका निग्रह करनेमें समर्थ हो ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दुर्योधनवाक्ये एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१५९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसङ्गमें दुर्योधनका वचनविषयक एक सौ उनसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५९ ॥

षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

अश्वत्थामाका दुर्योधनको उपालम्भपूर्ण आश्वासन देकर पाञ्चालोंके साथ युद्ध करते हुए धृष्टद्युम्नके रथसहित सारथिको नष्ट करके उसकी सेनाको भगाकर अद्भुत पराक्रम दिखाना

संजय उवाच

दुर्योधनेनैवमुक्तो द्रौणिराहवदुर्मदः।
चक्रारिवधे यत्नमिन्द्रो दैत्यवधे यथा ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! दुर्योधनके ऐसा कहनेपर रणदुर्मद अश्वत्थामाने उसी प्रकार शत्रुवधके लिये प्रयत्न आरम्भ किया, जैसे इन्द्र दैत्यवधके लिये यत्न करते हैं॥१॥

प्रत्युवाच महाबाहुस्तव पुत्रमिदं वचः।
सत्यमेतन्महाबाहो यथा वदसि कौरव ॥ २ ॥

उस समय महाबाहु अश्वत्थामाने आपके पुत्रसे यह वचन कहा—'महाबाहु कौरवनन्दन! तुम जैसा कहते हो, यही ठीक है ॥ २ ॥

प्रिया हि पाण्डवा नित्यं मम चापि पितुश्च मे।
तथैवावां प्रियौ तेषां न तु युद्धे कुरूद्वह ॥ ३ ॥

'कुरुश्रेष्ठ! पाण्डव मुझे तथा मेरे पिताजीको भी बहुत प्रिय हैं। इसी प्रकार उनको भी हम दोनों पिता-पुत्र प्रिय हैं, किंतु युद्धस्थलमें हमारा यह भाव नहीं रहता ॥ ३ ॥

शक्तितस्तात युध्यामस्त्यक्त्वा प्राणानभीतवत्।
अहं कर्णश्च शल्यश्च कृपो हार्दिक्य एव च।
निमेषात् पाण्डवीं सेनां क्षपयेम नृपोत्तम ॥ ४ ॥

'तात! हम अपने प्राणोंका मोह छोड़कर निर्भय-से होकर यथाशक्ति युद्ध करते हैं। नृपश्रेष्ठ! मैं, कर्ण, शल्य, कृप और कृतवर्मा पलक मारते-मारते पाण्डव-सेनाका संहार कर सकते हैं ॥ ४ ॥

ते चापि कौरवीं सेनां निमेषार्धात् कुरूद्वह।
क्षपयेयुर्महाबाहो न स्याम यदि संयुगे ॥ ५ ॥

'महाबाहु कुरुश्रेष्ठ! यदि युद्धस्थलमें हमलोग न रहें, तो पाण्डव भी आधे निमेषमें ही कौरव-सेनाका संहार कर सकते हैं ॥ ५ ॥

युध्यतां पाण्डवाञ्छक्त्या तेषां चास्मान् युयुत्सताम्।
तेजस्तेजः समासाद्य प्रशमं याति भारत ॥ ६ ॥

'हम यथाशक्ति पाण्डवोंसे युद्ध करते हैं और वे हमलोगोंसे युद्ध करना चाहते हैं। भारत! इस प्रकार हमारा तेज परस्पर एक दूसरेसे टकराकर शान्त हो जाता है॥६॥

अशक्या तरसा जेतुं पाण्डवानामनीकिनी।
जीवत्सु पाण्डुपुत्रेषु तद्धि सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ७ ॥

'राजन्! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि पाण्डवोंके जीते-जी उनकी सेनाको बलपूर्वक जीतना असम्भव है ॥ ७ ॥

आत्मार्थं युध्यमानास्ते समर्थाः पाण्डुनन्दनाः।
किमर्थं तव सैन्यानि न हनिष्यन्ति भारत ॥ ८ ॥

'भरतनन्दन! पाण्डव शक्तिशाली हैं और अपने लिये युद्ध करते हैं, फिर वे किस लिये तुम्हारी सेनाओंका संहार नहीं करेंगे? ॥ ८ ॥

त्वं तु लुब्धतमो राजन् निकृतिज्ञश्च कौरव।
सर्वाभिशङ्की मानी च ततोऽस्मानभिशङ्कसे ॥ ९ ॥

'कौरवनरेश! तुम तो लोभी और छल-कपटकी विद्याको जाननेवाले हो। सबपर संदेह करनेवाले और अभिमानी हो; इसीलिये हमलोगोंपर भी शङ्का करते हो ॥ ९ ॥

मन्ये त्वं कुत्सितो राजन् पापात्मा पापपूरुषः।
अन्यानपि स नः क्षुद्र शङ्कसे पापभावितः ॥ १० ॥

'राजन्! मेरी मान्यता है कि तुम निन्दित, पापात्मा एवं पापपुरुष हो।' क्षुद्र नरेश! तुम्हारा अन्तःकरण पाप-भावनासे ही पूर्ण है, इसीलिये तुम हमपर तथा दूसरोंपर भी संदेह करते हो ॥ १० ॥

अहं तु यत्नमास्थाय त्वदर्थे त्यक्तजीवितः।
एष गच्छामि संग्रामं त्वत्कृते कुरुनन्दन ॥ ११ ॥

'कुरुनन्दन! मैं अभी तुम्हारे लिये जीवनका मोह छोड़कर पूरा प्रयत्न करके संग्राम-भूमिमें जा रहा हूँ ॥ ११ ॥

योत्स्येऽहं शत्रुभिः सार्धं जेष्यामि च वरान् वरान्।
पञ्चालैः सह योत्स्यामि सोमकैः केकयैस्तथा ॥ १२ ॥
पाण्डवेयैश्च संग्रामे त्वत्प्रियार्थमरिंदम।

'शत्रुदमन! मैं शत्रुओंके साथ युद्ध करूँगा और उनके प्रधान-प्रधान वीरोंपर विजय पाऊँगा। संग्रामभूमिमें तुम्हारा प्रिय करनेके लिये मैं पाञ्चालों, सोमकों, केकयों तथा पाण्डवोंके साथ भी युद्ध करूँगा ॥ १२½ ॥

अद्य मद्बाणनिर्दग्धाः पञ्चालाः सोमकास्तथा ॥ १३ ॥
सिंहेनेवार्दिता गावो विद्रविष्यन्ति सर्वशः।

'आज पाञ्चाल और सोमक योद्धा मेरे बाणोंसे दग्ध होकर सिंहसे पीड़ित हुई गौओंके समान सब ओर भाग जायँगे ॥ १३½ ॥

अद्य धर्मसुतो राजा दृष्ट्वा मम पराक्रमम् ॥ १४ ॥
अश्वत्थाममयं, लोकं मंस्यते सह सोमकैः।

'आज सोमकोसहित धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर मेरा पराक्रम देखकर सम्पूर्ण जगत्को अश्वत्थामासे भरा हुआ मानेंगे ॥ १४½ ॥

आगमिष्यति निर्वेदं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १५ ॥
दृष्ट्वा विनिहतान् संख्ये पञ्चालान् सोमकैः सह।

'सोमकोंसहित पाञ्चालोंको युद्धमें मारा गया देख आज धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके मनमें बड़ा निर्वेद (खेद एवं वैराग्य) होगा ॥ १५½ ॥

ये मां युद्धेऽभियोत्स्यन्ति तान् हनिष्यामि भारत ॥ १६ ॥
न हि ते वीर मोक्ष्यन्ते मद्बाह्वन्तरमागताः ।

'भारत ! जो लोग रणभूमिमें मेरे साथ युद्ध करेंगे, उन्हें मैं मार डालूँगा । वीर ! मेरी भुजाओंके भीतर आकर शत्रुसैनिक जीवित नहीं छूट सकेंगे' ॥ १६½ ॥

एवमुक्त्वा महाबाहुः पुत्रं दुर्योधनं तव ॥ १७ ॥
अभ्यवर्तत युद्धाय त्रासयन् सर्वधन्विनः ।
चिकीर्षुस्तव पुत्राणां प्रियं प्राणभृतां वरः ॥ १८ ॥

आपके पुत्र दुर्योधनसे ऐसा कहकर महाबाहु अश्वत्थामा समस्त धनुर्धरोंको त्रास देता हुआ युद्धके लिये शत्रुओंके सामने डट गया । प्राणियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामा आपके पुत्रोंका प्रिय करना चाहता था ॥ १७-१८ ॥

ततोऽब्रवीत् सकैकेयान् पञ्चालान् गौतमीसुतः।
प्रहरध्वमितः सर्वे मम गात्रे महारथाः ॥ १९ ॥
स्थिरीभूताश्च युद्ध्यध्वं दर्शयन्तोऽस्त्रलाघवम् ।

तदनन्तर गौतमीनन्दन अश्वत्थामाने केकयोंसहित पाञ्चालोंसे कहा—'महारथियो ! अब सब लोग मिलकर मेरे शरीरपर प्रहार करो और अपनी अस्त्र-संचालनकी फुर्ती दिखाते हुए सुस्थिर होकर युद्ध करो' ॥ १९½ ॥

एवमुक्तास्तु ते सर्वे शस्त्रवृष्टीरपातयन् ॥ २० ॥
द्रौणिं प्रति महाराज जलं जलधरा इव ।

महाराज ! अश्वत्थामाके ऐसा कहनेपर वे सभी वीर उसके ऊपर उसी प्रकार अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे, जैसे मेघ पर्वतपर पानी बरसाते हैं ॥ २०½ ॥

तान् निहत्य शरान्द्रौणिर्दश वीरानपोथयत् ॥ २१ ॥
प्रमुखे पाण्डुपुत्राणां धृष्टद्युम्नस्य च प्रभो ।

प्रभो ! द्रोणकुमारने उनके उन बाणोंको नष्ट करके उनमेंसे दस वीरोंको पाण्डवों और धृष्टद्युम्नके सामने ही मार गिराया ॥ २१½ ॥

ते हन्यमानाः समरे पञ्चालाः सोमकास्तथा ॥ २२ ॥
परित्यज्य रणे द्रौणिं व्यद्रवन्त दिशो दश ।

समराङ्गणमें मारे जाते हुए पाञ्चाल और सोमक द्रोण-पुत्र अश्वत्थामाको छोड़कर दसों दिशाओंमें भाग गये ॥ २२½ ॥

तान् दृष्ट्वा द्रवतः शूरान् पञ्चालान् सहसोमकान् ॥ २३ ॥
धृष्टद्युम्नो महाराज द्रौणिमभ्यद्रवद् रणे ।

महाराज ! शूरवीर पाञ्चालों और सोमकोंको भागते देख धृष्टद्युम्नने रणक्षेत्रमें अश्वत्थामापर धावा किया ॥ २३½ ॥

ततः काञ्चनचित्राणां सजलाम्बुदनादिनाम् ॥ २४ ॥
वृतः शतेन शूराणां रथानामनिवर्तिनाम् ।
पुत्रः पाञ्चालराजस्य धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ २५ ॥
द्रौणिमित्यब्रवीद् वाक्यं दृष्ट्वा योधान् निपातितान् ।

तदनन्तर सुवर्णचित्रित, सजल जलधरके समान गम्भीर घोष करनेवाले तथा युद्धसे कभी पीठ न दिखानेवाले सौ रथों एवं शूरवीर रथियोंसे घिरे हुए पाञ्चालराज-कुमार महारथी धृष्टद्युम्नने अपने योद्धाओंको मारा गया देख द्रोणकुमार अश्वत्थामासे इस प्रकार कहा—॥ २४-२५½ ॥

आचार्यपुत्र दुर्बुद्धे किमन्यैर्निहतैस्तव ॥ २६ ॥
समागच्छ मया सार्धं यदि शूरोऽसि संयुगे ।
अहं त्वां निहनिष्यामि तिष्ठेदानीं ममाग्रतः ॥ २७ ॥

'खोटी बुद्धिवाले आचार्यपुत्र ! दूसरोंको मारनेसे तुम्हें क्या लाभ है ? यदि शूरमा हो तो रणक्षेत्रमें मेरे साथ भिड़ जाओ । इस समय मेरे सामने खड़े तो हो जाओ, मैं अभी तुम्हें मार डालूँगा' ॥ २६-२७ ॥

ततस्तमाचार्यसुतं धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।
मर्मभिद्भिः शरैस्तीक्ष्णैर्जघान भरतर्षभ ॥ २८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! ऐसा कहकर प्रतापी धृष्टद्युम्नने मर्मभेदी एवं पैने बाणोंद्वारा आचार्यपुत्रको घायल कर दिया ॥ २८ ॥

ते तु पङ्क्तीकृता द्रौणिं शरा विविशुराशुगाः ।
रुक्मपुङ्खाः प्रसन्नाग्राः सर्वकायावदारणाः ॥ २९ ॥
मध्वर्थिन इवोद्दामा भ्रमराः पुष्पितं द्रुमम् ।

सुवर्णमय पंख और स्वच्छ धारवाले, सबके शरीरोंको विदीर्ण करनेमें समर्थ वे शीघ्रगामी बाण श्रेणीबद्ध होकर अश्वत्थामाके शरीरमें वैसे ही घुस गये, जैसे मधुके लोभी उद्दाम भ्रमर फूले हुए वृक्षपर बैठ जाते हैं ॥ २९½ ॥

सोऽतिविद्धो भृशं क्रुद्धः पदाक्रान्त इवोरगः ॥ ३० ॥
मानी द्रौणिरसम्भ्रान्तो बाणपाणिरभाषत ।

उन बाणोंसे अत्यन्त घायल होकर मानी द्रोणकुमार पैरोंसे कुचले गये सर्पके समान अत्यन्त कुपित हो उठा और हाथमें बाण लेकर संभ्रमरहित हो इस प्रकार बोला—॥ ३०½ ॥

धृष्टद्युम्न स्थिरो भूत्वा मुहूर्तं प्रतिपालय ॥ ३१ ॥
यावत् त्वां निशितैर्बाणैः प्रेषयामि यमक्षयम् ।

'धृष्टद्युम्न ! स्थिर होकर दो घड़ी और प्रतीक्षा कर लो, तबतक मैं तुम्हें अपने पैने बाणोंद्वारा यमलोक भेज देता हूँ' ॥

द्रौणिरेवमथाभाष्य पार्षतं परवीरहा ॥ ३२ ॥
छादयामास बाणौघैः समन्ताल्लघुहस्तवत् ।

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले अश्वत्थामाने ऐसा कहकर शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले कुशल योद्धाकी भाँति अपने बाण-समूहोंद्वारा धृष्टद्युम्नको सब ओरसे आच्छादित कर दिया ॥

स बाध्यमानः समरे द्रौणिना युद्धदुर्मदः ॥ ३३ ॥

द्रौणिं पाञ्चालतनयो वाग्भिरातर्जयत् तदा ।

समराङ्गणमें अश्वत्थामाद्वारा पीडित होनेपर रणदुर्मद पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नने उसे वाणीद्वारा डाँट बतायी और इस प्रकार कहा—॥ ३३½ ॥

न जानीषे प्रतिज्ञां मे विप्रोत्पत्तिं तथैव च ॥ ३४ ॥
द्रोणं हत्वा किल मया हन्तव्यस्त्वं सुदुर्मते ।

'दुर्बुद्धि ब्राह्मण ! क्या तू मेरी प्रतिज्ञा और उत्पत्तिका वृत्तान्त नहीं जानता ? निश्चय ही, मुझे पहले द्रोणाचार्यका वध करके फिर तेरा विनाश करना है ॥ ३४½ ॥

ततस्त्वाहं न हन्म्यद्य द्रोणे जीवति संयुगे ॥ ३५ ॥
इमां तु रजनीं प्राप्तामप्रभातां सुदुर्मते ।
निहत्य पितरं तेऽद्य ततस्त्वामपि संयुगे ॥ ३६ ॥
नेष्यामि प्रेतलोकाय ह्येतन्मे मनसि स्थितम् ।

'इसीलिये द्रोणके जीते-जी अभी युद्धस्थलमें तेरा वध नहीं कर रहा हूँ । दुर्मते ! इसी रातमें प्रभात होनेसे पहले आज तेरे पिताका वध करके फिर तुझे भी युद्धस्थलमें प्रेत-लोकको भेज दूँगा । यही मेरे मनका निश्चित विचार है ॥

यस्ते पार्थेषु विद्वेषो या भक्तिः कौरवेषु च ॥ ३७ ॥
तां दर्शय स्थिरो भूत्वा न मे जीवन् विमोक्ष्यसे ।

'कुन्तीके पुत्रोंके प्रति जो तेरा द्वेषभाव और कौरवोंके प्रति जो भक्तिभाव है, उसे स्थिर होकर दिखा । तू जीते-जी मेरे हाथसे छुटकारा नहीं पा सकेगा ॥ ३७½ ॥

यो हि ब्राह्मण्यमुत्सृज्य क्षत्रधर्मरतो द्विजः ॥ ३८ ॥
स वध्यः सर्वलोकस्य यथा त्वं पुरुषाधमः ।

'जो ब्राह्मण ब्राह्मणत्वका परित्याग करके क्षत्रियधर्ममें तत्पर हो, जैसा कि मनुष्योंमें अधम तू है, वह सब लोगोंके लिये वध्य है' ॥ ३८½ ॥

इत्युक्तः परुषं वाक्यं पार्षतेन द्विजोत्तमः ॥ ३९ ॥
क्रोधमाहारयत् तीव्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ।

द्रुपदकुमारके इस प्रकार कठोर वचन कहनेपर द्विज-श्रेष्ठ अश्वत्थामाको बड़ा क्रोध हुआ और उसने कहा—'अरे ! खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ ३९½ ॥

निर्दहन्निव चक्षुर्भ्यां पार्षतं सोऽभ्यवैक्षत ॥ ४० ॥
छादयामास च शरैर्निःश्वसन् पन्नगो यथा ।

उसने धृष्टद्युम्नकी ओर इस प्रकार देखा मानो अपने नेत्रोंके तेजसे उन्हें दग्ध कर डालेगा । साथ ही सर्पकी भाँति फुफकारते हुए अश्वत्थामाने उन्हें अपने बाणोंद्वारा ढक दिया ॥ ४०½ ॥

स च्छाद्यमानः समरे द्रौणिना राजसत्तम ॥ ४१ ॥
सर्वपाञ्चालसेनाभिः संवृतो रथसत्तमः ।
नाकम्पत महाबाहुः स्ववीर्यं समुपाश्रितः ॥ ४२ ॥
सायकांश्चैव विविधानश्वत्थाम्नि मुमोच ह ।

नृपश्रेष्ठ ! समराङ्गणमें अश्वत्थामाके द्वारा आच्छादित होनेपर भी समस्त पाञ्चालसेनाओंसे घिरे हुए महारथी महाबाहु धृष्टद्युम्न कम्पित नहीं हुए । उन्होंने अपने बल-पराक्रमका आश्रय लेकर अश्वत्थामापर नाना प्रकारके बाणोंका प्रहार किया ॥ ४१-४२½ ॥

तौ पुनः संन्यवर्तेतां प्राणद्यूतपणे रणे ॥ ४३ ॥
निपीडयन्तौ बाणौघैः परस्परममर्षिणौ ।
उत्सृजन्तौ महेष्वासौ शरवृष्टीः समन्ततः ॥ ४४ ॥

वे दोनों महाधनुर्धर वीर अमर्षमें भरकर एक दूसरेपर चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा करते और उन बाण-समूहोंद्वारा परस्पर पीड़ा देते हुए प्राणोंकी बाजी लगाकर रणभूमिमें डटे रहे ॥ ४३-४४ ॥

द्रौणिपार्षतयोर्युद्धं घोररूपं भयानकम् ।
दृष्ट्वा सम्पूजयामासुः सिद्धचारणवातिकाः ॥ ४५ ॥

अश्वत्थामा और धृष्टद्युम्नके उस घोर एवं भयानक युद्धको देखकर सिद्ध, चारण तथा वायुचारी गरुड़ आदिने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ ४५ ॥

शरौघैः पूरयन्तौ तावाकाशं च दिशस्तथा ।
अलक्ष्यौ समयुध्येतां महत् कृत्वा शरैस्तमः ॥ ४६ ॥

वे दोनों अपने बाण-समूहोंसे आकाश और दिशाओंको भरते हुए उनके द्वारा महान् अन्धकारकी सृष्टि करके अलक्ष्य होकर युद्ध करते रहे ॥ ४६ ॥

नृत्यमानाविव रणे मण्डलीकृतकार्मुकौ ।
परस्परवधे यत्तौ सर्वभूतभयङ्करौ ॥ ४७ ॥

उस रणक्षेत्रमें धनुषको मण्डलाकार करके वे दोनों नृत्य-सा कर रहे थे । एक दूसरेके वधके लिये प्रयत्नशील होकर समस्त प्राणियोंके लिये भयंकर बन गये थे ॥ ४७ ॥

अयुध्येतां महाबाहू चित्रं लघु च सुष्ठु च ।
सम्पूज्यमानौ समरे योधमुख्यैः सहस्रशः ॥ ४८ ॥

वे महाबाहु वीर समराङ्गणमें समस्त श्रेष्ठ योद्धाओं-द्वारा हजारों बार प्रशंसित होते हुए शीघ्रतापूर्वक और सुन्दर ढंगसे विचित्र युद्ध कर रहे थे ॥ ४८ ॥

तौ प्रबुद्धौ रणे दृष्ट्वा वने वन्यौ गजाविव ।
उभयोः सेनयोर्हर्षस्तुमुलः समपद्यत ॥ ४९ ॥

वनमें लड़नेवाले दो जंगली हाथियोंके समान उन दोनोंको युद्धमें जागरूक देखकर दोनों सेनाओंमें तुमुल हर्षनाद छा गया ॥ ४९ ॥

सिंहनादरवाश्चासन् दध्मुः शङ्खांश्च सैनिकाः ।
वादित्राण्यभ्यवाद्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५० ॥

सब ओर सिंहनाद होने लगा । सैनिक शङ्खध्वनि करने लगे तथा सैकड़ों एवं सहस्रों प्रकारके रणवाद्य बजने लगे ॥ ५० ॥

तस्मिंस्तु तुमुले युद्धे भीरूणां भयवर्धने ।
मुहूर्तमपि तद् युद्धं समरूपं तदाभवत् ॥ ५१ ॥

कायरोंका भय बढ़ानेवाले उस तुमुल संग्राममें दो घड़ीतक उन दोनोंका समान रूपसे युद्ध चलता रहा ॥ ५१ ॥

ततो द्रौणिर्महाराज पार्षतस्य महात्मनः ।
ध्वजं धनुस्तथा छत्रमुभौ च पार्ष्णिसारथी ॥ ५२ ॥
सूतमश्वांश्च चतुरो निहत्याभ्यद्रवद् रणे ।

महाराज ! तदनन्तर द्रोणकुमारने महामना धृष्टद्युम्नके ध्वज, धनुष, छत्र, दोनों पार्श्वरक्षक, सारथि तथा चारों घोड़ोंको नष्ट करके उस युद्धमें बड़े वेगसे धावा किया ॥

पञ्चालांश्चैव तान् सर्वान् बाणैः संनतपर्वभिः ॥ ५३ ॥
व्यद्रावयदमेयात्मा शतशोऽथ सहस्रशः ।

अनन्त आत्मबलसे सम्पन्न अश्वत्थामाने झुकी हुई गाँठवाले सैकड़ों और सहस्रों बाणोंद्वारा उन समस्त पाञ्चालोंको दूर भगा दिया ॥ ५३½ ॥

ततस्तु विव्यथे सेना पाण्डवी भरतर्षभ ॥ ५४ ॥
दृष्ट्वा द्रौणेर्महत् कर्म वासवस्येव संयुगे ।

भरतश्रेष्ठ ! युद्धस्थलमें इन्द्रके समान अश्वत्थामाके उस महान् कर्मको देखकर पाण्डवसेना व्यथित हो उठी ॥

शतेन च शतं हत्वा पञ्चालानां महारथः ॥ ५५ ॥
त्रिभिश्च निशितैर्बाणैर्हत्वा त्रीन् वै महारथान् ।
द्रौणिर्द्रुपदपुत्रस्य फाल्गुनस्य च पश्यतः ॥ ५६ ॥
नाशयामास पञ्चालान् भूयिष्ठं ये व्यवस्थिताः ।

महारथी द्रोणकुमारने पहले सौ बाणोंसे सौ पाञ्चाल योद्धाओंका वध करके फिर तीन पैने बाणोंद्वारा उनके तीन महारथियोंको भी मार गिराया और धृष्टद्युम्न तथा अर्जुनके देखते-देखते वहाँ जो बहुसंख्यक पाञ्चाल योद्धा खड़े थे, उन सबको नष्ट कर दिया ॥ ५५-५६½ ॥

ते वध्यमानाः पञ्चालाः समरे सह सृंजयैः ॥ ५७ ॥
अगच्छन् द्रौणिमुत्सृज्य विप्रकीर्णरथध्वजाः ।

समरभूमिमें मारे जाते हुए पाञ्चाल और सृंजय सैनिक अश्वत्थामाको छोड़कर चल दिये, उनके रथ और ध्वज नष्ट-भ्रष्ट होकर बिखर गये थे ॥ ५७½ ॥

स जित्वा समरे शत्रून् द्रोणपुत्रो महारथः ॥ ५८ ॥
ननाद सुमहानादं तपान्ते जलदो यथा ।

इस प्रकार रणभूमिमें शत्रुओंको जीतकर महारथी द्रोणपुत्र वर्षाकालके मेघके समान जोर-जोरसे गर्जना करने लगा ॥ ५८½ ॥

स निहत्य बहूञ्छूरानश्वत्थामा व्यरोचत ।
युगान्ते सर्वभूतानि भस्म कृत्वेव पावकः ॥ ५९ ॥

जैसे प्रलयकालमें अग्निदेव सम्पूर्ण भूतोंको भस्म करके प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार अश्वत्थामा वहाँ बहुसंख्यक शूर-वीरोंका वध करके सुशोभित हो रहा था ॥ ५९ ॥

सम्पूज्यमानो युधि कौरवेयै-
र्निर्जित्य संख्येऽरिगणान् सहस्रशः ।
व्यरोचत द्रोणसुतः प्रतापवान्
यथा सुरेन्द्रोऽरिगणान् निहत्य वै ॥ ६० ॥

जैसे देवराज इन्द्र शत्रुओंका संहार करके सुशोभित होते हैं, उसी प्रकार प्रतापी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा संग्राममें सहस्रों शत्रुसमूहोंको परास्त करके कौरवोंद्वारा पूजित एवं प्रशंसित होता हुआ बड़ी शोभा पा रहा था ॥ ६० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धेऽश्वत्थामपराक्रमे षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके अवसरपर अश्वत्थामाका पराक्रमविषयक एक सौ साठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६० ॥

एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेन और अर्जुनका आक्रमण और कौरवसेनाका पलायन

संजय उवाच

ततो युधिष्ठिरश्चैव भीमसेनश्च पाण्डवः ।
द्रोणपुत्रं महाराज समन्तात् पर्यवारयन् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! तदनन्तर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर और भीमसेनने द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १ ॥

ततो दुर्योधनो राजा भारद्वाजेन संवृतः ।
अभ्ययात् पाण्डवान् संख्ये ततो युद्धमवर्तत ॥ २ ॥
घोररूपं महाराज भीरूणां भयवर्धनम् ।

यह देख द्रोणाचार्यकी सेनासे घिरे हुए राजा दुर्योधनने भी रणभूमिमें पाण्डवोंपर आक्रमण किया । महाराज ! फिर तो कायरोंका भय बढ़ानेवाला घोर युद्ध होने लगा ॥ २½ ॥

अम्बष्ठान् मालवान् वङ्गाञ्छिबींस्त्रैगर्तकानपि ॥ ३ ॥
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय गणान् क्रुद्धो वृकोदरः ।

क्रोधमें भरे हुए भीमसेनने अम्बष्ठ, मालव, वंग, शिबि तथा त्रिगर्तदेशके योद्धाओंको मृत्युके लोकमें भेज दिया ॥

अभीषाहाञ्छूरसेनान् क्षत्रियान् युद्धदुर्मदान् ॥ ४ ॥
निकृत्य पृथिवीं चक्रे भीमः शोणितकर्दमाम् ।

अभीषाह तथा शूरसेन देशके रणदुर्मद क्षत्रियोंको भी काट-काटकर भीमसेनने वहाँकी भूमिको खूनसे कीचड़मयी बना दिया ॥ ४½ ॥

यौधेयानद्रिजान् राजन् मद्रकान्मालवानपि ॥ ५ ॥
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय किरीटी निशितैः शरैः ।

राजन् ! इसी प्रकार किरीटधारी अर्जुनने अपने पैने बाणोंद्वारा यौधेय, पर्वतीय, मद्रक तथा मालव योद्धाओंको भी मृत्युके लोकका पथिक बना दिया ॥ ५½ ॥

प्रगाढमञ्जोगतिभिर्नाराचैरभिताडिताः ॥ ६ ॥
निपेतुर्द्विरदा भूमौ द्विशृङ्गा इव पर्वताः ।

अनायास ही दूरतक जानेवाले उनके नाराचोंकी गहरी चोट खाकर दो दाँतोंवाले हाथी दो शिखरोंवाले पर्वतोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़ते थे ॥ ६½ ॥

निकृत्तैर्हस्तिहस्तैश्च चेष्टमानैरितस्ततः ॥ ७ ॥
रराज वसुधाऽऽकीर्णा विसर्पद्भिरिवोरगैः ।

हाथियोंके शुण्डदण्ड कटकर इधर-उधर तड़पते हुए ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानो सर्प चल रहे हों । उनके द्वारा आच्छादित हुई वहाँकी भूमि अद्भुत शोभा पा रही थी ॥

क्षिप्तैः कनकचित्रैश्च नृपच्छत्रैः क्षितिर्बभौ ॥ ८ ॥
द्यौरिवादित्यचन्द्राद्यैर्ग्रहैः कीर्णा युगक्षये ।

प्रलयकालमें सूर्य और चन्द्रमा आदि ग्रहोंसे व्याप्त हुए द्युलोककी जैसी शोभा होती है, उसी प्रकार इधर-उधर फेंके पड़े हुए राजाओंके सुवर्णचित्रित छत्रोंद्वारा उस रणभूमिकी भी शोभा हो रही थी ॥ ८½ ॥

हत प्रहरताभीता विध्यत व्यवकृन्तत ॥ ९ ॥
इत्यासीत् तुमुलः शब्दः शोणाश्वस्य रथं प्रति ।

लाल घोड़ोंवाले द्रोणाचार्यके रथके समीप 'मार डालो, निर्भय होकर प्रहार करो, बाणोंसे बींध डालो, टुकड़े-टुकड़े कर दो' इत्यादि भयंकर शब्द सुनायी पड़ता था ॥ ९½ ॥

द्रोणस्तु परमक्रुद्धो वायव्यास्त्रेण संयुगे ॥ १० ॥
व्यधमत् तान् महावायुर्मेघानिव दुरत्ययः ।

जैसे दुर्जय महावायु मेघोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए द्रोणाचार्यने वायव्यास्त्रके द्वारा युद्धमें समस्त शत्रुओंको तहस-नहस कर डाला ॥ १०½ ॥

ते हन्यमाना द्रोणेन पञ्चालाः प्राद्रवन् भयात् ॥ ११ ॥
पश्यतो भीमसेनस्य पार्थस्य च महात्मनः ।

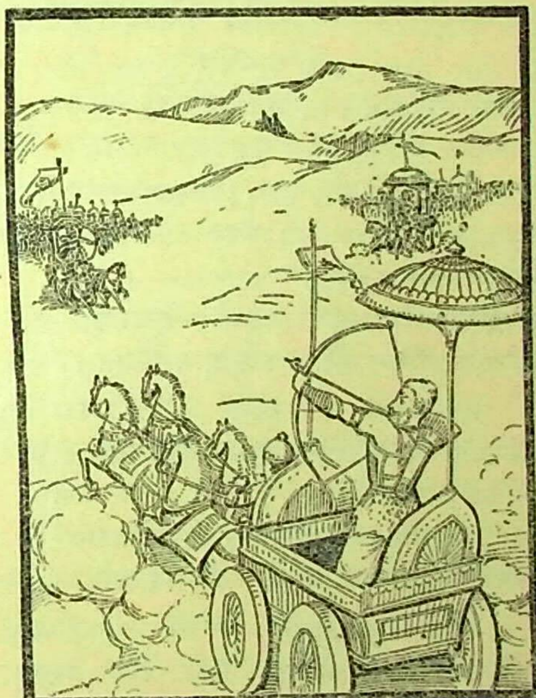
द्रोणाचार्यकी मार खाकर भीमसेन और महात्मा अर्जुनके देखते-देखते पाञ्चाल सैनिक भयके मारे भागने लगे ॥

ततः किरीटी भीमश्च सहसा संन्यवर्तताम् ॥ १२ ॥
महता रथवंशेन परिगृह्य बलं महत् ।

तत्पश्चात् अर्जुन और भीमसेन विशाल रथसमूहसे युक्त भारी सेना साथ लेकर सहसा द्रोणाचार्यकी ओर लौट पड़े ॥

बीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वमुत्तरं तु वृकोदरः ॥ १३ ॥
भारद्वाजं शरौघाभ्यां महद्भ्यामभ्यवर्षताम् ।
तौ तथा सृंजयाश्चैव पञ्चालाश्च महौजसः ॥ १४ ॥
अन्वगच्छन् महाराज मत्स्यैश्च सह सोमकैः ।

अर्जुनने द्रोणाचार्यकी सेनापर दक्षिण पार्श्वसे और भीमसेनने बायें पार्श्वसे अपने बाणसमूहोंकी भारी वर्षा प्रारम्भ कर दी । महाराज ! उस समय महातेजस्वी पाञ्चालों, सृंजयों, मत्स्यों तथा सोमकोंने भी उन्हीं दोनोंके मार्गका अनुसरण किया ॥ १३-१४½ ॥



तथैव तव पुत्रस्य रथोदाराः प्रहारिणः ॥ १५ ॥
महत्या सेनया राजन् जग्मुर्द्रोणरथं प्रति ।

राजन् ! इसी प्रकार प्रहार करनेमें कुशल आपके पुत्रके श्रेष्ठ रथी भी विशाल सेनाके साथ द्रोणाचार्यके रथके समीप जा पहुँचे ॥ १५½ ॥

ततः सा भारती सेना हन्यमाना किरीटिना ॥ १६ ॥
तमसा निद्रया चैव पुनरेव व्यदीर्यत ।

उस समय किरीटधारी अर्जुनके द्वारा मारी जाती हुई कौरवी सेना अन्धकार और निद्रा दोनोंसे पीड़ित हो पुनः भागने लगी ॥ १६½ ॥

द्रोणेन वार्यमाणास्ते स्वयं तव सुतेन च ॥ १७ ॥

नाशक्यन्त महाराज योधा वारयितुं तदा ।

महाराज ! द्रोणाचार्यने तथा स्वयं आपके पुत्रने भी उन्हें बहुतेरा रोका, तथापि उस समय आपके सैनिक रोके न जा सके ॥ १७½ ॥

सा पाण्डुपुत्रस्य शरैर्दार्यमाणा महाचमूः ॥ १८ ॥
तमसा संवृते लोके व्यद्रवत् सर्वतोमुखी ।

पाण्डुपुत्र अर्जुनके बाणोंसे विदीर्ण होती हुई वह विशाल सेना उस तिमिराच्छन्न जगत्में सब ओर भागने लगी ॥

उत्सृज्य शतशो वाहांस्तत्र केचिन्नराधिपाः ।
प्राद्रवन्त महाराज भयाविष्टाः समन्ततः ॥ १९ ॥

महाराज ! कुछ नरेश, जो सैकड़ोंकी संख्यामें थे, अपने वाहनोंको वहीं छोड़कर भयसे व्याकुल हो सब ओर भाग गये ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके अवसरपर संकुलयुद्धविषयक एक सौ इकसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६१ ॥

द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिद्वारा सोमदत्तका वध, द्रोणाचार्य और युधिष्ठिरका युद्ध तथा भगवान् श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको द्रोणाचार्यसे दूर रहनेका आदेश

संजय उवाच

सोमदत्तं तु सम्प्रेक्ष्य विधुन्वानं महद् धनुः ।
सात्यकिः प्राह यन्तारं सोमदत्ताय मां वह ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! सोमदत्तको अपना विशाल धनुष हिलाते देख सात्यकिने अपने सारथिसे कहा—'मुझे सोमदत्तके पास ले चलो ॥ १ ॥

न ह्यहत्वा रणे शत्रुं सोमदत्तं महाबलम् ।
निवर्तिष्ये रणात् सूत सत्यमेतद् वचो मम ॥ २ ॥

'सूत ! आज मैं रणभूमिमें अपने महाबली शत्रु सोमदत्तका वध किये बिना वहाँसे पीछे नहीं लौटूँगा। मेरी यह बात सत्य है' ॥ २ ॥

ततः सम्प्रेषयद् यन्ता सैन्धवांस्तान् मनोजवान् ।
तुरङ्गमाञ्छङ्खवर्णान् सर्वशब्दातिगान् रणे ॥ ३ ॥

तब सारथिने शङ्खके समान श्वेत वर्णवाले तथा सम्पूर्ण शब्दोंका अतिक्रमण करनेवाले मनके समान वेगशाली सिंधी घोड़ोंको रणभूमिमें आगे बढ़ाया ॥ ३ ॥

तेऽवहन् युयुधानं तु मनोमारुतरंहसः ।
यथेन्द्रं हरयो राजन् पुरा दैत्यवधोद्यतम् ॥ ४ ॥

राजन् ! मन और वायुके समान वेगशाली वे घोड़े युयुधानको उसी प्रकार ले जाने लगे, जैसे पूर्वकालमें दैत्यवधके लिये उद्यत देवराज इन्द्रको उनके घोड़े ले गये थे ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य सात्वतं रभसं रणे ।
सोमदत्तो महाबाहुरसम्भ्रान्तो न्यवर्तत ॥ ५ ॥

वेगशाली सात्यकिको रणभूमिमें अपनी ओर आते देख महाबाहु सोमदत्त बिना किसी घबराहटके उनकी ओर लौट पड़े ॥ ५ ॥

विमुञ्चञ्छरवर्षाणि पर्जन्य इव वृष्टिमान् ।
छादयामास शैनेयं जलदो भास्करं यथा ॥ ६ ॥

वर्षा करनेवाले मेघकी भाँति बाणसमूहोंकी वृष्टि करते हुए सोमदत्तने, जैसे बादल सूर्यको ढक लेता है, उसी प्रकार शिनिपौत्र सात्यकिको आच्छादित कर दिया ॥ ६ ॥

असम्भ्रान्तश्च समरे सात्यकिः कुरुपुङ्गवम् ।
छादयामास बाणौघैः समन्ताद् भरतर्षभ ॥ ७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उस समराङ्गणमें सम्भ्रमरहित सात्यकिने भी अपने बाणसमूहोंद्वारा सब ओरसे कुरुप्रवर सोमदत्तको आच्छादित कर दिया ॥ ७ ॥

सोमदत्तस्तु तं षष्ट्या विव्याधोरसि माधवम् ।
सात्यकिश्चापि तं राजन्नविध्यत् सायकैः शितैः ॥ ८ ॥

राजन् ! फिर सोमदत्तने सात्यकिकी छातीमें साठ बाण मारे और सात्यकिने भी उन्हें तीखे बाणोंसे क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ८ ॥

तावन्योन्यं शरैः कृत्तौ व्यराजेतां नरर्षभौ ।
सुपुष्पौ पुष्पसमये पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ९ ॥

वे दोनों नरश्रेष्ठ एक दूसरेके बाणोंसे घायल होकर वसन्त ऋतुमें सुन्दर पुष्पवाले दो विकसित पलाशवृक्षोंके समान शोभा पा रहे थे ॥ ९ ॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गौ कुरुवृष्णियशस्करौ ।
परस्परमवेक्षेतां दहन्ताविव लोचनैः ॥ १० ॥

कुरुकुल और वृष्णिवंशके यश बढ़ानेवाले उन दोनों वीरोंके सारे अङ्ग खूनसे लथपथ हो रहे थे। वे नेत्रोंद्वारा एक दूसरेको जलाते हुए-से देख रहे थे ॥ १० ॥

रथमण्डलमार्गेषु चरन्तावरिमर्दनौ ।
घोररूपौ हि तावास्तां वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ ॥ ११ ॥

रथ मण्डलके मार्गोंपर विचरते हुए वे दोनों शत्रुमर्दन

वीर वर्षा करनेवाले दो बादलोंके समान भयंकर रूप धारण किये हुए थे ॥ ११ ॥

शरसम्भिन्नगात्रौ तु सर्वतः शकलीकृतौ ।
श्वाविधाविव राजेन्द्र दृश्येतां शरविक्षतौ ॥ १२ ॥

राजेन्द्र ! उनके शरीर बाणोंसे क्षत-विक्षत होकर सब ओरसे खण्डित-से हो बाणविद्ध हिंसक पशुओंके समान दिखायी दे रहे थे ॥ १२ ॥

सुवर्णपुङ्खैरिषुभिराचितौ तौ व्यराजताम् ।
खद्योतैरावृतौ राजन् प्रावृषीव वनस्पती ॥ १३ ॥

राजन् ! सुवर्णमय पङ्खवाले बाणोंसे व्याप्त होकर वे दोनों योद्धा वर्षाकालमें जुगनुओंसे व्याप्त हुए दो वृक्षोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ १३ ॥

सम्प्रदीपितसर्वाङ्गौ सायकैस्तैर्महारथौ ।
अदृश्येतां रणे क्रुद्धावुल्काभिरिव कुञ्जरौ ॥ १४ ॥

उन दोनों महारथियोंके सारे अङ्ग उन बाणोंसे उद्भासित हो रहे थे; इसीलिये वे दोनों, रणक्षेत्रमें उल्काओंसे प्रकाशित एवं क्रोधमें भरे हुए दो हाथियोंके समान दिखायी देते थे ॥ १४ ॥

ततो युधि महाराज सोमदत्तो महारथः ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद माधवस्य महद् धनुः ॥ १५ ॥

महाराज ! तदनन्तर युद्धस्थलमें महारथी सोमदत्तने अर्धचन्द्राकार बाणसे सात्यकिके विशाल धनुषको काट दिया ॥

अथैनं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत् ।
त्वरमाणस्त्वराकाले पुनश्च दशभिः शरैः ॥ १६ ॥

और तत्काल ही उनपर पचीस बाणोंका प्रहार किया । शीघ्रताके अवसरपर शीघ्रता करनेवाले सोमदत्तने सात्यकिको पुनः दस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ १६ ॥

अथान्यद् धनुरादाय सात्यकिर्वेगवत्तरम् ।
पञ्चभिः सायकैस्तूर्णं सोमदत्तमविध्यत ॥ १७ ॥

तदनन्तर सात्यकिने अत्यन्त वेगशाली दूसरा धनुष हाथमें लेकर तुरंत ही पाँच बाणोंसे सोमदत्तको बींध डाला ॥

ततोऽपरेण भल्लेन ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् ।
बाह्लीकस्य रणे राजन् सात्यकिः प्रहसन्निव ॥ १८ ॥

राजन् ! फिर सात्यकिने हँसते हुए-से रणभूमिमें एक दूसरे भल्लके द्वारा बाह्लीकपुत्र सोमदत्तके सुवर्णमय ध्वजको काट दिया ॥ १८ ॥

सोमदत्तस्त्वसम्भ्रान्तो दृष्ट्वा केतुं निपातितम् ।
शैनेयं पञ्चविंशत्या सायकानां समाचिनोत् ॥ १९ ॥

ध्वजको गिराया हुआ देख सम्भ्रमरहित सोमदत्तने सात्यकिके शरीरमें पचीस बाण धँसा दिये ॥ १९ ॥

सात्वतोऽपि रणे क्रुद्धः सोमदत्तस्य धन्विनः ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन क्षुरप्रेण शितेन ह ॥ २० ॥

तब रणक्षेत्रमें कुपित हुए सात्यकिने भी तीखे क्षुरप्र नामक भल्लसे धनुर्धर सोमदत्तके धनुषको काट दिया ॥ २० ॥

अथैनं रुक्मपुङ्खानां शतेन नतपर्वणाम् ।
आचिनोद् बहुधा राजन् भग्नदंष्ट्रमिव द्विपम् ॥ २१ ॥

राजन् ! तत्पश्चात् उन्होंने झुकी हुई गाँठ और सुवर्णमय पंखवाले सौ बाणोंसे टूटे दाँतवाले हाथीके समान सोमदत्तके शरीरको अनेक बार बींध दिया ॥ २१ ॥

अथान्यद् धनुरादाय सोमदत्तो महारथः ।
सात्यकिं छादयामास शरवृष्ट्या महाबलः ॥ २२ ॥

इसके बाद महारथी महाबली सोमदत्तने दूसरा धनुष लेकर सात्यकिको बाणोंकी वर्षासे ढक दिया ॥ २२ ॥

सोमदत्तं तु संक्रुद्धो रणे विव्याध सात्यकिः ।
सात्यकिं शरजालेन सोमदत्तोऽप्यपीडयत् ॥ २३ ॥

उस युद्धमें क्रुद्ध हुए सात्यकिने सोमदत्तको गहरी चोट पहुँचायी और सोमदत्तने भी अपने बाणसमूहद्वारा सात्यकिको पीड़ित कर दिया ॥ २३ ॥

दशभिः सात्वतस्यार्थे भीमोऽहन् बाह्लिकात्मजम् ।
सोमदत्तोऽप्यसम्भ्रान्तो भीममार्च्छच्छितैः शरैः ॥ २४ ॥

उस समय भीमसेनने सात्यकिकी सहायताके लिये सोमदत्तको दस बाण मारे । इससे सोमदत्तको तनिक भी घबराहट नहीं हुई । उन्होंने भी तीखे बाणोंसे भीमसेनको पीड़ित कर दिया ॥ २४ ॥

ततस्तु सात्वतस्यार्थे भीमसेनो नवं दृढम् ।
मुमोच परिघं घोरं सोमदत्तस्य वक्षसि ॥ २५ ॥

तत्पश्चात् सात्यकिकी ओरसे भीमसेनने सोमदत्तकी छातीको लक्ष्य करके एक नूतन सुदृढ़ एवं भयंकर परिघ छोड़ा ॥

तमापतन्तं वेगेन परिघं घोरदर्शनम् ।
द्विधा चिच्छेद समरे प्रहसन्निव कौरवः ॥ २६ ॥

समराङ्गणमें बड़े वेगसे आते हुए उस भयंकर परिघके कुरुवंशी सोमदत्तने हँसते हुए-से दो टुकड़े कर डाले ॥ २६ ॥

स पपात द्विधाच्छिन्न आयसः परिघो महान् ।
महीधरस्येव महच्छिखरं वज्रदारितम् ॥ २७ ॥

लोहेका वह महान् परिघ दो खण्डोंमें विभक्त होकर वज्रसे विदीर्ण किये गये महान् पर्वत-शिखरके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २७ ॥

ततस्तु सात्यकी राजन् सोमदत्तस्य संयुगे ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन हस्तावापं च पञ्चभिः ॥ २८ ॥

राजन् ! तदनन्तर संग्रामभूमिमें सात्यकिने एक भल्लसे सोमदत्तका धनुष काट दिया और पाँच बाणोंसे उनके दस्ताने नष्ट कर दिये ॥ २८ ॥

ततश्चतुर्भिश्च शरैस्तूर्णं तांस्तुरगोत्तमान्।
समीपं प्रेषयामास प्रेतराजस्य भारत ॥ २९ ॥

भारत ! फिर तत्काल ही चार बाणोंसे उन्होंने सोमदत्तके उन उत्तम घोड़ोंको प्रेतराज यमके समीप भेज दिया ॥२९॥

सारथेश्च शिरः कायाद् भल्लेन नतपर्वणा।
जहार नरशार्दूलः प्रहसञ्छिनिपुङ्गवः ॥ ३० ॥

इसके बाद पुरुषसिंह शिनिप्रवर सात्यकिने हँसते हुए झुकी हुई गाँठवाले भल्लसे सोमदत्तके सारथिका सिर धड़से अलग कर दिया ॥ ३० ॥

ततः शरं महाघोरं ज्वलन्तमिव पावकम्।
मुमोच सात्वतो राजन् स्वर्णपुङ्खं शिलाशितम् ॥ ३१ ॥

राजन् ! तत्पश्चात् सात्वतवंशी सात्यकिने प्रज्वलित पावकके समान एक महाभयंकर, सुवर्णमय पंखवाला और शिलापर तेज किया हुआ बाण सोमदत्तपर छोड़ा ॥ ३१ ॥

स विमुक्तो बलवता शैनेयेन शरोत्तमः।
घोरस्तस्योरसि विभो निपपाताशु भारत ॥ ३२ ॥

भरतनन्दन ! प्रभो ! शिनिवंशी बलवान् सात्यकिके द्वारा छोड़ा हुआ वह श्रेष्ठ एवं भयंकर बाण शीघ्र ही सोमदत्तकी छातीपर जा पड़ा ॥ ३२ ॥

सोऽतिविद्धो महाराज सात्वतेन महारथः।
सोमदत्तो महाबाहुर्निपपात ममार च ॥ ३३ ॥

महाराज ! सात्यकिके चलाये हुए उस बाणसे अत्यन्त घायल होकर महारथी महाबाहु सोमदत्त पृथ्वीपर गिरे और मर गये ॥ ३३ ॥

तं दृष्ट्वा निहतं तत्र सोमदत्तं महारथाः।
महता शरवर्षेण युयुधानमुपाद्रवन् ॥ ३४ ॥

सोमदत्तको मारा गया देख आपके बहुसंख्यक महारथी बाणोंकी भारी वृष्टि करते हुए वहाँ सात्यकिपर टूट पड़े ॥३४॥

छाद्यमानं शरैर्दृष्ट्वा युयुधानं युधिष्ठिरः।
पाण्डवाश्च महाराज सह सर्वैः प्रभद्रकैः।
महत्या सेनया सार्धं द्रोणानीकमुपाद्रवन् ॥ ३५ ॥

महाराज ! उस समय सात्यकिको बाणोंद्वारा आच्छादित होते देख युधिष्ठिर तथा अन्य पाण्डवोंने समस्त प्रभद्रकों-सहित विशाल सेनाके साथ द्रोणाचार्यकी सेनापर धावा किया ॥ ३५ ॥

ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धस्तावकानां महाबलम्।
शरैर्विद्रावयामास भारद्वाजस्य पश्यतः ॥ ३६ ॥

तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए राजा युधिष्ठिरने अपने बाणोंकी मारसे आपकी विशाल वाहिनीको द्रोणाचार्यके देखते-देखते खदेड़ना आरम्भ किया ॥ ३६ ॥

सैन्यानि द्रावयन्तं तु द्रोणो दृष्ट्वा युधिष्ठिरम्।
अभिदुद्राव वेगेन क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ३७ ॥

द्रोणाचार्यने देखा कि युधिष्ठिर मेरे सैनिकोंको खदेड़ रहे हैं, तब वे क्रोधसे लाल आँखें करके बड़े वेगसे उनकी ओर दौड़े ॥ ३७ ॥

ततः सुनिशितैर्बाणैः पार्थं विव्याध सप्तभिः।
युधिष्ठिरोऽपि संक्रुद्धः प्रतिविव्याध पञ्चभिः ॥ ३८ ॥

फिर उन्होंने सात तीखे बाणोंसे कुन्तीकुमार युधिष्ठिरको घायल कर दिया। अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए युधिष्ठिरने भी उन्हें पाँच बाणोंसे बींधकर बदला चुकाया ॥ ३८ ॥

सोऽतिविद्धो महाबाहुः सृक्किणी परिसंलिहन्।
युधिष्ठिरस्य चिच्छेद ध्वजं कार्मुकमेव च ॥ ३९ ॥
स च्छिन्नधन्वा त्वरितस्त्वराकाले नृपोत्तमः।
अन्यदादत्त वेगेन कार्मुकं समरे दृढम् ॥ ४० ॥

तब अत्यन्त घायल हुए महाबाहु द्रोणाचार्य अपने दोनों गलफर चाटने लगे। उन्होंने युधिष्ठिरके ध्वज और धनुषको भी काट दिया। शीघ्रताके समय शीघ्रता करनेवाले नृपश्रेष्ठ युधिष्ठिरने समराङ्गणमें धनुष कट जानेपर दूसरे सुदृढ़ धनुषको वेगपूर्वक हाथमें ले लिया ॥ ३९-४० ॥

ततः शरसहस्रेण द्रोणं विव्याध पार्थिवः।
साश्वसूतध्वजरथं तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४१ ॥

फिर सहस्रों बाणोंकी वर्षा करके राजाने घोड़े, सारथि, रथ और ध्वजसहित द्रोणाचार्यको बींध डाला। वह अद्भुत-सा कार्य हुआ ॥ ४१ ॥

ततो मुहूर्तं व्यथितः शरपातप्रपीडितः।
निषसाद रथोपस्थे द्रोणो भरतसत्तम ॥ ४२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उन बाणोंके आघातसे अत्यन्त पीड़ित एवं व्यथित होकर द्रोणाचार्य दो घड़ीतक रथके पिछले भागमें बैठे रहे ॥ ४२ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां मुहूर्ताद् द्विजसत्तमः।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो वायव्यास्त्रमवासृजत् ॥ ४३ ॥

तत्पश्चात् सचेत होनेपर द्विजश्रेष्ठ द्रोणने महान् क्रोधमें भरकर वायव्यास्त्रका प्रयोग किया ॥ ४३ ॥

असम्भ्रान्तस्ततः पार्थो धनुराकृष्य वीर्यवान्।
ततस्तदस्त्रमस्त्रेण स्तम्भयामास भारत ॥ ४४ ॥

भरतनन्दन ! तदनन्तर पराक्रमी युधिष्ठिरने सम्भ्रम-रहित हो धनुष खींचकर उनके उस अस्त्रको अपने दिव्यास्त्रद्वारा कुण्ठित कर दिया ॥ ४४ ॥

चिच्छेद च धनुर्दीर्घं ब्राह्मणस्य च पाण्डवः।
ततोऽन्यद् धनुरादत्त द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ४५ ॥
तदप्यस्य शितैर्भल्लैश्चिच्छेद कुरुपुङ्गवः।

इतना ही नहीं, उन पाण्डुकुमारने विप्रवर द्रोणाचार्यके विशाल धनुषको भी काट दिया। फिर क्षत्रियोंका मान मर्दन करनेवाले द्रोणाचार्यने दूसरा धनुष हाथमें लिया। परंतु कुरुप्रवर युधिष्ठिरने अपने तीखे भल्लोंसे उसको भी काट दिया ॥ ४५½ ॥

ततोऽब्रवीद् वासुदेवः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ४६ ॥
युधिष्ठिर महाबाहो यत्त्वां वक्ष्यामि तच्छृणु।
उपारमस्व युद्धे त्वं द्रोणाद् भरतसत्तम ॥ ४७ ॥

तदनन्तर वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरसे कहा—'महाबाहु युधिष्ठिर ! मैं तुमसे जो कह रहा हूँ, उसे सुनो। भरतश्रेष्ठ ! तुम युद्धमें द्रोणाचार्यसे अलग रहो ॥ ४६-४७ ॥

यतते हि सदा द्रोणो ग्रहणे तव संयुगे।
नानुरूपमहं मन्ये युद्धमस्य त्वया सह ॥ ४८ ॥

'क्योंकि द्रोणाचार्य युद्धस्थलमें सदा तुम्हें कैद करनेके प्रयत्नमें रहते हैं; अतः तुम्हारे साथ इनका युद्ध होना मैं उचित नहीं मानता ॥ ४८ ॥

योऽस्य सृष्टो विनाशाय स एवैनं हनिष्यति।
परिवर्ज्य गुरुं याहि यत्र राजा सुयोधनः ॥ ४९ ॥

'जो इनके विनाशके लिये उत्पन्न हुआ है, वही इन्हें मारेगा। तुम अपने गुरुदेवको छोड़कर जहाँ राजा दुर्योधन हैं, वहाँ जाओ ॥ ४९ ॥

राजा राज्ञा हि योद्धव्यो नाराज्ञा युद्धमिष्यते।
तत्र त्वं गच्छ कौन्तेय हस्त्यश्वरथसंवृतः ॥ ५० ॥

'क्योंकि राजाको राजाके ही साथ युद्ध करना चाहिये। जो राजा नहीं है, उसके साथ उसका युद्ध अभीष्ट नहीं है। अतः कुन्तीनन्दन ! तुम हाथी, घोड़े और रथोंकी सेनासे घिरे रहकर वहीं जाओ ॥ ५० ॥

यावन्मात्रेण च मया सहायेन धनंजयः।
भीमश्च रथशार्दूलो युध्यते कौरवैः सह ॥ ५१ ॥

'तबतक मेरे साथ रहकर अर्जुन तथा रथियोंमें सिंहके समान पराक्रमी भीमसेन कौरवोंके साथ युद्ध करते हैं' ॥ ५१ ॥

वासुदेववचः श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः।
मुहूर्तं चिन्तयित्वा तु ततो दारुणमाहवम् ॥ ५२ ॥
प्रायाद् द्रुतममित्रघ्नो यत्र भीमो व्यवस्थितः।
विनिघ्नंस्तावकान् योधान् व्यादितास्य इवान्तकः ॥ ५३ ॥

भगवान् श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने दो घड़ीतक उस दारुण युद्धके विषयमें सोचा। फिर वे तुरंत वहाँ चले गये, जहाँ शत्रुओंका संहार करनेवाले भीमसेन आपके योद्धाओंका वध करते हुए मुँह फैलाये यमराजके समान खड़े थे ॥ ५२-५३ ॥

रथघोषेण महता नादयन् वसुधातलम्।
पर्जन्य इव घर्मान्ते नादयन् वै दिशो दश ॥ ५४ ॥
भीमस्य निघ्नतः शत्रून् पार्ष्णिं जग्राह पाण्डवः।
द्रोणोऽपि पाण्डुपञ्चालान् व्यधमद् रजनीमुखे ॥ ५५ ॥

पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर अपने रथकी भारी घर्घराहटसे भूतलको उसी प्रकार प्रतिध्वनित कर रहे थे, जैसे वर्षाकालमें गर्जना करता हुआ मेघ दसों दिशाओंको गुँजा देता है। उन्होंने शत्रुओंका संहार करनेवाले भीमसेनके पार्श्वभागकी रक्षाका भार ले लिया। उधर द्रोणाचार्य भी रात्रिके समय पाण्डव तथा पाञ्चाल सैनिकोंका संहार करने लगे ॥ ५४-५५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धविषयक एक सौ बासठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६२ ॥

त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

कौरवों और पाण्डवोंकी सेनाओंमें प्रदीपों (मशालों) का प्रकाश

संजय उवाच

वर्तमाने तथा युद्धे घोररूपे भयावहे।
तमसा संवृते लोके रजसा च महीपते ॥ १ ॥
नापश्यन्त रणे योधाः परस्परमवस्थिताः।
अनुमानेन संज्ञाभिर्युद्धं तद् ववृधे महत् ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! जिस समय वह भयंकर घोर युद्ध चल रहा था, उस समय सम्पूर्ण जगत् अन्धकार और धूलसे आच्छादित था; इसीलिये रणभूमिमें खड़े हुए योद्धा एक दूसरेको देख नहीं पाते थे। वह महान् युद्ध अनुमानसे तथा नाम या संकेतोंद्वारा चलता हुआ उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था ॥ १-२ ॥

नरनागाश्वमथनं परमं लोमहर्षणम्।
द्रोणकर्णकृपा वीरा भीमपार्षतसात्यकाः ॥ ३ ॥
अन्योन्यं क्षोभयामासुः सैन्यानि नृपसत्तम।

उस समय अत्यन्त रोमाञ्चकारी युद्ध हो रहा था। उसमें मनुष्य, हाथी और घोड़े मथे जा रहे थे। एक ओरसे द्रोण, कर्ण और कृपाचार्य ये तीन वीर युद्ध करते थे तथा दूसरी ओरसे भीमसेन, धृष्टद्युम्न एवं सात्यकि सामना कर रहे थे। नृपश्रेष्ठ ! ये एक दूसरेकी सेनाओंमें हलचल मचाये हुए थे ॥ ३½ ॥

वध्यमानानि सैन्यानि समन्तात् तैर्महारथैः ॥ ४ ॥
तमसा संवृते चैव समन्ताद् विप्रदुद्रुवुः।

उन महारथियोंद्वारा उस अन्धकाराच्छन्न प्रदेशमें सब ओरसे मारी जाती हुई सेनाएँ चारों ओर भागने लगीं ॥४½॥

ते सर्वतो विद्रवन्तो योधा विध्वस्तचेतनाः ॥ ५ ॥
अहन्यन्त महाराज धावमानाश्च संयुगे ।

महाराज ! वे योद्धा अचेत होकर सब ओर भागते थे और भागते हुए ही उस युद्धस्थलमें मारे जाते थे ॥ ५½ ॥

महारथसहस्राणि जघ्नुरन्योन्यमाहवे ॥ ६ ॥
अन्धे तमसि मूढानि पुत्रस्य तव मन्त्रिते ।

आपके पुत्र दुर्योधनकी सलाहसे होनेवाले उस युद्धके भीतर प्रगाढ़ अन्धकारमें किंकर्तव्यविमूढ़ हुए सहस्रों महारथियोंने एक दूसरेको मार डाला ॥ ६½ ॥

ततः सर्वाणि सैन्यानि सेनागोपाश्च भारत ।
व्यमुह्यन्त रणे तत्र तमसा संवृते सति ॥ ७ ॥

भरतनन्दन ! तदनन्तर उस रणभूमिके तिमिराच्छन्न हो जानेपर समस्त सेनाएँ और सेनापति मोहित हो गये॥७॥

धृतराष्ट्र उवाच

तेषां संलोड्यमानानां पाण्डवैर्निहतौजसाम् ।
अन्धे तमसि मग्नानामासीत् किं वो मनस्तदा ॥ ८ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! जिस समय तुम सब लोग अन्धकारमें डूबे हुए थे और पाण्डव तुम्हारे बल और पराक्रमको नष्ट करके तुम्हें मथे डालते थे, उस समय तुम्हारे और उन पाण्डवोंके मनकी कैसी अवस्था थी ? ॥ ८ ॥

कथं प्रकाशस्तेषां वा मम सैन्यस्य वा पुनः ।
बभूव लोके तमसा तथा संजय संवृते ॥ ९ ॥

संजय ! जब कि सारा जगत् अन्धकारसे आवृत था, उस समय पाण्डवोंको अथवा मेरी सेनाको कैसे प्रकाश प्राप्त हुआ ॥ ९ ॥

संजय उवाच

ततः सर्वाणि सैन्यानि हतशिष्टानि यानि वै ।
सेनागोप्तॄनथादिश्य पुनर्व्यूहमकल्पयत् ॥ १० ॥

संजयने कहा—राजन् ! तदनन्तर जितनी सेनाएँ मरनेसे बची हुई थीं, उन सबको तथा सेनापतियोंको आदेश देकर दुर्योधनने उनका पुनः व्यूह-निर्माण करवाया ॥१०॥

द्रोणः पुरस्ताज्जघने तु शल्य-
स्तथा द्रौणिः पार्श्वतः सौबलश्च ।
स्वयं तु सर्वाणि बलानि राजन्
राजाभ्ययाद् गोपयन् वै निशायाम्॥ ११ ॥

राजन् ! उस व्यूहके अग्रभागमें द्रोणाचार्य, मध्यभागमें शल्य तथा पार्श्वभागमें अश्वत्थामा और शकुनि थे । स्वयं राजा दुर्योधन इस रात्रिके समय सम्पूर्ण सेनाओंकी रक्षा करता हुआ युद्धके लिये आगे बढ़ रहा था ॥ ११ ॥

उवाच सर्वांश्च पदातिसङ्घान्
दुर्योधनः पार्थिव सान्त्वपूर्वम् ।
उत्सृज्य सर्वे परमायुधानि
गृह्णीत हस्तैर्ज्वलितान् प्रदीपान्॥ १२ ॥

पृथ्वीनाथ ! उस समय दुर्योधनने समस्त पैदल सैनिकोंसे सान्त्वनापूर्ण वचनोंमें कहा—'वीरो ! तुम सब लोग उत्तम आयुध छोड़कर अपने हाथोंमें जलती हुई मशालें ले लो' ॥ १२ ॥

ते चोदिताः पार्थिवसत्तमेन
ततः प्रहृष्टा जगृहुः प्रदीपान् ।
देवर्षिगन्धर्वसुरर्षिसङ्घा
विद्याधराश्चाप्सरसां गणाश्च ॥ १३ ॥
नागाः सयक्षोरगकिन्नराश्च
हृष्टा दिविस्था जगृहुः प्रदीपान् ।

नृपश्रेष्ठ दुर्योधनकी आज्ञा पाकर उन पैदल सिपाहियोंने बड़े हर्षके साथ हाथोंमें मशालें ले लीं । आकाशमें खड़े हुए देवता, ऋषि, गन्धर्व, देवर्षि, विद्याधर, अप्सराओंके समूह, नाग, यक्ष, सर्प और किन्नर आदिने भी प्रसन्न होकर हाथोंमें प्रदीप ले लिये ॥ १३½ ॥

दिग्दैवतेभ्यश्च समापतन्तो-
ऽदृश्यन्त दीपाः ससुगन्धितैलाः ॥ १४ ॥
विशेषतो नारदपर्वताभ्यां
सम्बोध्यमानाः कुरुपाण्डवार्थम् ।

दिशाओंकी अधिष्ठात्री देवियोंके यहाँसे भी सुगन्धित तैलसे भरे हुए दीप वहाँ उतरते दिखायी दिये । विशेषतः नारद और पर्वत नामक मुनियोंने कौरव और पाण्डवोंकी सुविधाके लिये वे दीप जलाये थे ॥ १४½ ॥

सा भूय एव ध्वजिनी विभक्ता
व्यरोचताग्निप्रभया निशायाम् ॥ १५ ॥
महाधनैराभरणैश्च दिव्यैः
शस्त्रैश्च दीप्तैरपि सम्पतद्भिः ।

रातके समय अग्निकी प्रभासे वह सेना पुनः विभागपूर्वक प्रकाशित हो उठी । बहुमूल्य आभूषणों तथा सैनिकोंपर गिरनेवाले दीप्तिमान् दिव्यास्त्रोंसे भी वह सेना बड़ी शोभा पा रही थी ॥ १५½ ॥

रथे रथे पञ्च विदीपकास्तु
प्रदीपकास्तत्र गजे त्रयश्च ॥ १६ ॥
प्रत्यश्वमेकश्च महाप्रदीपः
कृतास्तु तैः पाण्डवैः कौरवेयैः ।
क्षणेन सर्वे विहिताः प्रदीपा
व्यादीपयन्तो ध्वजिनीं तवाशु ॥ १७ ॥

एक-एक रथके पास पाँच-पाँच मशालें थीं । प्रत्येक हाथीके साथ तीन-तीन प्रदीप जलते थे । प्रत्येक घोड़ेके साथ एक महाप्रदीपकी व्यवस्था की गयी थी । पाण्डवों तथा कौरवोंके द्वारा इस प्रकार व्यवस्थापूर्वक जलाये गये समस्त प्रदीप क्षणभरमें आपकी सारी सेनाको प्रकाशित करने लगे ॥ १६-१७ ॥

सर्वास्तु सेना व्यतिसेव्यमानाः
पदातिभिः पावकतैलहस्तैः ।
प्रकाश्यमाना ददृशुर्निशायां
यथान्तरिक्षे जलदास्तडिद्भिः ॥ १८ ॥

सब लोगोंने देखा कि मशाल और तेल हाथमें लिये पैदल सैनिकोंद्वारा सेवित सारी सेनाएँ रात्रिके समय उसी प्रकार प्रकाशित हो उठी हैं, जैसे आकाशमें बादल बिजलियोंके प्रकाशसे प्रकाशित हो उठते हैं ॥ १८ ॥

प्रकाशितायां तु ततो ध्वजिन्यां
द्रोणोऽग्निकल्पः प्रतपन् समन्तात् ।
रराज राजेन्द्र सुवर्णवर्मा
मध्यं गतः सूर्य इवांशुमाली ॥ १९ ॥

राजेन्द्र ! सारी सेनामें प्रकाश फैल जानेपर अग्निके समान प्रतापी द्रोणाचार्य सुवर्णमय कवच धारण करके दोपहरके सूर्यकी भाँति सब ओर देदीप्यमान होने लगे ॥ १९ ॥

जाम्बूनदेष्वाभरणेषु चैव
निष्केषु शुद्धेषु शरासनेषु ।
पीतेषु शस्त्रेषु च पावकस्य
प्रतिप्रभास्तत्र तदा बभूवुः ॥ २० ॥

उस समय सोनेके आभूषणों, शुद्ध निष्कों, धनुषों तथा चमकीले शस्त्रोंमें वहाँ उन मशालोंकी आगके प्रतिबिम्ब पड़ रहे थे ॥ २० ॥

गदाश्च शैक्याः परिघाश्च शुभ्रा
रथेषु शक्त्यश्च विवर्तमानाः ।
प्रतिप्रभारश्मिभिराजमीढ
पुनः पुनः संजनयन्ति दीपान् ॥ २१ ॥

अजमीढकुलनन्दन ! वहाँ जो गदाएँ, शैक्य, चमकीले परिघ तथा रथ-शक्तियाँ घुमायी जा रही थीं, उनमें जो उन मशालोंकी प्रभाएँ प्रतिबिम्बित होती थीं, वे मानो पुनः-पुनः बहुत-से नूतन प्रदीप प्रकट करती थीं ॥ २१ ॥

छत्राणि वालव्यजनानि खड्गा
दीप्ता महोल्काश्च तथैव राजन् ।
व्याघूर्णमानाश्च सुवर्णमाला
व्यायच्छतां तत्र तदा विरेजुः ॥ २२ ॥

राजन् ! छत्र, चँवर, खड्ग, प्रज्वलित विशाल उल्काएँ तथा वहाँ युद्ध करते हुए वीरोंकी हिलती हुई सुवर्णमालाएँ उस समय प्रदीपोंके प्रकाशसे बड़ी शोभा पा रही थीं ॥ २२ ॥

शस्त्रप्रभाभिश्च विराजमानं
दीपप्रभाभिश्च तदा बलं तत् ।
प्रकाशितं चाभरणप्रभाभि-
र्भृशं प्रकाशं नृपते बभूव ॥ २३ ॥

नरेश्वर ! उस समय चमकीले अस्त्रों, प्रदीपों तथा आभूषणोंकी प्रभाओंसे प्रकाशित एवं सुशोभित आपकी सेना अत्यन्त प्रकाशसे उद्भासित होने लगी ॥ २३ ॥

पीतानि शस्त्राण्यसृगुक्षितानि
वीरावधूतानि तनुच्छदानि ।
दीप्तां प्रभां प्राजनयन्त तत्र
तपात्यये विद्युदिवान्तरिक्षे ॥ २४ ॥

पानीदार एवं खूनसे रँगे हुए शस्त्र तथा वीरोंद्वारा कँपाये हुए कवच वहाँ प्रदीपोंके प्रतिबिम्ब ग्रहण करके वर्षाकालके आकाशमें चमकनेवाली बिजलीकी भाँति अत्यन्त उज्ज्वल प्रभा बिखेर रहे थे ॥ २४ ॥

प्रकम्पितानामभिघातवेगै-
रभिघ्नतां चापततां जवेन ।
वक्त्राण्यकाशन्त तदा नराणां
वाय्वीरितानीव महाम्बुजानि ॥ २५ ॥

आघातके वेगसे कम्पित, आघात करनेवाले तथा वेगपूर्वक शत्रुकी ओर झपटनेवाले वीर मनुष्योंके मुख-मण्डल उस समय वायुसे हिलाये हुए बड़े-बड़े कमलोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ २५ ॥

महावने दारुमये प्रदीप्ते
यथा प्रभा भास्करस्यापि नश्येत् ।
तथा तदाऽऽसीद् ध्वजिनी प्रदीप्ता
महाभया भारत भीमरूपा ॥ २६ ॥

भरतनन्दन ! जैसे सूखे काठके विशाल वनमें आग लग जानेपर वहाँ सूर्यकी भी प्रभा फीकी पड़ जाती है, उसी प्रकार उस समय अधिक प्रकाशसे प्रज्वलित होती हुई-सी आपकी भयानक सेना महान् भय उत्पन्न करनेवाली प्रतीत होती थी ॥ २६ ॥

तत् सम्प्रदीप्तं बलमस्मदीयं
निशम्य पार्थास्त्वरितास्तथैव ।
सर्वेषु सैन्येषु पदातिसंघा-
नचोदयंस्तेऽपि चक्रुः प्रदीपान् ॥ २७ ॥

हमारी सेनाको मशालोंके प्रकाशसे प्रकाशित देख कुन्तीके पुत्रोंने भी तुरंत ही सारी सेनाके पैदल सैनिकोंको मशाल जलानेकी आज्ञा दी, अतः उन्होंने भी मशालें जला लीं ॥ २७ ॥

गजे गजे सप्त कृताः प्रदीपा
रथे रथे चैव दश प्रदीपाः।
द्वावश्वपृष्ठे परिपार्श्वतोऽन्ये
ध्वजेषु चान्ये जघनेषु चान्ये ॥ २८ ॥

उनके एक-एक हाथीके लिये सात-सात और एक-एक रथके लिये दस-दस प्रदीपोंकी व्यवस्था की गयी। घोड़ोंके पृष्ठभागमें दो प्रदीप थे। अगल-बगलमें, ध्वजाओंके समीप तथा रथके पिछले भागोंमें अन्यान्य दीपकोंकी व्यवस्था की गयी थी ॥ २८ ॥

सेनासु सर्वासु च पार्श्वतोऽन्ये
पश्चात् पुरस्ताच्च समन्ततश्च।
मध्ये तथान्ये ज्वलिताग्निहस्ता
व्यदीपयन् पाण्डुसुतस्य सेनाम् ॥ २९ ॥

सारी सेनाओंके पार्श्वभागमें, आगे, पीछे, बीचमें एवं चारों ओर भिन्न-भिन्न सैनिक जलती हुई मशालें हाथमें लेकर पाण्डुपुत्रकी सेनाको प्रकाशित करने लगे ॥ २९ ॥

मध्ये तथान्ये ज्वलिताग्निहस्ताः
सेनाद्वयेऽपि स्म नरा विचेरुः।
सर्वेषु सैन्येषु पदातिसङ्घा
विमिश्रिता हस्तिरथाश्ववृन्दैः ॥ ३० ॥
व्यदीपयंस्ते ध्वजिनीं प्रदीप्तां
तथा बलं पाण्डवेयाभिगुप्तम्।

दोनों ही सेनाओंके अन्यान्य पैदल सैनिक हाथोंमें प्रदीप धारण किये दोनों ही सेनाओंके भीतर विचरण करने लगे। सारी सेनाओंके पैदल-समूह हाथी, रथ और अश्व-समूहोंके साथ मिलकर आपकी सेनाको तथा पाण्डवोंद्वारा सुरक्षित वाहिनीको भी अत्यन्त प्रकाशित करने लगे ॥ ३०½ ॥

तेन प्रदीप्तेन तथा प्रदीप्तं
बलं तवासीद् बलवद् बलेन ॥ ३१ ॥
भाः कुर्वता भानुमता ग्रहेण
दिवाकरेणाग्निरिवाभिगुप्तः।

जैसे किरणोंद्वारा सुशोभित और अपनी प्रभा बिखेरनेवाले सूर्यग्रहके द्वारा सुरक्षित अग्निदेव और भी प्रकाशित हो उठते हैं, उसी प्रकार प्रदीपोंकी प्रभासे अत्यन्त प्रकाशित होनेवाले उस पाण्डव सैन्यके द्वारा आपकी सेनाका प्रकाश और भी बढ़ गया ॥ ३१½ ॥

तयोः प्रभाः पृथिवीमन्तरिक्षं
सर्वा व्यतिक्रम्य दिशश्च वृद्धाः ॥ ३२ ॥
तेन प्रकाशेन भृशं प्रकाशं
बभूव तेषां तव चैव सैन्यम्।

उन दोनों सेनाओंका बढ़ा हुआ प्रकाश पृथ्वी, आकाश तथा सम्पूर्ण दिशाओंको लाँघकर चारों ओर फैल गया। प्रदीपोंके उस प्रकाशसे आपकी तथा पाण्डवोंकी सेना भी अधिक प्रकाशित हो उठी थी ॥ ३२½ ॥

तेन प्रकाशेन दिवं गतेन
सम्बोधिता देवगणाश्च राजन् ॥ ३३ ॥
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघाः
समागमन्नप्सरसश्च सर्वाः।

राजन्! स्वर्गलोकतक फैले हुए उस प्रकाशसे उद्बोधित होकर देवता, गन्धर्व, यक्ष, असुर और सिद्धोंके समुदाय तथा सम्पूर्ण अप्सराएँ भी युद्ध देखनेके लिये वहाँ आ पहुँचीं ॥ ३३½ ॥

तद् देवगन्धर्वसमाकुलं च
यक्षासुरेन्द्राप्सरसां गणैश्च ॥ ३४ ॥
हतैश्च शूरैर्दिवमारुहद्भि-
रायोधनं दिव्यकल्पं बभूव।

देवताओं, गन्धर्वों, यक्षों, असुरेन्द्रों और अप्सराओंके समुदायसे भरा हुआ वह युद्धस्थल वहाँ मारे जाकर स्वर्गलोकपर आरूढ़ होनेवाले शूरवीरोंके द्वारा दिव्यलोक-सा जान पड़ता था ॥ ३४½ ॥

रथाश्वनागाकुलदीपदीप्तं
संरब्धयोधं हतविद्रुताश्वम् ॥ ३५ ॥
महद् बलं व्यूढरथाश्वनागं
सुरासुरव्यूहसमं बभूव।

रथ, घोड़े और हाथियोंसे परिपूर्ण, प्रदीपोंकी प्रभासे प्रकाशित, रोषमें भरे हुए योद्धाओंसे युक्त, घायल होकर भागनेवाले घोड़ोंसे उपलक्षित तथा व्यूहबद्ध रथ, घोड़े एवं हाथियोंसे सम्पन्न दोनों पक्षोंका वह महान् सैन्यसमूह देवताओं और असुरोंके सैन्यव्यूहके समान जान पड़ता था ॥ ३५½ ॥

तच्छक्तिसंघाकुलचण्डवातं
महारथाभ्रं गजवाजिघोषम् ॥ ३६ ॥
शस्त्रौघवर्षं रुधिराम्बुधारं
निशि प्रवृत्तं रणदुर्दिनं तत्।

रातमें होनेवाला वह युद्ध मेघोंकी घटासे आच्छादित दिनके समान प्रतीत होता था। उस समय शक्तियोंका समूह प्रचण्डवायुके समान चल रहा था। विशाल रथ मेघसमूहके समान दिखायी देते थे। हाथियों और घोड़ोंके हींसने और चिग्घाड़नेका शब्द ही मानो मेघोंका गम्भीर गर्जन था। अस्त्रसमूहोंकी वर्षा ही जलकी वृष्टि थी तथा रक्तकी धारा ही जलधाराके समान जान पड़ती थी ॥ ३६½ ॥

तस्मिन् महाग्निप्रतिमो महात्मा
संतापयन् पाण्डवान् विप्रमुख्यः॥ ३७ ॥
गभस्तिभिर्मध्यगतो यथार्को
वर्षात्यये तद्वदभून्नरेन्द्र ॥ ३८ ॥

नरेन्द्र ! जैसे शरत्कालमें मध्याह्नका सूर्य अपनी प्रखर किरणोंसे भारी संताप देता है, उसी प्रकार उस युद्धस्थलमें महान् अग्निके समान तेजस्वी महामना विप्रवर द्रोणाचार्य पाण्डवोंके लिये संतापकारी हो रहे थे ॥ ३७-३८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दीपोद्योतने त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके अवसरपर प्रदीपोंका प्रकाशविषयक एक सौ तिरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६३ ॥

चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

दोनों सेनाओंका घमासान युद्ध और दुर्योधनका द्रोणाचार्यकी रक्षाके लिये सैनिकोंको आदेश

संजय उवाच

काशिते तदा लोके रजसा तमसाऽऽवृते ।
माजग्मुरथो वीराः परस्परवधैषिणः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! उस समय धूल और न्धकारसे ढकी हुई रणभूमिमें इस प्रकार उजेला होनेपर क दूसरेके वधकी इच्छावाले वीर सैनिक आपसमें भिड़ गये॥

समेत्य रणे राजञ्छस्त्रप्रासासिधारिणः ।
रस्परमुदैक्षन्त परस्परकृतागसः ॥ २ ॥

महाराज ! समराङ्गणमें परस्पर भिड़कर वे नाना प्रकारके स्त्र, प्रास और खड्ग आदि धारण करनेवाले योद्धा, जो रस्पर अपराधी थे, एक दूसरेकी ओर देखने लगे ॥ २ ॥

दीपानां सहस्रैश्च दीप्यमानैः समन्ततः ।
त्नाचितैः स्वर्णदण्डैर्गन्धतैलावसिञ्चितैः ॥ ३ ॥

चारों ओर हजारों मशालें जल रही थीं । उनके डंडे सोनेके बने हुए थे और उनमें रत्न जड़े हुए थे । उन मशालोंपर सुगन्धित तेल डाला जाता था ॥ ३ ॥

देवगन्धर्वदीपाद्यैः प्रभाभिरधिकोज्ज्वलैः ।
विरराज तदा भूमिर्ग्रहैर्द्यौरिव भारत ॥ ४ ॥

भारत ! उन्हींमें देवताओं और गन्धर्वोंके भी दीप आदि जल रहे थे, जो अपनी विशेष प्रभाके कारण अधिक काशित हो रहे थे । उनके द्वारा उस समय रणभूमि नक्षत्रोंसे आकाशकी भाँति सुशोभित हो रही थी ॥ ४ ॥

काशतैः प्रज्वलितै रणभूमिर्व्यराजत ।
मानेव लोकानामभावे च वसुंधरा ॥ ५ ॥

सैकड़ों प्रज्वलित उल्काओं (मशालों) से वह रणभूमि शोभा पा रही थी, मानो प्रलयकालमें यह सारी पृथ्वी हो रही हो ॥ ५ ॥

प्यन्त दिशः सर्वाः प्रदीपैस्तैः समन्ततः ।
वर्षाप्रदोषे खद्योतैर्वृता वृक्षा इवाबभुः ॥ ६ ॥

उन प्रदीपोंसे सब ओर सारी दिशाएँ ऐसी प्रदीप्त हो उठीं, मानो वर्षाके सायंकालमें जुगनुओंसे घिरे हुए वृक्ष जगमगा रहे हों ॥ ६ ॥

असज्जन्त ततो वीरा वीरैष्वेव पृथक् पृथक् ।
नागा नागैः समाजग्मुस्तुरगा हयसादिभिः ॥ ७ ॥

उस समय वीरगण विपक्षी वीरोंके साथ पृथक्-पृथक् भिड़ गये । हाथी हाथियोंके और घुड़सवार घुड़सवारोंके साथ जूझने लगे ॥ ७ ॥

रथा रथवरैरेव समाजग्मुर्मुदा युताः ।
तस्मिन् रात्रिमुखे घोरे तव पुत्रस्य शासनात् ॥ ८ ॥
चतुरङ्गस्य सैन्यस्य सम्पातश्च महानभूत् ।

इसी प्रकार रथी श्रेष्ठ रथियोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक युद्ध करने लगे । उस भयंकर प्रदोषकालमें आपके पुत्रकी आज्ञासे वहाँ चतुरंगिणी सेनामें भारी मारकाट मच गयी ॥ ८½ ॥

ततोऽर्जुनो महाराज कौरवाणामनीकिनीम् ॥ ९ ॥
व्यधमत् त्वरया युक्तः क्षपयन् सर्वपार्थिवान् ।

महाराज ! तदनन्तर अर्जुन बड़ी उतावलीके साथ समस्त राजाओंका संहार करते हुए कौरव-सेनाका विनाश करने लगे ॥ ९½ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

तस्मिन् प्रविष्टे संरब्धे मम पुत्रस्य वाहिनीम् ॥ १० ॥
अमृष्यमाणे दुर्धर्षे कथमासीन्मनो हि वः ।

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! क्रोध और अमर्षमें भरे हुए दुर्धर्ष वीर अर्जुन जब मेरे पुत्रकी सेनामें प्रविष्ट हुए, उस समय तुमलोगोंके मनकी कैसी अवस्था हुई ? ॥१०½॥

किमकुर्वत सैन्यानि प्रविष्टे परपीडने ॥ ११ ॥
दुर्योधनश्च किं कृत्यं प्राप्तकालममन्यत ।

शत्रुओंको पीड़ा देनेवाले अर्जुनके प्रवेश करनेपर मेरी सेनाओंने क्या किया ? तथा दुर्योधनने उस समयके अनुरूप कौन-सा कार्य उचित माना ? ॥ ११½ ॥

के चैनं समरे वीरं प्रत्युद्ययुररिंदमाः ॥ १२ ॥
द्रोणं च के व्यरक्षन्त प्रविष्टे श्वेतवाहने ।

समराङ्गणमें शत्रुओंका दमन करनेवाले कौन-कौन-से योद्धा वीर अर्जुनका सामना करनेके लिये आगे बढ़े ? श्वेतवाहन अर्जुनके कौरवसेनाके भीतर घुस आनेपर किन लोगोंने द्रोणाचार्यकी रक्षा की ॥ १२½ ॥

केऽरक्षन् दक्षिणं चक्रं के च द्रोणस्य सव्यतः ॥ १३ ॥
के पृष्ठतश्चाप्यभवन् वीरा वीरान् विनिघ्नतः ।
के पुरस्तादगच्छन्त निघ्नन्तः शात्रवान् रणे ॥ १४ ॥

कौन-कौन-से योद्धा द्रोणाचार्यके रथके दाहिने पहियेकी रक्षा करते थे और कौन-कौन-से बायें पहियेकी ? कौन-कौन-से वीर वीरोंका वध करनेवाले द्रोणाचार्यके पृष्ठभागके रक्षक थे और रणमें शत्रुसैनिकोंका संहार करनेवाले कौन-कौन-से योद्धा आचार्यके आगे-आगे चलते थे ? ॥ १३-१४ ॥

यत् प्राविशन्महेष्वासः पञ्चालानपराजितः ।
नृत्यन्निव नरव्याघ्रो रथमार्गेषु वीर्यवान् ॥ १५ ॥

महाधनुर्धर, पराक्रमी एवं किसीसे पराजित न होनेवाले पुरुषसिंह द्रोणाचार्यने रथके मार्गोंपर नृत्य-सा करते हुए वहाँ पाञ्चालोंकी सेनामें प्रवेश किया था ॥ १५ ॥

यो ददाह शरैर्द्रोणः पञ्चालानां रथव्रजान् ।
धूमकेतुरिव क्रुद्धः कथं मृत्युमुपेयिवान् ॥ १६ ॥

जिन आचार्य द्रोणने क्रोधमें भरे हुए अग्निदेवके समान अपने बाणोंकी ज्वालासे पाञ्चाल महारथियोंके समुदायोंको जलाकर भस्म कर दिया था, वे कैसे मृत्युको प्राप्त हुए ? ॥

अव्यग्रानेव हि परान् कथयस्यपराजितान् ।
हृष्टानुदीर्णान् संग्रामे न तथा सूत मामकान् ॥ १७ ॥

सूत ! तुम मेरे शत्रुओंको तो व्यग्रतारहित, अपराजित, हर्ष और उत्साहसे युक्त तथा संग्राममें वेगपूर्वक आगे बढ़नेवाले ही बता रहे हो; परंतु मेरे पुत्रोंकी ऐसी अवस्था नहीं बताते ॥ १७ ॥

हतांश्चैव विदीर्णांश्च विप्रकीर्णांश्च शंससि ।
रथिनो विरथांश्चैव कृतान् युद्धेषु मामकान् ॥ १८ ॥

सभी युद्धोंमें मेरे पक्षके रथियोंको तुम हताहत, छिन्न-भिन्न, तितर-बितर तथा रथहीन हुआ ही बता रहे हो ॥१८॥

संजय उवाच

द्रोणस्य मतमाज्ञाय योद्धुकामस्य तां निशाम् ।
दुर्योधनो महाराज वश्यान् भ्रातॄनुवाच ह ॥ १९ ॥
कर्णं च वृषसेनं च मद्रराजं च कौरव ।
दुर्धर्षं दीर्घबाहुं च ये च तेषां पदानुगाः ॥ २० ॥

संजय कहते हैं—कुरुनन्दन महाराज ! युद्धकी इच्छा-वाले द्रोणाचार्यका मत जानकर दुर्योधनने उस रातमें अपने वशवर्ती भाइयोंसे तथा कर्ण, वृषसेन, मद्रराज शल्य, दुर्धर्ष, दीर्घबाहु तथा जो-जो उनके पीछे चलनेवाले थे, उन सबसे इस प्रकार कहा—॥ १९-२० ॥

द्रोणं यत्ताः पराक्रान्ताः सर्वे रक्षन्तु पृष्ठतः ।
हार्दिक्यो दक्षिणं चक्रं शल्यश्चैवोत्तरं तथा ॥ २१ ॥

'तुम सब लोग सावधान रहकर पराक्रमपूर्वक पीछेकी ओरसे द्रोणाचार्यकी रक्षा करो । कृतवर्मा उनके दाहिने पहियेकी और राजा शल्य बायें पहियेकी रक्षा करें' ॥२१॥

त्रिगर्तानां च ये शूरा हतशिष्टा महारथाः ।
तांश्चैव पुरतः सर्वान् पुत्रस्ते समचोदयत् ॥ २२ ॥

राजन् ! त्रिगर्तोंके जो शूरवीर महारथी मरनेसे शेष रह गये थे, उन सबको आपके पुत्रने द्रोणाचार्यके आगे-आगे चलनेकी आज्ञा देते हुए कहा—॥ २२ ॥

आचार्यो हि सुसंयत्तो भृशं यत्ताश्च पाण्डवाः ।
तं रक्षत सुसंयत्ता निघ्नन्तं शात्रवान् रणे ॥ २३ ॥

'आचार्य पूर्णतः सावधान हैं, पाण्डव भी विजयके लिये विशेष यत्नशील एवं सावधान हैं । तुमलोग रणभूमिमें शत्रु-सैनिकोंका संहार करते हुए आचार्यकी पूरी सावधानीके साथ रक्षा करो ॥ २३ ॥

द्रोणो हि बलवान् युद्धे क्षिप्रहस्तः प्रतापवान् ।
निर्जयेत् त्रिदशान् युद्धे किमु पार्थान् ससोमकान् ॥ २४ ॥

'क्योंकि द्रोणाचार्य बलवान्, प्रतापी और युद्धमें शीघ्रता-पूर्वक हाथ चलानेवाले हैं । वे संग्राममें देवताओंको भी परास्त कर सकते हैं; फिर कुन्तीके पुत्रों और सोमकोंकी तो बात ही क्या है ? ॥ २४ ॥

ते यूयं सहिताः सर्वे भृशं यत्ता महारथाः ।
द्रोणं रक्षत पाञ्चालाद् धृष्टद्युम्नान्महारथात् ॥ २५ ॥

'इसलिये तुम सब महारथी एक साथ होकर पूर्णतः प्रयत्नशील रहते हुए पाञ्चाल महारथी धृष्टद्युम्नसे द्रोणाचार्य-की रक्षा करो ॥ २५ ॥

पाण्डवीयेषु सैन्येषु न तं पश्याम कञ्चन ।
यो योधयेद् रणे द्रोणं धृष्टद्युम्नादृते नृपः ॥ २६ ॥

'हम पाण्डवोंकी सेनाओंमें धृष्टद्युम्नके सिवा ऐसे किसी वीर नरेशको नहीं देखते, जो रणक्षेत्रमें द्रोणाचार्यके साथ युद्ध कर सके ॥ २६ ॥

तस्मात् सर्वात्मना मन्ये भारद्वाजस्य रक्षणम्।
सुगुप्तः पाण्डवान् हन्यात् सृंजयांश्च ससोमकान्॥ २७॥

'अतः मैं सब प्रकारसे द्रोणाचार्यकी रक्षा करना ही इस समय आवश्यक कर्तव्य मानता हूँ। वे सुरक्षित रहें तो पाण्डवों, सृंजयों और सोमकोंका भी संहार कर सकते हैं॥ २७॥

सृंजयेष्वथ सर्वेषु निहतेषु चमूमुखे।
धृष्टद्युम्नं रणे द्रौणिर्हनिष्यति न संशयः॥ २८॥

'युद्धके मुहानेपर सारे सृंजयोंके मारे जानेपर अश्वत्थामा रणभूमिमें धृष्टद्युम्नको भी मार डालेगा, इसमें संशय नहीं है॥ २८॥

तथार्जुनं च राधेयो हनिष्यति महारथः।
भीमसेनमहं चापि युद्धे जेष्यामि दीक्षितः॥ २९॥
शेषांश्च पाण्डवान् योधाः प्रसभं हीनतेजसः।

'योद्धाओ! इसी प्रकार महारथी कर्ण अर्जुनका वध कर डालेगा तथा रणयज्ञकी दीक्षा लेकर युद्ध करनेवाला मैं भीमसेनको और तेजोहीन हुए दूसरे पाण्डवोंको भी बलपूर्वक जीत लूँगा॥

सोऽयं मम जयो व्यक्तो दीर्घकालं भविष्यति।
तस्माद् रक्षत संग्रामे द्रोणमेव महारथम्॥ ३०॥

'इस प्रकार अवश्य ही मेरी यह विजय चिरस्थायिनी होगी, अतः तुम सब लोग मिलकर संग्राममें महारथी द्रोणकी ही रक्षा करो'॥ ३०॥

इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठ पुत्रो दुर्योधनस्तव।
व्यादिदेश तथा सैन्यं तस्मिंस्तमसि दारुणे॥ ३१॥

भरतश्रेष्ठ! ऐसा कहकर आपके पुत्र दुर्योधनने उस भयंकर अन्धकारमें अपनी सेनाको युद्धके लिये आज्ञा दे दी॥ ३१॥

ततः प्रववृते युद्धं रात्रौ भरतसत्तम।
उभयोः सेनयोर्घोरं परस्परजिगीषया॥ ३२॥

भरतसत्तम! फिर तो रात्रिके समय दोनों सेनाओंमें एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छासे घोर युद्ध आरम्भ हो गया॥ ३२॥

अर्जुनः कौरवं सैन्यमर्जुनं चापि कौरवाः।
नानाशस्त्रसमावायैरन्योन्यं समपीडयन्॥ ३३॥

अर्जुन कौरव-सेनापर और कौरव सैनिक अर्जुनपर नाना प्रकारके शस्त्र-समूहोंकी वर्षा करते हुए एक दूसरेको पीड़ा देने लगे॥ ३३॥

द्रौणिः पाञ्चालराजं च भारद्वाजश्च सृंजयान्।
छादयांचक्रतुः संख्ये शरैः संनतपर्वभिः॥ ३४॥

अश्वत्थामाने पाञ्चालराज द्रुपदको और द्रोणाचार्यने सृंजयोंको युद्धस्थलमें झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा आच्छादित कर दिया॥ ३४॥

पाण्डुपाञ्चालसैन्यानां कौरवाणां च भारत।
आसीन्निष्टानको घोरो निघ्नतामितरेतरम्॥ ३५॥

भारत! एक ओरसे पाण्डव और पाञ्चाल सैनिकोंका और दूसरी ओरसे कौरव योद्धाओंका, जो एक दूसरेपर गहरी चोट कर रहे थे, घोर आर्तनाद सुनायी पड़ता था॥ ३५॥

नैवास्माभिस्तथा पूर्वैर्दृष्टपूर्वं तथाविधम्।
श्रुतं वा यादृशं युद्धमासीद् रौद्रं भयानकम्॥ ३६॥

हमने तथा पूर्ववर्ती लोगोंने भी वैसा रौद्र एवं भयानक युद्ध न तो पहले कभी देखा था और न सुना ही था, जैसा कि वह युद्ध हो रहा था॥ ३६॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसंगमें संकुलयुद्धविषयक एक सौ चौसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६४॥

पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

दोनों सेनाओंका युद्ध और कृतवर्माद्वारा युधिष्ठिरकी पराजय

संजय उवाच

वर्तमाने तदा रौद्रे रात्रियुद्धे विशाम्पते।
सर्वभूतक्षयकरे धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः॥ १॥
अब्रवीत् पाण्डवांश्चैव पञ्चालांश्चैव सोमकान्।
अभिद्रवत संयात द्रोणमेव जिघांसया॥ २॥

संजय कहते हैं—प्रजानाथ! जब सम्पूर्ण भूतोंका विनाश करनेवाला वह भयंकर रात्रियुद्ध आरम्भ हुआ, उस समय धर्मपुत्र युधिष्ठिरने पाण्डवों, पाञ्चालों और सोमकोंसे कहा—'दौड़ो, द्रोणाचार्यपर ही उन्हें मार डालनेकी इच्छासे आक्रमण करो'॥ १-२॥

राज्ञस्ते वचनाद् राजन् पञ्चालाः सृञ्जयास्तथा।
द्रोणमेवाभ्यवर्तन्त नदन्तो भैरवान् रवान्॥ ३॥

राजन् ! राजा युधिष्ठिरके आदेशसे पाञ्चाल और सृंजय भयानक गर्जना करते हुए द्रोणाचार्यपर ही टूट पड़े ॥ ३ ॥

तं तु ते प्रतिगर्जन्तः प्रत्युद्यातास्त्वमर्षिताः ।
यथाशक्ति यथोत्साहं यथासत्त्वं च संयुगे ॥ ४ ॥

वे सब-के-सब अमर्षमें भरे हुए थे और युद्धस्थलमें अपनी शक्ति, उत्साह एवं धैर्यके अनुसार बारंबार गर्जना करते हुए द्रोणाचार्यपर चढ़ आये ॥ ४ ॥

कृतवर्मा तु हार्दिक्यो युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ।
द्रोणं प्रति समायान्तं मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ५ ॥

जैसे मतवाला हाथी किसी मतवाले हाथीपर आक्रमण कर रहा हो, उसी प्रकार युधिष्ठिरको द्रोणाचार्यपर धावा करते देख हृदिकपुत्र कृतवर्माने आगे बढ़कर उन्हें रोका ॥

शैनेयं शरवर्षाणि विकिरन्तं समन्ततः ।
अभ्ययात् कौरवो राजन् भूरिः संग्राममूर्धनि ॥ ६ ॥

राजन् ! युद्धके मुहानेपर चारों ओर बाणोंकी बौछार करते हुए शिनिपौत्र सात्यकिपर कुरुवंशी भूरिने धावा किया ॥ ६ ॥

सहदेवमथायान्तं द्रोणप्रेप्सुं महारथम् ।
कर्णो वैकर्तनो राजन् वारयामास पाण्डवम् ॥ ७ ॥

राजन् ! द्रोणाचार्यको पकड़नेके लिये आते हुए महारथी पाण्डुपुत्र सहदेवको वैकर्तन कर्णने रोका ॥ ७ ॥

भीमसेनमथायान्तं व्यादितास्यमिवान्तकम् ।
स्वयं दुर्योधनो राजा प्रतीपं मृत्युमाव्रजत् ॥ ८ ॥

मुँह बाये यमराजके समान अथवा विपक्षी बनकर आयी हुई मृत्युके समान भीमसेनका सामना स्वयं राजा दुर्योधनने किया ॥ ८ ॥

नकुलं च युधां श्रेष्ठं सर्वयुद्धविशारदम् ।
शकुनिः सौबलो राजन् वारयामास सत्वरः ॥ ९ ॥

राजन् ! सम्पूर्ण युद्धकलामें कुशल योद्धाओंमें श्रेष्ठ नकुलको सुबलपुत्र शकुनिने शीघ्रतापूर्वक आकर रोका ॥ ९ ॥

शिखण्डिनमथायान्तं रथेन रथिनां वरम् ।
कृपः शारद्वतो राजन् वारयामास संयुगे ॥ १० ॥

नरेश्वर ! रथसे आते हुए रथियोंमें श्रेष्ठ शिखण्डीको युद्धस्थलमें शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्यने रोका ॥ १० ॥

प्रतिविन्ध्यमथायान्तं मयूरसदृशैर्हयैः ।
दुःशासनो महाराज यत्तो यत्तमवारयत् ॥ ११ ॥

महाराज ! मयूरके समान रंगवाले घोड़ोंद्वारा आते हुए प्रयत्नशील प्रतिविन्ध्यको दुःशासनने यत्नपूर्वक रोका ॥ ११ ॥

भैमसेनिमथायान्तं मायाशतविशारदम् ।
अश्वत्थामा महाराज राक्षसं प्रत्यषेधयत् ॥ १२ ॥

राजन् ! सैकड़ों मायाओंके प्रयोगमें कुशल भीमसेनकुमार राक्षस घटोत्कचको आते देख अश्वत्थामाने रोका ॥

द्रुपदं वृषसेनस्तु ससैन्यं सपदानुगम् ।
वारयामास समरे द्रोणप्रेप्सुं महारथम् ॥ १३ ॥

समराङ्गणमें द्रोणको पराजित करनेकी इच्छावाले सेना और सेवकोंसहित महारथी द्रुपदको वृषसेनने रोका ॥ १३ ॥

विराटं द्रुतमायान्तं द्रोणस्य निधनं प्रति ।
मद्रराजः सुसंक्रुद्धो वारयामास भारत ॥ १४ ॥

भारत ! द्रोणको मारनेके उद्देश्यसे शीघ्रतापूर्वक आते हुए राजा विराटको अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए मद्रराज शल्यने रोक दिया ॥ १४ ॥

शतानीकमथायान्तं नाकुलिं रभसं रणे ।
चित्रसेनो रुरोधाशु शरैर्द्रोणपरीप्सया ॥ १५ ॥

द्रोणाचार्यके वधकी इच्छासे रणक्षेत्रमें वेगपूर्वक आते हुए नकुलपुत्र शतानीकको चित्रसेनने अपने बाणोंद्वारा तुरंत रोक दिया ॥ १५ ॥

अर्जुनं च युधां श्रेष्ठं प्राद्रवन्तं महारथम् ।
अलम्बुषो महाराज राक्षसेन्द्रो न्यवारयत् ॥ १६ ॥

महाराज ! कौरवसेनापर धावा करते हुए योद्धाओंमें श्रेष्ठ महारथी अर्जुनको राक्षसराज अलम्बुषने रोका ॥ १६ ॥

तथा द्रोणं महेष्वासं निघ्नन्तं शात्रवान् रणे ।
धृष्टद्युम्नोऽथ पाञ्चाल्यो हृष्टरूपमवारयत् ॥ १७ ॥

इसी प्रकार रणभूमिमें शत्रुसैनिकोंका संहार करनेवाले, हर्ष और उत्साहसे युक्त, महाधनुर्धर द्रोणाचार्यको पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नने आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ १७ ॥

तथान्यान् पाण्डुपुत्राणां समायातान् महारथान् ।
तावका रथिनो राजन् वारयामासुरोजसा ॥ १८ ॥

राजन् ! इसी तरह आक्रमण करनेवाले पाण्डवपक्षके अन्य महारथियोंको आपकी सेनाके महारथियोंने बलपूर्वक रोका ॥ १८ ॥

गजारोहा गजैस्तूर्णं संनिपत्य महामृधे ।
योधयन्तश्च मृद्नन्तः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १९ ॥

उस महासमरमें सैकड़ों और हजारों हाथीसवार तुरंत ही विपक्षी गजारोहियोंसे भिड़कर परस्पर जूझने और सैनिकोंको रौंदने लगे ॥ १९ ॥

निशीथे तुरगा राजन् द्रावयन्तः परस्परम् ।
समदृश्यन्त वेगेन प्लवन्तो यथाऽद्रयः ॥ २० ॥

राजन् ! रातके समय एक दूसरेपर वेगसे धावा करते

हुए घोड़े पंखधारी पर्वतोंके समान दिखायी देते थे ॥ २० ॥

सादिनः सादिभिः सार्धं प्रासशक्त्यृष्टिपाणयः ।
समागच्छन् महाराज विनदन्तः पृथक् पृथक् ॥ २१ ॥

महाराज ! हाथमें प्रास, शक्ति और ऋष्टि धारण किये घुड़सवार सैनिक पृथक्-पृथक् गर्जना करते हुए शत्रुपक्षके घुड़सवारोंके साथ युद्ध कर रहे थे ॥ २१ ॥

नरास्तु बहवस्तत्र समाजग्मुः परस्परम् ।
गदाभिर्मुसलैश्चैव नानाशस्त्रैश्च संयुगे ॥ २२ ॥

उस युद्धस्थलमें बहुसंख्यक पैदल मनुष्य गदा और मुसल आदि नाना प्रकारके अस्त्रोंद्वारा एक दूसरेपर आक्रमण करते थे ॥ २२ ॥

कृतवर्मा तु हार्दिक्यो धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
वारयामास संक्रुद्धो वेलेवोद्वृत्तमर्णवम् ॥ २३ ॥

जैसे उत्ताल तरंगोंवाले महासागरको तटभूमि रोक देती है, उसी प्रकार धर्मपुत्र युधिष्ठिरको अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए हृदिकपुत्र कृतवर्माने रोक दिया ॥ २३ ॥

युधिष्ठिरस्तु हार्दिक्यं विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः ।
पुनर्विव्याध विंशत्या तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २४ ॥

युधिष्ठिरने कृतवर्माको पहले पाँच बाणोंसे घायल करके फिर बीस बाणोंसे बींध डाला और कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ २४ ॥

कृतवर्मा तु संक्रुद्धो धर्मपुत्रस्य मारिष ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन तं च विव्याध सप्तभिः ॥ २५ ॥

माननीय नरेश ! तब अत्यन्त कुपित हुए कृतवर्माने भी एक भल्लसे धर्मपुत्र युधिष्ठिरका धनुष काट दिया और उन्हें भी सात बाणोंसे बींध डाला ॥ २५ ॥

अथान्यद् धनुरादाय धर्मपुत्रो महारथः ।
हार्दिक्यं दशभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ २६ ॥

तदनन्तर महारथी धर्मकुमार युधिष्ठिरने दूसरा धनुष लेकर कृतवर्माकी छाती और भुजाओंमें दस बाण मारे ॥ २६ ॥

माधवस्तु भृशं विद्धो धर्मपुत्रेण मारिष ।
प्राकम्पत च रोषेण सप्तभिश्चार्दयच्छरैः ॥ २७ ॥

आर्य ! रणभूमिमें धर्मपुत्र युधिष्ठिरके बाणोंसे घायल होकर कृतवर्मा काँपने लगा और उसने क्रोधपूर्वक युधिष्ठिरको भी सात बाण मारे ॥ २७ ॥

तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा हस्तावापं निकृत्य च ।
प्राहिणोन्निशितान् बाणान् पञ्च राजञ्छिलाशितान् ॥ २८ ॥

राजन् ! तब कुन्तीकुमार युधिष्ठिरने कृतवर्माके धनुष और दस्तानेको काटकर उसके ऊपर पाँच तीखे बाण चलाये, जो शिलापर तेज किये गये थे ॥ २८ ॥

ते तस्य कवचं भित्त्वा हेमचित्रं महाधनम् ।
प्राविशन् धरणीं भित्त्वा वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ २९ ॥

जैसे सर्प बाँबीमें घुस जाते हैं, उसी प्रकार वे बाण कृतवर्माके सुवर्णजटित बहुमूल्य कवचको छिन्न-भिन्न करके धरती फाड़कर उसके भीतर घुस गये ॥ २९ ॥

अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण सोऽन्यदादाय कार्मुकम् ।
विव्याध पाण्डवं षष्ट्या सूतं च नवभिः शरैः ॥ ३० ॥

कृतवर्माने पलक मारते-मारते दूसरा धनुष हाथमें लेकर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको साठ और उनके सारथिको नौ बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ३० ॥

तस्य शक्तिममेयात्मा पाण्डवो भुजगोपमाम् ।
चिक्षेप भरतश्रेष्ठ रथे न्यस्य महद् धनुः ॥ ३१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तब अमेय आत्मबलसे सम्पन्न पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने अपने विशाल धनुषको रथपर रखकर कृतवर्मापर एक सर्पाकार शक्ति चलायी ॥ ३१ ॥

सा हेमचित्रा महती पाण्डवेन प्रवेरिता ।
निर्भिद्य दक्षिणं बाहुं प्राविशद् धरणीतलम् ॥ ३२ ॥

पाण्डुकुमार युधिष्ठिरकी चलायी हुई वह सुवर्णचित्रित विशाल शक्ति कृतवर्माकी दाहिनी भुजाको छेदकर धरतीमें समा गयी ॥ ३२ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु गृह्य पार्थः पुनर्धनुः ।
हार्दिक्यं छादयामास शरैः संनतपर्वभिः ॥ ३३ ॥

इसी समय युधिष्ठिरने पुनः धनुष हाथमें लेकर झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा कृतवर्माको ढक दिया ॥ ३३ ॥

ततस्तु समरे शूरो वृष्णीनां प्रवरो रथी ।
व्यश्वसूतरथं चक्रे निमेषार्धाद् युधिष्ठिरम् ॥ ३४ ॥

फिर तो वृष्णिवंशके शूरवीर श्रेष्ठ महारथी कृतवर्माने समराङ्गणमें आधे निमेषमें ही युधिष्ठिरको घोड़ों, सारथि और रथसे हीन कर दिया ॥ ३४ ॥

ततस्तु पाण्डवो ज्येष्ठः खड्गं चर्म समाददे ।
तदस्य निशितैर्बाणैर्व्यधमन्माधवो रणे ॥ ३५ ॥

तब ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिरने ढाल-तलवार हाथमें ले ली। किंतु कृतवर्माने रणक्षेत्रमें तीखे बाण मारकर उनके उस खड्गको नष्ट कर दिया ॥ ३५ ॥

तोमरं तु ततो गृह्य स्वर्णदण्डं दुरासदम् ।
प्रैषयत् समरे तूर्णं हार्दिक्यस्य युधिष्ठिरः ॥ ३६ ॥

तब समराङ्गणमें युधिष्ठिरने सुवर्णमय दण्डसे युक्त दुर्धर्ष तोमर हाथमें लेकर उसे तुरंत ही कृतवर्मापर चला दिया ॥

तमापतन्तं सहसा धर्मराजभुजच्युतम् ।
द्विधा चिच्छेद हार्दिक्यः कृतहस्तः स्मयन्निव ॥ ३७ ॥

धर्मराजके हाथसे छूटकर सहसा अपने ऊपर आते हुए उस तोमरके सिद्धहस्त कृतवर्माने मुसकराते हुए-से दो टुकड़े कर दिये ॥ ३७ ॥

ततः शरशतेनाजौ धर्मपुत्रमवाकिरत् ।
कवचं चास्य संक्रुद्धः शरैस्तीक्ष्णैरदारयत् ॥ ३८ ॥

तब युद्धस्थलमें कृतवर्माने सैकड़ों बाणोंसे धर्मपुत्र युधिष्ठिरको ढक दिया और अत्यन्त कुपित होकर उसने उनके कवचको भी तीखे बाणोंसे विदीर्ण कर डाला ॥ ३८ ॥

हार्दिक्यशरसंछन्नं कवचं तन्महाधनम् ।
व्यशीर्यत रणे राजंस्ताराजालमिवाम्बरात् ॥ ३९ ॥

राजन् ! कृतवर्माके बाणोंसे आच्छादित हुआ वह बहुमूल्य कवच आकाशसे तारोंके समुदायकी भाँति रणभूमिमें बिखर गया ॥ ३९ ॥

स च्छिन्नधन्वा विरथः शीर्णवर्मा शरार्दितः ।
अपायासीद् रणात् तूर्णं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ४० ॥

इस प्रकार धनुष कट जाने, रथ नष्ट होने और कवच छिन्न-भिन्न हो जानेपर बाणोंसे पीड़ित हुए धर्मपुत्र युधिष्ठिर तुरंत ही युद्धसे पलायन कर गये ॥ ४० ॥

कृतवर्मा तु निर्जित्य धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।
पुनर्द्रोणस्य जुगुपे चक्रमेव महात्मनः ॥ ४१ ॥

धर्मात्मा युधिष्ठिरको जीतकर कृतवर्मा पुनः महात्मा द्रोणके रथचक्रकी ही रक्षा करने लगा ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे युधिष्ठिरापयानं नाम पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके अवसरपर युधिष्ठिरका पलायनविषयक एक सौ पैंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६५ ॥

षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिके द्वारा भूरिका वध, घटोत्कच और अश्वत्थामाका घोर युद्ध तथा भीमके साथ दुर्योधनका युद्ध एवं दुर्योधनका पलायन

संजय उवाच

भूरिस्तु समरे राजञ्शैनेयं रथिनां वरम् ।
आपतन्तमपासेधत् प्रयाणादिव कुञ्जरम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! जैसे कोई हाथीको उसके निकलनेके स्थानसे ही रोक दे, उसी प्रकार भूरिने आक्रमण करते हुए रथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकिको समरभूमिमें आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ १ ॥

अथैनं सात्यकिः क्रुद्धः पञ्चभिर्निशितैः शरैः ।
विव्याध हृदये तस्य प्रास्रवत् तस्य शोणितम् ॥ २ ॥

यह देख सात्यकि कुपित हो उठे और उन्होंने पाँच तीखे बाणोंसे भूरिकी छाती छेद डाली । उससे रक्तकी धारा बहने लगी ॥ २ ॥

तथैव कौरवो युद्धे शैनेयं युद्धदुर्मदम् ।
दशभिर्निशितैस्तीक्ष्णैरविध्यत भुजान्तरे ॥ ३ ॥

इसी प्रकार युद्धस्थलमें कुरुवंशी भूरिने भी रणदुर्मद सात्यकिकी छातीमें दस तीखे बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३ ॥

तावन्योन्यं महाराज ततक्षाते शरैर्भृशम् ।
क्रोधसंरक्तनयनौ क्रोधाद् विस्फार्य कार्मुके ॥ ४ ॥

महाराज ! उन दोनोंके नेत्र क्रोधसे लाल हो रहे थे । वे दोनों ही रोषसे अपने-अपने धनुष खींचकर बाणोंकी वर्षासे एक-दूसरेको अत्यन्त घायल कर रहे थे ॥ ४ ॥

तयोरासीन्महाराज शस्त्रवृष्टिः सुदारुणा ।
क्रुद्धयोः सायकमुचोर्यमान्तकनिकाशयोः ॥ ५ ॥

राजेन्द्र ! उन दोनोंपर अस्त्र-शस्त्रोंकी अत्यन्त भयंकर वर्षा हो रही थी । वे यम और अन्तकके समान कुपित हो परस्पर बाणोंका प्रहार कर रहे थे ॥ ५ ॥

तावन्योन्यं शरै राजन् संछाद्य समवस्थितौ ।
मुहूर्तं चैव तद् युद्धं समरूपमिवाभवत् ॥ ६ ॥

राजन् ! वे दोनों ही एक-दूसरेको बाणोंद्वारा आच्छादित करके खड़े थे । दो घड़ीतक उनमें समानरूपसे ही युद्ध चलता रहा ॥ ६ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज शैनेयः प्रहसन्निव ।
धनुश्चिच्छेद समरे कौरव्यस्य महात्मनः ॥ ७ ॥

महाराज ! तब क्रोधमें भरे हुए सात्यकिने हँसते हुए-से समराङ्गणमें महामना कुरुवंशी भूरिके धनुषको काट दिया ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं नवभिर्निशितैः शरैः ।
विव्याध हृदये तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ८ ॥

धनुष कट जानेपर उसकी छातीमें सात्यकिने तुरंत ही नौ तीखे बाण मारे और कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ ८ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुतापनः ।
धनुरन्यत् समादाय सात्वतं प्रत्यविध्यत ॥ ९ ॥

बलवान् शत्रुके आघातसे अत्यन्त घायल हुए शत्रुतापन भूरिने दूसरा धनुष हाथमें लेकर सात्यकिको भी गहरी चोट पहुँचायी ॥ ९ ॥

स विद्ध्वा सात्वतं बाणैस्त्रिभिरेव विशाम्पते ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सुतीक्ष्णेन हसन्निव ॥ १० ॥

प्रजानाथ ! तीन बाणोंसे ही सात्यकिको घायल करके भूरिने हँसते हुए-से अत्यन्त तीखे भल्लद्वारा उनके धनुषको भी काट दिया ॥ १० ॥

छिन्नधन्वा महाराज सात्यकिः क्रोधमूर्छितः ।
प्रजहार महावेगां शक्तिं तस्य महोरसि ॥ ११ ॥

महाराज ! धनुष कट जानेपर क्रोधातुर हुए सात्यकिने भूरिके विशाल वक्षःस्थलपर एक अत्यन्त वेगशालिनी शक्तिका प्रहार किया ॥ ११ ॥

स तु शक्त्या विभिन्नाङ्गो निपपात रथोत्तमात् ।
लोहिताङ्ग इवाकाशाद् दीप्तरश्मिर्यदृच्छया ॥ १२ ॥

उस शक्तिसे भूरिके सारे अङ्ग विदीर्ण हो गये और वह अपने उत्तम रथसे नीचे गिर पड़ा, मानो दैववश प्रदीप्त किरणोंवाला मंगलग्रह आकाशसे नीचे गिर गया हो ॥ १२ ॥

तं तु दृष्ट्वा हतं शूरमश्वत्थामा महारथः ।
अभ्यधावत वेगेन शैनेयं प्रति संयुगे ॥ १३ ॥

शूरवीर भूरिको युद्धस्थलमें मारा गया देख महारथी अश्वत्थामा सात्यकिकी ओर बड़े वेगसे दौड़ा ॥ १३ ॥

तिष्ठ तिष्ठेति चाभाष्य शैनेयं स नराधिप ।
अभ्यवर्षच्छरौघेण मेरुं वृष्ट्या यथाम्बुदः ॥ १४ ॥

नरेश्वर ! वह सात्यकिसे 'खड़ा रह, खड़ा रह' ऐसा कहकर उनके ऊपर उसी प्रकार बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगा, जैसे बादल मेरु पर्वतपर जल बरसा रहा हो ॥ १४ ॥

तमापतन्तं संरब्धं शैनेयस्य रथं प्रति ।
घटोत्कचोऽब्रवीद् राजन् नादं मुक्त्वा महारथः ॥ १५ ॥

क्रोधमें भरे हुए अश्वत्थामाको सात्यकिके रथपर आक्रमण करते देख महारथी घटोत्कचने सिंहनाद करके कहा— ॥ १५ ॥

तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन् द्रोणपुत्र गमिष्यसि ।
एष त्वां निहनिष्यामि महिषं षण्मुखो यथा ॥ १६ ॥

'द्रोणपुत्र ! खड़ा रह, खड़ा रह, मेरे हाथसे जीवित छूटकर नहीं जा सकेगा । जैसे कार्तिकेयने महिषासुरका वध किया था, उसी प्रकार मैं भी तुझे मार डालूँगा ॥ १६ ॥

युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे ।
इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षो राक्षसः परवीरहा ॥ १७ ॥
द्रौणिमभ्यद्रवत् क्रुद्धो गजेन्द्रमिव केसरी ।

'आज समराङ्गणमें मैं तेरी युद्धविषयक श्रद्धा दूर कर दूँगा ।' ऐसा कहकर क्रोधसे लाल आँखें किये, शत्रुवीरोंका हनन करनेवाले कुपित राक्षस घटोत्कचने अश्वत्थामापर उसी प्रकार धावा किया, जैसे सिंह किसी गजराजपर आक्रमण करता है ॥ १७½ ॥

रथाक्षमात्रैरिषुभिरभ्यवर्षद् घटोत्कचः ॥ १८ ॥
रथिनामृषभं द्रौणिं धाराभिरिव तोयदः ।

जैसे मेघ पर्वतपर जलकी धारा गिराता है, उसी प्रकार घटोत्कच रथियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामापर रथके धुरेके समान मोटे-मोटे बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ १८½ ॥

शरवृष्टिं तु तां प्राप्तां शरैराशीविषोपमैः ॥ १९ ॥
शातयामास समरे तरसा द्रौणिरुत्स्मयन् ।

परंतु अश्वत्थामाने मुसकराते हुए समरभूमिमें अपने ऊपर आयी हुई उस बाणवर्षाको विषधर सर्पोंके समान भयंकर बाणोंद्वारा वेगपूर्वक नष्ट कर दिया ॥ १९½ ॥

ततः शरशतैस्तीक्ष्णैर्मर्मभेदिभिराशुगैः ॥ २० ॥
समाचिनोद् राक्षसेन्द्रं घटोत्कचमरिंदमम् ।

तत्पश्चात् मर्मस्थलको विदीर्ण कर देनेवाले सैकड़ों पैने बाणोंद्वारा उसने शत्रुदमन राक्षसराज घटोत्कचको बींध दिया ॥ २० ॥

स शरैराचितस्तेन राक्षसो रणमूर्धनि ॥ २१ ॥
व्यकाशत महाराज श्वाविच्छललितो यथा ।

महाराज ! अश्वत्थामाद्वारा उन बाणोंसे बिंधा हुआ वह राक्षस काँटोंसे भरे हुए साहीके समान सुशोभित हो रहा था ॥

ततः क्रोधसमाविष्टो भैमसेनिः प्रतापवान् ॥ २२ ॥
शरैरवचकर्तोग्रैर्द्रौणिं वज्राशनिप्रभैः ।
क्षुरप्रैरर्धचन्द्रैश्च नाराचैः सशिलीमुखैः ॥ २३ ॥
वराहकर्णैर्नालीकैर्विकर्णैश्चाभ्यवीवृषत् ।

तत्पश्चात् भीमसेनके प्रतापी पुत्र घटोत्कचने क्रोधमें भरकर वज्र एवं बिजलीके समान चमकनेवाले भयंकर बाणोंद्वारा अश्वत्थामाको क्षत-विक्षत कर दिया तथा उसके ऊपर क्षुरप्र, अर्धचन्द्र, नाराच, शिलीमुख, वराहकर्ण, नालीक और विकर्ण आदि अस्त्रोंकी चारों ओरसे वर्षा आरम्भ कर दी ॥

तां शस्त्रवृष्टिमतुलां वज्राशनिसमस्वनाम् ॥ २४ ॥
पतन्तीमुपरि क्रुद्धो द्रौणिरव्यथितेन्द्रियः ।
सुदुःसहां शरैर्घोरैर्दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रितैः ॥ २५ ॥
व्यधमत् सुमहातेजा महाभ्राणीव मारुतः ।

जैसे वायु बड़े-बड़े बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार व्यथारहित इन्द्रियोंवाले महातेजस्वी द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने कुपित हो दिव्यास्त्रोंद्वारा अभिमन्त्रित भयंकर बाणोंसे अपने ऊपर पड़ती हुई उस अत्यन्त दुःसह, अनुपम एवं वज्रपातके समान शब्द करनेवाली अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षाको नष्ट कर दिया ॥ २४-२५½ ॥

ततोऽन्तरिक्षे बाणानां संग्रामोऽन्य इवाभवत् ॥ २६ ॥
घोररूपो महाराज योधानां हर्षवर्धनः ।

महाराज ! तत्पश्चात् अन्तरिक्षमें बाणोंका दूसरा भयंकर संग्राम-सा होने लगा, जो योद्धाओंका हर्ष बढ़ा रहा था ॥

ततोऽस्त्रसंघर्षकृतैर्विस्फुलिङ्गैः समन्ततः ॥ २७ ॥
बभौ निशामुखे व्योम खद्योतैरिव संवृतम् ।

अस्त्रोंके परस्पर टकरानेसे जो चारों ओर चिनगारियाँ छूट रही थीं, उनसे आकाश प्रदोषकालमें जुगनुओंसे व्याप्त-सा जान पड़ता था ॥ २७½ ॥

स मार्गणगणैर्द्रौणिर्दिशः प्रच्छाद्य सर्वतः ॥ २८ ॥
प्रियार्थं तव पुत्राणां राक्षसं समवाकिरत् ।

द्रोणपुत्रने आपके पुत्रोंका प्रिय करनेके लिये अपने बाणोंद्वारा सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित करते हुए उस राक्षसको भी ढक दिया ॥ २८½ ॥

ततः प्रववृते युद्धं द्रौणिराक्षसयोर्मृधे ॥ २९ ॥
विगाढे रजनीमध्ये शक्रप्रह्लादयोरिव ।

तदनन्तर गाढ़ अन्धकारसे भरी हुई आधी रातके समय रणभूमिमें इन्द्र और प्रह्लादके समान अश्वत्थामा और घटोत्कच-का घोर युद्ध आरम्भ हुआ ॥ २९½ ॥

ततो घटोत्कचो बाणैर्दशभिर्द्रौणिमाहवे ॥ ३० ॥
जघानोरसि संक्रुद्धः कालज्वलनसंनिभैः ।

अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए घटोत्कचने युद्धस्थलमें कालाग्नि-के समान दस तेजस्वी बाणोंद्वारा अश्वत्थामाकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३०½ ॥

स तैरभ्यायतैर्विद्धो राक्षसेन महाबलः ॥ ३१ ॥
चचाल समरे द्रौणिर्वातनुन्न इव द्रुमः ।
स मोहमनुसम्प्राप्तो ध्वजयष्टिं समाश्रितः ॥ ३२ ॥

राक्षसद्वारा चलाये हुए उन विशाल बाणोंसे घायल हो महाबली अश्वत्थामा समराङ्गणमें आँधीके हिलाये हुए वृक्षके समान काँपने लगा। वह ध्वजदण्डका सहारा ले मूर्च्छित हो गया ॥ ३१-३२ ॥

ततो हाहाकृतं सैन्यं तव सर्वं जनाधिप ।
हतं स्म मेनिरे सर्वे तावकास्तं विशाम्पते ॥ ३३ ॥

नरेश्वर ! फिर तो आपकी सारी सेनामें हाहाकार मच गया । प्रजानाथ ! आपके समस्त योद्धाओंने यह मान लिया कि अश्वत्थामा मारा गया ॥ ३३ ॥

तं तु दृष्ट्वा तथावस्थमश्वत्थामानमाहवे ।
पञ्चालाः सृंजयाश्चैव सिंहनादं प्रचक्रिरे ॥ ३४ ॥

रणभूमिमें अश्वत्थामाकी वैसी अवस्था देख पाञ्चाल और सृञ्जय योद्धा सिंहनाद करने लगे ॥ ३४ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञामश्वत्थामा महाबलः ।
धनुः प्रपीड्य वामेन करेणामित्रकर्शनः ॥ ३५ ॥
मुमोचाकर्णपूर्णेन धनुषा शरमुत्तमम् ।
यमदण्डोपमं घोरमुद्दिश्याशु घटोत्कचम् ॥ ३६ ॥

तदनन्तर सचेत हो महाबली शत्रुसूदन अश्वत्थामाने बायें हाथसे धनुषको दबाकर कानतक खींचे हुए धनुषसे घटोत्कचको लक्ष्य करके यमदण्डके समान एक भयंकर एवं उत्तम बाण शीघ्र छोड़ दिया ॥ ३५-३६ ॥

स भित्त्वा हृदयं तस्य राक्षसस्य शरोत्तमः ।
विवेश वसुधामुग्रः सपुङ्खः पृथिवीपते ॥ ३७ ॥

पृथ्वीपते ! वह उत्तम एवं भयंकर बाण उस राक्षसकी छाती छेदकर पंखसहित पृथ्वीमें समा गया ॥ ३७ ॥

सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ उपाविशत् ।
राक्षसेन्द्रः सुबलवान् द्रौणिना रणशालिना ॥ ३८ ॥

महाराज ! युद्धमें शोभा पानेवाले अश्वत्थामाद्वारा अत्यन्त घायल हुआ महाबली राक्षसराज घटोत्कच रथके पिछले भाग-में बैठ गया ॥ ३८ ॥

दृष्ट्वा विमूढं हैडिम्बं सारथिस्तु रणाजिरात् ।
द्रौणेः सकाशात् सम्भ्रान्तस्त्वपनिन्ये त्वरान्वितः ॥ ३९ ॥

हिडिम्बाकुमारको मूर्च्छित देख उसका सारथि घबरा गया और तुरंत ही उसे समराङ्गणसे, विशेषतः अश्वत्थामाके निकटसे दूर हटा ले गया ॥ ३९ ॥

तथा तु समरे विद्ध्वा राक्षसेन्द्रं घटोत्कचम् ।
ननाद सुमहानादं द्रोणपुत्रो महारथः ॥ ४० ॥

इस प्रकार समरभूमिमें राक्षसराज घटोत्कचको घायल करके महारथी द्रोणपुत्रने बड़े जोरसे गर्जना की ॥ ४० ॥

पूजितस्तव पुत्रैश्च सर्वयोधैश्च भारत ।
वपुषातिप्रजज्वाल मध्याह्न इव भास्करः ॥ ४१ ॥

भरतनन्दन ! उस समय सम्पूर्ण योद्धाओं तथा आपके पुत्रोंद्वारा पूजित हुआ अश्वत्थामा अपने शरीरसे मध्याह्नकालके सूर्यकी भाँति अत्यन्त प्रकाशित हो रहा था ॥ ४१ ॥

भीमसेनं तु युध्यन्तं भारद्वाजरथं प्रति।
स्वयं दुर्योधनो राजा प्रत्यविध्यच्छितैः शरैः ॥ ४२ ॥

द्रोणाचार्यके रथकी ओर आते हुए युद्धपरायण भीमसेनको स्वयं राजा दुर्योधनने पैने बाणोंसे बींध डाला ॥ ४२ ॥

तं भीमसेनो दशभिः शरैर्विव्याध मारिष।
दुर्योधनोऽपि विंशत्या शराणां प्रत्यविध्यत ॥ ४३ ॥

माननीय नरेश ! तब भीमसेनने भी दुर्योधनको दस बाणोंसे घायल किया। फिर दुर्योधनने भी उन्हें बीस बाण मारे ॥ ४३ ॥

तौ सायकैरवच्छिन्नावदृश्येतां रणाजिरे।
मेघजालसमाच्छन्नौ नभसीवेन्दुभास्करौ ॥ ४४ ॥

जैसे कभी-कभी चन्द्रमा और सूर्य आकाशमें मेघोंके समूहसे आच्छादित हुए देखे जाते हैं, उसी प्रकार समराङ्गणमें वे दोनों वीर सायकसमूहोंसे आच्छन्न दिखायी देते थे ॥

अथ दुर्योधनो राजा भीमं विव्याध पत्रिभिः।
पञ्चभिर्भरतश्रेष्ठ तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ४५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! राजा दुर्योधनने भीमसेनको पाँच बाणोंसे घायल कर दिया और कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह' ॥४५॥

तस्य भीमो धनुश्छित्त्वा ध्वजं च दशभिः शरैः।
विव्याध कौरवश्रेष्ठं नवत्या नतपर्वणाम् ॥ ४६ ॥

तब भीमसेनने दस बाण मारकर उसके धनुष और ध्वज काट डाले और झुकी हुई गाँठवाले नब्बे बाणोंसे कौरवश्रेष्ठ दुर्योधनको गहरी चोट पहुँचायी ॥ ४६ ॥

ततो दुर्योधनः क्रुद्धो धनुरन्यन्महत्तरम्।
गृहीत्वा भरतश्रेष्ठो भीमसेनं शितैः शरैः ॥ ४७ ॥
अपीडयद् रणमुखे पश्यतां सर्वधन्विनाम्।

तत्पश्चात् भरतश्रेष्ठ दुर्योधनने कुपित हो दूसरा विशाल धनुष हाथमें लेकर युद्धके मुहानेपर सम्पूर्ण धनुर्धरोंके देखते-देखते पैने बाणोंद्वारा भीमसेनको पीड़ा देनी आरम्भ की ॥

तान् निहत्य शरान् भीमो दुर्योधनधनुश्च्युतान् ॥ ४८ ॥
कौरवं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत्।

दुर्योधनके धनुषसे छूटे हुए उन सभी बाणोंको नष्ट करके भीमसेनने उस कौरव-नरेशको पचीस बाण मारे ॥

दुर्योधनस्तु संक्रुद्धो भीमसेनस्य मारिष ॥ ४९ ॥
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा दशभिः प्रत्यविध्यत।

आर्य ! इससे दुर्योधन अत्यन्त कुपित हो उठा और उसने एक क्षुरप्रसे भीमसेनका धनुष काटकर उन्हें दस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ४९½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय भीमसेनो महाबलः ॥ ५० ॥
विव्याध नृपतिं तूर्णं सप्तभिर्निशितैः शरैः।

तब महाबली भीमसेनने दूसरा धनुष हाथमें लेकर तुरंत ही कौरव-नरेशको सात तीखे बाणोंसे बींध डाला ॥ ५०½ ॥

तदप्यस्य धनुः क्षिप्रं चिच्छेद लघुहस्तवत् ॥ ५१ ॥
द्वितीयं च तृतीयं च चतुर्थं पञ्चमं तथा।
आत्तमात्तं महाराज भीमस्य धनुराच्छिनत् ॥ ५२ ॥
तव पुत्रो महाराज जितकाशी मदोत्कटः।

दुर्योधनने शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले कुशल योद्धाकी भाँति भीमसेनके उस धनुषको भी शीघ्र ही काट दिया। महाराज ! भीमसेनके हाथमें लिये हुए दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवें धनुषको भी विजयसे उल्लसित होनेवाले आपके मदोन्मत्त पुत्रने काट डाला ॥ ५१-५२½ ॥

स तथा भिद्यमानेषु कार्मुकेषु पुनः पुनः ॥ ५३ ॥
शक्तिं चिक्षेप समरे सर्वपारशवीं शुभाम्।
मृत्योरिव स्वसारं हि दीप्तां वह्निशिखामिव ॥ ५४ ॥

इस प्रकार जब बारंबार धनुष काटे जाने लगे, तब भीमसेनने समरभूमिमें सम्पूर्णतः लोहेकी बनी हुई एक सुन्दर शक्ति चलायी, जो मौतकी सगी बहिनके समान जान पड़ती थी। वह आगकी ज्वालाके समान प्रकाशित हो रही थी ॥

सीमन्तमिव कुर्वन्तीं नभसोऽग्निसमप्रभाम्।
अप्राप्तामेव तां शक्तिं त्रिधा चिच्छेद कौरवः ॥ ५५ ॥
पश्यतः सर्वलोकस्य भीमस्य च महात्मनः।

आकाशमें सीमन्तकी रेखा-सी बनाती हुई अग्निके समान देदीप्यमान होनेवाली उस शक्तिके अपने पास आनेसे पहले ही कौरव-नरेशने तीन टुकड़े कर दिये। सम्पूर्ण योद्धाओं तथा महामना भीमसेनके देखते-देखते यह कार्य हो गया ॥

ततो भीमो महाराज गदां गुर्वीं महाप्रभाम् ॥ ५६ ॥
चिक्षेपाविध्य वेगेन दुर्योधनरथं प्रति।

महाराज ! तब भीमसेनने अपनी अत्यन्त तेजस्विनी गदाको बड़े वेगसे घुमाकर दुर्योधनके रथपर दे मारा ॥५६½॥

ततः सा सहसा वाहांस्तव पुत्रस्य संयुगे ॥ ५७ ॥
सारथिं च गदा गुर्वी ममर्दास्य रथं पुनः।

युद्धस्थलमें उस भारी गदाने सहसा आपके पुत्रके चारों घोड़ों, सारथि और रथका भी मर्दन कर दिया ॥ ५७½ ॥

पुत्रस्तु तव राजेन्द्र भीमाद् भीतः प्रणश्य च ॥ ५८ ॥
आरुरोह रथं चान्यं नन्दकस्य महात्मनः।

राजेन्द्र ! उस समय आपका पुत्र भीमसेनसे भयभीत हो पहले ही भागकर महामना नन्दकके रथपर जा बैठा था ॥

ततो भीमो हतं मत्वा तव पुत्रं महारथम् ॥ ५९ ॥
सिंहनादं महच्चक्रे तर्जयन् निशि कौरवान् ।

उस समय भीमसेनने आपके महारथी पुत्रको मारा गया मानकर रातके समय कौरवोंको डाँट बताते हुए बड़े जोर-जोरसे सिंहनाद किया ॥ ५९½ ॥

तावकाः सैनिकाश्चापि मेनिरे निहतं नृपम् ।
ततोऽतिचुक्रुशुः सर्वे ते हाहेति समन्ततः ॥ ६० ॥

आपके सैनिकोंने भी राजा दुर्योधनको मरा हुआ ही मान लिया था; अतः वे सब ओर जोर-जोरसे हाहाकार करने लगे ॥ ६० ॥

तेषां तु निनदं श्रुत्वा त्रस्तानां सर्वयोधिनाम् ।
भीमसेनस्य नादं च श्रुत्वा राजन् महात्मनः ॥ ६१ ॥
ततो युधिष्ठिरो राजा हतं मत्वा सुयोधनम् ।
अभ्यवर्तत वेगेन यत्र पार्थो वृकोदरः ॥ ६२ ॥

राजन् ! उन भयभीत हुए सम्पूर्ण योद्धाओंका आर्तनाद तथा महामनस्वी भीमसेनकी गर्जना सुनकर दुर्योधनको मरा हुआ मान राजा युधिष्ठिर बड़े वेगसे उस स्थानपर आ पहुँचे, जहाँ कुन्तीकुमार भीमसेन दहाड़ रहे थे ॥ ६१-६२ ॥

पञ्चालाः केकया मत्स्याः सृंजयाश्च विशाम्पते ।
सर्वोद्योगेनाभिजग्मुर्द्रोणमेव युयुत्सया ॥ ६३ ॥

प्रजानाथ ! फिर तो पाञ्चाल, मत्स्य, केकय और सृञ्जय योद्धा युद्धकी इच्छासे पूर्ण उद्योग करके द्रोणाचार्यपर ही टूट पड़े ॥ ६३ ॥

तत्रासीत् सुमहद् युद्धं द्रोणस्याथ परैः सह ।
घोरे तमसि मग्नानां निघ्नतामितरेतरम् ॥ ६४ ॥

वहाँ शत्रुओंके साथ द्रोणाचार्यका बड़ा भारी संग्राम हुआ । सब लोग घोर अन्धकारमें डूबकर एक-दूसरेपर घातक प्रहार कर रहे थे ॥ ६४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दुर्योधनापयाने षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसंगमें दुर्योधनका पलायनविषयक एक सौ छाछठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६६ ॥

सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

कर्णके द्वारा सहदेवकी पराजय, शल्यके द्वारा विराटके भाई शतानीकका वध और विराटकी पराजय तथा अर्जुनसे पराजित होकर अलम्बुषका पलायन

संजय उवाच

सहदेवमथायान्तं द्रोणप्रेप्सुं विशाम्पते ।
कर्णो वैकर्तनो युद्धे वारयामास भारत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—प्रजानाथ ! भरतनन्दन ! द्रोणाचार्यको लक्ष्य करके आते हुए सहदेवको युद्धस्थलमें वैकर्तन कर्णने रोका ॥ १ ॥

सहदेवस्तु राधेयं विद्ध्वा नवभिराशुगैः ।
पुनर्विव्याध दशभिर्विशिखैर्नतपर्वभिः ॥ २ ॥

सहदेवने राधापुत्र कर्णको नौ बाणोंसे बींधकर झुकी हुई गाँठवाले दस बाणोंद्वारा पुनः घायल कर दिया ॥ २ ॥

तं कर्णः प्रतिविव्याध शतेन नतपर्वणाम् ।
सज्यं चास्य धनुः शीघ्रं चिच्छेद लघुहस्तवत् ॥ ३ ॥

कर्णने बदलेमें झुकी हुई गाँठवाले सौ बाण मारे और शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले वीर योद्धाकी भाँति उसने उनके प्रत्यञ्चासहित धनुषको भी शीघ्र ही काट दिया ॥

ततोऽन्यद् धनुरादाय माद्रीपुत्रः प्रतापवान् ।
कर्णं विव्याध विंशत्या तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४ ॥

तदनन्तर प्रतापी माद्रीकुमार सहदेवने दूसरा धनुष हाथमें लेकर कर्णको बीस बाणोंसे घायल कर दिया । वह अद्भुत-सा कार्य हुआ ॥ ४ ॥

तस्य कर्णो हयान् हत्वा शरैः संनतपर्वभिः ।
सारथिं चास्य भल्लेन द्रुतं निन्ये यमक्षयम् ॥ ५ ॥

तब कर्णने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे सहदेवके घोड़ोंको मारकर एक भल्लका प्रहार करके उनके सारथिको भी शीघ्र ही यमलोक पहुँचा दिया ॥ ५ ॥

विरथः सहदेवस्तु खड्गं चर्म समाददे ।
तदप्यस्य शरैः कर्णो व्यधमत् प्रहसन्निव ॥ ६ ॥

रथहीन हो जानेपर सहदेवने ढाल और तलवार हाथमें ले ली; परंतु कर्णने हँसते हुए-से बाण मारकर उनकी उस तलवारके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ६ ॥

अथ गुर्वीं महाघोरां हेमचित्रां महागदाम् ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो वैकर्तनरथं प्रति ॥ ७ ॥

तब सहदेवने अत्यन्त कुपित होकर एक सुवर्णजटित अत्यन्त भयंकर विशाल गदा सूर्यपुत्र कर्णके रथपर दे मारी ॥ ७ ॥

तामापतन्तीं सहसा सहदेवप्रचोदिताम् ।
व्यष्टम्भयच्छरैः कर्णो भूमौ चैनामपातयत् ॥ ८ ॥

सहदेवके द्वारा चलायी हुई उस गदाको सहसा अपने ऊपर आती देख कर्णने बहुत-से बाणोंद्वारा उसे स्तम्भित कर दिया और पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ८ ॥

गदां विनिहतां दृष्ट्वा सहदेवस्त्वरान्वितः ।
शक्तिं चिक्षेप कर्णाय तामप्यस्याच्छिनच्छरैः ॥ ९ ॥

अपनी गदाको असफल होकर गिरी हुई देख सहदेवने बड़ी उतावलीके साथ कर्णपर शक्ति चलायी; किंतु उसने बाणोंद्वारा उस शक्तिको भी काट डाला ॥ ९ ॥

ससम्भ्रमं ततस्तूर्णमवप्लुत्य रथोत्तमात् ।
सहदेवो महाराज दृष्ट्वा कर्णं व्यवस्थितम् ॥ १० ॥
रथचक्रं प्रगृह्याजौ मुमोचाधिरथिं प्रति ।

महाराज ! तब सहदेव अपने उस उत्तम रथसे शीघ्र ही वेगपूर्वक कूद पड़े और युद्धस्थलमें अधिरथपुत्र कर्णको सामने खड़ा देख रथका एक चक्का लेकर उसके ऊपर चला दिया ॥ १०½ ॥

तदापतद् वै सहसा कालचक्रमिवोद्यतम् ॥ ११ ॥
शरैरनेकसाहस्रैराच्छिनत् सूतनन्दनः ।

उठे हुए कालचक्रके समान सहसा अपने ऊपर गिरते हुए उस रथचक्रको सूतनन्दन कर्णने कई हजार बाणोंसे काट गिराया ॥ ११½ ॥

तस्मिंस्तु निहते चक्रे सूतजेन महात्मना ॥ १२ ॥
ईषादण्डकयोक्त्रांश्च युगानि विविधानि च ।
हस्त्यङ्गानि तथाश्वांश्च मृतांश्च पुरुषान् बहून् ॥ १३ ॥
चिक्षेप कर्णमुद्दिश्य कर्णस्तान् व्यधमच्छरैः ।

महामनस्वी सूतपुत्र कर्णके द्वारा उस रथचक्रके नष्ट कर दिये जानेपर ईषादण्ड, जोते, नाना प्रकारके जूए, हाथीके कटे हुए अङ्ग, मरे घोड़े और बहुत-सी मृत मनुष्योंकी लाशें कर्णको लक्ष्य करके चलायीं; परंतु कर्णने अपने बाणोंद्वारा उन सबकी धज्जियाँ उड़ा दीं ॥ १२-१३½ ॥

स निरायुधमात्मानं ज्ञात्वा माद्रवतीसुतः ॥ १४ ॥
वार्यमाणस्तु विशिखैः सहदेवो रणं जहौ ।

तत्पश्चात् माद्रीकुमार सहदेवने अपने आपको आयुधोंसे रहित समझकर कर्णके बाणोंसे अवरुद्ध हो उस रणभूमिको त्याग दिया ॥ १४½ ॥

तमभिद्रुत्य राधेयो मुहूर्ताद् भरतर्षभ ॥ १५ ॥
अब्रवीत् प्रहसन् वाक्यं सहदेवं विशाम्पते ।

भरतश्रेष्ठ ! प्रजानाथ ! तदनन्तर राधापुत्र कर्णने दो घड़ीतक सहदेवका पीछा करके उनसे हँसते हुए इस प्रकार कहा—॥ १५½ ॥

मा युध्यस्व रणेऽधीर विशिष्टै रथिभिः सह ॥ १६ ॥
सदृशैर्युध्य माद्रेय वचो मे मा विशङ्किथाः ।

'ओ अधीर बालक ! तू युद्धस्थलमें विशिष्ट रथियोंके साथ संग्राम न करना । माद्रीकुमार ! अपने समान योद्धाओंके साथ युद्ध किया कर । मेरी इस बातपर संदेह न करना' ॥

अथैनं धनुषोऽग्रेण तुदन् भूयोऽब्रवीद् वचः ॥ १७ ॥
एषोऽर्जुनो रणे तूर्णं युध्यते कुरुभिः सह ।
तत्र गच्छस्व माद्रेय गृहं वा यदि मन्यसे ॥ १८ ॥

तदनन्तर धनुषकी नोकसे उन्हें पीड़ा देते हुए कर्णने पुनः इस प्रकार कहा—'माद्रीपुत्र ! ये अर्जुन कौरवोंके साथ रणभूमिमें शीघ्रतापूर्वक युद्ध कर रहे हैं । तू उन्हींके पास चला जा अथवा तेरा मन हो तो घरको लौट जा' ॥१७-१८॥

एवमुक्त्वा तु तं कर्णो रथेन रथिनां वरः ।
प्रायात् पाञ्चालपाण्डूनां सैन्यानि प्रदहन्निव ॥ १९ ॥

सहदेवसे ऐसा कहकर रथियोंमें श्रेष्ठ कर्ण,पाञ्चालों और पाण्डवोंकी सेनाओंको दग्ध करता हुआ-सा रथके द्वारा उनकी ओर वेगपूर्वक चल दिया ॥ १९ ॥

वधं प्राप्तं तु माद्रेयं नावधीत् समरेऽरिहा ।
कुन्त्याः स्मृत्वा वचो राजन् सत्यसंधो महायशाः ॥ २० ॥

यद्यपि सहदेव उस समय वध करने योग्य अवस्थामें पहुँच गये थे, तो भी कुन्तीको दिये हुए वचनको याद करके समराङ्गणमें शत्रुसूदन सत्यप्रतिज्ञ एवं महायशस्वी कर्णने उनका वध नहीं किया ॥ २० ॥

सहदेवस्ततो राजन् विमनाः शरपीडितः ।
कर्णवाक्छरतप्तश्च जीविताग्निरविद्यत ॥ २१ ॥

राजन् ! तदनन्तर सहदेव कर्णके बाणोंसे पीड़ित और उसके वचनरूपी बाणोंसे संतप्त एवं खिन्नचित्त हो अपने जीवनसे विरक्त हो गये ॥ २१ ॥

आरुरोह रथं चापि पाञ्चाल्यस्य महात्मनः ।
जनमेजयस्य समरे त्वरायुक्तो महारथः ॥ २२ ॥

फिर वे महारथी सहदेव बड़ी उतावलीके साथ महामना पाञ्चाल-राजकुमार जनमेजयके रथपर आरूढ़ हो गये ॥२२॥

विराटं सहसैन्यं तु द्रोणार्थे [illegible]तमागतम् ।
मद्रराजः शरौघेण छादयामास धन्विनम् ॥ २३ ॥

द्रोणाचार्यपर वेगपूर्वक आक्रमण करनेवाले सेनासहित धनुर्धर राजा विराटको मद्रराज शल्यने अपने बाणसमूहोंसे आच्छादित कर दिया ॥ २३ ॥

तयोः समभवद् युद्धं समरे दृढधन्विनोः ।
यादृशं ह्यभवद् राजञ्जम्भवासवयोः पुरा ॥ २४ ॥

राजन् ! फिर तो समराङ्गणमें उन दोनों सुदृढ़ धनुर्धर योद्धाओंमें वैसा ही घोर युद्ध होने लगा, जैसा कि पूर्वकालमें इन्द्र और जम्भासुरमें हुआ था ॥ २४ ॥

मद्रराजो महाराज विराटं वाहिनीपतिम् ।
आजघ्ने त्वरितस्तूर्णं शतेन नतपर्वणाम् ॥ २५ ॥

महाराज ! मद्रराज शल्यने सेनापति राजा विराटको बड़ी उतावलीके साथ झुकी हुई गाँठवाले सौ बाण मारकर तुरंत घायल कर दिया ॥ २५ ॥

प्रतिविव्याध तं राजन् नवभिर्निशितैः शरैः ।
पुनश्चैनं त्रिसप्तत्या भूयश्चैव शतेन तु ॥ २६ ॥

राजन् ! तब विराटने मद्रराजको पहले नौ, फिर तिहत्तर और पुनः सौ तीखे बाणोंसे घायल करके बदला चुकाया ॥ २६ ॥

तस्य मद्राधिपो हत्वा चतुरो रथवाजिनः ।
सूतं ध्वजं च समरे शराभ्यां संन्यपातयत् ॥ २७ ॥

तदनन्तर मद्रराजने विराटके रथके चारों घोड़ोंको मारकर दो बाणोंसे समराङ्गणमें सारथि और ध्वजको भी काट गिराया ॥ २७ ॥

हताश्वात् तु रथात् तूर्णमवप्लुत्य महारथः ।
तस्थौ विस्फारयंश्चापं विमुञ्चंश्च शिताञ्छरान् ॥ २८ ॥

तब उस अश्वहीन रथसे तुरंत ही कूदकर महारथी राजा विराट धनुषकी टंकार करते और तीखे बाणोंको छोड़ते हुए भूमिपर खड़े हो गये ॥ २८ ॥

शतानीकस्ततो दृष्ट्वा भ्रातरं हतवाहनम् ।
रथेनाभ्यपतत् तूर्णं सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ २९ ॥

तत्पश्चात् शतानीक अपने भाईके वाहनको नष्ट हुआ देख सब लोगोंके देखते-देखते शीघ्र ही रथके द्वारा उनके पास आ पहुँचे ॥ २९ ॥

शतानीकमथायान्तं मद्रराजो महामृधे ।
विशिखैर्बहुभिर्विद्ध्वा ततो निन्ये यमक्षयम् ॥ ३० ॥

उस महासमरमें वहाँ आते हुए शतानीकको बहुत-से बाणोंद्वारा घायल करके मद्रराज शल्यने उन्हें यमलोक पहुँचा दिया ॥ ३० ॥

तस्मिंस्तु निहते वीरे विराटो रथसत्तमः ।
आरुरोह रथं तूर्णं तमेव ध्वजमालिनम् ॥ ३१ ॥

वीर शतानीकके मारे जानेपर रथियोंमें श्रेष्ठ विराट तुरंत ही ध्वज-मालासे विभूषित उसी रथपर आरूढ़ हो गये ॥ ३१ ॥

ततो विस्फार्य नयने क्रोधाद् द्विगुणविक्रमः ।
मद्रराजरथं तूर्णं छादयामास पत्रिभिः ॥ ३२ ॥

तब क्रोधसे आँखें फाड़कर दूना पराक्रम दिखाते हुए विराटने अपने बाणोंद्वारा मद्रराजके रथको शीघ्र ही आच्छादित कर दिया ॥ ३२ ॥

ततो मद्राधिपः क्रुद्धः शरेणानतपर्वणा ।
आजघानोरसि दृढं विराटं वाहिनीपतिम् ॥ ३३ ॥

इससे कुपित हुए मद्रराज शल्यने झुकी हुई गाँठवाले एक बाणसे सेनापति विराटकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥

सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ उपाविशत् ।
कश्मलं चाविशत् तीव्रं विराटो भरतर्षभ ॥ ३४ ॥

महाराज ! भरतभूषण ! राजा विराट अत्यन्त घायल होकर रथके पिछले भागमें धम्म-से बैठ गये और उन्हें तीव्र मूर्च्छाने दबा लिया ॥ ३४ ॥

सारथिस्तमपोवाह समरे शरविक्षतम् ।
ततः सा महती सेना प्राद्रवन्निशि भारत ॥ ३५ ॥
वध्यमाना शरशतैः शल्येनाहवशोभिना ।

भरतनन्दन ! समराङ्गणमें बाणोंसे क्षत-विक्षत हुए राजा विराटको उनका सारथि दूर हटा ले गया। तब संग्राममें शोभा पानेवाले शल्यके सैकड़ों सायकोंसे पीड़ित हुई वह विशाल सेना उस रात्रिके समय भाग खड़ी हुई ॥

तां दृष्ट्वा विद्रुतां सेनां वासुदेवधनंजयौ ॥ ३६ ॥
प्रयातौ तत्र राजेन्द्र यत्र शल्यो व्यवस्थितः ।

राजेन्द्र ! उस सेनाको भागती देख श्रीकृष्ण और अर्जुन उसी ओर चल दिये, जहाँ राजा शल्य खड़े थे ॥

तौ तु प्रत्युद्ययौ राजन् राक्षसेन्द्रो ह्यलम्बुषः ॥ ३७ ॥
अष्टचक्रसमायुक्तमास्थाय प्रवरं रथम् ।

राजन् ! उस समय राक्षसराज अलम्बुष आठ पहियोंसे युक्त श्रेष्ठ रथपर आरूढ़ हो उन दोनोंका सामना करनेके लिये आगे बढ़ आया ॥ ३७½ ॥

तुरङ्गममुखैर्युक्तं पिशाचैर्घोरदर्शनैः ॥ ३८ ॥
लोहितार्द्रपताकं तं रक्तमाल्यविभूषितम् ।
कार्ष्णायसमयं घोरमृक्षचर्मसमावृतम् ॥ ३९ ॥

उसके उस रथमें घोड़ोंके समान मुखवाले भयंकर पिशाच जुते हुए थे । उसपर लाल रंगकी आर्द्र पताका

फहरा रही थी। उस रथको लाल रंगके फूलोंकी मालासे सजाया गया था। वह भयंकर रथ काले लोहेका बना था और उसके ऊपर रीछकी खाल मढ़ी हुई थी ॥ ३८-३९ ॥

रौद्रेण चित्रपक्षेण विवृताक्षेण कूजता।
ध्वजेनोच्छ्रितदण्डेन गृध्रराजेन राजता ॥ ४० ॥
स बभौ राक्षसो राजन् भिन्नाञ्जनचयोपमः।

उसकी ध्वजापर विचित्र पंख और फैले हुए नेत्रोंवाला भयंकर गृध्रराज अपनी बोली बोलता था। उससे उपलक्षित उस ऊँचे डंडेवाले कान्तिमान् ध्वजसे कटे-छटे कोयलेके पहाड़के समान वह राक्षस बड़ी शोभा पा रहा था ॥ ४०½ ॥

रुरोधार्जुनमायान्तं प्रभञ्जनमिवाद्रिराट् ॥ ४१ ॥
किरन् बाणगणान् राजञ्शतशोऽर्जुनमूर्धनि।

राजन्! अर्जुनके मस्तकपर सैकड़ों बाण-समूहोंकी वर्षा करते हुए उस राक्षसने अपनी ओर आते हुए अर्जुनको उसी प्रकार रोक दिया, जैसे गिरिराज हिमालय प्रचण्ड वायुको रोक देता है ॥ ४१½ ॥

अतितीव्रं महद् युद्धं नरराक्षसयोस्तदा ॥ ४२ ॥
द्रष्टॄणां प्रीतिजननं सर्वेषां तत्र भारत।
गृध्रकाकबलोलूककङ्कगोमायुहर्षणम् ॥ ४३ ॥

भारत! उस समय वहाँ मनुष्य और राक्षसमें बड़े जोरसे महान् संग्राम होने लगा, जो समस्त दर्शकोंका आनन्द बढ़ानेवाला और गीध, कौए, बगले, उल्लू, कङ्क तथा गीदड़ोंको हर्ष प्रदान करनेवाला था ॥ ४२-४३ ॥

तमर्जुनः शतेनैव पत्रिणां समताडयत्।
नवभिश्च शितैर्बाणैर्ध्वजं चिच्छेद भारत ॥ ४४ ॥

भरतनन्दन! अर्जुनने सौ बाणोंसे उस राक्षसको घायल कर दिया और नौ तीखे बाणोंसे उसकी ध्वजा काट डाली ॥ ४४ ॥

सारथिं च त्रिभिर्बाणैस्त्रिभिरेव त्रिवेणुकम्।
धनुरेकेन चिच्छेद चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ ४५ ॥

फिर तीन बाणोंसे उसके सारथिको, तीनसे ही रथके त्रिवेणुको, एकसे उसके धनुषको और चार बाणोंसे चारों घोड़ोंको काट डाला ॥ ४५ ॥

पुनः सज्यं कृतं चापं तदप्यस्य द्विधाच्छिनत्।
विरथस्योद्यतं खड्गं शरेणास्य द्विधाकरोत् ॥ ४६ ॥

जब उसने पुनः दूसरे धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी तो अर्जुनने उसके भी दो टुकड़े कर दिये। रथहीन होनेपर उस राक्षसने जब खड्ग उठाया, तब अर्जुनने एक बाण मारकर उसके भी दो खण्ड कर डाले ॥ ४६ ॥

अथैनं निशितैर्बाणैश्चतुर्भिर्भरतर्षभ।
पार्थोऽविध्यद् राक्षसेन्द्रं स विद्धः प्राद्रवद् भयात् ॥ ४७ ॥

भरतश्रेष्ठ! तत्पश्चात् कुन्तीकुमार अर्जुनने चार तीखे बाणोंद्वारा उस राक्षसराजको बींध डाला। उन बाणोंसे विद्ध होकर अलम्बुष भयके मारे भाग गया ॥ ४७ ॥

तं विजित्यार्जुनस्तूर्णं द्रोणान्तिकमुपाययौ।
किरञ्शरगणान् राजन् नरवारणवाजिषु ॥ ४८ ॥

राजन्! उसे परास्त करके अर्जुन मनुष्यों, हाथियों तथा घोड़ोंपर बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए तुरंत ही द्रोणाचार्यके समीप चले गये ॥ ४८ ॥

वध्यमाना महाराज पाण्डवेन यशस्विना।
सैनिका न्यपतन्नुर्व्यां वातनुन्ना इव द्रुमाः ॥ ४९ ॥

महाराज! उन यशस्वी पाण्डुकुमारके द्वारा मारे जाते हुए आपके सैनिक आँधीके उखाड़े हुए वृक्षोंके समान धड़ाधड़ पृथ्वीपर गिर रहे थे ॥ ४९ ॥

तेषु तूत्साद्यमानेषु फाल्गुनेन महात्मना।
सम्प्राद्रवद् बलं सर्वं पुत्राणां ते विशाम्पते ॥ ५० ॥

प्रजानाथ! जब इस प्रकार महात्मा अर्जुनके द्वारा उनका संहार होने लगा, तब आपके पुत्रोंकी सारी सेना भाग चली ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे अलम्बुषपराभवे सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके अवसरपर अलम्बुषकी पराजयविषयक एक सौ सरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६७ ॥

अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

शतानीकके द्वारा चित्रसेनकी और वृषसेनके द्वारा द्रुपदकी पराजय तथा प्रतिविन्ध्य एवं दुःशासनका युद्ध

संजय उवाच

शतानीकं शरैस्तूर्णं निर्दहन्तं चमूं तव।
चित्रसेनस्तव सुतो वारयामास भारत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—भारत! एक ओरसे नकुलपुत्र

शतानीक अपनी शरांशुसे आपकी सेनाको भस्म करता हुआ आ रहा था। उसे आपके पुत्र चित्रसेनने रोका ॥ १ ॥

नाकुलिश्चित्रसेनं तु विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः ।
स तु तं प्रतिविव्याध दशभिर्निशितैः शरैः ॥ २ ॥

शतानीकने चित्रसेनको पाँच बाण मारे। चित्रसेनने भी दस पैने बाण मारकर बदला चुकाया ॥ २ ॥

चित्रसेनो महाराज शतानीकं पुनर्युधि ।
नवभिर्निशितैर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥ ३ ॥

महाराज ! चित्रसेनने युद्धस्थलमें पुनः नौ तीखे बाणोंद्वारा शतानीककी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३ ॥

नाकुलिस्तस्य विशिखैर्वर्म संनतपर्वभिः ।
गात्रात् संच्यावयामास तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४ ॥

तब नकुलपुत्रने झुकी हुई गाँठवाले अनेक बाण मारकर चित्रसेनके शरीरसे उसके कवचको काट गिराया। वह अद्भुत सा कार्य हुआ ॥ ४ ॥

सोऽपेतवर्मा पुत्रस्ते विरराज भृशं नृप ।
उत्सृज्य काले राजेन्द्र निर्मोकमिव पन्नगः ॥ ५ ॥

नरेश्वर! राजेन्द्र ! कवच कट जानेपर आपका पुत्र चित्रसेन समयपर केंचुल छोड़नेवाले सर्पके समान अत्यन्त सुशोभित हुआ ॥ ५ ॥

ततोऽस्य निशितैर्बाणैर्ध्वजं चिच्छेद नाकुलिः ।
धनुश्चैव महाराज यतमानस्य संयुगे ॥ ६ ॥

महाराज ! तदनन्तर नकुलपुत्र शतानीकने युद्धस्थलमें विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले चित्रसेनके ध्वज और धनुषको पैने बाणोंद्वारा काट दिया ॥ ६ ॥

स छिन्नधन्वा समरे विवर्मा च महारथः ।
धनुरन्यन्महाराज जग्राहारिविदारणम् ॥ ७ ॥

राजेन्द्र ! समराङ्गणमें धनुष और कवच कट जानेपर महारथी चित्रसेनने दूसरा धनुष हाथमें लिया, जो शत्रुको विदीर्ण करनेमें समर्थ था ॥ ७ ॥

ततस्तूर्णं चित्रसेनो नाकुलिं नवभिः शरैः ।
विव्याध समरे क्रुद्धो भरतानां महारथः ॥ ८ ॥

उस समय समरभूमिमें कुपित हुए भरतकुलके महारथी वीर चित्रसेनने नकुलपुत्र शतानीकको नौ बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ८ ॥

शतानीकोऽथ संक्रुद्धश्चित्रसेनस्य मारिष ।
जघान चतुरो वाहान् सारथिं च नरोत्तमः ॥ ९ ॥

माननीय नरेश ! तब अत्यन्त कुपित हुए नरश्रेष्ठ शतानीकने चित्रसेनके चारों घोड़ों और सारथिको मार डाला ॥

अवप्लुत्य रथात् तस्माच्चित्रसेनो महारथः ।
नाकुलिं पञ्चविंशत्या शराणामार्दयद् बली ॥ १० ॥

तब बलवान् महारथी चित्रसेनने उस रथसे कूदकर नकुलपुत्र शतानीकको पचीस बाण मारे ॥ १० ॥

तस्य तत्कुर्वतः कर्म नकुलस्य सुतो रणे ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद चापं रत्नविभूषितम् ॥ ११ ॥

यह देख रणक्षेत्रमें नकुलपुत्रने पूर्वोक्त कर्म करनेवाले चित्रसेनके रत्नविभूषित धनुषको एक अर्धचन्द्राकार बाणसे काट डाला ॥ ११ ॥

स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
आरुरोह रथं तूर्णं हार्दिक्यस्य महात्मनः ॥ १२ ॥

धनुष कट गया, घोड़े और सारथि मारे गये और वह रथहीन हो गया। उस अवस्थामें चित्रसेन तुरंत भागकर महामना कृतवर्माके रथपर जा चढ़ा ॥ १२ ॥

द्रुपदं तु सहानीकं द्रोणप्रेप्सुं महारथम् ।
वृषसेनोऽभ्ययात् तूर्णं किरञ्शरशतैस्तदा ॥ १३ ॥

द्रोणाचार्यका सामना करनेके लिये आते हुए महारथी द्रुपदपर वृषसेनने सैकड़ों बाणोंकी वर्षा करते हुए तत्काल आक्रमण कर दिया ॥ १३ ॥

यज्ञसेनस्तु समरे कर्णपुत्रं महारथम् ।
षष्ट्या शराणां विव्याध बाह्वोरुरसि चानघ ॥ १४ ॥

निष्पाप नरेश ! समराङ्गणमें राजा यज्ञसेन (द्रुपद) ने महारथी कर्णपुत्र वृषसेनकी छाती और भुजाओंमें साठ बाण मारे ॥ १४ ॥

वृषसेनस्तु संक्रुद्धो यज्ञसेनं रथे स्थितम् ।
बहुभिः सायकैस्तीक्ष्णैराजघान स्तनान्तरे ॥ १५ ॥

तब वृषसेन अत्यन्त कुपित होकर रथपर बैठे हुए यज्ञसेनकी छातीमें बहुत-से पैने बाण मारे ॥ १५ ॥

तावुभौ शरनुन्नाङ्गौ शरकण्टकितौ रणे ।
व्यभ्राजेतां महाराज श्वाविधौ शललैरिव ॥ १६ ॥

महाराज ! उन दोनोंके ही शरीर एक दूसरेके बाणोंसे क्षत-विक्षत हो गये थे। वे दोनों ही बाणरूपी कंटकोंसे युक्त हो काँटोंसे भरे हुए दो साही नामक जन्तुओंके समान शोभित हो रहे थे ॥ १६ ॥

रुक्मपुङ्खैः प्रसन्नाग्रैः शरैश्छिन्नतनुच्छदौ ।
रुधिरौघपरिक्लिन्नौ व्यभ्राजेतां महामृधे ॥ १७ ॥

सोनेके पंख और स्वच्छ धारवाले बाणोंसे उस महासमरमें दोनोंके कवच कट गये थे और दोनों ही लहू-लुहान होकर अद्भुत शोभा पा रहे थे ॥ १७ ॥

तपनीयनिभौ चित्रौ कल्पवृक्षाविवाद्भुतौ ।

किंशुकाविव चोत्फुल्लौ व्यकाशेतां रणाजिरे ॥ १८ ॥

वे दोनों सुवर्णके समान विचित्र, कल्पवृक्षके समान अद्भुत और खिले हुए दो पलाश वृक्षोंके समान अनूठी शोभासे सम्पन्न हो रणभूमिमें प्रकाशित हो रहे थे ॥ १८ ॥

वृषसेनस्ततो राजन् द्रुपदं नवभिः शरैः।
विद्ध्वा विव्याध सप्तत्या पुनरन्यैस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ १९ ॥

राजन् ! तदनन्तर वृषसेनने राजा द्रुपदको नौ बाणोंसे घायल करके फिर सत्तर बाणसे बींध डाला। तत्पश्चात् उन्हें तीन-तीन बाण और मारे ॥ १९ ॥

ततः शरसहस्राणि विमुञ्चन् विबभौ तदा।
कर्णपुत्रो महाराज वर्षमाण इवाम्बुदः ॥ २० ॥

महाराज ! तदनन्तर सहस्रों बाणोंका प्रहार करता हुआ कर्णपुत्र वृषसेन जलकी वर्षा करनेवाले मेघके समान सुशोभित होने लगा ॥ २० ॥

द्रुपदस्तु ततः क्रुद्धो वृषसेनस्य कार्मुकम्।
द्विधा चिच्छेद भल्लेन पीतेन निशितेन च ॥ २१ ॥

इससे क्रोधमें भरे हुए राजा द्रुपदने एक पानीदार पैने भल्लसे वृषसेनके धनुषके दो टुकड़े कर डाले ॥ २१ ॥

सोऽन्यत् कार्मुकमादाय रुक्मबद्धं नवं दृढम्।
तूणादाकृष्य विमलं भल्लं पीतं शितं दृढम् ॥ २२ ॥
कार्मुके योजयित्वा तं द्रुपदं संनिरीक्ष्य च।
आकर्णपूर्णं मुमुचे त्रासयन् सर्वसोमकान् ॥ २३ ॥

तब उसने सोनेसे मढ़े हुए दूसरे नवीन एवं सुदृढ़ धनुषको हाथमें लेकर तरकससे एक चमचमाता हुआ पानीदार, तीखा और मजबूत भल्ल निकाला। उसे धनुषपर रक्खा और कानतक खींचकर समस्त सोमकोंको भयभीत करते हुए वृषसेनने राजा द्रुपदको लक्ष्य करके वह भल्ल छोड़ दिया ॥ २२-२३ ॥

हृदयं तस्य भित्त्वा च जगाम वसुधातलम्।
कश्मलं प्राविशद् राजा वृषसेनशराहतः ॥ २४ ॥

वह भल्ल द्रुपदकी छाती छेदकर धरतीपर जा गिरा। वृषसेनके उस भल्लसे आहत होकर राजा द्रुपद मूर्छित हो गये ॥ २४ ॥

सारथिस्तमपोवाह स्मरन् सारथिचेष्टितम्।
तस्मिन् प्रभग्ने राजेन्द्र पञ्चालानां महारथे ॥ २५ ॥
ततस्तु द्रुपदानीकं शरैश्छिन्नतनुच्छदम्।
सम्प्राद्रवत् तदा राजन् निशीथे भैरवे सति ॥ २६ ॥

राजेन्द्र ! तब सारथि अपने कर्तव्यका स्मरण करके उन्हें रणभूमिसे दूर हटा ले गया। पाञ्चालोंके महारथी द्रुपदके हट जानेपर बाणोंसे कटे हुए कवचवाली द्रुपदकी सारी सेना उस भयंकर आधीरातके समय वहाँसे भाग चली ॥ २५-२६ ॥

प्रदीपैर्हि परित्यक्तैर्ज्वलद्भिस्तैः समन्ततः।
व्यराजत मही राजन् वीताभ्रा द्यौरिव ग्रहैः ॥ २७ ॥

राजन् ! भागते हुए सैनिकोंने जो मशालें फेंक दी थीं, वे सब ओर जल रही थीं। उनके द्वारा वह रणभूमि ग्रह-नक्षत्रोंसे भरे हुए मेघहीन आकाशके समान सुशोभित हो रही थी ॥ २७ ॥

तथाङ्गदैर्निपतितैर्व्यराजत वसुंधरा।
प्रावृट्काले महाराज विद्युद्भिरिव तोयदः ॥ २८ ॥

महाराज ! वीरोंके गिरे हुए चमकीले बाजूबन्दोंसे वहाँकी भूमि वैसी ही शोभा पा रही थी, जैसे वर्षाकालमें बिजलियोंसे मेघ प्रकाशित होता है ॥ २८ ॥

ततः कर्णसुतात् त्रस्ताः सोमका विप्रदुद्रुवुः।
यथेन्द्रभयवित्रस्ता दानवास्तारकामये ॥ २९ ॥

तदनन्तर कर्णपुत्र वृषसेनके भयसे त्रस्त हो सोमकवंशी क्षत्रिय उसी प्रकार भागने लगे, जैसे तारकामय संग्राममें इन्द्रके भयसे डरे हुए दानव भागे थे ॥ २९ ॥

तेनार्द्यमानाः समरे द्रवमाणाश्च सोमकाः।
व्यराजन्त महाराज प्रदीपैरवभासिताः ॥ ३० ॥

महाराज ! समरभूमिमें वृषसेनसे पीड़ित होकर भागते हुए सोमक योद्धा प्रदीपोंसे प्रकाशित हो बड़ी शोभा पा रहे थे ॥ ३० ॥

तांस्तु निर्जित्य समरे कर्णपुत्रोऽप्यरोचत।
मध्यंदिनमनुप्राप्तो घर्मांशुरिव भारत ॥ ३१ ॥

भारत ! युद्धस्थलमें उन सबको जीतकर कर्णपुत्र वृषसेन भी दोपहरके प्रचण्ड किरणोंवाले सूर्यके समान उद्भासित हो रहा था ॥ ३१ ॥

तेषु राजसहस्रेषु तावकेषु परेषु च।
एक एव ज्वलंस्तस्थौ वृषसेनः प्रतापवान् ॥ ३२ ॥

आपके और शत्रुपक्षके सहस्रों राजाओंके बीच एकमात्र प्रतापी वृषसेन ही अपने तेजसे प्रकाशित होता हुआ रणभूमिमें खड़ा था ॥ ३२ ॥

स विजित्य रणे शूरान् सोमकानां महारथान्।
जगाम त्वरितस्तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ ३३ ॥

वह युद्धके मैदानमें शूरवीर सोमक महारथियोंको परास्त करके तुरंत वहाँ चला गया, जहाँ राजा युधिष्ठिर खड़े थे ॥ ३३ ॥

प्रतिविन्ध्यमथ क्रुद्धं प्रदहन्तं रणे रिपून्।
दुःशासनस्तव सुतः प्रत्यगच्छन्महारथः ॥ ३४ ॥

दूसरी ओर क्रोधमें भरा हुआ प्रतिविन्ध्य रणक्षेत्रमें शत्रुओंको दग्ध कर रहा था। उसका सामना करनेके लिये आपका महारथी पुत्र दुःशासन आ पहुँचा ॥ ३४ ॥

तयोः समागमो राजंश्चित्ररूपो बभूव ह।
व्यपेतजलदे व्योम्नि बुधभास्करयोरिव ॥ ३५ ॥

राजन्! जैसे मेघरहित आकाशमें बुध और सूर्यका समागम हो, उसी प्रकार युद्धस्थलमें उन दोनोंका अद्भुत मिलन हुआ ॥ ३५ ॥

प्रतिविन्ध्यं तु समरे कुर्वाणं कर्म दुष्करम्।
दुःशासनस्त्रिभिर्बाणैर्ललाटे समविध्यत ॥ ३६ ॥

समराङ्गणमें दुष्कर कर्म करनेवाले प्रतिविन्ध्यके ललाटमें दुःशासनने तीन बाण मारे ॥ ३६ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता तव पुत्रेण धन्विना।
विरराज महाबाहुः सशृङ्ग इव पर्वतः ॥ ३७ ॥

आपके बलवान् धनुर्धर पुत्रद्वारा चलाये हुए उन बाणोंसे अत्यन्त घायल हो महाबाहु प्रतिविन्ध्य तीन शिखरोंवाले पर्वतके समान सुशोभित हुआ ॥ ३७ ॥

दुःशासनं तु समरे प्रतिविन्ध्यो महारथः।
नवभिः सायकैर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ ३८ ॥

तत्पश्चात् महारथी प्रतिविन्ध्यने समरभूमिमें दुःशासनको नौ बाणोंसे घायल करके फिर सात बाणोंसे बींध डाला ॥ ३८ ॥

तत्र भारत पुत्रस्ते कृतवान् कर्म दुष्करम्।
प्रतिविन्ध्यहयानुग्रैः पातयामास सायकैः ॥ ३९ ॥

भारत! उस समय वहाँ आपके पुत्रने एक दुष्कर पराक्रम कर दिखाया। उसने अपने भयंकर बाणोंद्वारा प्रतिविन्ध्यके घोड़ोंको मार गिराया ॥ ३९ ॥

सारथिं चास्य भल्लेन ध्वजं च समपातयत्।
रथं च तिलशो राजन् व्यधमत् तस्य धन्विनः ॥ ४० ॥

राजन्! फिर एक भल्ल मारकर उसने धनुर्धर वीर प्रतिविन्ध्यके सारथि और ध्वजको धराशायी कर दिया तथा रथके भी तिलके समान टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ४० ॥

पताकाश्च सतूणीरा रश्मीन् योक्त्राणि च प्रभो।
चिच्छेद तिलशः क्रुद्धः शरैः संनतपर्वभिः ॥ ४१ ॥

प्रभो! क्रोधमें भरे हुए दुःशासनने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे प्रतिविन्ध्यकी पताकाओं, तरकसों, उनके घोड़ोंकी बागडोरों और रथके जोतोंको भी तिल-तिल करके काट डाला ॥ ४१ ॥

विरथः स तु धर्मात्मा धनुष्पाणिरवस्थितः।
अयोधयत् तव सुतं किरञ्शरशतान् बहून् ॥ ४२ ॥

धर्मात्मा प्रतिविन्ध्य रथहीन हो जानेपर हाथमें धनुष लिये पृथ्वीपर खड़ा हो गया और सैकड़ों बाणोंकी वर्षा करता हुआ आपके पुत्रके साथ युद्ध करने लगा ॥ ४२ ॥

क्षुरप्रेण धनुस्तस्य चिच्छेद तनयस्तव।
अथैनं दशभिर्बाणैश्छिन्नधन्वानमार्दयत् ॥ ४३ ॥

तब आपके पुत्रने एक क्षुरप्रसे प्रतिविन्ध्यका धनुष काट दिया और धनुष कट जानेपर उसे दस बाणोंसे गहरी चोट पहुँचायी ॥ ४३ ॥

तं दृष्ट्वा विरथं तत्र भ्रातरोऽस्य महारथाः।
अन्ववर्तन्त वेगेन महत्या सेनया सह ॥ ४४ ॥

उसे रथहीन हुआ देख उसके अन्य महारथी भाई विशाल सेनाके साथ बड़े वेगसे उसकी सहायताके लिये आ पहुँचे ॥ ४४ ॥

आप्लुतः स ततो यानं सुतसोमस्य भास्वरम्।
धनुर्गृह्य महाराज विव्याध तनयं तव ॥ ४५ ॥

महाराज! तब प्रतिविन्ध्य उछलकर सुतसोमके तेजस्वी रथपर जा बैठा और हाथमें धनुष लेकर आपके पुत्रको घायल करने लगा ॥ ४५ ॥

ततस्तु तावकाः सर्वे परिवार्य सुतं तव।
अभ्यवर्तन्त संग्रामे महत्या सेनया वृताः ॥ ४६ ॥

यह देख आपके सभी योद्धा आपके पुत्र दुःशासनको सब ओरसे घेरकर विशाल सेनाके साथ वहाँ युद्धके लिये डट गये ॥ ४६ ॥

ततः प्रववृते युद्धं तव तेषां च भारत।
निशीथे दारुणे काले यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ ४७ ॥

भारत! तदनन्तर उस भयंकर निशीथकालमें आपके पुत्र और द्रौपदीपुत्रोंका घोर युद्ध आरम्भ हुआ, जो यमराजके राज्यकी वृद्धि करनेवाला था ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे शतानीकादियुद्धेऽष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके समय शतानीक आदिका युद्धविषयक एक सौ अड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६८ ॥

रजि० सं० ए० ८५४



शेर छाप